

इक्कीसवीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में यथार्थ चेतना
Ikkeesvi Sadi Ki Hindi Ghazal Mein
Yatharth Chetna



कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

की

पीएच.डी. (हिन्दी)

उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

कला संकाय

शोधार्थी

महावीर सिंह

पंजीयन क्रमांक (RS/3011/22)

शोध पर्यवेक्षक

डॉ. कविता मीणा

सह-आचार्य

हिन्दी विभाग

राजकीय कला कन्या महाविद्यालय, कोटा (राज.)

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

(राजस्थान) 324005

भारत

जनवरी, 2026

शोध निदेशालय
कोटा विश्वविद्यालय

एम.बी.एस. मार्ग, कोटा (राजस्थान)-३२४००५
फोन नम्बर : ०७४४-२४७९०३७



Directorate of Research
University of Kota

MBS Marg, KOTA (Rajasthan)-324005
Phone No.: 0744-2471037

CERTIFICATE

I feel great pleasure in certifying that the Ph.D. thesis entitled "**इक्कीसवीं सदी की हिंदी गज़ल में यथार्थ चेतना**" submitted by **Mahaveer Singh**, Registration No. (RS/3011/22) to the University of Kota in the partial fulfillment of the requirements for the award of the degree of Doctor of Philosophy is based on the research work carried out under my guidance.

He has completed the following requirements as per UGC Regulations and research ordinance of the University:

- (a) Satisfactory Completion of the Ph.D. Course Work.
- (b) Submission of Half Yearly Progress Reports.
- (c) Fulfillment of residential requirement of the Research Centre (Minimum 200 Days).
- (d) Presentation of research work before the Departmental Committee.
- (e) Publication at least two research paper in the referred research journal of national and international repute.
- (f) Two paper presentations in the Conferences/ Seminars.

I recommend the submission of the Ph.D. thesis and certify that it is fit to be evaluated by the examiners.

Date:

Place : KOTA

Dr. Kavita Meena
Research Supervisor

शोध निदेशालय
कोटा विश्वविद्यालय

एम.बी.एस. मार्ग, कोटा (राजस्थान)-३२४००५
फोन नम्बर : ०७४४-२४७९०३७



Directorate of Research
University of Kota

MBS Marg, KOTA (Rajasthan)-324005
Phone No.: 0744-2471037

DECLARATION

I, **Mahaveer Singh**, hereby certify that the research work presented in my Ph.D. thesis entitled "इक्कीसवीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में यथार्थ चेतना" which is carried out by me under the supervision of supervisor **Dr. Kavita Meena, Associate Professor, Dept. of Hindi, Govt. Arts Girls College, Kota, Rajasthan** and submitted in the partial fulfillment of the requirement for the award of the degree of **Doctor of Philosophy** of the University of Kota, represents my ideas in my own words and where others ideas or words have been included in this thesis, I have adequately cited and referenced the original sources.

The work presented in this thesis has not been submitted elsewhere for the award of any degree or diploma from any other institution or university in India or abroad. I declare that I have adhered to all the principles of academic honesty and integrity and have not misrepresented or fabricated or falsified any idea / data / fact / source in my submission.

I understand that any violation of the above will cause for disciplinary action by the University and can also evoke penal action from the sources which have thus not been properly cited or from whom proper permission has not been taken when needed.

Date:

Place : Kota

(Mahaveer Singh)

Research Scholar

This is to certify that the above statement made by **Mahaveer Singh** (Registration No. RS/3011/22) is correct to the best of my knowledge.

Date:

Place : Kota

(Dr. Kavita Meena)

Research Supervisor

शोध निदेशालय कोटा विश्वविद्यालय

एम.बी.एस. मार्ग, कोटा (राजस्थान)-३२४००५
फोन नम्बर : ०७४४-२४७१०३७



Directorate of Research University of Kota

MBS Marg, KOTA (Rajasthan)-324005
Phone No.: 0744-2471037

Anti-Plagiarism Certificate

It is certified that the Ph.D. thesis entitled "**इक्कीसवीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में यथार्थ चेतना**" submitted by **Mahaveer Singh** has been examined with the anti-plagiarism tool.

We undertake that:

- The thesis has significant new work/knowledge as compared already published or are under consideration to be published elsewhere. No sentence, equation, diagram, table, paragraph or section has been copied verbatim from previous work unless it is placed under quotation mark and duly referenced.
- The work presented is original and own work of the author i.e. there is no plagiarism. No ideas, processes, results or words of others have been presented as the author's own work
- There is no fabrication of data or results which have been compiled and analyzed.
- There is no falsification by manipulating research materials, equipment or processes, or changing or omitting data or results such that the research is not accurately represented in the research record.
- The thesis has been checked by using **DrillBit** tool/software and found within the limits as per UGC plagiarism policy and instructions issued from time to time.

Report is also enclosed along with this Ph.D. thesis.

Date:
Place: **Kota**

(**Mahaveer Singh**)
Research Scholar

Date:
Place: **Kota**

(**Dr. Kavita Meena**)
Research Supervisor



The Report is Generated by DrillBit Plagiarism Detection Software

Selected Language

Hindi

Submission Information

Author Name	महावीर सिंह
Title	इक्कीसवीं सदी की हिंदी गज़ल में यथार्थ चेतना
Paper/Submission ID	5106151
Submitted by	drannakaushik@uok.ac.in
Submission Date	2025-12-30 16:48:42
Document type	Thesis

Result Information

Similarity

3%

A Unique QR Code use to View/Download/Share Pdf File





DrillBit Similarity Report

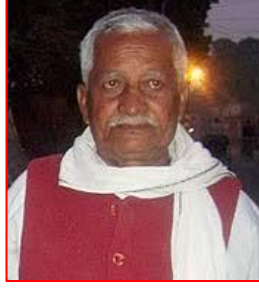
3	58	A	A-Satisfactory (0-10%) B-Upgrade (11-40%) C-Poor (41-60%) D-Unacceptable (61-100%)
SIMILARITY %	MATCHED SOURCES	GRADE	

LOCATION	MATCHED DOMAIN	%	SOURCE TYPE
1	Thesis Submitted to Shodhganga, shodhganga.inflibnet.ac.in	<1	Publication
2	Thesis Submitted to Shodhganga, shodhganga.inflibnet.ac.in	<1	Publication
3	Thesis Submitted to Shodhganga, shodhganga.inflibnet.ac.in	<1	Publication
4	Thesis Submitted to Shodhganga, shodhganga.inflibnet.ac.in	<1	Publication
5	Paper Submitted to Awadesh Pratap Singh University, Rewa	<1	Student Paper
6	Thesis Submitted to Shodhganga, shodhganga.inflibnet.ac.in	<1	Publication
7	Thesis Submitted to Shodhganga, shodhganga.inflibnet.ac.in	<1	Publication
8	Thesis Submitted to Shodhganga, shodhganga.inflibnet.ac.in	<1	Publication
9	Paper Submitted to Awadesh Pratap Singh University, Rewa	<1	Student Paper
10	Thesis Submitted to Shodhganga, shodhganga.inflibnet.ac.in	<1	Publication
11	Thesis Submitted to Shodhganga, shodhganga.inflibnet.ac.in	<1	Publication
12	Paper Submitted to AudioEye Pro Demo, By Tester Testeroni, PAPER_ID 5081795, Submission_Date-2025-12-23 14_17	<1	Student Paper
13	Thesis Submitted to Shodhganga, shodhganga.inflibnet.ac.in	<1	Publication
14	Thesis Submitted to Shodhganga, shodhganga.inflibnet.ac.in	<1	Publication

"21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में यथार्थ चेतना के प्रतिनिधि ग़ज़लकार"



जहीर कुरेशी



अदम गोंडवी



ज्ञान प्रकाश विवेक



वशिष्ठ अनूप



माधव कौशिक



देवेंद्र आर्य



रामकुमार कृष्णक



विनय मिश्र



डी. एम. मिश्र



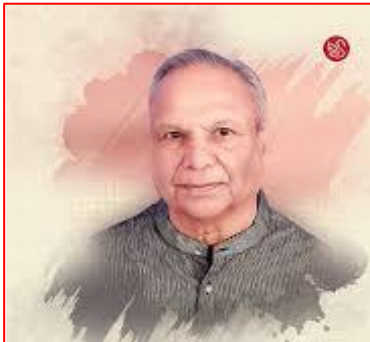
महेश कटारे सुगम



डॉ. शिव ओम अम्बर



हरेराम समीप



डॉ. किशन तिवारी



राम मेश्राम



महेश अग्रवाल

प्राक्कथन

सृष्टि में मनुष्य सर्वाधिक विवेकशील और चिंतनशील प्राणी है। वह स्वभावतः जिज्ञासु होता है। जीवन-जगत को लेकर उसके मन में निरंतर जिज्ञासाएँ, शंकाएँ और प्रश्न उठते रहते हैं। उसका खोजी मन उसे उनके समाधान ढूँढने के लिए प्रेरित करता है और वह कर्तव्यस्थ होकर अपने प्रश्नों के हल खोज कर अपनी जिज्ञासा को शांत करता है। मानव की यह जिज्ञासा ही नवीन ज्ञान और खोज का आधार होती है। संसार में होने वाले समस्त आविष्कार या शोध कार्य मनुष्य की इसी जिज्ञासु प्रवृत्ति की देन है। अकादमिक जगत से जुड़े लोगों में अकादमिक विषयों-विमर्शों के बारे में प्रश्न उठना स्वाभाविक है। प्रस्तुत शोध कार्य ऐसी ही विषय विमर्शीय जिज्ञासा का परिणाम है।

ग़ज़ल या शैरो-शायरी की एक महत्वपूर्ण और विशिष्ट खूबी उसकी उद्धरणशीलता है। अपनी बात को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने के लिए हर क्षेत्र के लोग शैरो-शायरी का प्रयोग करते हैं। ग़ज़ल का प्रत्येक शेर अपने आप में पूर्ण अर्थ-संरचना रखता है और किसी विषय, भाव और विचार को संक्षिप्त एवं सांकेतिक रूप में तीव्र भावप्रवण अभिव्यक्ति प्रदान करता है। यही कारण है कि ग़ज़ल के शेर सामान्य जन-जीवन में उद्धरण के रूप में सहजता से प्रचलित हो जाते हैं और संवाद, भाषण, लेखन तथा सामाजिक विमर्श का अभिन्न हिस्सा बनते हैं। ग़ज़ल की यह खूबी मुझे शुरू से आकर्षित करती रही है। कॉलेज शिक्षा में आने पर शोध विषय के लिए इस आकर्षण ने एक विकल्प प्रदान किया।

काव्य की विधाओं में ग़ज़ल अपनी छंदबद्धता, लयात्मकता, गेयता, शिल्प और कहन की विशिष्टता, संक्षिप्तता और भाव-प्रवणता के कारण सीधे दिल-दिमाग में उतरती है। यही कारण है कि यह लोकमन के सर्वाधिक नज़दीक रही लोकप्रिय विधा है। परंपरागत रूप से हुस्न-ओ-इश्क की नाज़ुक गलियों से गुज़रने वाली यह विधा जब यथार्थ की खुरदरी ज़मीन पर उतरती है और अपने समय की धड़कनों को अपनी लय में पिरोती है, तो इसकी आवाज़ में एक नई धार और कशिश पैदा होती है, इसकी शक्ति कई गुना बढ़ जाती है। ग़ज़ल की दुनिया में दुष्यंत कुमार का आगमन एक ऐसा ही युगांतरकारी हस्तक्षेप था। उन्होंने ग़ज़ल की पारंपरिक सीमाओं का अतिक्रमण कर ग़ज़ल की प्रकृति और प्रवृत्ति को बदलते हुए उसे जिस राजनीतिक और सामाजिक चेतना से लैस किया। वह केवल एक साहित्यिक प्रयोग नहीं था, बल्कि

एक पूरे युग की छटपटाहट की कलात्मक अभिव्यक्ति थी। उनकी ग़ज़लों ने यह सिद्ध किया कि यह विधा महफ़िलों की ज़ीनत होने के साथ-साथ सड़कों का संघर्ष भी बन सकती है। उनकी ग़ज़लों की मशाल ने एक ऐसी राह रोशन की, जिस पर चलने की तीव्र आकांक्षा उनके समकालीन और परवर्ती ग़ज़लकारों में जगी। मेरी शोध-यात्रा का प्रस्थान-बिंदु यही जिज्ञासा थी कि दुष्यंत द्वारा प्रज्वलित यह मशाल आज इक्कीसवीं सदी की दहलीज पर कितनी प्रदीप्त है। दुष्यंत के बाद हिंदी ग़ज़ल की वह प्रतिरोधी और यथार्थवादी परंपरा किस दिशा में आगे बढ़ी? क्या वह एक अल्पकालिक आवेग बनकर रह गई या उसने एक सुदृढ़ काव्य-धारा का रूप ले लिया? इन प्रश्नों ने हिंदी ग़ज़ल पर शोध के मेरे विकल्प को आगे की ओर गति दी।

जब मैंने समकालीन हिंदी ग़ज़ल के सागर में गोता लगाया, तो पाया कि यह धारा तो और भी वेगवती होकर बह रही है। इस कड़ी में जब मैंने अदम गोंडवी, जहीर कुरेशी जैसे ग़ज़लकारों की ग़ज़लों को पढ़ा, तो मेरा विकल्प निश्चय में बदलने लगा। क्योंकि मैंने जाना कि दुष्यन्त के परवर्ती अनगिनत ग़ज़लकार न केवल इस परंपरा को जीवित रखे हुए हैं, बल्कि उसे नई ऊँचाइयाँ भी प्रदान कर रहे हैं। 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल दुष्यंत की राजनीतिक-सामाजिक चेतना का अतिक्रमण कर जीवन जगत के तमाम विषयों से जुड़ी है। आज की हिंदी ग़ज़ल में हमारे समय का समाज अपनी तमाम राजनीतिक विद्रूपताओं, सामाजिक विसंगतियों, आर्थिक विषमताओं और सांस्कृतिक संक्रमणों के साथ पूरी शिद्दत से अभिव्यक्त हो रहा है। और यह हिंदी कविता का एक लोकप्रिय काव्यरूप बनती जा रही है। लेकिन इसके बावजूद यह बहुत आश्चर्य और क्षोभ की बात है कि हिंदी आलोचक वर्ग इस काव्य-धारा के प्रति उदासीन बना हुआ है। जिससे हिंदी कविता और अकादमिक विमर्श में इस काव्य-धारा को वह स्थान और गंभीरता नहीं मिली, जिसकी वह अधिकारी है। इसी अकादमिक उपेक्षा ने मेरे भीतर एक दायित्वबोध जगाया। तथा इस अकादमिक रिक्ति को भरने और हिंदी ग़ज़ल की यथार्थवादी चेतना को एक सुव्यवस्थित अकादमिक स्वरूप में प्रस्तुत करने की प्रेरणा ने प्रस्तुत शोध-प्रबंध '21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में यथार्थ चेतना' का बीजारोपण किया। यह शोध हिंदी ग़ज़ल में आलोचना के खाली अंतरिक्ष को भरने के लिए गिलहरी प्रयासस्वरूप बढ़ाया गया एक क़दम है।

यथार्थवादी साहित्य मुझे अधिक प्रिय है। और समकालीन हिंदी ग़ज़ल के अनुशीलन से मैंने पाया कि हिंदी ग़ज़ल समकालीन हिंदी कविता की यथार्थवादी विषय वस्तु को तीव्र भाव संवेदना, सरलता और कहन की विशिष्टता के साथ व्यक्त कर

हिंदी कविता में छांदसिक रिक्ति की पूर्ति कर रही है। हिंदी ग़ज़ल अपने समय की जटिलताओं से मुठभेड़ करने के साथ एक बेहतर भविष्य के लिए वैचारिक भाव भूमि तैयार करने वाली साहित्यिक शक्ति है। यह न केवल समकालीन यथार्थ को गहन भाव-संवेदना से अभिव्यक्त कर रही है, अपितु इसके साथ यह वैयक्तिक प्रेम की पारम्परिक सीमा का अतिक्रमण कर प्रेम के समस्त रूपों जैसे-पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, मानवीय प्रेम व प्रकृति प्रेम आदि, प्रकृति और जीवन सौंदर्य, मानवतावाद तथा भारतीय संस्कृति की आशावादिता, संघर्षशीलता और अदम्य जिजीविषा के स्वर से अनुप्राणित है। हिंदी ग़ज़ल की इन विषय वस्तुगत तथा शैल्पिक खूबियों को देखकर मैं हिंदी ग़ज़ल पर शोध कार्य करने के मोह का संवरण नहीं कर सका। हिंदी ग़ज़ल पर शोध का मेरा यह विकल्प तब संकल्प में बदल गया, जब अपने नाम की साहित्यिक विधा कविता की प्रेमी मेरी **शोध पर्यवेक्षक परम आदरणीया डॉ. कविता मीणा जी** ने शोध विषय के चयन के लिए कविता विधा को चुनने का सुझाव दिया। और जब मैंने उनसे हिंदी ग़ज़ल पर शोध करने की इच्छा ज़ाहिर की, तो उन्होंने उसी पल सहर्ष इस पर अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी।

मेरे इस शोध कार्य का उद्देश्य-21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में व्यक्त राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, पर्यावरणीय एवं साहित्यिक यथार्थ को उद्घाटित कर, हिंदी ग़ज़ल की पारंपरिक प्रेमिल एवं काल्पनिक काव्य विधा की छवि के स्थान पर उसकी युग का आईना वाली यथार्थवादी छवि से ग़ज़ल साहित्य प्रेमियों, अध्येताओं और शोधार्थियों को परिचित करवाना है। ताकि ग़ज़ल के स्वरूप एवं विषय वस्तु के संबंध में प्रचलित धारणाएँ एवं पूर्वाग्रह बदले। और ग़ज़ल महज़ प्रेम-सौंदर्य की मन बहलावी अभिव्यक्ति वाली काल्पनिक और मनोरंजनात्मक लोकप्रिय विधा के स्थान पर समकालीन यथार्थ की एक गंभीर एवं प्रामाणिक पड़ताल करने वाली यथार्थवादी विधा के रूप में प्रतिष्ठित हो। इसके साथ हिंदी ग़ज़ल में निहित यथार्थ चेतना के माध्यम से समकालीन परिवेश का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करना भी इसका उद्देश्य है। इसका एक अन्य उद्देश्य यह रेखांकित करना है कि यह विद्या केवल समस्याओं का चित्रण नहीं करती है, बल्कि जीवन सौंदर्य के संरक्षण-संवर्धन और एक बेहतर व न्यायपूर्ण मानवतावादी समाज की स्थापना की वैचारिक भावभूमि भी तैयार करती है

इस शोध प्रबंध को मैंने छह अध्यायों और उपसंहार में निम्नानुसार विभक्त किया है।

प्रथम अध्याय - हिंदी ग़ज़ल: अवधारणा और विकास यात्रा

द्वितीय अध्याय- 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में यथार्थ चेतना के प्रतिनिधि ग़ज़लकार-व्यक्तित्व एवं कृतित्व

तृतीय अध्याय - 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में राजनीतिक यथार्थ

चतुर्थ अध्याय- 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में सामाजिक-आर्थिक यथार्थ

पंचम अध्याय -21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में धार्मिक, सांस्कृतिक एवं अन्य यथार्थ

षष्ठ अध्याय- 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल का शिल्प विधान

उपसंहार

छह अध्यायों के विचारोदधि का मंथन करने के बाद निष्कर्ष का जो नवनीत निकाला है, उसे उपसंहार में प्रस्तुत किया गया है

किसी भी कार्य को पूर्ण करने के लिए अवसर की उपलब्धता ज़रूरी है। और मुझे '21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में यथार्थ चेतना' विषय पर शोध कार्य करने का अवसर प्रदान करने के लिए मैं शोध निदेशालय, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा का हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ।

सर्वप्रथम मैं हृदय से आभारी हूँ, मेरे इस शोध यज्ञ की संपूर्ण यात्रा में ज्ञान एवं मार्गदर्शन का मंत्रोच्चार कर इसको पूर्णाहुति तक पहुँचाने वाली पुरोहित आचार्या **मेरी शोध पर्यवेक्षक डॉ. कविता मीणा जी** का जिनके कुशल निर्देशन और महत्वपूर्ण मार्गदर्शन के बगैर इसको संपन्न करना संभव नहीं था। आपने मुझे शोध की बारीकियाँ समझाकर मेरे शोध को दिशा दी है। मुझे इस शोध कार्य में आपका आद्योपांत मार्गदर्शन व सहयोग मिला है। इसके लिए मैं आपके प्रति हृदय से श्रद्धावनत एवं विनयावनत हूँ। आपके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने का मुझ में शब्द सामर्थ्य नहीं है। मैं इतना ही कहना चाहूँगा।

जो करें आपकी रहमत को बयाँ वो मेरे पास अलफ़ाज़ नहीं।

जो गाए आपकी कृपा के तराने ऐसा तो कोई साज नहीं।।

शोध के लिए तथा शोध यात्रा के दौरान बीच-बीच में प्रेरित-प्रोत्साहित करने के लिए मैं **डॉ. रेणु वर्मा, आचार्य हिंदी, डॉ. प्रमोद कुमार शर्मा, आचार्य हिंदी** के प्रति हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ। मित्रों की प्रेरणा और सहयोग से कठिन कार्य भी सहज एवं आसान हो जाता है। इस शोध यात्रा में प्रोत्साहन का पाथेय प्रदान करने वाले मेरे अभिन्न मित्रों में तकनीकी सहायक **डॉ. अजय कुमार मीणा, डॉ. बृजेश**

कुमार शर्मा, डॉ. अशोक कुमार सुमन, डॉ. श्याम सोनी का आभार ज्ञापित करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ।

शोध कार्य के लिए पहली ज़रूरत एवं समस्या शोध से संबंधित साहित्य के संकलन की होती है। मेरे सामने भी शोध में शामिल ग़ज़लकारों के ग़ज़ल साहित्य संकलन की समस्या आई, क्योंकि बहुत सी ग़ज़ल रचनाएँ अनुपलब्ध थीं। ऐसे में शोध कार्य करना कठिन था। इसलिए मैं उन समस्त ग़ज़लकारों विशेष रूप से हरेराम समीप, डी. एम. मिश्र, महेश अग्रवाल, किशन तिवारी, रामकुमार कृषक, वशिष्ठ अनूप का हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे अपनी उपलब्ध-अनुपलब्ध रचनाएँ भेज कर मेरी साहित्य संकलन की समस्या के समाधान में सहयोग प्रदान किया। इस यात्रा में मेरे विशेष सहयोगी रहे कोटा के युवा ग़ज़लकार एवं सह आचार्य-हिंदी डॉ. रामावतार मेघवाल, जिन्होंने मुझे ग़ज़ल केंद्रित आलोचना की अनुपलब्ध पुस्तकें उपलब्ध करवाकर मेरे इस शोध कार्य को पूर्ण करने में अति महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया। आपका यह सहयोग अतुलनीय है और इसके लिए मैं आपका हृदय से आभारी हूँ।

मेरे शोध कार्य स्थल राजकीय कला कन्या महाविद्यालय, कोटा के प्रति भी हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ, जहाँ मुझे इस शोध कार्य हेतु पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध करवाई गईं। वहाँ कार्य करने के दौरान प्राचार्य स्तर पर, विभागीय स्तर पर तथा पुस्तकालय स्तर पर सभी का सहयोगी व सकारात्मक व्यवहार रहा। इसलिए मैं प्राचार्या डॉ. सीमा चौहान, हिंदी विभागाध्यक्षा डॉ. मनीषा शर्मा, शोध एवं विकास प्रकोष्ठ के प्रभारी डॉ. टी.एन.दुबे के साथ उन समस्त विद्वानों, अधिकारियों और कर्मचारियों के प्रति हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे अमूल्य सहयोग एवं सहायता प्रदान की।

मैं परम पूज्या माताजी श्रीमती भँवर कँवर तथा पिताजी श्री नारायण सिंह जी का सदैव ऋणी रहूँगा, जिनके सन्मार्ग प्रवर्तक उपदेश तथा शुभाशीष से मैं इस कार्य को पूर्ण करने में सफल हो सका। इसके साथ ही मैं अपनी पत्नी श्रीमती आशा कँवर एवं बिटिया निधि राजावत के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ, जिनके हिस्से का समय मैंने शोध कार्य को समर्पित किया और जिन्होंने इस बात को आसानी से स्वीकार कर लिया।

इस शोध प्रबंध में मैंने जिन विद्वानों या लेखकों की पुस्तकों के ज्ञान सागर से भाव-शब्द रूपी मोती चुनकर यह शोध कार्य पूर्ण किया है। और जिनके लेखन से मुझे प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष सहयोग मिला है, उन सब के प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

शोध प्रबंध के कलात्मक एवं त्रुटिरहित मुद्रण एवं इस शोध प्रबन्ध को उत्कृष्ट रूप से सुसज्जित करने के लिए मैं निकुंज कंप्यूटर एंड जॉब वर्क सेंटर, रामजानकी मन्दिर के पास, केशवपुरा कोटा, के ओपरेटर श्री योगेश कुमार नामा जी को हृदय से धन्यवाद देता हूँ। शोध प्रबंध में वर्तनी संबंधी अशुद्धियों को दूर करने का यथासंभव मैंने प्रयास किया है, फिर भी टंकण संबंधी कुछ त्रुटियाँ रह गई हो, तो मैं क्षमा प्रार्थी हूँ। इस शोध प्रबंध को सुधी-जगत को समर्पित करते हुए मैं आशा करता हूँ कि यह शोध कार्य हिंदी ग़ज़ल के अध्येताओं और शोधार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

अंत में मैं उन सभी सुधीजनों, आत्मीयजनों, परिवारजनों एवं स्नेही मित्रों का तहेदिल से धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ, जिनसे मुझे इस शोध कार्य में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग प्राप्त हुआ और जिनका मैं यहाँ नामोल्लेख नहीं कर पाया। वे अनाम प्रेरणाएं जो तारों की भाँति टिमटिमाते हुए घोर अंधकार में मुझे राह दिखाती रहीं, मुझे दिशा बोध कराती रही, उन सब के प्रति हृदय से आभार। इस शोध ग्रन्थ के प्रस्तुतीकरण में अज्ञानतावश हुई त्रुटि के लिए मेरा अल्पज्ञान ही दोषी है। श्रेष्ठ सब आप लोगों के पथ प्रदर्शन का परिणाम है।

शोध सार

ग़ज़ल का आरंभ अरबी क़सीदे के तश्बीब अंश से हुआ और फारसी में यह स्वतंत्र विधा के रूप में विकसित हुई। ईरान से भारत आने पर अमीर खुसरो की लेखनी से खड़ी बोली में इसका बीजवपन हुआ। आगे चलकर यह उर्दू शायरी की जान और शान बनी। और आज हिंदी काव्य-जगत की एक सशक्त एवं लोकप्रिय विधा के रूप में प्रतिष्ठित हो रही है। अरबी-फ़ारसी की यह विधा जब भारतीय माटी से जुड़ी, तो इसका न केवल भाषागत कलेवर बदला, बल्कि इसकी आत्मा भी भारतीय सांस्कृतिक-साहित्यिक रंग में रंगी है। हिंदी ग़ज़ल इसी भाषिक और साहित्यिक-सांस्कृतिक समागम का परिणाम है। ग़ज़ल, जो अपनी आरंभिक परंपरा में महबूब की इबारत की विधा रही, समय के प्रवाह में जब हिंदी काव्य संस्कारों से जुड़ी, तो इसके भाव-जगत का परिवर्तन, परिवर्धन और परिष्करण हुआ। हिंदी कविता की लोक-संवेदनाओं, सांस्कृतिक चेतना और सामाजिक सरोकारों ने इसे नया अर्थ-संसार प्रदान किया। हिंदी कविता के संस्कारों से संस्कारित हो, ग़ज़ल ने विषय-विस्तार, संवेदना और अभिव्यक्ति की नवीनता के माध्यम से अपने समय और समाज की दास्तान लिखी है। हिंदी में आकर ग़ज़ल ज़माने की तहरीर बन गई है। यह अब केवल वैयक्तिक प्रेम भावनाओं की अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि समूचे युग की सामूहिक अनुभूति बन गई है। यह प्रेम और विरह के काल्पनिक वर्णन तक सीमित न रहकर अपने समय और समाज का दर्पण बन गयी है।

21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल ने परंपरागत सौंदर्यबोध के साथ-साथ युगीन चेतना का स्पर्श किया और वह अपने समय की साक्षी बनी। इसने परंपरागत रूमानियत की परिधि का अतिक्रमण कर समकालीन यथार्थ से सीधा संवाद स्थापित किया है। और युग के यथार्थ और जनचेतना की संवाहक बनी है। यह जीवन जगत के सभी क्षेत्रों-राजनीति, समाज, धर्म, अर्थ, संस्कृति, पर्यावरण व साहित्य आदि सभी पर यथार्थवादी दृष्टि से चिंतन करने लगी है। यही कारण है कि आज की हिंदी ग़ज़ल यथार्थवादी विधा है और उसकी प्रधान प्रवृत्ति समकालीनता, युग चेतना या यथार्थ चेतना है।

21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल के यथार्थवादी स्वरूप से ग़ज़ल के पाठक-श्रोतृ वर्ग को परिचित कराने के लिए मैंने '21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में यथार्थ चेतना' शोध विषय का चयन किया है। इस शोध का प्रमुख उद्देश्य हिंदी ग़ज़ल को ग़ज़ल की

पारम्परिक महज़ प्रेमात्मक काव्यरूप की छवि से इतर, समकालीन यथार्थ की एक गंभीर, प्रामाणिक और बहुआयामी विश्लेषक विधा के रूप में स्थापित करना है। प्रस्तुत शोध प्रबंध को मैंने छह अध्यायों में विभक्त कर 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में व्यक्त समकालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक सांस्कृतिक, पर्यावरणीय एवं साहित्यिक यथार्थ का विवेचन विश्लेषण करने का प्रयास किया है।

प्रथम अध्याय **‘हिंदी ग़ज़ल: अवधारणा और विकास यात्रा’** में ग़ज़ल के अर्थ, व्युत्पत्ति एवं ग़ज़ल की परिभाषा को विविध शब्दकोशीय एवं विद्वानों के मतों के आधार पर स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। तत्पश्चात ग़ज़ल के संरचनागत अवयवों जैसे शेर, काफिया, रदीफ़ मतला, मक़ता आदि के तकनीकी विवेचन के साथ ग़ज़ल के प्रकारों एवं विशेषताओं को स्पष्ट किया गया है। ग़ज़ल के सैद्धान्तिक विवेचन के बाद हिंदी ग़ज़ल की अवधारणा के अंतर्गत हिंदी ग़ज़ल की पारम्परिक ग़ज़ल से भिन्न मौलिक प्रकृति व उसके यथार्थवादी स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए विभिन्न विद्वानों के मतव्यों के आधार हिंदी ग़ज़ल को परिभाषित किया गया है। इसके साथ ही हिंदी ग़ज़ल की आदिकाल से अब तक की विकास यात्रा को रेखांकित किया गया है। इस प्रकार इस अध्याय में ग़ज़ल की सैद्धान्तिक विवेचना के साथ हिंदी ग़ज़ल की अवधारणात्मक एवं ऐतिहासिक यात्रा का अनुशीलन किया गया है।

द्वितीय अध्याय में **‘21वीं सदी में यथार्थवादी चेतना के प्रतिनिधि हिंदी ग़ज़लकारों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व’** को रेखांकित किया गया है। इसमें समकालीन हिंदी ग़ज़ल के तीन पीढ़ियों के उन प्रमुख ग़ज़लकारों को शामिल किया गया है, जिन्होंने अपनी ग़ज़ल साधना से हिंदी ग़ज़ल की यथार्थवादी परंपरा को आगे बढ़ाते हुए उसे 21वीं सदी के नवीन विषयों, तथ्यों और सत्यों से जोड़कर समृद्ध किया है। इनमें जहीर कुरेशी, अदम गोंडवी, वशिष्ठ अनूप, रामकुमार कृष्ण, विनय मिश्र, महेश अग्रवाल, शिवओम अंबर, माधव कौशिक, ज्ञानप्रकाश विवेक, हरeram समीप, देवेंद्र आर्य, डी.एम.मिश्र, राम मेश्राम, किशन तिवारी, महेश कटारे ‘सुगम’ आदि नाम सम्मिलित हैं, जिनकी रचनाओं के आलोक में यह शोध कार्य पूर्ण हुआ है।

तृतीय अध्याय **‘21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में राजनीतिक यथार्थ’** के विवेचन पर आधारित है। इसमें राजनीति, समाज एवं साहित्य के अंतर्संबंधों को स्पष्ट करते हुए समकालीन लोकतांत्रिक एवं राजनीतिक मूल्य क्षरण की सच्चाइयों को युगीन राजनीतिक परिवेश, राजनीति का अपराधीकरण, राजनीति का पूँजी व धर्म से गठबंधन, राजनीतिक नेतृत्व की सामंती विलासिता, चुनावी राजनीति, दलबदल की

अवसरवादी राजनीति, राजनीतिक एवं प्रशासनिक भ्रष्टाचार, सत्ता द्वारा विकास की विज्ञापनबाजी, नौकरशाही में अवांछित राजनीतिक हस्तक्षेप, न्यायव्यवस्था का युगीन सच, मीडिया जगत का सामयिक सत्य आदि बिंदुओं के अंतर्गत निरूपित किया गया है। इसके साथ ही राजनीतिक व्यवस्था के प्रति प्रतिरोध के स्वर से यह स्पष्ट किया गया है कि हिंदी ग़ज़ल केवल व्यवस्था की आलोचना तक सीमित नहीं है, बल्कि आम आदमी में राजनीतिक चेतना का संचार कर उसे अपने अधिकारों के प्रति सचेत करती है।

चतुर्थ अध्याय '21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में सामाजिक-आर्थिक यथार्थ' से संबंधित है। इसमें सामाजिक यथार्थ को पारिवारिक जीवन का बदलता यथार्थ, वंचित समुदायों (किसान, मजदूर, दलित, स्त्री, बालक, वृद्ध) का यथार्थ, नगरीय व ग्रामीण समाज का यथार्थ एवं समाज में बढ़ती अपराध वृत्ति एवं अराजकता आदि बिंदुओं के अंतर्गत विवेचित किया गया है। आर्थिक यथार्थ के अंतर्गत समकालीन दौर में अर्थ की बढ़ती अतृप्त व आकाशी आकांक्षा, आर्थिक असमानता की गहरी होती खाई तथा गरीबी, बेरोजगारी एवं महंगाई की मारक सच्चाइयों के साथ बाज़ारवाद के मूल्यभक्षी भयावह दानवी रूप का मार्मिक चित्रण किया गया है।

पंचम अध्याय में 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में व्यक्त धार्मिक, सांस्कृतिक, पर्यावरणीय एवं साहित्यिक यथार्थ का उद्घाटन किया गया है। धार्मिक यथार्थ के अंतर्गत धर्म के व्यवसायीकरण व अपराधीकरण, धर्म के पाखंडी स्वरूप, धर्म के नाम पर बढ़ती कट्टरता व सांप्रदायिकता की विकृतियों को उजागर करते हुए मानवतावादी धर्म की वकालत की गई है। सांस्कृतिक यथार्थ में उपभोक्तावादी संस्कृति एवं पाश्चात्य संस्कृति के प्रसार व प्रभाव में भारतीय संस्कृति के बदलते स्वरूप, सांस्कृतिक पलायन एवं जीवन मूल्यों के पतन की स्थिति को उजागर करते हुए अपनी सांस्कृतिक जड़ों की ओर लौटने का आह्वान है। पर्यावरणीय यथार्थ में पर्यावरणीय संकट की वैश्विक चुनौती से बचने के लिए पर्यावरण संरक्षण की पुरजोर पैरवी है। साहित्यिक यथार्थ में समकालीन साहित्यिक पारिस्थितिकी तंत्र में व्याप्त सत्ता और साहित्य के गठजोड़, बाजारवाद का प्रभाव, साहित्यिक गुटबाजी और आलोचना के संकट की विसंगतियों के साथ सच्चे लेखक की रचनात्मक प्रतिबद्धता को रेखांकित किया गया है।

छठे अध्याय में 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल के शिल्प विधान का विवेचन किया गया है। इसमें हिंदी ग़ज़ल को भाषिक संरचना, बह्व या छंद विधान, अलंकार

योजना, रस सौंदर्य, प्रतीक योजना, बिंब विधान, मिथकीय सौंदर्य, मुहावरों एवं लोकोक्तियों के लालित्यपूर्ण प्रयोग, शब्द शक्ति, व्यंगात्मकता आदि शिल्पगत कसौटियों पर विश्लेषित किया गया है। साथ ही हिंदी गज़ल के शैल्पिक दोषों को भी रेखांकित किया गया है

उपसंहार के अंतर्गत सभी अध्यायों का सार प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त इसमें शोध विषय के चयन के उद्देश्यों, शोध की उपलब्धियों, शोध की सीमाओं तथा भविष्य में शोध की नवीन संभावनाओं के साथ हिंदी गज़ल की सीमाओं और संभावनाओं को भी प्रस्तुत किया गया है। तत्पश्चात् संदर्भ ग्रंथ सूची एवं प्रकाशित शोध पत्रों को रखा गया है। इस तरह मेरी शोध यात्रा 21वीं सदी की हिंदी गज़ल में व्यक्त राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, पर्यावरणीय एवं साहित्यिक यथार्थ का विहंगमवालोचन करती हुई अंतिम पड़ाव पर पहुँचती है।

निष्कर्ष रूप में इक्कीसवीं सदी की हिंदी गज़ल, गज़ल की अपनी पारंपरिक प्रेमात्मक एवं सौंदर्यवादी छवि से इतर, समकालीन यथार्थ की एक सशक्त एवं प्रामाणिक अभिव्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठित हुई है। यह समकालीन समाज, राजनीति, धर्म, संस्कृति, अर्थ व साहित्य जगत की विषमताओं, विडंबनाओं, विसंगतियों, विकृतियों, विद्रूपताओं, अनैतिकताओं और असंगतियों को समग्रता के साथ यथार्थ रूप में कलात्मक ढंग से चित्रित कर युग का आईना बनकर उभरती है। लेकिन हिंदी गज़ल समाज यथार्थ का केवल प्रतिबिंब नहीं बनती है, बल्कि उस यथार्थ से संवाद करती है, तथा भविष्य के लिए दिशा संकेत व मार्गदर्शन भी प्रदान करती है। यह केवल समस्याओं का चित्रण नहीं करती, बल्कि एक बेहतर और न्यायपूर्ण समाज की स्थापना के लिए वैचारिक भूमि भी तैयार करती है। यह वर्तमान जीवन के तमाम क्षेत्रों में पसरती मूल्यहीनता एवं विकृतियों के उद्घाटन से पाठक में इनके प्रति प्रश्नाकुलता एवं प्रतिरोधी चेतना जाग्रत करती है तथा उसकी चेतना का परिष्कार करते हुए उसमें वर्तमान की अमानवीय प्रवृत्तियों के प्रति तिरस्कार, त्याग, विरक्ति का भाव जाग्रत कर उसे मानवता के मंगलकारी पथ का पथिक बनने के लिए प्रेरित करती है। संक्षेप में हिंदी गज़ल अपने समय एवं समाज के विद्रूप तथ्यों एवं सत्यों का उद्घाटन करते हुए व्यष्टि व समष्टि चेतना का विरेचन, परिष्करण, संस्करण एवं उदात्तीकरण कर इंसानियत का स्वर बुलंद करती है। यह मानवता के मंगल के लिए लिखा गया मंगल काव्य है। या कहें कि यह समाज जीवन के सत्य को उद्घाटित कर समाज के शिव के लिए सुंदर शब्द संयोजना में सुंदर काव्य रूप है।

अनुक्रमणिका

अध्याय	विषय वस्तु	पृष्ठ
	प्रमाण-पत्र	i
	घोषणा	ii
	साहित्यिक चोरी विरोधी प्रमाण पत्र	iii-v
	प्राक्कथन	vi-xii
	शोध सार	xiii-xvi
	अनुक्रमणिका	xvii-xx
प्रथम अध्याय	हिंदी ग़ज़ल : अवधारणा और विकास यात्रा	1-65
	प्रस्तावना	1
	1.1 ग़ज़ल : अर्थ एवं उत्पत्ति	2
	1.2 ग़ज़ल : परिभाषा एवं स्वरूप	5
	1.3 ग़ज़ल के संरचनागत अवयव	9
	1.4 ग़ज़ल के प्रकार	14
	1.5 ग़ज़ल की विशेषताएँ	18
	1.6 हिंदी ग़ज़ल की अवधारणा	23
	1.7 हिंदी ग़ज़ल : परिभाषा एवं स्वरूप	32
	1.8 हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा	35
	1.8.1 पूर्व भारतेंदु युग	36
	1.8.2 भारतेंदु युग	38
	1.8.3 द्विवेदी युग	40
	1.8.4 छायावादी युग	42
	1.8.5 छायावादोत्तर युग	44
	1.8.6 प्रयोगवादी युग या स्वातंत्र्योत्तर युग	45
	1.8.7 समकालीन हिंदी ग़ज़ल	46
		48
द्वितीय अध्याय	21वीं सदी में यथार्थ चेतना के प्रतिनिधि हिंदी ग़ज़लकार : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	66-133
	प्रस्तावना	66

	2.1 जहीर कुरेशी	70
	2.2 अदम गोंडवी	74
	2.3 ज्ञान प्रकाश विवेक	77
	2.4 वशिष्ठ अनूप	80
	2.5 माधव कौशिक	85
	2.6 देवेंद्र आर्य	89
	2.7 रामकुमार कृष्ण	93
	2.8 विनय मिश्र	98
	2.9 डी. एम. मिश्र	102
	2.10 महेश कटारे सुगम	105
	2.11 डॉ. शिव ओम अम्बर	110
	2.12 हरेराम समीप	115
	2.13 डॉ. किशन तिवारी	120
	2.14 राम मेश्राम	122
	2.15 महेश अग्रवाल	125
तृतीय अध्याय	21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में राजनीतिक यथार्थ	134-201
	प्रस्तावना	134
	3.1 युगीन राजनीतिक परिवेश	136
	3.2 राजनीति का अपराधीकरण	140
	3.3 राजनीति का पूँजी एवं धर्म से गठजोड़	144
	3.4 चुनावी राजनीति	151
	3.5 सत्ता एवं स्वार्थ की राजनीति	156
	3.6 राजनीतिक नेतृत्व की सामंती विलासिता	160
	3.7 दलबदल की अवसरवादी राजनीति	162
	3.8 विकास का अवरोधक राजनीतिक भ्रष्टाचार	166
	3.9 सत्ता द्वारा विकास की विज्ञापनबाजी	171
	3.10 नौकरशाही में अवांछित राजनीतिक हस्तक्षेप	175
	3.11 प्रशासनिक कार्यप्रणाली का समकालीन यथार्थ	176
	3.12 न्यायिक व्यवस्था का युगीन यथार्थ	181
	3.13 मीडिया जगत का सामयिक सच	185

	3.14 राजनीतिक व्यवस्था के प्रति प्रतिरोध का स्वर	190
चतुर्थ अध्याय	21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में सामाजिक-आर्थिक यथार्थ	202-268
	प्रस्तावना	202
	4.1 सामाजिक यथार्थ	204
	4.1.1 पारिवारिक यथार्थ	204
	4.1.2 वंचित समुदायों का यथार्थ	209
	4.1.2.1 किसान-मजदूर	210
	4.1.2.2 दलित	213
	4.1.2.3 स्त्री	215
	4.1.2.4 वृद्ध	220
	4.1.2.5 बाल समुदाय	222
	4.1.3 महा-नगरीय एवं ग्रामीण समाज का यथार्थ	230
	4.1.4 समाज में बढ़ती अपराधवृत्ति एवं अराजकता	234
	4.2 आर्थिक यथार्थ	235
	4.2.1 अर्थ की असीम एवं अतृप्त आकांक्षा	239
	4.2.2 आर्थिक विषमता की गहराती घाटी	243
	4.2.3 दरिद्रता का दर्दनाक सच	247
	4.2.4 बेरोज़गारी का कठोर यथार्थ	251
	4.2.5 महँगाई की मारक सच्चाई	254
	4.2.6 बाज़ारवाद का भयावह सच	254
पंचम अध्याय	21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में धार्मिक, सांस्कृतिक एवं अन्य यथार्थ	269-325
	प्रस्तावना	269
	5.1 धार्मिक यथार्थ	271
	5.1.1 धर्म का व्यवसायीकरण एवं अपराधीकरण	272
	5.1.2 धर्म के नाम पर पाखंड एवं आडम्बर	274
	5.1.3 धर्म के नाम पर बढ़ती कट्टरता एवं साम्प्रदायिकता	277
	5.1.4 मानवतावादी धर्म की वकालत	281
	5.2 सांस्कृतिक यथार्थ	283
	5.2.1 भारतीय संस्कृति के भौतिक स्वरूप में बदलाव	285
	5.2.2 पाश्चात्य संस्कृति का बढ़ता प्रभाव	290
	5.2.3 उपभोक्तावादी अपसंस्कृति का प्रसार	295

	5.2.4 भारतीय संस्कृति के शाश्वत जीवन मूल्यों का पतन	299
	5.3 पर्यावरणीय यथार्थ	304
	5.4 साहित्यिक यथार्थ	310
षष्ठ अध्याय	21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल का शिल्प विधान	326-383
	प्रस्तावना	326
	6.1 हिंदी ग़ज़ल की भाषिक संरचना	327
	6.2 छंद (बह) विधान	332
	6.3 अलंकार योजना	341
	6.4 हिंदी ग़ज़ल में रस परिपाक	346
	6.5 हिंदी ग़ज़ल में प्रतीक योजना	349
	6.6 बिंब विधान	353
	6.7 हिंदी ग़ज़ल में मिथकीय सौंदर्य	358
	6.8 हिंदी ग़ज़ल में मुहावरों और लोकोक्तियों का लालित्य	361
	6.9 शब्द शक्ति	364
	6.10 व्यंग्य	367
	6.11 हिंदी ग़ज़ल में शैल्पिक दोष	371
	उपसंहार	384-401
	शोध सारांश	402-421
	संदर्भ ग्रंथ सूची	422-428
	अनुसंधान प्रकाशन संदर्भित पत्रिकाओं में	
	प्रमाण-पत्र	
	साक्षात्कार	

प्रथम अध्याय
हिंदी ग़ज़ल : अवधारणा और
विकास यात्रा

प्रथम अध्याय

हिंदी ग़ज़ल : अवधारणा और विकास यात्रा

प्रस्तावना

साहित्य समाज का लिखित प्रतिरूप होता है। साहित्यकार की सृजनात्मक चेतना उसके समाज-परिवेश से निर्मित व प्रभावित होती है। सामयिक जीवन की विविध दशाओं व घटनाओं से प्रसूत अनुभूतियाँ एवं विचार सरणियाँ कभी साहित्यकार के हृदय को झंकृत करती हैं, तो कभी उसके मस्तिष्क तंतुओं में विचलन पैदा करती हैं, जिसकी शाब्दिक परिणति साहित्य में पद्य व गद्य के रूप में होती है। इनमें पद्य या कविता अपनी छंदबद्धता, गेयता, लयात्मकता व संगीतात्मकता के कारण लोकमन के अधिक निकट है। तथा यह आदिकाल से मानव के सुखात्मक-दुखात्मक भावों व संवेदनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम रही है। लोकगीत इसके प्रमाण है, जो काव्य गीत का ही लौकिक संस्करण है। गीत से मिलती-जुलती काव्य विधा ग़ज़ल भी एक गेय छांदस विधा है, जो सदियों से जनमानस को प्रभावित व आकर्षित करती रही है। तथा आज यह हिंदी कविता की जनधर्मी विधा के रूप में स्थापित हो रही है।

ग़ज़ल का उद्भव अरबी ज़मीन पर कसीदों के तश्बीब अंश से हुआ है। अरब से यह ईरान पहुँचकर फ़ारसी में अपने ग़ज़ल स्वरूप को प्राप्त करती है। ईरान से यह विधा अमीर खुसरो के साथ भारत की धरती पर पहुँचती है तथा खड़ी बोली में इसका बीजवपन होता है। यहाँ की उर्वर साहित्यिक ज़मीन व जलवायु के अनुकूलन से ग़ज़ल का पौधा खूब पल्लवित पुष्पित होता है तथा अल्प समय में ही ग़ज़ल खड़ी बोली की ही एक शैली- उर्दू ज़बान में शायरी की लोकप्रिय विधा बन जाती है। हिंदी व उर्दू के अलगाव के बाद यह उर्दू से हिंदी की यात्रा करती है। हिंदी के आँगन में आकर इसकी विषयगत शाखाओं-प्रशाखाओं का निरंतर विकास व विस्तार होता है, जिससे ग़ज़ल का यह पौधा धीरे-धीरे वृक्षाकार ग्रहण करने लगता है। यद्यपि हिंदी में ग़ज़ल का बीजारोपण खड़ी बोली में आदिकाल में ही हो गया था, परंतु इसके पोषण के अनुकूल परिस्थितियाँ आधुनिक काल में बनती हैं।

हिंदी जगत में यह सर्वविदित है कि हिंदी कविता अपने आदिम रूप में छंदोबद्ध थी। आदिकालीन एवं मध्यकालीन हिंदी कविता में गेय पदों के साथ कवित, सवैया तथा दोहा जैसे मुक्तक छंदों का प्रचुरता से प्रयोग हुआ है। दोहा छंद की रसपूर्णता तथा गागर में सागर भरने की समाहार शक्ति से हिंदी साहित्य जगत दीर्घकाल से

परिचित व प्रभावित है। आदिकाल में दोहे के समान संक्षिप्त छांदस काव्य विधा ग़ज़ल के हल्के अंकुश भी हिंदी काव्य धरती पर प्रस्फुटित होते हैं, परन्तु हिंदी छंदोबद्ध कविता के वटवृक्ष की घनी छाँव में अनुकूल रचना ताप के अभाव में वे रीतिकाल में लुप्तप्रायः से हो जाते हैं। आधुनिक काल में हिंदी कविता छंदों के बंधन से मुक्त होती है तथा उसमें शुष्क गद्यात्मकता का बोलबाला होने लगता है। जिससे धीरे-धीरे उसमें गीत, लय एवं संगीत तत्व का हास होता है और वह क्लिष्ट शब्दाडम्बर, कृत्रिमता एवं दुरुहता के कारण दुर्बोध व नीरस गद्य कविता बन जाती है। छंदमुक्तता, क्लिष्टता और स्मृति अवधारण क्षमता के अभाव के कारण धीरे-धीरे लोक को अभिव्यक्त करने वाली कविता लोक से दूर हो जाती है। ऐसे में दोहा छंद की रसपूर्णता, संक्षिप्तता एवं प्रभावशीलता से परिचित दुष्यन्त जैसे अनेक हिंदी कवियों को, दोहे के समान ही संक्षिप्त उर्दू की लोकप्रिय काव्य विधा ग़ज़ल ने अपनी रसपूर्णता, मारक प्रभावशीलता, स्मृति अवधारणा क्षमता, अंदाजे बयाँ, मित शब्दों में अमित भावाभिव्यक्ति, लयात्मकता एवं संगीतात्मकता के कारण अपनी ओर आकृष्ट किया और उन्होंने वैयक्तिक प्रेम वेदना के साथ आमजन की सार्वजनिक पीड़ा को जन-जन तक पहुँचाने के लिए ग़ज़ल की ओर हाथ बढ़ाए। जब दुष्यन्त कुमार ने नई कविता की छंदमुक्तता, दुरुहता व कृत्रिमता रूपी जेठ की प्रचंड धूप से तप्त काव्य धरती पर ग़ज़ल रूपी दवँगरा की बौछार की, तो बौद्धिकता और नीरसता से उबे रसपिपासु हिंदी के पाठक जगत ने मुक्त कंठ व खुले मन से उसका स्वागत किया तथा हिंदी जगत में छांदस काव्य विधा ग़ज़ल को अप्रतिम लोकप्रियता प्राप्त हुई। दुष्यन्त के बाद के ज्यादातर कवियों ने अपने हृदय सिंधु में उमड़ते भावों तथा संवेदनाओं की दो पंक्तियों में मार्मिक व हृदयस्पर्शी प्रस्तुति के लिए बड़ी आसानी से पाठक के दिलो-दिमाग पर चढ़ जाने वाली ग़ज़ल विधा को आत्मीयता से अपनाया और हिंदी ग़ज़ल को निरंतर समृद्ध किया। जिससे हिंदी में ग़ज़ल समकालीन छंद मुक्त कविता के कथ्य को ग़ज़ल की छंदबद्ध विशिष्ट शिल्प संरचना में ढालकर कविता का नया रूप बनकर उभरी तथा आज यह हिंदी कविता की सर्वाधिक लोकप्रिय, प्रगतिशील एवं लोकधर्मी विधा के रूप में प्रतिष्ठित हो रही है।

1.1 ग़ज़ल : अर्थ एवं उत्पत्ति

ग़ज़ल मूलतः अरबी काव्य विधा है। ग़ज़ल अरबी का स्त्रीलिंग शब्द है, जिसका अर्थ होता है-‘कातना-बुनना’, “सूत कातना या रस्सी बटना”¹। कविता में यह शब्द

(ग़ज़ल) 'प्रेमालाप' या 'प्रेमिका से वार्तालाप' या 'माशूका से गुफ़्तगू' के अर्थ में रूढ़ हो गया। शायद सूत कातने या रस्सी बुनने की कलात्मकता तथा ग़ज़ल में प्रेम-भावों की बारीक कताई व शिल्पगत कलात्मकता की साम्यता को देखते हुए ग़ज़ल को प्रेमिल विधा से जोड़ दिया गया। और आगे चलकर ग़ज़ल का लोक प्रचलित अर्थ 'स्त्रियों से बातें करना' या 'स्त्रियों की बातें करना' के अर्थ में ही लोकप्रसिद्ध हो गया। ग़ज़ल शब्द की उत्पत्ति व अर्थ के संबंध में मान्यता है, "ग़ज़ल शब्द की व्युत्पत्ति अरबी शब्द 'मुगाज़ेलात' या 'तग़ड़ज़ु' शब्द से हुई है जिसका फ़ारसी शाब्दिक अर्थ होता है, 'सुखन अज़ ज़नान गुफ़्तन' या 'अज़ माशूक गुफ़्तन' अर्थात् स्त्री के साथ संवाद, आशिक और माशूक के बीच बातचीत।"² औरतों की टुकड़े-टुकड़े बातों के समान ग़ज़ल के शेर (शेर) भी विषय चिंतन के स्वतंत्र टुकड़े होते हैं। श्री अनिल विश्वास ने इस अर्थ पर अपनी मुहर लगाते हुए कहा है, "औरतों की बातचीत किसी एक विषय पर तो होती नहीं, वे कई विषयों पर टुकड़े-टुकड़े बातचीत करती हैं, इसलिए ग़ज़ल में कोई निरंतर चिंतन प्रक्रिया नहीं होती।"³ हिंदी शब्दकोश में भी ग़ज़ल का प्रयोग इसी अर्थ में हुआ है। हिंदी साहित्य कोश में ग़ज़ल का अर्थ- "नारियों से प्रेम की बात करना मिलता है।"⁴ व्यावहारिक उर्दू हिंदी शब्दकोश में ग़ज़ल के बारे में लिखा है, "ग़ज़ल (अ. स्त्री.) प्रेमिका से वार्तालाप, उर्दू-फ़ारसी कविता का एक प्रकार विशेष।"⁵ रामनरेश त्रिपाठी ने 'उर्दू ज़बान का संक्षिप्त इतिहास' में ग़ज़ल के अर्थ के बारे में लिखा है- "अब 'ग़ज़ल' शब्द 'जवानी का हाल', 'माशूक की संगति' और 'इश्क का जिक्र' करने के अर्थ का बोधक बन गया।"⁶ स्पष्ट है कि कोशगत अर्थों के अनुसार ग़ज़ल प्रेमाभिव्यक्ति का सशक्त काव्य माध्यम है। ग़ज़ल जैसे ही फ़ारसी में प्रतिष्ठित होती है, वह स्त्रियों से हुस्न व इश्क के वार्तालाप के अर्थ में मान्य हो गई। आगे के फ़ारसी, उर्दू और हिंदी के विद्वानों ने ग़ज़ल की मूल प्रकृति को प्रेम विषयक ही माना है।

ग़ज़ल की उत्पत्तिमूलक धारणा के बारे में अनेक मत प्रचलित हैं। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि ग़ज़ल शब्द ग़ज़ाल या ग़ज़ाला से बना है। जिसका अर्थ होता है- मृगशावक। ग़ज़ल में प्रेम या विरहजन्य वेदना की अधिकता व तीव्रता को देखते हुए ग़ज़ल का अर्थ, उस कराह या आर्तनाद से जोड़ा गया है जो शिकारी के तीर से घायल ग़ज़ाल के मुंह से बेकसी के आलम में निकलती है। फिराक गोरखपुरी ने ग़ज़ल के संबंध में विचार व्यक्त करते हुए लिखा है, "शिकारी से भयभीत होकर हिरण दौड़ने लगे और दौड़ते दौड़ते ऐसे स्थान पर आकर रुक जाए, जहाँ से आगे

बढ़ना उसके लिए मुश्किल हो जाए, तब उसके मन में जो मंथन उत्पन्न होता है वह ग़ज़ल है। अर्थात् व्यथापूर्ण उक्ति ग़ज़ल है। हिरण के गले से जो सिसक, पीड़ा, व्यथा एवं आक्रांत सुर बाहर आता है, वह ग़ज़ल है। यह व्यथा हिरण की भी हो सकती है, क्रौंच पक्षी की भी हो सकती है और किसी वेदना ग्रस्त व्यक्ति या विरहिणी नायक-नायिका की भी हो सकती है। अपने प्रभु से मुक्त आत्मा का विरह, उससे मिलने की उत्कंठा और ना मिलने का दर्द-आर्तनाद की अभिव्यक्ति ग़ज़ल है। विरह की यह व्यथा-वेदना या दर्द शायर के गले का सुर बनकर ग़ज़ल के रूप में गुनगुनाया जाता है।⁷ कुछ विद्वान ग़ज़ल का संबंध अरबी शब्द ग़ज़ाल (मृग) के आधार पर ग़ज़ालचश्म (मृगनयनी) सुंदरियों के बारे में लिखी गई हुस्न-इश्क की छंदबद्ध कविता से जोड़ते हैं, परंतु यह मत भ्रामक है क्योंकि ग़ज़ल विधा भारत में ईरान से आई है, तथा ईरान में स्त्रियों के सुंदर नेत्रों की तुलना मृगनयनों के बजाए नरगिस के नेत्रों से की जाती है।

कुछ लोगों के मतानुसार अरब के ग़ज़ल नामक व्यक्ति के आधार पर ग़ज़ल का नामकरण हुआ। जिसने सारी उम्र प्रेम कविता लिखने में व्यतीत कर दी। इस संबंध में यह मत उल्लेखनीय है- “अरब में ग़ज़ल नामक कोई कवि था, जिसकी जिंदगी शराब पीने और इश्क आशिकी की शायरी में ही व्यतीत हुई और इसी शायर के नाम से ग़ज़ल का नाम प्रेमविषयक गीत के रूप में पड़ गया।”⁸ परन्तु यह मत भी किंवदन्ती मात्र ही माना जा सकता है।

अधिकांश विद्वानों की मान्यता है कि ग़ज़ल की उत्पत्ति अरबी कसीदों से हुई है। अरब के शायर रासो काव्य के रचयिता चारणों की भांति अपने बादशाहों की प्रशंसा में कसीदे कहते थे। इनके प्रारंभिक अंश में प्रेम, शृंगार एवं सुकोमल भावों की प्रधानता होती थी, जिसे तश्बीब या नसीब कहा जाता था। कसीदे की ये प्रारंभिक पंक्तियाँ तश्बीब या नसीब फ़ारसी में पृथक् विधा के रूप में प्रतिष्ठित हो, ग़ज़ल कहलाई। डॉ. माज़दा असद के अनुसार- “तकरीबन 14 सौ वर्ष पहले अरब के सामंती-समाज में तत्कालीन बादशाहों और अमीरों की विरुदावली बखान के लिए अवतरित काव्य रूप, तश्बीब या कसीदा से प्रेम और शृंगार संबंधी शेरों को निकालकर एक जगह इकट्ठा कर देने के परिणामस्वरूप ही ग़ज़ल का प्रादुर्भाव हुआ।”⁹

कुछ विद्वान इस मत से असहमति प्रकट करते हुए तश्बीब को नज़्म तथा ग़ज़ल को गीत के नजदीक मानते हुए इसका उद्भव ईरानी लोकगीत ‘चामा’ से जोड़ते

हैं। इस संबंध में डॉ वज़ीर आगा का मत है कि, “बात दरअसल यह है कि तशबीब, नसीब या कौल नज़्म का एक रूप है और स्वभाव की दृष्टि से ग़ज़ल से सर्वथा भिन्न है।...उस समय में ईरान में एक ऐसा काव्य रूप भी प्रचलित था जिसे ‘चामा’ की संज्ञा दी गई थी, जो हिंदी गीत की भाँति कविता भी थी और साथ ही संगीत भी।...चूँकि ग़ज़ल स्वभावतः गीत पर ही आधारित है, इसलिए ग़ज़ल को अरबी तशबीब के बजाय ईरानी ‘चामा’ से जोड़ना अधिक तर्कसंगत है।”¹⁰

ग़ज़ल की उत्पत्ति विषयक उक्त मतों के विवेचन के बाद निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि ग़ज़ल की उत्पत्ति ईरानी गीत ‘चामा’ की बजाय अरबी कसीदों के प्रारंभिक अंश तशबीब से मानना ही ज्यादा तर्कसंगत है। ग़ज़ल में गीत और नज़्म से साम्य होते हुए भी उसका अपना विशिष्ट काव्य रूप है। डॉ. रामदास नादार ने तशबीब से ही ग़ज़ल की उत्पत्ति मानते हुए लिखा है, “उर्दू शायरी फ़ारसी शायरी का अनुकरण है और फ़ारसी शायरी अरबी का। अरबी शायरी में कसीदों (प्रशंसागीत) की तशबीब (आरंभ) में ग़ज़ल भी शामिल थी अर्थात् कसीदों के आरंभ में आशिकाना: (प्रेम परक) विषय भी लिखे जाते थे। इसको ग़ज़ल या तग़ज़ज़ल कहा जाता था। यह तम्हीद (आरंभ या भूमिका) धारावाहिक होती थी। फ़ारसी कवियों ने इस अंश को ग़ज़ल के नाम से स्थायी काव्य रूप बना दिया।”¹¹ डॉ. वज़ीर आगा भी कसीदा के प्रारंभिक अंश व फ़ारसी ग़ज़ल में साम्य स्वीकारते हैं तथा फिराक भी कसीदे का बाह्य कलेवर ग़ज़ल के जैसा ही मानते हैं। अरब से ईरान पहुँचकर ग़ज़ल ने असली नाम-रूप पाया और यह प्रेम व श्रंगार की काव्य विधा के रूप में प्रतिष्ठित हुई।

1.2 ग़ज़ल : परिभाषा एवं स्वरूप

ग़ज़ल जैसी व्यापक कथ्य व जटिल शिल्प वाली सिन्फ़ को वैसे तो परिभाषा के आवृत में बांधना कठिन है। फिर भी विद्वानों ने अपने-अपने तरीके से उसे परिभाषित किया है। कुछ परिभाषाएँ इस प्रकार हैं-

मुहम्मद मुस्तफ़ा खाँ ‘मद्दाह’ ने अपनी संपादित पुस्तक ‘उर्दू हिंदी शब्दकोश’ में ग़ज़ल की परिभाषा इस प्रकार दी है, “ग़ज़ल स्त्री या प्रेमिका से वार्तालाप, उर्दू-फ़ारसी कविता का एक प्रकार विशेष जिसमें प्रायः 5 से 11 शेर होते हैं और प्रत्येक शेर का मज़मून अलग होता है। पहला शेर मतला कहलाता है, जिसके दोनों मिसरे सानुप्रास होते हैं और अंतिम शेर ‘मकता’ होता है जिसमें शायर का उपनाम आता है।”¹²

गोपालदास नीरज के अनुसार ग़ज़ल, “वो काव्य की रसमय विधा जो सूक्ष्म हो और संकेतों की भाषा बोलती हो।”¹³

डॉ. कुँअर बेचैन के अनुसार, “सामान्यतः विभिन्न काफ़ियों से सुसज्जित एक ही वज़न(वज़्न) तथा एक ही बहर(बह) में लिखे गये अलग-अलग शेरों के उस समूह को ग़ज़ल कहते हैं, जो जीवनानुभवों को प्रतीकात्मक शैली में स्वयं में समाए रखती है।”¹⁴

हिंदी के प्रसिद्ध ग़ज़लकार जहीर कुशौ की दृष्टि में, “मेरी नजर में ग़ज़ल एक ऐसी काव्य विधा है जिसमें अनेक विषयों पर टुकड़े-टुकड़े बातचीत की जाती है। जिसका हर शेर अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखता है और हर शेर में एक स्वतंत्र चिंतन प्रक्रिया होती है।”¹⁵

चंद्रसेन विराट के अनुसार- “मेरी नजर में ग़ज़ल एक ऐसी छंदोबद्ध काव्य रचना है जिसमें कवि को हर शेर में विभिन्न कथ्य प्रतिपादित करने की छूट है तथापि संपूर्ण काव्य रचना में एक विशिष्ट छंद विधान का अनुशासन पालित है एवं एक सांस्कृतिक भावमयी, संप्रेषणयुक्त, रससिक्त भाव व्यंजना अनुस्यूत है।”¹⁶

आचार्य सारथी के अनुसार- “ग़ज़ल कम शब्दों में प्रतीकों के माध्यम से अपनी बात कहने की कला का पर्याय है।.....जीवन के जितने चित्र जितने पक्ष और जितने रंग हो सकते हैं, ग़ज़ल में वे सब सिमट सकते हैं। इनमें व्यवस्था विरोध और परिस्थितियों में बदलाव की बेचैनी को अलग से जताने की ज़रूरत नहीं है।”¹⁷

डॉ. गणेशदत्त सारस्वत के अनुसार, “ग़ज़ल अनुभूति की तीव्रता एवं संगीतात्मकता से युक्त एक ऐसी काव्य विधा है जो जीवन के यथार्थ को प्रतीकों एवं बिंबों के सहारे शेरों के माध्यम से सामाजिक व्यवहार की भाषा में प्रस्तुत करती है।”¹⁸

डॉ. नरेंद्र वशिष्ठ का मत है कि, “ग़ज़ल का मूल क्षेत्र नारी विषयक भावों से संबंधित है। दरअसल ग़ज़लगोई का संबंध विरहजन्य व्यथा से रहा है। अतः इसमें हृदय को छू लेने की क्षमता को बहुत अच्छा गुण माना गया है।”¹⁹

प्रसिद्ध आलोचक डॉ. नरेंद्र के अनुसार- “ग़ज़ल उर्दू का सर्वाधिक प्रसिद्ध और सरस भेद है उसका स्थायी भाव प्रेम है जिसमें रहस्यानुभूति, मस्ती, रिंदी, धार्मिक विद्रोह आदि भावनाएं संचारी रूप में ओतप्रोत रहती है। विषय के अनुरूप उसका एक

विशिष्ट काव्य रूप भी होता है जो मतला, मक्ता, मिसरा, काफ़िया और रदीफ़ से परिबद्ध रहता है।”²⁰

वीनस केसरी के अनुसार- “ग़ज़ल वह पद्य रचना है जिसमें अरूज़ बह और वज़न का ध्यान रखते हुए, रदीफ़ काफ़िया को निभाते हुए कुछ अश्रार हो जो कहन के लिहाज़ से स्वतंत्र हों व जिसका भाव पक्ष मानवीय संवेदना और जीवन दर्शन के किसी एक या अनेक पक्षों को इंगितों में प्रकट करता हो। इंगितों से आशय यह है कि नियमों को निभाते हुए जो बात कही जाये वह बिल्कुल स्पष्ट ना होकर रूपकों, प्रतीकों के एक झीने पर्दे से ढँकी हो।”²¹

चानन गोविंदपुरी के अनुसार- “ग़ज़ल में केवल प्यार और मोहब्बत के चोंचलें ही चित्रित नहीं किए जाते हैं बल्कि यह वह ब्रह्मांड है जिसमें सारा जगत समाया हुआ है। ग़ज़ल का शेर कागज़ में संसार, बूँद में समुद्र और एक में अनंत वाली बात है”²²

डॉ. वशिष्ठ अनूप के अनुसार “ग़ज़ल उर्दू-हिंदी शायरी की सबसे सशक्त और लोकप्रिय काव्य विधा है, जो अपने जन्म के समय से प्रेम और सौंदर्य से वाबस्ता थी।.....आज यह पूरी तरह भारतीय संस्कृति और साहित्य के रंग में रंग कर ज़माने के साथ कदम मिलाकर चल रही है। उसकी दुनिया आज बहुत बड़ी हो चुकी है। ग़ज़ल के दामन में हर रंग के फूल हैं और हर फूल की खुशबू है, मिट्टी की सौंधी गंध है किंतु, इसमें जहरीले काँटे भी हैं, दहकते अंगारे भी हैं। जनजीवन की व्यथा कथा और आँसू भी हैं। इसमें कृष्ण की बंसी की धुन मंद तथा शिव के डमरू का स्वर तीव्र है। इसमें काम के बाण विरल और राम के बाण अधिक हैं।”²³

ग़ज़ल विषयक उक्त सभी परिभाषाओं के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि ग़ज़ल की कोई सर्वांग व सर्वमान्य परिभाषा नहीं है। ऐसे में ग़ज़ल जैसी जटिल विधा को समझने के लिए उसके स्वरूप पर विचार किया जाना ज़रूरी है। ग़ज़ल के स्वरूप के संबंध में सामान्य बातें निम्न हैं-

1. ग़ज़ल शायरी की एक स्वतंत्र एवं सर्वाधिक लोकप्रिय काव्य सिन्फ़ है
2. ग़ज़ल शेरों के समूह की योजना है। सामान्यतः ग़ज़ल में 5 से 11 शेर होते हैं। यद्यपि यह कोई पाबंदी नहीं है।
3. ग़ज़ल का शेर रदीफ़- काफ़िया व बह की बंदिशों का पालन करते हुए लिखी गई दो पंक्तियों का युग्म होता है, जिन्हें मिसरे कहा जाता है।

4. ग़ज़ल के सभी शेर एक समान समांत-रदीफ़ व विभिन्न सानुप्रास-काफ़ियों में रचित होते हैं।
5. ग़ज़ल के सभी शेर एक ही वज़न (मात्राक्रम) वाले लयखंडों के समूह (बहर) में रचित होते हैं।
6. ग़ज़ल के प्रथम शेर को मतला तथा अंतिम शेर को मक्ता (मकता) कहा जाता है, जिसमें शायर अपना उपनाम या तखल्लुस रखता है।
7. ग़ज़ल एक असम्बद्ध कविता है। ग़ज़ल का प्रत्येक शेर विषय या कथ्य की दृष्टि से स्वतंत्र होता है।
8. ग़ज़ल अपने उत्पत्तिमूलक प्रेमात्मक स्वरूप के साथ आज जीवन-जगत के सभी विषयों तक विस्तृत है।
9. ग़ज़ल गेयकाव्य है। संगीतात्मकता एवं कोमलकांत शब्दावली उसकी आत्मा है।
10. ग़ज़ल प्रतीकात्मक या संकेतात्मक काव्यरूप है। अतः संक्षिप्तता व सांकेतिकता ग़ज़ल के खास गुण है।
11. ग़ज़ल के शेर अनेकार्थी या व्यंजनाप्रधान होते हैं। प्रतीकात्मकता के जादू से ग़ज़ल में कही गयी बात जीवन की अनेक परिस्थितियों, प्रसंगों, संबंधों व व्यवहारों पर लागू होती हैं।

निष्कर्षतः शोधार्थी के अनुसार ग़ज़ल की परिभाषा इस प्रकार है -

“ग़ज़ल एक मौकितक माल है जिसमें एक ही रदीफ़ (समांत) एवं तुकांत काफ़िया के कोणों से सुसज्जित, अलग-अलग विषयी रंगों के अश्आर रूपी मोती एक समान वज़न (मात्राक्रम) वाले बहर रूपी समान मोटाई के सूत्र (धागे) में ग्रंथित रहते हैं, जिसके प्रथम मोती को ‘मतला’ रतन तथा उस माला के सूत्रधार मालाकार शायर के नाम की छाप वाले अंतिम मोती को मक्ता कहा जाता है।”

“ग़ज़ल एक लोकप्रिय छांदस काव्य सिन्फ़ है जिसका उद्भव प्रेम के केन्द्र बिन्दु पर हुआ, परन्तु उसकी कथ्यगत परिधि आज जीवन-जगत के तमाम आयामों तक विस्तृत है, जिसमें प्रेम, प्रकृति, परिवार, समाज, राजनीति, संस्कृति, धर्म, दर्शन, ज्ञान-विज्ञान-मनोविज्ञान और तकनीक सब कुछ समाहित है। संक्षेप में कहें तो यह संपूर्ण ब्रह्मांड को तीन सौ साठ (360⁰) डिग्री से अर्थात् सर्वांग रूप में देखने, समझने एवं प्रतीकात्मक ढंग से उसकी व्याख्या करने में सक्षम लोकप्रिय काव्य विधा है।”

1.3 ग़ज़ल के संरचनागत अवयव

ग़ज़ल का एक निश्चित संरचनात्मक ढाँचा होता है, जिसमें कुछ निश्चित अवयव होते हैं। जिन्हें समझे बिना ग़ज़ल का सम्यक विवेचन संभव नहीं है। ग़ज़ल के प्रमुख अंग-मिसरा, शेर, काफ़िया, रदीफ़ व बहर है।

(क) शेर (शेर)- एक ही रदीफ़, काफ़िया व बहर में रचित शेरों के समूह को ही ग़ज़ल कहते हैं। अतः शेर ग़ज़ल का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। शेर अरबी शब्द है, जिसके दो अर्थ हैं- “एक तो किसी बारीक चीज को जानना और दूसरा बाल या केश।”²⁴ शेर का एक अन्य अर्थ पता लगाना भी है। कोशगत अर्थों के आधार पर कहा जा सकता है कि शेर तभी होता है, जब शायर को किसी चीज की तीव्र अनुभूति हो तथा उसे पढ़कर पाठक को प्रतिपाद्य की मुकम्मल जानकारी मिलती है। शेर (बाल) ग़ज़ल रूपी सुंदरी के केश हैं, जो उसके भाव सौन्दर्य की वृद्धि करते हैं। प्राचीन अरब में शेर के लिए ‘बैत’ शब्द का प्रयोग होता था, जिसका शाब्दिक अर्थ है घर। घर के दो किवाड़ों की तरह शेर में भी दो मिसरे होते हैं। ग़ज़ल में पहला व आखिरी दो शेर विशेष होते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य सभी सामान्य शेर होते हैं।

शोधार्थी के अनुसार- ‘ग़ज़ल की आधारभूत इकाई शेर दो पंक्तियों के युग्म का वह काव्य साँचा है, जिसके संक्षिप्त कलेवर में शायर काफ़िया, रदीफ़ व बहर के नियमों का पालन करते हुए अपने विचारों या भावों को इस प्रकार ढालता है कि पाठक को वर्ण्य विषय के बारे में मुकम्मल जानकारी मिलती है।’

(ख) मतला (मत्ला)- मतला (मत्लअ) शब्द की उत्पत्ति अरबी के ‘तुमुल’ क्रियापद से हुई है जिसका अर्थ होता है -“उदय होना या प्रारम्भ होना”। इसका एक अन्य अर्थ है -‘ग्रह निकलने का स्थान।’²⁵ हिंदी के कुछ विद्वानों ने मतले को ‘उदयिका’ व ‘आरंभिका’ कहा है। अतः शाब्दिक अर्थ के अनुसार मतला ग़ज़ल रूपी नक्षत्रिका का उदयस्थल है। अर्थात् यह ग़ज़ल के आरंभ का शेर होता है। ‘ग़ज़ल का सबसे पहला शेर जिसके दोनों मिसरों में रदीफ़ व काफ़िया का निर्वहन होता है, मतला कहलाता है।’ मतले के अलावा ग़ज़ल के अन्य सभी शेरों के दूसरे मिसरे में ही रदीफ़ व काफ़िया का प्रयोग होता है। मतला ग़ज़ल का मुखौटा होता है। उसके द्वारा ग़ज़ल के बहर-वज़न तथा काफ़िया-रदीफ़ का निर्धारण होता है। उसकी दोनों पंक्तियों में बिंब-प्रतिबिंब भाव जरूरी है।

ग़ज़ल में मतला एक भी हो सकता है या एकाधिक भी। कभी-कभी पूरी की पूरी ग़ज़ल ही मतलों में कह दी जाती है, और कभी मतला नहीं भी हो तो भी इसे काव्यशास्त्रीय दोष नहीं माना जाता है। किसी ग़ज़ल में दूसरा शेर भी मतले का होता है, तो ऐसे मतले के शेर को हुस्ने-मतला कहा जाता है। और ग़ज़ल में तीसरा शेर भी मतला हो तो उसे मतला-ए-सानी कहा जाता है।

(ग) मक़ता (मकता)- मकता (मक़तअ) शब्द अरबी क्रियापद 'कत्' से बना है जिसका अर्थ होता है-"काटना" या 'परदा गिराना'।²⁶ अतः शब्दगत अर्थ के आधार पर मकता ग़ज़ल का अंतिम शेर होता है, जो ग़ज़ल में शेरों के क्रम को काट कर उसका पटाक्षेप कर देता है। अर्थात् वहाँ ग़ज़ल समाप्त हो जाती हैं। हिस्ट्री आफ़ पर्शियन लिटरेचर में मकता की परिभाषा इस प्रकार दी हुई है, "मक़तअ अर्थात् अंतिम शेअर में उपनाम या तखल्लुस देने की अनिवार्य परंपरा।"²⁷ 'ग़ज़ल का अंतिम शेर जिसमें शायर अपने उपनाम या नाम का प्रयोग कर ग़ज़ल पर अपनी छाप लगाता है, उसे मक़ता कहते हैं।' इसमें शायर कभी-कभी चमत्कार की सृष्टि करते हैं। मासूम गाजियाबादी का शेर द्रष्टव्य है-

"या तो 'मासूम' या दीवाना है

जो नहीं जानता खुदी क्या है।"²⁸

(घ) मिसरा- शेर दो पंक्तियों या चरणों का युग्म होता है। प्रत्येक पंक्ति को मिसरा कहा जाता है। अर्थात् हर शेर में दो मिसरे होते हैं। हिंदी साहित्य कोश में मिसरे की परिभाषा इस प्रकार है- "ग़ज़ल का हर शेअर (शे'र) स्वयं पूर्ण होता है, इसके दो बराबर के टुकड़े होते हैं, जिसको मिसरा कहते हैं।"²⁹ शेर की पहली पंक्ति को मिसरा-ए-उला या मिसरा-ए-अव्वल कहते हैं। अव्वल का अर्थ होता है- पहला। शेर की दूसरी पंक्ति को मिसरा-ए-सानी कहते हैं। सानी का अर्थ होता है- दूसरा। उदाहरणार्थ-

मिसरा-ए-उला - "अपने घर में ही किरायेदार हूँ

मिसरा-ए-सानी- 'सोचिये में किस क़दर लाचार हूँ।"³⁰

(ङ) रदीफ़ :- रदीफ़ शब्द की व्युत्पत्ति अरबी भाषा के 'रद' शब्द से हुई है जिसका अर्थ होता है, "परत लौटना, पलटी मारना"। इसका सामान्य अर्थ होता है- 'घुड़सवार के पीछे बैठा व्यक्ति।"³¹ अतः शब्दगत अर्थ के आधार पर कहा जा सकता है- वह शब्द समूह जो ग़ज़ल के काफ़िये रूपी घुड़सवार का अनुगामी बनकर उसके

पीछे बार-बार आता है। 'वह शब्द समूह जो मतले के दोनों मिसरों में तथा उसके बाद के सभी शेरों के मिसरा-ए-सानी के अंत में काफ़िये के तुरन्त बाद अपरिवर्तित रूप में एक-सा बार-बार आवृत होता है, उसे रदीफ़ कहते हैं।' ग़ज़ल के वस्तु व रूप सौंदर्य में रदीफ़ की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। ग़ज़ल में साधारणतः रदीफ़ का प्रयोग होता है, किंतु यह अनिवार्य पाबंदी नहीं है। रदीफ़ भी दो प्रकार के होते हैं- स्वतंत्र और मिश्रित रदीफ़

स्वतंत्र रदीफ़ -जब शेर में रदीफ़ काफ़िये से संयुक्त हुए बिना स्वतंत्र रूप में प्रयुक्त होता है, उसे स्वतंत्र रदीफ़ कहते हैं। यथा- इस शेर में 'बह' व 'रह' काफ़िया के बाद आया समांत 'गया आदमी' स्वतंत्र रदीफ़ है।

“जब से पछुआँ चली बह गया आदमी

आदमी अब कहाँ रह गया आदमी।”³²

मिश्रित रदीफ़ - जब शेर में रदीफ़ स्वतंत्र रूप से ना आकर काफ़िये के साथ संयुक्त हो, उसमें ही समाहित होता है, उसे मिश्रित रदीफ़ कहते हैं। यथा- इस शेर में रदीफ़ 'ये' काफ़िया 'आ', 'मा' से मिल गया है।

“अगर ये जिंदगी है जिंदगी से हम तो बाज आये

अंधेरे तो अंधेरे थे उजालों तक ने भरमाये।”³³

(च) काफ़िया :- काफ़िया शब्द की उत्पत्ति 'फ़कू' से हुई है जिसका अर्थ होता है-“बार-बार”, 'पै-दर-पै' 'फिर-फिर।”³⁴ इस आधार पर काफ़िया वह अक्षर समूह है, जो बार-बार शेरों में आवृत होकर उन्हें ग़ज़ल के सूत्र में ग्रंथित करता है। सामान्यतः ग़ज़ल में काफ़िये का अर्थ तुक से ही लिया जाता है। 'वह तुकांत अक्षर समूह जो ग़ज़ल के मतले के दोनों मिसरों तथा अन्य शेरों के मिसरा-ए-सानी में रदीफ़ से पूर्व आता है।' ग़ज़ल में काफ़िया अनिवार्य है। इससे ही ग़ज़ल में माधुर्य, गेयता, संगीतात्मकता एवं प्रभावोत्पादकता की क्षमता आती है।

ग़ज़ल के काफ़ियों में अंतिम एक या एकाधिक अक्षर स्थाई होते हैं और उसके पहले का अक्षर परिवर्तित होता रहता है। इस आधार पर काफ़िया दो प्रकार के अक्षरों के मिलने से बनता है- (1) स्थायी अक्षर (2) चपल अक्षर। काफ़िये में स्थाई अक्षर से पूर्व का एक अक्षर ही चपल अक्षर होता है। मतले और अन्य शेरों के काफ़ियों में चपल अक्षर एक ही स्वर से युक्त होना चाहिए। चपल अक्षर से पूर्व के अक्षर स्वर

रहित भी हो सकते हैं या भिन्न स्वर सहित भी। यथा- ग़ज़ल के इन शेरों के क़ाफ़ियों में 'र' स्थायी अक्षर है तथा 'ग', 'ब', 'प', 'ह' चपल अक्षर है।

“सुखियों के नगर में रहे / जो निरंतर ख़बर में रहे।

स्वप्न आंखों में पलने के साथ / स्वप्न पंछी के पर में रहे।

जितने सूरजमुखी फूल थे / खूब खुश दोपहर में रहे।”³⁵

ग़ज़ल के क़ाफ़िये में प्रयुक्त शब्दों के रूप और अर्थ में साम्य-वैषम्य के आधार पर क़ाफ़िये चार प्रकार के होते हैं-

भिन्न रूप भिन्नार्थक क़ाफ़िया- जब ग़ज़ल के शेरों में प्रयुक्त क़ाफ़िया शब्द रूप और अर्थ दोनों दृष्टि से भिन्न होते हैं, तो वहाँ भिन्नरूप भिन्नार्थक क़ाफ़िया होता है।

“पीठ पीछे से हुए वार से डर लगता है

मुझको हर दोस्त से, हर यार से डर लगता है।”³⁶

भिन्न रूप समानार्थक क़ाफ़िया- जब ग़ज़ल के शेरों के क़ाफ़िये में प्रयुक्त शब्द रूप की दृष्टि से भिन्न होते हुए भी उनका एक ही अर्थ होता है, वहाँ भिन्न रूप समानार्थक क़ाफ़िया होता है। इस शेर के क़ाफ़िया शब्द चलने एवं निकलने रूप की दृष्टि से भिन्न होते हुए भी दोनों यात्रापथ पर गतिमान होने के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं।

“गगन की ओर चलने का समय है

उड़ानों पर निकलने का समय है।”³⁷

समान रूप समानार्थक क़ाफ़िया- जब ग़ज़ल के क़ाफ़िये में ऐसे शब्दों का प्रयोग हो, जो रूप और अर्थ दोनों दृष्टि से समान हो, तो वहाँ समान रूप समानार्थक क़ाफ़िया होता है।

“नीतियों को गालियाँ देते थे पैदल लोग

आज घोड़ों पर चढ़े हैं, इसलिए चुप हैं।

यदि स्वयं चढ़ते तो निश्चित चीखते चेहरे,

मित्र सूली पर चढ़े हैं इसलिए चुप हैं।”³⁸

समान रूप भिन्नार्थक क़ाफ़िया- जब ग़ज़ल के शेरों में ऐसे क़ाफ़िया शब्दों का प्रयोग हो, जो रूप की दृष्टि से समान होने पर भी अर्थ की दृष्टि से भिन्न-भिन्न होते हैं या

एक ही शब्द एकाधिक बार आये और हर बार अर्थ अलग अलग हो, वहाँ समान रूप भिन्नार्थक काफ़िया होता है। निम्न दोनों शेरों के काफ़ियों में 'पर' शब्द का ही प्रयोग हुआ है, पर पहले में यह 'की तरह' व दूसरे में 'पंख' के अर्थ में आया है।

“इतने ज्यादा मुखर हो गए/ न्यूज़ की तर्ज पर हो गए

कैद पिंजरे में होने के बाद/ मौन पंछी के पर हो गए।”³⁹

डॉ. कुँअर बेचैन ने काफ़िये में प्रयुक्त शब्दों की मात्रा व तुकांतता के आधार पर काफ़िये के तीन प्रकार बताए हैं-

समान मात्रिक अंत्यानुप्रास युक्त तुकांत (सजा मुतवाजी)-जब ग़ज़ल के काफ़िये में प्रयुक्त शब्द अंत्यानुप्रास युक्त तथा समान मात्रिक अर्थात् वज़न में बराबर हो। उदाहरणार्थ -

“वो जो धनवान होते नहीं

सुख से अनजान होते नहीं।”⁴⁰

असमान मात्रिक अंत्यानुप्रास युक्त तुकांत (सजा मुतरफ)- जब ग़ज़ल के काफ़िये में प्रयुक्त शब्द अंत्यानुप्रास युक्त हो, परंतु असमान मात्रिक अर्थात् वज़न में बराबर ना हो। उदाहरणार्थ -

“प्रशंसा ज्यों ही नशे में बदलने लगती है

विविधता आपकी सांचे में ढलने लगती है।”⁴¹

समान मात्रिक अंत्यानुप्रास विहीन तुकांत (सजा मुतवाज़िन) -जब ग़ज़ल के काफ़िये में प्रयुक्त शब्द समान मात्रिक हो, पर अनुप्रास विहीन हो। ये काफ़िये सही नहीं माने जाते हैं। उदाहरणार्थ-

“अग्नि से बिजली बना सकते हैं आप

अधिकारों को मिटा सकते हैं आप।”⁴²

(छ) बहर (बह)- बहर ग़ज़ल का अनिवार्य एवं महत्वपूर्ण अंग है। सुंबुल निगार के शब्दों में-“जिन चीजों से ग़ज़ल की सूरत बनती है, उनमें पहली चीज बहर है।”⁴³ ग़ज़ल में बहर का अर्थ है- छंद। कुँअर बेचैन के शब्दों में- “बहर वर्ण-मात्रा के क्रमयोजन की आन्तरिक सृष्टि है। यह एक नियमित लय हैं और लय स्वयं में ही एक संयत व्यवस्था है, जिसका जन्म स्वरों के आरोह अवरोह से होता है।”⁴⁴ ग़ज़ल जिस लय या वज़न या वर्णमात्राक्रम या अरकान में कही या लिखी जाती है, उसे बहर

कहते हैं। गज़ल या शेर बहर में है या नहीं, इसे जाँचने के लिए गज़ल की तक्तीअ की जाती है। अतः बहर को समझने के लिए रुकन, अरकान, लय खंड, वजन व तक्तीअ को जानना ज़रूरी है।

(ज) **रुकन-** रुकन बहर की आधारभूत इकाई है। रुकन का अर्थ है- गण। जिस प्रकार संस्कृत हिंदी में 'यमाता राजभानसलगा' गण सूत्र से लघु गुरु वर्णों के नियत क्रम से बने गणों के निश्चित संयोग से वर्णिक छंद बनते हैं, उसी प्रकार गज़ल की प्रत्येक बहर उसकी आधारभूत इकाई रुकन की निश्चित संख्या व क्रम में आवृत्ति से बनती है। जैसे बहरे मुतदारिक के लिए फाइलुन रुकन निश्चित है जिसमें वर्णों का क्रम गुरु-लघु-गुरु होता है जो हिंदी के गण 'राजभा' के समतुल्य है।

(झ) **अरकान-** अरकान रुकन का बहुवचन है। रुकन के समूह को ही अरकान कहते हैं। रुकन के एक निश्चित संख्या में प्रयोग से अरकान सूत्र बनता है, जिससे ही गज़ल की बहर का निर्धारण होता है। जैसे इस शेर में फाइलुन रुकन की तीन बार आवृत्ति से फाइलुन फाइलुन फाइलुन अरकान सूत्र बना है। जिससे इसकी बहर-बहरे मुतदारिक मुसदस सालिम का निर्धारण होता है।

“बर्फ अं/गार भी/ है कहीं/। बर्फ से/ हाथ जल/ते रहे।”⁴⁵

फाइलुन/ फाइलुन/ फाइलुन । फाइलुन/ फाइलुन/ फाइलुन

गालगा/ गालगा/ गालगा । गालगा/ गालगा/ गालगा

212 / 212 / 212 । 212 / 212 / 212

(ञ) **लयखंड (अज्जाए रुकन)-** शेर में जिस अरकान सूत्र का प्रयोग होता है उसको रुकन के टुकड़ों में खंडित करने पर एक विशेष लय उत्पन्न होती है। प्रत्येक टुकड़े को लयखंड या अज्जा-ए-रुकन कहते हैं। जैसे ऊपर के शेर को रुकन फाइलुन के टुकड़ों में तोड़ने पर एक लय उत्पन्न होती है, जिसे सांकेतिक रूप में गालगा/ गालगा/ गालगा लिख सकते हैं।

(ट) **वज़न (वज़न)-** गज़ल के शेरों में प्रयुक्त शब्दों के वर्णमात्राभार का क्रम ही वज़न कहलाता है। जैसे उपर्युक्त शेर में मात्राक्रम गुरु-लघु-गुरु अर्थात् 212 है।

(ठ) **तक्तीअ** - तक्तीअ का अर्थ होता है- टुकड़े -टुकड़े करके देखना। शेर में बहर की जाँच करने के लिए मात्रा गणना करने को तक्तीअ करना कहते हैं। तक्तीअ करने के लिए गज़ल की बहर में प्रयुक्त रुकन की गिनती तथा उसका वज़न अर्थात्

मात्राक्रम देखना पड़ता है। ग़ज़ल के मतले के पहले मिसरे में प्रयुक्त शब्दावली का जो मात्रा क्रम होगा, उसी को आधार बनाकर उसका अरकान सूत्र बनता है तथा ग़ज़ल के दूसरे शेरों में उसी अरकान सूत्र या मात्राक्रम का प्रयोग है या नहीं। इसे परखने के लिए मात्राक्रमानुसार शेरों के टुकड़े करने को तक्तीअ कहते हैं।

1.4 ग़ज़ल के प्रकार

ग़ज़ल की शिल्प संरचना को फ़ारसी-उर्दू ग़ज़लों की परंपरा से ज्यों का त्यों स्वीकार किया गया है। अतः ग़ज़ल के शिल्प स्वरूप में एकरूपता होने के कारण उसके आधार पर ग़ज़ल के भेद नहीं मिलते हैं। परंतु इसकी विषय वस्तु व रचना शिल्प के संबंध में कुछ शिथिलताएं हैं। उन्हीं के आधार पर ग़ज़ल के निम्न भेद किये जा सकते हैं-

(अ) विषय की एकता या अनेकता के आधार पर

मुकम्मल ग़ज़ल या संपूर्ण ग़ज़ल- वह ग़ज़ल जो रदीफ़, काफ़िया व बहर की छांदसिक बंदिशों का पालन करते हुए मतले से प्रारंभ होकर मक्ते तक अलग-अलग विषय केंद्रित शेरों की माला होती है, उसे संपूर्ण या मुकम्मल ग़ज़ल कहते हैं। इसे गैर मुसलसल ग़ज़ल भी कह सकते हैं। इसका हर शेर अलग विषय व स्वतंत्र विचारों का द्योतक होता है तथा किसी शेर को समझने के लिए उससे पूर्व या पश्चात के शेर को पढ़ने की आवश्यकता नहीं होती है। जैसे हरeram समीप की मतले से प्रारंभ हो मक्ते पर पूर्ण यह ग़ज़ल अलग-अलग विषयों पर केंद्रित होने से मुकम्मल ग़ज़ल है।

“काम जिनके अमीर जैसे हैं/ देखने में कबीर जैसे हैं।

दिल के हालात क्या बताऊं मैं/ आजकल काश्मीर जैसे हैं।

एक झोंके की उम्र है अपनी/ खुशबू के शरीर जैसे हैं।

साथ चलने से दिल बहलता है/ हम सभी राहगीर जैसे हैं।

आज भी ‘चेस’ में है हम प्यादे/ आप राजा, वजीर जैसे हैं।

शेर कहना ‘समीप’ क्या जाने/ ये तो गूंगे की पीर जैसे हैं।”⁴⁶

मुसलसल या शृंखलित ग़ज़ल- वह ग़ज़ल जो रदीफ़, काफ़िया व बहर की छांदसिक बंदिशों के साथ मतले से मक्ते तक एक ही विषय केंद्रित शेरों के समूह से बनती है, उसे मुसलसल या शृंखलित ग़ज़ल कहते हैं। उर्दू में कुछ आलोचक इस प्रकार की ग़ज़ल को ग़ज़ल ही नहीं, अपितु ग़ज़ल छंद में बनी नज़्म या कविता कहते हैं।

हिंदी में इस प्रकार की ग़ज़लें खूब लिखी जा रही हैं। एक ही विषय होने पर भी यदि ग़ज़ल का हर शेर अपने आप में स्वतंत्र हो तथा किसी शेर को समझने के लिए दूसरे शेर को पढ़ने की आवश्यकता नहीं हो और न ही उसमें कविता जैसी शृंखलाबद्धता हो या यूँ कहें कि जिस ग़ज़ल के शेर एक ही विषय के विविध आयामों या उपविषयों पर कहे गये हो, तो उसे ग़ज़ल के रूप में स्वीकारा जाना चाहिए। वशिष्ठ अनूप जी की यह ग़ज़ल बाल मनोविज्ञान के विभिन्न आयामों पर केंद्रित होने से मुसलसल ग़ज़ल है।

“होठों से अमृत खुशियाँ छलकाता है
कोई बच्चा नींद में जब मुस्काता है।
हाथ पाँव मुँह और नजर की भाषा में
माँ से वह जाने क्या-क्या बतियाता है
जीवन का अद्भुत संगीत बरसता है
बच्चा जब कुछ कहता है तुतलाता है
सारे घर का है वह एक खिलौना पर
स्वयं खिलौने की खातिर ललचाता है
सारा घर- आँगन खुशियों से भर जाता
जब वह उठकर डगमग पाँव बढ़ाता है।”⁴⁷

क़तायुक्त ग़ज़ल या क़त’आत- ग़ज़ल का हर शेर विषय की दृष्टि से स्वतंत्र इकाई होता है, लेकिन जब शायर किसी विषय के कथ्य को एक शेर में कहने में असमर्थ होता है, और अपनी बात को एकाधिक शेरों में कहता है। तो ऐसे सभी शेरों को संयुक्त रूप से एक इकाई माना जाता है जिसे क़ता कहते हैं। क़ता में कम से कम दो शेर होने चाहिए, ज्यादा की सीमा नहीं है। जिस ग़ज़ल में एक या एकाधिक क़त्ते हो उसे क़तायुक्त ग़ज़ल कहते हैं। जैसे अदम गौडवी ने इस क़ता में राजनेताओं के ढुलमुल रवैये की व्यंग्यपरक बयानी दो शेरों में की है।

“इलेक्शन पर मुसलमानों से हम रुमाल बदलेंगे
अभी बदला है चेहरा, देखिए अब चाल बदलेंगे।
मिले कुर्सी तो दलबदलू कहो क्या फर्क पड़ता है

ये कोई वल्दियत है, पार्टी हर साल बदलेंगे।”⁴⁸

(ब) मतला व मक्ता (मकता) की अनुपस्थिति के आधार पर

बेमतला ग़ज़ल- जिस ग़ज़ल में बिना मतले के रदीफ़, काफ़िया व बहर की पाबंदी के साथ साधारण शेरों की एक पूरी श्रृंखला हो, उसे बेमतला ग़ज़ल कहते हैं। इसका प्रथम शेर मतला न होकर साधारण शेर होता है। कृष्ण प्रेमी की यह ग़ज़ल बेमतला ग़ज़ल का उदाहरण है-

“दर्द दिल की धड़कनों में कह रहा है रात दिन कुछ,
कौन जाने कह सकेगा दिल कभी पूरी कहानी।
अश्रुओं ने भी बरसकर वेदना कम की न दिल की,
पा रही उद्दाम यौवन, याद की उठती जवानी।”⁴⁹

बेमक्ता ग़ज़ल- जिस ग़ज़ल में बहर, काफ़िये व रदीफ़ की बंदिशों के साथ मतले से आरंभ हो शेरों की एक पूरी श्रृंखला होती है, परंतु अंतिम शेर मक्ता न होकर साधारण शेर होता है, उसे बेमक्ता ग़ज़ल कहा जाता है। जैसे- अदम गोंडवी जी की यह ग़ज़ल बेमक्ता ग़ज़ल है।

“पहले जनाब कोई शिगूफा उछाल दो
फिर कर का बोझ कौम की गर्दन पे डाल दो।
औरत तुम्हारे पाँव की जूती की तरह है
जब बोरियत महसूस हो घर से निकाल दो।
चीनी नहीं है घर में, लो मेहमान आ गये
महँगाई की भट्टी पे शराफत उबाल दो।”⁵⁰

(स) रदीफ़ की उपस्थिति-अनुपस्थिति के आधार पर- ग़ज़ल में रदीफ़ का साधारणतः प्रयोग किया जाता है, पर यह अनिवार्य पाबंदी नहीं है। रदीफ़ की उपस्थिति के आधार पर ग़ज़ल दो प्रकार की होती है-

मुरदफ़ ग़ज़ल- मुरदफ़ का शाब्दिक अर्थ होता है रदीफ़वार। जिस ग़ज़ल में रदीफ़ होता है उसे मुरदफ़ ग़ज़ल कहते हैं। जैसे गोंडवी की इस ग़ज़ल में ‘के साये में है’ रदीफ़ का प्रयोग होने से यह मुरदफ़ ग़ज़ल है।

“भुखमरी की ज़द में है या दार के साये में है।

अहले-हिन्दुस्तान अब तलवार के साये में है।

छा गयी है ज़ेहन के पत्तों पे मायूसी की धूप

आदमी गिरती हुई दीवार के साये में है।

बेबसी का इक समन्दर दूर तक फैला हुआ

और कश्ती कागज़ी पतवार के साये में है।”⁵¹

गैर मुरदफ़ ग़ज़ल- जिस ग़ज़ल में रदीफ़ नहीं होता है, उसे गैर मुरदफ़ ग़ज़ल कहते हैं। जैसे विनय मिश्र की यह ग़ज़ल रदीफ़ गैर मुरदफ़ है।

“हमारे दिन फिरेंगे कब बताओ/ सुना है तुम जमाने के खुदा हो

रगों में आज ठंडक घुल रही है/ कहाँ है धूप आए सामने वो।

तुम्हारी शान पर ही आँच आए/ मुझे इतना भी मत मजबूर कर दो।”⁵²

(द) कहन के आधार पर

रिवायती ग़ज़ल- जिस ग़ज़ल में प्राचीन समय की क्लासिकल ग़ज़लों की तर्ज पर प्रेम व सौंदर्य की अभिव्यक्ति पुरातन ग़ज़लों के प्रतीकों, बिंबों व शब्दों के सहारे की जाती है, उसे रिवायती ग़ज़ल कहते हैं। इन ग़ज़लों के विषय प्रेम व सौंदर्य की विविध भावानुभूतियों तक सीमित होते हैं।

जदीद ग़ज़ल- जिस ग़ज़ल में रिवायती ग़ज़ल की बंदिशों को तोड़कर जीवन के हर अनुभव व संवेदना की अभिव्यक्ति नवीन प्रतीकों, बिंबों व आमफ़हम शब्दावली के सहारे की जाती है, उसे जदीद ग़ज़ल कहते हैं। इन ग़ज़लों में विषय एवं भाषा क्षेत्र की कोई पाबंदी नहीं होती है।

1.5 ग़ज़ल की विशेषताएँ

ग़ज़ल की खूबसूरती उत्कृष्ट रदीफ़, काफ़िया एवं चुस्त बहर में सुन्दर शब्द विन्यास से ही नहीं होती है, अपितु उसकी असली सुन्दरता उसमें मौजूद भावाभिव्यक्ति की तीव्रता, उक्ति वैचित्र्य, कहन के अनूठेपन, संक्षिप्तता, सांकेतिकता, कल्पनाशीलता और अंदाज़े बयाँ में निहित होती है। इन खूबियों के पुंज को शेर में शेरियत और ग़ज़ल में ग़ज़लियत की संज्ञा दी जाती है। यह ग़ज़लियत ही ग़ज़ल की उस प्रभावशीलता का आधार है। जिसमें पाठक को भावावेशित व आनंदित करने तथा उसके हृदय पटल पर अमिट छाप छोड़ने की भरपूर क्षमता होती है। ग़ज़ल में यह

शक्ति तभी आती है, जब शायर अच्छी ग़ज़ल की खूबियों व उसकी बारीकियों से अच्छी तरह वाकिफ़ हो। अच्छी ग़ज़ल की कुछ सामान्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

(क) गहन एवं तीव्र भावप्रवणता- ग़ज़ल दिमाग की बजाय दिल की दौलत मानी गयी है। वह विचारों की अपेक्षा भावना प्रधान होती है तथा जरूरत होने पर उसमें विचार को भी भावना की चाशनी में डुबोकर ही प्रस्तुत किया जाता है। ग़ज़ल में भावना जितनी सघन व तीव्र होगी, ग़ज़ल उतनी ही उम्दा होगी। उसमें पाठकों को भावोत्तेजित व आनंदित करने की उतनी ही शक्ति होगी। ग़ज़लकार की उर्वर हृदय ज़मीन से प्रस्फुटित भावना का बीज ही ग़ज़ल रूपी वटवृक्ष का रूप धर पाठक को आनंद का फल व असीम विश्रांति देता है। शायर के अन्तःसिंधु में उठी भावना की उन्मादी लहर कीमती भावों व शब्दों रूपी मोतियों के उपहार ग़ज़ल को भेंटती है, जिससे ग़ज़ल ग़ज़लियत की दृष्टि से समृद्ध होती है।

(ख) सघनानुभूति- ग़ज़ल में प्रवाहित भावनिर्झरणी का उद्गम स्थल शायर की अनुभूतियों व संवेदनाओं का हिमालय होता है। या कहें कि शायर के अनुभव सिंधु से ही भावों के मोती उत्पन्न होते हैं। अतः जिस शायर की अनुभूति जितनी गहरी, सघन व उच्च होती है, उसकी शायरी उतनी ही मार्मिक, हृदयस्पर्शी व भावोत्तेजक होती है। इसी के बल पर शायर का वैयक्तिक अनुभव सार्वजनिक अनुभूति का विषय बनता है।

(ग) तख़य्युल (कल्पना)- ग़ज़ल की एक विशेषता कल्पनाप्रधानता है। ग़ज़ल में कल्पना का बड़ा महत्व है। कल्पना ही शायर की अनुभूति को तीव्र व मारक रूप में पाठक तक संप्रेषित करती है। कल्पना पूर्णिमा की वह चाँदनी है, जो शायर के हृदय सिंधु में उठी भावना की लहर में ज्वार उत्पन्न करती है। कल्पना की उर्वरता व उच्चता ग़ज़ल में प्रभावशीलता की जननी है, जिससे वह पाठकों के दिलोदिमाग में चढ़ती है।

(घ) सांकेतिकता- ग़ज़ल संकेतात्मक कविता है। यह कम शब्दों में अधिक कहने की कला है। इसलिए ग़ज़ल की शैली वर्णनात्मक या विवरणात्मक नहीं, अपितु सांकेतिक होती है। ग़ज़ल को समाचार की तरह कहने के बजाए संकेतों व प्रतीकों के सहारे कहा जाता है। अपने एक शेर में जहीर कुरेशी इस बारे में कहते हैं- “गहरे संकेत छोड़ जाते हैं शेर/ विस्तार में नहीं जाते।”⁵³ इसके विपरीत सपाटबयानी ग़ज़ल रूपी शीशे के लिए पत्थर के समान है, जो उसके तग़ज़ज़ुल सौंदर्य के टुकड़े-टुकड़े कर

देती है। दुष्यन्त कुमार ने आज की भ्रष्ट व्यवस्था को इस शेर में सांकेतिक शैली में व्यक्त किया है। और यह सांकेतिकता ही इसकी जान है।

“यहाँ तक आते-आते सूख जाती है कई नदियाँ

मुझे मालूम है पानी कहाँ ठहरा हुआ होगा।”⁵⁴

(ङ) संक्षिप्तता- ग़ज़ल का एक महत्वपूर्ण गुण संक्षिप्तता है। ‘दीर्घ दोहा अर्थ के, आखर थोरे आहिं’ रहीम की दोहे के लिए कही गई यह पंक्ति ग़ज़ल के शेर के लिए भी लागू होती है, क्योंकि शेर की दो पंक्तियों में ग़ज़लकार को किसी विषय को पूर्ण व स्पष्ट रूप में कहना होता है। इसके लिए ग़ज़लकार को ग़ज़ल माला में सर्वोत्तम शब्दों रूपी मोती जड़कर गागर में सागर भरने की कला में माहिर होना जरूरी है। बड़े और व्यापक विषय को कम शब्दों में कहना अच्छे शायर व शेर की निशानी है। ग़ज़लकार जहीर कुरेशी का मत है- “हिंदी ग़ज़ल आज की सर्वाधिक सुनी, पढ़ी और पसंद की जाने वाली काव्य विधा है। उसका मुख्य कारण है- डेंसिटी ऑफ पोइट्री। केवल दो पंक्तियों में एक पूरी कविता का जन्म। शेर का गागर में सागर होना, शेरों की उद्धरणशीलता। किसी भी काव्य विधा की यही उपलब्धि उसे जनश्रुति की कविता बनाती है”⁵⁵

(च) अनेकार्थता या व्यंजना प्रधानता -अच्छी ग़ज़ल या अच्छे शेर वे माने जाते हैं, जो अनेकार्थी हो या यूँ कहें कि व्यंजना प्रधान हो। जिनसे अलग-अलग प्रसंगों और संदर्भों में अलग-अलग अर्थ निकलते हो। तथा पाठक अपनी परिस्थितियों व ज्ञान सीमाओं के दायरे में जिनकी अलग-अलग व्याख्या करते हो। जहीर कुरेशी अपने एक शेर में इस विशेषता का उल्लेख करते हैं- “रोज व्यंजनाओं में खुल कर बात हुई, / शेरों के संकेत बहुत बारीक रहे।”⁵⁶ जैसे यह शेर लौकिक प्रेम में प्रिय की स्नेहदृष्टि, आध्यात्मिक अर्थ में प्रभु की दयादृष्टि, प्रशासन में बॉस की कृपादृष्टि आदि प्रसंगों के साथ अन्य प्रसंगों में भी प्रयुक्त हो सकता है।

“प्रश्नपत्रों की तरह मिलने लगी है जिंदगी

आपकी नजर उठे सब प्रश्न हल हो जाएंगे।”⁵⁷

(छ) रब्त (अंतर्संबंध)- अच्छी ग़ज़ल के हर शेर में रब्त या अंतर्संबंध का होना जरूरी है। शेर के मिसरा-ए-उला में जो बात कही जाती है, मिसरा-ए-सानी में उसको पूर्णता प्रदान की जाती है। जिससे शेर में भाव की एक अंतर्धारा प्रवाहित होती है।

यदि दोनों मिसरों में अलग-अलग बात कही जाएगी तो यह भावधारा बाधित होगी तथा शेर की शेरियत व प्रभावशीलता खत्म हो जाएगी।

(ज) कहन की नवीनता या मौलिकता- ग़ज़ल की एक महत्वपूर्ण विशेषता अंदाज़े बयाँ की नवीनता में निहित है। ग़ज़ल में भावों का दोहराव हो सकता है, किंतु नवीन शब्द प्रयोग, वर्णन शैली, प्रतीकों व बिंबों के नयेपन के कारण हर ग़ज़ल की एक विशिष्ट खूबसूरती व पहचान होती है। शायर की पहचान भाव की मौलिकता व उससे भी अधिक कहन की मौलिकता के कारण होती है। प्रेम की शायरी गालिब से पहले भी लिखी जाती रही है लेकिन गालिब की कलम से निकलकर वही प्रेम की शायरी एक विशिष्ट अंदाज़-ए-बयाँ में ढलती है और पाठक वर्ग से अति प्रशंसित होती है, जिसका कारण कहन की मौलिकता ही है।

(झ) तरतीबी गद्यात्मक वाक्य विन्यास- कविता सर्वोत्तम शब्दों का सर्वोत्तम क्रम में विन्यास है। ग़ज़ल की कलात्मक खूबसूरती का आधार उचित क्रम में गद्यात्मक वाक्य विन्यास ही होता है। गद्यपरक शब्दावली का उचित क्रम में संयोजन वस्तु और रूप दोनों दृष्टि से ग़ज़ल को खूबसूरत बनाता है, वही अनुचित क्रम उसके सौंदर्य को क्षरित करता है। कविता की भाषा में गद्यात्मकता को अच्छा नहीं माना जाता, पर इसके उलट एक अच्छी व प्रभावोत्पादक ग़ज़ल वह मानी जाती है, जो संवाद की गद्यात्मक भाषा से युक्त होती है। जैसे गालिब के इस शेर में संवादात्मक गद्यपरक भाषा का प्रयोग इसकी खूबसूरती का आधार है।

“दिले नादाँ! तुझे हुआ क्या है

आखिर इस दर्द की दवा क्या है।”⁵⁸

(ञ) तहज़ीब (अदब) की भाषा- ग़ज़ल नाज़ुक मिजाज एवं नाज़ुक खयाल काव्य विधा है। अतः उसकी अभिव्यक्ति शैली नाज़ुक व तहज़ीब की भाषा वाली होती है। ग़ज़ल एकदम शिष्ट संस्कृति वाली काव्य विधा है। यह कोमल भावों की कोमलकांत शब्दावली में अभिव्यक्ति की कला है। विचारों व कटु बातों को भी भावसिक्तता के साथ मृदु जुबाँ में बयाँ करना अच्छी ग़ज़ल व अच्छे ग़ज़लकार की खासियत है।

(ट) सूक्तिपरकता- ग़ज़ल सूत्रात्मक काव्य विधा है। सूक्तिपरकता ग़ज़ल की एक अहम विशेषता है। सूक्तिपरक व मुहावरेदार शैली में कही गई ग़ज़ल भावोत्तेजक व प्रभावोत्पादक होती है। अच्छा शेर सूक्ति जैसा होता है, जो लोगों द्वारा जीवन संदेश देने के लिए उद्धृत किया जाता है। उदाहरणार्थ -

“खुदी को कर बुलंद इतना कि हर तकदीर से पहले

खुदा बंदे से खुद पूछे बता तेरी रजा क्या है।”⁵⁹

(ठ) लयात्मकता- ग़ज़ल एक छांदस काव्य विधा है। और किसी भी छंदोबद्ध रचना का प्राण तत्व उसकी लयात्मकता व संगीतात्मकता में निहित होता है, जो उसे गद्य से अलगाता है। ग़ज़ल के शेरों में विषयगत भिन्नता के बावजूद एक प्रकार की लय, नाद तथा संगीतात्मकता होती है। ग़ज़ल का छंदानुशासन ही वर्ण मैत्री, तुकान्तता व रदीफ़ के स्वर एकात्म्य से उसमें नाद सौंदर्य एवं लय की सृष्टि करता है, जो संगीत की आत्मा है। संगीत या गेयता से ग़ज़ल का इतना गहरा संबंध है, कि ग़ज़ल कहते ही सबसे पहली उसकी संगीतात्मक खूबी ही मन मस्तिष्क में आती है। ग़ज़ल में लय का अभाव शाही भोजन में नमक के अभाव जैसा अखरता है, जिससे वह अरुचिकर व अखाद्य हो जाता है।

(ड) वस्तु और रूप का सुंदर संयोजन- ग़ज़ल शैल्पिक विधा है, पर शिल्प सौंदर्य उसका केवल बाह्य सौंदर्य है, उसका आंतरिक सौंदर्य उसके कथ्य अर्थात् विषयवस्तु में निहित होता है। जिस तरह तन और मन दोनों सौंदर्य के सुंदर संयोजन से ही कोई व्यक्तित्व श्रेष्ठ होता है, उसी प्रकार ग़ज़ल के शेर केवल छांदसिक अनुशासन के पालन से नहीं, वरन कथ्य और शिल्प के सुंदर संयोजन से श्रेष्ठ बनते हैं। कोई भी शेर पाठक के दिल दिमाग में उतरता है, तो सिर्फ अपने रूप रचाव के कारण नहीं, अपितु अपने समूचे व्यक्तित्व के कारण जिसमें उसका कथ्य और रूप दोनों साथ-साथ कदमताल करते हैं। अतः भाव और रूप का खूबसूरत तालमेल अच्छी ग़ज़ल की एक महत्वपूर्ण विशेषता है।

(ढ) ग़मे जानाँ और ग़मे दौराँ की बयानी- रिवायती शायरी में वैयक्तिक वेदना व पीड़ा का ही वर्णन होता रहा है, किंतु जदीद शायरी ग़मे जानाँ के साथ ग़मे दौराँ की अभिव्यक्ति है। हिंदी ग़ज़ल सम्राट दुष्यन्त कुमार ने स्वीकारा है कि उन्होंने व्यक्तिगत व सार्वजनिक पीड़ा को प्रभावशाली रूप में आम जन तक पहुँचाने के लिए शायरी को चुना। दुष्यंतोत्तर शायरी में ग़मे दौराँ की बात ही अधिक होने लगी है। आज की हिंदी ग़ज़ल समस्त मानवता के सुख-दुख से अनुप्राणित है। वह ग़मे जानाँ और ग़मे दौराँ की सुन्दर बयानी है।

1.6 हिंदी ग़ज़ल की अवधारणा

परिचय- ग़ज़ल मूल रूप से अरबी विधा है। यह अरबी से बरास्ता फ़ारसी-उर्दू, हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं तक पहुँची है। यद्यपि हिंदी में आदिकाल से ही ग़ज़ल की एक स्फुट धारा देखने को मिलती है, परंतु आधुनिक काल में विशेष रूप से दुष्यन्त कुमार के बाद हिंदी में ग़ज़ल ने एक काव्यांदोलन का रूप लिया। जिसके पीछे अनेक कारण हैं। इसका एक कारण तो उर्दू में ग़ज़ल की अतिशय लोकप्रियता है। एक समय मुशायरों एवं कवि सम्मेलनों में उर्दू ग़ज़लों की धूम मची रहती थी। उर्दू शायरों जैसे मीर, ग़ालिब, ज़िगर मुरादाबादी के शेर लोगों की जुबान पर चढ़े हुए थे, जिन्हें आज भी विभिन्न संदर्भों में उद्धृत करते देखा जा सकता है। उर्दू में ग़ज़लों की इस अत्यधिक लोकप्रियता ने हिंदी कवियों को भी ग़ज़ल की ओर आकृष्ट किया, जिसके परिणामस्वरूप हिंदी में भी ग़ज़ल लिखने का सिलसिला शुरू हुआ।

इसका एक कारण यह भी है कि शेर की छोटी सी दो पंक्तियों में बड़ी से बड़ी और गंभीर से गंभीर बात को तीव्र भावप्रवणता के साथ कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करके, उसे पाठक के दिल दिमाग में उतार देने की, उसकी हृदय वीणा के तारों को झंकृत करने की जैसी क्षमता ग़ज़ल में है, वैसी अन्य विधा में नहीं है। बिहारी व अन्य कवियों के दोहों की रस प्रवणता व गागर में सागर भरने की क्षमता से परिचित हिंदी कवियों व पाठकों को ग़ज़ल की संक्षिप्तता व तीव्र भावप्रवणता ने अपनी ओर आकृष्ट किया।

इसका एक अन्य कारण यह है कि आधुनिक हिंदी कविता की ज़मीन पर प्रयोगवाद, नई कविता, साठोतरी कविता व समकालीन कविता जैसी अनेक काव्यधाराएँ प्रवाहित हुईं। परंतु ये सभी काव्य धाराएँ छंदमुक्तता, दुरुहता, वैचारिकता, कृत्रिमता व गद्यपरकता के कारण रस, भाव व लय की दृष्टि से सूखकर, जनमानस की पहुँच से दूर हो, बौद्धिक पाठक वर्ग व रचनाकारों तक ही सीमित हो गयी। इससे भी आगे जब कविता पाठक वर्ग तो क्या, रचनाकारों की स्मृति से भी गायब होने लगी, तो ग़ज़ल ने अपनी स्मृति अवधारिता से हिंदी कवियों व पाठकों का ध्यान अपनी ओर खींचा। यही कारण है कि नई कविता की क्लिष्टता, विचारप्रधानता व कृत्रिम शब्दाडम्बर रूपी जेठ की प्रचंड धूप से विदग्ध काव्यावनि पर जब दुष्यन्त की छंदोबद्ध सरस ग़ज़ल रूपी दवंगरा की बौछार हुई, तो हिंदी के संतप्त व उबे हुए पाठक जगत ने खुले दिल से उसका स्वागत किया और उसे कंठ से लगा लिया। ग़ज़लकार

विनय मिश्र इस बारे में लिखते हैं- “जटिल होती हुई कविता विचारों से हुई बोझिल/ ग़ज़ल होठों पे आते ही कहन में सादगी आई।”⁶⁰ दुष्यन्त की ग़ज़लों को हिंदी जगत में अतिशय लोकप्रियता प्राप्त हुई। और तभी से हिंदी में ग़ज़ल के स्वरूप व रचना परिमाण में क्रांतिकारी बदलाव देखने को मिला। आज ग़ज़ल हिंदी में सर्वाधिक पढ़ी, सुनी व लिखी जाने वाली लोकप्रिय काव्य विधा है।

उर्दू ग़ज़ल के अनुकरण पर लिखी जाने वाली हिंदी ग़ज़लें प्रारंभ में कथ्य, शिल्प, व शब्दावली में उर्दू ग़ज़ल से प्रभावित रहीं। पर धीरे-धीरे हिंदी ग़ज़ल अपना अलग स्वरूप ग्रहण करती है। क्योंकि यह सत्य है कि जब कोई विधा एक भाषा प्रदेश से दूसरे भाषा प्रदेश की यात्रा करती है, तो उसके स्वरूप में परिवर्तन होता है। जैसा कि ‘कमलेश भट्ट कमल’ ने भी स्वीकार किया है- “भाषा का सीधा जुड़ाव किसी भाषिक समूह के लोगों की संस्कृति और उनकी परंपराओं से होता है। अतः किसी विधा में भाषा परिवर्तन होने पर उसमें निहित कथ्य और संवेदना में भी पर्याप्त अंतर आ जाता है।”⁶¹ यही वजह है कि अपनी जननी ज़बान से विभिन्न ज़बानों की यात्रा में ग़ज़ल का व्यक्तित्व व स्वरूप निरंतर बदलता गया। अपने आदिम रूप में आश्रदाताओं के प्रशस्तिगान स्वरूप लिखे गये कसीदों से उद्भूत ग़ज़ल, उर्दू-फ़ारसी में आशिकों का रूमानी वार्तालाप एवं खुदा की बंदगी का माध्यम बनी। तो हिंदी में आकर मानवता की आवाज़ बन गई।

अरब में जन्मी, ईरान में पली-बढ़ी तथा भारत में युवती हुई ग़ज़ल आज दुनिया भर की अनेक भाषाओं के आँगन में मस्ती से चहलकदमी कर रही है। या कहे कि जिस ग़ज़ल ने अरबी में चलना सीखा, जो फ़ारसी में किशोरावस्था तथा उर्दू में युवावस्था के रंगीन सपनों में खोई रही, वही हिंदी में प्रौढ़ होकर आज दुनियादारी से रूबरू हो रही है। हिंदी ग़ज़ल ने बाह्य स्वरूप भले ही उर्दू से ग्रहण किया हो, लेकिन उसने अपनी आंतरिक बनावट, बुनावट और सजावट में हिंदी कविता के संस्कारों से अपने आलिंद को सजाया है। या कहें उसने उर्दू के शिल्प तन में हिंदी काव्य मन को प्रतिष्ठित कर अपनी नयी छवि निर्मित की है। फ़ारसी-उर्दू ग़ज़ल की भावात्मा भले ही प्रेम के वायवीय रंग से रंगी रही, किंतु हिंदी ग़ज़ल ने हुस्न और इश्क की गुफ़्तगू वाली परंपरागत कल्पनाशील छवि के स्थान पर, नई कविता की वैचारिकता व यथार्थवादिता की तर्ज पर समयगत सच्चाइयों का आईना बनकर अपनी एक नई यथार्थवादी छवि गढ़ी है। उसके शैल्पिक चेहरे में भले ही उर्दू से अलग कोई खास

बदलाव नहीं आया, किंतु उसकी कथ्यात्मा का निरंतर विस्तार व परिष्कार हुआ है। जहाँ पारंपरिक ग़ज़ल का व्यक्तित्व अंतर्मुखी रहा, वहीं आज की हिंदी ग़ज़ल अंतर्मुखी से अधिक बहिर्मुखी है। जिस ग़ज़ल ने नवाबों व रइसों की महफ़िलों में शराब के पैमाने परोसे और रात भर जाग कर रंगीन नृत्य प्रस्तुत करती रही, वह हिंदी में आने पर सुरा सुंदरी के मोहपाश को तोड़ती हुई रुमानियत की आदिम गुफा से बाहर निकल, महलों और महफ़िलों से दूर गरीब की झोपड़ी की ओर दृष्टि फैलाती है, मोहब्बत व इश्क के दर्द से दूर हट आम आदमी की पीड़ा से व्यथित होती है, दैनंदिन जीवन के मामलों व हकीकतों से रूबरू होती है।

हिंदी में ग़ज़ल ने समकालीन हिंदी कविता के यथार्थवादी व मानवतावादी कथ्य से प्रभावित हो अपने तेवर बदले, जिससे उसके भावस्वरूप में बड़ा व्यापक बदलाव आया है, और उसकी उर्दू ग़ज़लों से अलग छवि बनी है। इस संबंध में ग़ज़लगो जहीर कुरेशी का मानना है, “रदीफ़, काफ़िया, अरूज का पालन करते हुए भी हिंदी ग़ज़ल का सुभाव (मिजाज़), भाव-भंगिमा, शब्द-सौष्ठव उर्दू ग़ज़ल से बहुत अलग दिखाई देता है। उसका कारण है उर्दू-ग़ज़ल के लालन-पालन में पूरे साढ़े तीन सौ साल लगे। चूँकि उस काल का सबसे बड़ा 'मीडिया' ग़ज़लों का कोठों पर गाया जाना था, अतः ग़ज़लों को म्यूजिकल बनाने पर ही सबसे ज्यादा जोर दिया जाता था, उस समय। उर्दू ग़ज़ल में वह अतिवादिता कमोबेश आज तक चली आ रही है। परोक्ष रूप से, यह विचार की शक्ति को नकारना है। हिंदी ग़ज़ल... आज की यानी विचार-युग की ग़ज़ल है। यह कोठों पर गाई जाने वाली संगीत-उन्मुख ग़ज़ल नहीं, बल्कि खेतों-कारखानों-दफ्तरों में काम करते हुए रफ-टफ़ आदमी की भावनाओं की कलात्मक अभिव्यक्ति है। इसीलिए रदीफ़, काफ़िया, अरूज का पालन करते हुए भी हिंदी ग़ज़ल अपने सुभाव, अपने शब्द-संयोजन, अपने मुहावरे, अपनी भाव-भंगिमा के आधार पर उर्दू ग़ज़ल से एकदम भिन्न नजर आती है। उसे उर्दू ग़ज़ल से अलग तत्काल पहचाना जा सकता है।”⁶² हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि का संसर्ग पाकर ग़ज़ल अपने तन और मन को तराशकर अपना एक नया चेहरा-मोहरा गढ़ती है, जिसकी पृथक पहचान के लिए हिंदी विशेषण लगाकर उसे हिंदी ग़ज़ल नाम दिया गया है। अतः ग़ज़ल जब हिंदी भाषा व काव्य की संस्कृति, संस्कार, भाव व सोच को अंगीकृत कर हिंदी बोली-बानी व हिंदी मुहावरों के साँचें में ढली, तो उसे हिंदी ग़ज़ल की संज्ञा से अभिहित किया गया।

गुलाब की पंखुड़ी के समान कोमल, तथा कर्णप्रिय शब्दावली में सजी-धजी नवेली दुल्हन समझी जाने वाली ग़ज़ल हिंदी का चोला धारण करने पर अंतःपुर की शोभा बढ़ाने वाली नाज़नीनों की शृंगारिक दीवारों को तोड़कर जीवन के कड़वे यथार्थ का सामना करती है तथा हर तरह की विसंगति, अत्याचार व अन्याय के खिलाफ प्रतिरोध व संघर्ष का जयघोष करती है, वह राग के राग के बजाय आग का राग गाने लगती है। फ़ारसी-उर्दू में ग़ज़ल प्रेम की लालिमा में डूबी थी, लेकिन हिंदी में आने पर जिंदगी की स्याह हकीकतों को उद्घाटित करने में तल्लीन है। इसीलिए प्रेम वासना जैसे विषय उसके लिए द्वितीयक हो गये हैं। उसकी यह बदली हुई रूह व मिजाज ही है कि वह कोठों के ज़ीनतवादी दायरों से हटकर हर घर-आँगन तक पहुँची है, महफ़िलों में रात भर जागकर नृत्य करने के बजाय जन जागरण का माध्यम बनी है और दरबारी राग गाने की जगह जिंदगी का राग गाने लगी है। कहा जा सकता है कि हिंदी ग़ज़ल महफ़िलों की शोभा बढ़ाने वाली रोमानी कलावादी कवायद नहीं है, अपितु लोक भावनाओं व युगीन सच्चाइयों को अभिव्यक्त करते वाली सशक्त एवं लोकप्रिय काव्य विधा है। यही हिंदी ग़ज़ल की असली सूरत और सीरत है। हिंदी ग़ज़ल के नये स्वरूप को प्रकट करते कुछ अश्रुआर प्रस्तुत हैं-

“राजमहलों में पाला गया था इसे, आज है झोंपड़ी की दुलारी ग़ज़ल,
मनचलों ने पिनहाये थे घुँघरूँ इसे, आज है माँ-बहन की-सी प्यारी ग़ज़ल।
तीर चलते थे कल मदभरे नैन से, जाम होठों से इसके छलकते रहे,
ज़ुल्फ़ के ख़म से वाबस्ता थी कल मगर, ज़ुल्म के रूबरू है हमारी ग़ज़ल।
प्यार मीरा, घनानन्द, रसखान का, पीर इसमें कबीरा, निराला की है,
आज है अपनी कुटिया की रानी बनी, कल भिखारिन-सी थी दस दुआरी ग़ज़ल।
एक मज़लूम के हाथ में ज्यों धनुष, हक़ की खातिर तनी मुठ्ठियों की तरह,
आक्रमण की है तैयारियाँ कर रही, दर्द के गाँव में ग़म की मारी ग़ज़ल।”⁶³

“सिर्फ़ तक़ती से नहीं होती ग़ज़ल / फ़ारसी उर्दू हो या हिंदी ग़ज़ल।
जिस्म से बँधकर कहाँ पहुँची कहो / दरअसल तो रूह से बदली ग़ज़ल।
कल तलक कोठों की ज़ीनत जो रही / आज घर-आँगन में आ बैठी ग़ज़ल।
रतजगों में जागकर सोई बहुत/अब जगाने के लिए जागी ग़ज़ल।

बंदिशें तो ठीक पाबंदी नहीं / सिर उठाए आ रही बागी गज़ल।”⁶⁴

“गज़ल में जिंदगी का राग आया

था इसमें राग दरबारी अभी तक।”⁶⁵

रिवायती गज़ल अपने मिज़ाज में कल्पनाशील रही, परंतु हिंदी गज़ल का मिज़ाज इससे बिल्कुल अलग है। यह यथार्थ पसंदीदा है। और इसे थोथी वायवीयता, कल्पनाशीलता व कृत्रिमता नहीं भाती है। यह कल्पनालोक के स्थान पर यथार्थ की ज़मीन पर चलना स्वीकारती है। इसलिए चाँद तारों की हवाई यात्रा से यथार्थ की ठोस ज़मीन पर उतरी है। यह काल्पनिक हसीन जन्नत की यात्रा करने के बजाय विद्रूप यथार्थ की धरती पर चलती है। इसे प्रेमिल कल्पना के हवाई किले बनाने की बजाय झोंपड़ी के नग्न सच को देखना और उसे बयाँ करना अच्छा लगता है। यह जीवन और जगत की सुंदरता के काल्पनिक वर्णन के स्थान पर वर्तमान की विद्रूप व्यवस्था में जीवन व जगत के बिगड़ते सौंदर्य का यथार्थवादी अंकन करती है। शृंगार और सौंदर्य के कल्पना लोक से बाहर आकर जिंदगी की असलियत से वाकिफ़ होती है। अपने समय व समाज से बतियाती है और अपने दौर की प्रच्छन्न नग्न सच्चाइयों को उधेड़ती है। गज़ल की रूहानी व रूमानी दुनिया में हिंदी गज़ल ने सामयिक यथार्थ के नए द्वार खोले हैं। हिंदी गज़ल के नये यथार्थवादी मिज़ाज व दृष्टि की पुष्टि के संबंध में शेर देखे जा सकते हैं-

“अदीबों ठोस धरती की सतह पर लौट भी आओ

मुलम्मे के सिवा क्या है फ़लक के चांद तारों में।”⁶⁶

“कौन कहता कि आकाश फल है गज़ल

वक्त के रू-ब-रू आजकल है गज़ल।”⁶⁷

हिंदी गज़ल की परम्परागत गज़ल से अलग पहचान उसके आत्मिक सौंदर्य के कारण है और उसका यह आत्मिक सौंदर्य समकालीन यथार्थ व मानवातावादी चेतना से युक्त है। हिंदी में गज़ल की कथ्यात्मा में व्यापक बदलाव आया है, उसमें यथार्थवाद की प्रतिष्ठा हुई है और वह जीवन के हर आयाम से जुड़ी है। गज़ल का यह वस्तुगत विस्तार वर्तमान जीवन की उस मूल्यहीनता की देन है, जो जीवन के हर

क्षेत्र को आक्रांत करके लोक व्यवहार का अनिवार्य अंग बन गयी है। आज समाज, राजनीति व धर्म जीवन के हर क्षेत्र में विसंगतियों और विद्रूपताओं का आलम पसरा है। नई कविता की समकालीन दृष्टि से प्रभावित हिंदी ग़ज़लकार को इस कड़वे यथार्थ के समक्ष इश्क़-आशिकी, गुलो-बुलबुल, जामो-मीना और महबूबा के जलवे की कल्पनाविद् दुनिया बेमानी लगती है और वह अपने समय के कटु यथार्थ को ग़ज़ल में व्यक्त करता है। हिंदी ग़ज़लकार की काव्य चेतना में आए परिवर्तन ने समकालीन हिंदी ग़ज़ल को अपने समय की आँख में आँख डालकर बतियाने की शक्ति प्रदान की है। और वह ग़मे जानाँ की जगह ग़मे दौराँ, दरबारी व घरबारी की जगह दुनियादारी एवं व्यक्तिगत पीड़ा के स्थान समष्टिगत पीड़ा को बयाँ करने लगी है।

हिंदी ग़ज़ल समकालीन समय व समाज में जो हो रहा है, जो हो सकता है और जो होना चाहिए, उसे ही अभिव्यक्त करने की पक्षधर है। इसलिए वह साम्प्रतिक जीवन की सटीक अभिव्यक्ति का सर्वाधिक सशक्त माध्यम बनकर उभरी है। उसने नयी कविता का समकालीनता का मुहावरा पकड़कर सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक अवमूल्यन के प्रति विक्षोभ, आम आदमी की पीड़ा तथा आधुनिक मूल्यों की अनेकानेक संवेदनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान की है। जो ग़ज़ल वैयक्तिक प्रेम भावना को लेकर चली थी, वह हिंदी में सामाजिक सरोकारों से जुड़ गई है। हिंदी शायरों की दृष्टि प्रेम-मिलन के अलावा वर्तमान दौर में सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक व नैतिक जीवन मूल्यों के पतन के तरफ गयी है। इसलिए हिंदी ग़ज़ल में समकालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक समस्याओं, असंगतियों, विसंगतियों, विद्रूपताओं व विडंबनाओं का यथार्थ रूप में चित्रण है। इस विद्रूप यथार्थ के प्रति मुक्तिकामी चेतना का स्वर है। एवं मनुष्य जीवन की बेहतरी के लिए जीवन मूल्यों के आचरण से युक्त बेहतर मानवीय समाज की स्थापना की पैरवी है। यथार्थवादी व मानवतावादी चेतना से हिंदी ग़ज़ल अनुप्राणित है, यही उसका नया मिज़ाज व स्वरूप है। हिंदी ग़ज़ल आलोचक हरेराम समीप लिखते हैं- "वास्तव में समकाल या समकालीनता हिंदी ग़ज़ल का बीज तत्व है। हिंदी ग़ज़ल बड़े सीधे ढंग से जीवन के लिए नए यथार्थ की परख भी कर रही है और उन जीवन सत्यों को उजागर भी कर रही है जो मनुष्य की बेहतरी के लिए जरूरी है और जिससे वह वंचित किया जा रहा है। इस तरह से हिंदी ग़ज़ल अमानवीयता के खिलाफ प्रतिवाद करते हुए मानवाधिकारों की पैरवी कर रही है, मेरे विचार से यही है हिंदी ग़ज़ल का नया तेवर।"⁶⁸

हिंदी ग़ज़ल अपने समय के सामाजिक अंतर्विरोधों, समाजार्थिक विसंगतियों, राजनीतिक विद्रूपताओं और सांस्कृतिक विडंबनाओं को पूरी शिद्दत के साथ अभिव्यक्ति देती है। वह अपने समय-समाज की तमाम क्रूर व हिंसक सच्चाइयों को बखूबी उद्घाटित करती है। जीवन का कोई भी क्षेत्र हिंदी ग़ज़ल से अछूता नहीं है। झूठ, फरेब व मक्कारी से युक्त वर्तमान की स्वार्थी राजनीति हो, पाश्चात्य सभ्यता व उपभोक्तावादी संस्कृति से आक्रांत शहरों की बनावटी एवं भागती ज़िंदगी में अजनबीपन, अकेलेपन और टूटते रिश्तों की ठीस हो, शहरी संस्कृति के नीचे दबती ग्रामीण सभ्यता की कसक हो, फुटपाथ की बस्तियों का वीभत्स चेहरा हो, वंचित वर्गों- किसान, मजदूर, स्त्रियों व बाल श्रमिकों की पीड़ा हो, आर्थिक विषमता, भूखमरी, गरीबी, बेरोजगारी व महँगाई के चित्र हो, धार्मिक पाखंड, धर्म का व्यवसायीकरण व राजनीतिकरण हो, आतंकवाद व सांप्रदायिकता की आग में झुलसती मानवता की पीड़ा हो, प्रकृति के सौंदर्य को विनष्ट करते एक रेखीय विकास का सच हो, सब के सब समकालीन चित्र हिंदी ग़ज़ल के आइने में स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित होते हैं। कहा जा सकता है कि हिंदी ग़ज़ल अपने समय व समाज की प्रतिकृति है। समकालीन समस्त सच्चाइयों का यथार्थवादी लेखा जोखा है। ये शेर हिंदी ग़ज़ल के इस नये स्वरूप की बयानी है-

“जामो- मीना की खनक से थी ये वाबस्ता ज़रूर

देखिए अब ज़िंदगी की तर्जुमानी है ग़ज़ल।”⁶⁹

“ग़ज़ल हूँ मैं मुहब्बत का खुला दरबार रखती हूँ

हकीकत के सफर का दौरे कारोबार रखती हूँ।”⁷⁰

हिंदी में ग़ज़ल के स्वरूप में संवेदना के साथ अभिव्यक्ति शैली के स्तर पर भी परिवर्तन हुए हैं। ग़ज़ल के स्वरूप में आए ये बदलाव समय व समाज की ज़रूरतों के मुताबिक हैं। आज जब समस्त सत्ता शक्तियों के मानवता विरोधी आचरण के कारण जीवन के हर क्षेत्र- राजनीति, समाज, संस्कृति व धर्म में विसंगतियों व विद्रूपताओं का निरंतर प्रसार हो रहा है। और जीवन का सौंदर्य नष्ट हो रहा है। ऐसे में मनुष्य और मनुष्यता के रक्षण के लिए ग़ज़ल को शिरीं अल्फ़ाज़ से बने मखमली संगीत के बजाय सामयिक विद्रूपताओं के खिलाफ़ तल्ख़ तेवर व कटु शब्दों की धारदार तलवार बनना पड़ा है। इस तरह अपने समय की कड़वाहट से लड़ने के चक्कर में हिंदी ग़ज़ल

का मिज़ाज कोमल व नाज़ुक की जगह किंचित कटु व तल्ख हुआ है। इसका कारण है कि हिंदी ग़ज़ल प्यार-मुहब्बत का मीठा नग्मा होने के बजाय क्रांति का घोष व आग की राग-लय है। हिंदी ग़ज़ल गुलाब की पंखुड़ी सी नाज़ुक-मुलायम बनी रहने की जगह युग की विडंबनाओं व विपत्तियों से लड़ने की कारगर दवा के रूप में नीम की कड़वी पत्तियाँ बन गई हैं। ग़ज़लकार हिंदी ग़ज़ल के कटु मिज़ाज व उसके कारणों पर लिखते हैं-

“हम हुए आजकल नीम की पत्तियाँ/ लाख हों रोग, हल नीम की पत्तियाँ।

गीत गोली हुए शेर शीरीं नहीं / कह रहे हम ग़ज़ल नीम की पत्तियाँ।

खून का घूँट हम खून वे पी रहे / स्वाद देंगी बदल नीम की पत्तियाँ।

सुख संजीवनी हों सभी के लिए / हो रही खुद खरल नीम की पत्तियाँ।

वक्त हैरान, हिलती जड़ें बरगदी / सब कहीं बादखल नीम की पत्तियाँ।”⁷¹

“काँटे को आप फूल से कैसे निकालते

गाली पे उतर आई गँवारू किसान-सी।”⁷²

अतः यह सही है कि समकाल के कड़वे यथार्थ की कटु अभिव्यक्ति के कारण हिंदी में ग़ज़ल की नाज़ुकता का हास हुआ है तथा उसके स्वभाव में किंचित कठोरता आई है। इसके साथ हिंदी में ग़ज़ल के स्वरूप में एक बदलाव यह आया है कि हिंदी ग़ज़ल कविता की शृंखलाबद्धता के प्रभावस्वरूप उर्दू की तरह एक ग़ज़ल में अलग-अलग विषयों के शेर कहने की बजाय एक ही विषय को केंद्र में रखकर सभी शेरों में उस विषय के विविध आयामों को उद्घाटित करती है। या कहें कि हिंदी में मुसलसल ग़ज़लें लिखने की प्रवृत्ति अधिक है। ग़ज़लकार कमलेश भट्ट ‘कमल’ लिखते हैं- “हिंदी में कविता का क्षेत्र पहले से ही पर्याप्त व्यापक रहा है। अतः ग़ज़ल के हिंदी में आने पर उसे उर्दू की अपेक्षा निश्चित रूप से और भी अधिक व्यापकता प्राप्त हुई है। एक बात और जो तमाम हिंदी ग़ज़लों में देखी जा सकती है, वह है किसी ग़ज़ल विशेष में किसी विषय विशेष की प्रमुखता, यानी हिंदी में एक ग़ज़ल के सभी शेर एक ही विषय के इर्द-गिर्द घूमते हुए उस विषय विशेष को ऊर्जस्विता प्रदान करने प्रयास करते हैं, जबकि उर्दू में एक ही ग़ज़ल के अलग अलग शेर अलग-अलग विषयों की बात करने के लिए पूर्ण स्वतंत्र है।”⁷³

हिंदी ग़ज़ल फ़ारसी-उर्दू ग़ज़ल के शिल्प स्वरूप और बहरों की अनिवार्यता को तो स्वीकारती है, किंतु संवेदना के स्तर पर वह रागात्मक भावों की अपेक्षा अपने समय की साक्षी बनकर सामयिक जीवन की कड़वी सच्चाइयों की अभिव्यक्ति को तरजीह देती है। कटु यथार्थ व सामयिक विसंगतियों पर अधिक जोर देने के चक्कर में हिंदी ग़ज़लकार कर्णप्रिय शब्दों के चयन, कोमलता, माधुर्य व संगीतात्मकता पर कम ही ध्यान दे पाते हैं। इस कारण हिंदी ग़ज़लों के बारे में कहा जाता है कि हिंदी ग़ज़लें संगीत के पैमानों पर खरी नहीं उतरती हैं, जो कुछ हद तक सही भी है। ज्ञानप्रकाश विवेक का भी मानना है- “हिंदी की ग़ज़लों में उर्दू जैसी बारीकी नहीं आ पाई है। नफ़ीस और अनुभूतिपरक ग़ज़लें कम ही आ पाई हैं। हिंदी की ग़ज़लों में एक स्थूल किस्म का नजरिया (विसंगतियां) ही सामने आया है। यही कारण है कि हिंदी की ग़ज़लों में वह नाद सौंदर्य नहीं है, जो उर्दू ज़बान की ग़ज़लों में है। हिंदी की ग़ज़लें रूढ़ हो जाती हैं कहीं-कहीं पर।”⁷⁴ छंद विधान की दृष्टि से हिंदी ग़ज़लकारों ने उर्दू बहरों के अलावा हिंदी छंदों जैसे-दोहा, मंदाक्रांता व अन्य छंदों में भी ग़ज़लें लिखी हैं। हिंदी ग़ज़लों में बहरों का अनुशासन भी कहीं-कहीं भंग हुआ है। उनमें नए कथ्य की दैनिक जीवन से चुने गए नवीन बिंबों और प्रतीकों के माध्यम से सटीक अभिव्यक्ति हुई है। तथा उनमें लोकोक्तियों-मुहावरों का भी खूब प्रयोग हुआ है। रस की दृष्टि से हिंदी ग़ज़ल में परंपरागत ग़ज़ल में निरूपित शृंगार से आगे हास्य, रौद्र, करुण, वीभत्स व शांत रस का सुन्दर परिपाक हुआ है। तो शब्दालंकारों व अर्थालंकारों का भी स्वाभाविक प्रयोग हुआ है। हिंदी ग़ज़ल में भाषा के तीन रूप देखने को मिलते हैं- उर्दू मिश्रित हिंदी, संस्कृत तत्सम शब्दों से युक्त हिंदी, तीसरा आमफ़हम शब्दों से युक्त हिंदुस्तानी। हिंदी ग़ज़लों में भाषा का तीसरा रूप ही अधिक दृष्टिगत होता है। अंग्रेजी के बहुप्रचलित शब्दों का प्रयोग भी हिंदी ग़ज़ल में मिलता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मूलतः अरबी भाषिक ज़मीन का ग़ज़ली पौधा हिंदी भाषा व कविता की साहित्यिक-सांस्कृतिक भावभूमि को पाकर खूब पल्लवित-पुष्पित हुआ है। और हिंदी ग़ज़ल आज उस मुकाम पर पहुँच गई है, जहाँ वह किसी परिचय की मोहताज नहीं है। अपितु उसकी अपनी स्वतंत्र पहचान है। उसने निजता व एकल मनोभावों के काल्पनिक फ़लक से उतरकर सामयिक जीवन के तमाम सरोकारों के साथ सम्बद्ध हो, यथार्थ की ज़मीन पर अपनी नयी पहचान मुकर्रर की है। उर्दू-फ़ारसी ग़ज़ल के शैल्पिक गुणों को आत्मसात करते हुए भी उसने अपनी मौलिक मान्यताओं व स्थापनाओं की प्रतिष्ठा करते हुए वस्तु और शिल्प दोनों स्तरों पर

अपना निजी स्वरूप एवं सौंदर्य गढ़ा है। शिल्प के स्तर पर हिंदी ग़ज़ल में लयात्मकता एवं संगीतात्मकता का क्षरण हुआ है, तो कथ्य के स्तर पर उसमें समयिक जीवन यथार्थ एवं मानवता की मंगलकारी लय का स्वर मुखर हुआ है। विनय मिश्र कहते हैं-

“आज ग़ज़ल में जीवन की लय उतरी है

इससे दूरी रखना साथी ठीक नहीं।”⁷⁵

1.7 हिंदी ग़ज़ल : परिभाषा एवं स्वरूप

हिंदी ग़ज़ल के प्रति आलोचकों का रवैया उपेक्षापूर्ण रहा है। इस कारण हिंदी ग़ज़ल की कोई सर्वांग व सर्वमान्य परिभाषा उपलब्ध नहीं होती है। किंतु हिंदी ग़ज़लकारों ने अपने ग़ज़ल केंद्रित लेखों में यदा-कदा हिंदी ग़ज़ल को परिभाषित किया है। जिनमें से कुछ परिभाषाएँ इस प्रकार हैं-

डॉ. उर्मिलेश के अनुसार- “हिंदी ग़ज़ल हिंदी जाति के बीच बोली, लिखी, कही और पढ़ी जाने वाली वह ग़ज़ल है जो हिंदी जाति के प्रतीकों, संस्कारों, भाषिक संवेदनों की सुरक्षा करती हुई और आज के जीवन से उत्सृजिता और अपनी है।”⁷⁶ एक अन्य स्थान पर डॉ. उर्मिलेश कहते हैं, “हिंदी ग़ज़ल से मेरा अभिप्राय उर्दू कविता से आयातित उस काव्य विधा से है, जो उर्दू ग़ज़ल की शैल्पिक काया में हिंदी की आत्मा को प्रतिष्ठित करती हुई, अपनी गेयता को सुरक्षा देती हुई, आधुनिक जीवन और परिवेश की संगतियों और विसंगतियों को नूतन भाव बोध के साथ स्थापित करती हुई आगे बढ़ रही है। जिस ग़ज़ल में हिंदी की प्रकृति और व्याकरण की सुरक्षा के साथ नवगीति बिंबो और प्रतीकों का विधान है, मेरी समझ में उसे हिंदी ग़ज़ल मान लेने में कोई हर्ज नहीं है।”⁷⁷

शोधार्थी तेजेंद्र के शब्दों में- “हिंदी ग़ज़ल उर्दू ग़ज़ल से प्रभावित हुई है, किंतु इसने उर्दू ग़ज़ल का अंधानुकरण नहीं किया है। अधिकांश हिंदी ग़ज़लों में जन सामान्य की समस्याओं व राष्ट्रप्रेम के स्वर को स्थान मिला है।”⁷⁸

शिवओम अंबर हिंदी ग़ज़ल के बारे में कहते हैं, “समसामयिक हिंदी ग़ज़ल भाषा के भोज पत्र पर लिखी हुई विप्लव की अग्निऋचा है, गुलाब की पंखुड़ी पर क्रांति की कारिका को लिपिबद्ध करने का संकल्प है।”⁷⁹

डॉ. भरत गौड के मत में- “अभिव्यक्ति की तीव्रता एवं लघुता हिंदी ग़ज़ल की विशेषता है। हिंदी के ग़ज़लकारों ने उर्दू फ़ारसी के परंपरागत प्रचलित प्रतीकों एवं

बिम्बों के स्थान पर सरल प्रतीकों एवं उपमाओं का उपयोग किया है। यही हिंदी ग़ज़ल की मुख्य विशेषता है।”⁸⁰

सूर्यभानु गुप्त कहते हैं, “हिंदी ग़ज़ल की सबसे बड़ी खूबी भारतीयता है। वह उर्दू की तरह फ़ारसी के मोहपाश में नहीं बँधी और इसलिए उसकी जिरोक्स कॉपी होने से बच गई। वह अपने देश की ज़मीन से पूरी तरह जुड़ी हुई है। उसके काव्य संस्कार, उसके चिंतन, उसकी उपमाएँ, उसके प्रतीक, उसकी संपूर्ण काव्य भंगिमा भारतीय है।”⁸¹

रोहिताश्व अस्थाना के अनुसार- “हिंदी ग़ज़ल उर्दू फ़ारसी से आयातित वह काव्य विधा है, जो पूर्व निर्धारित लयखंडों में आबद्ध अनेक शेरों के माध्यम से प्रतीकों एवं बिंबों के सहारे पढ़े-लिखे आम आदमी की भाषा में आधुनिक जीवन मूल्यों की प्रतिस्थापना में सहायक है।”⁸²

जियाउर रहमान जाफरी के अनुसार- “यह रूमानीयत की आदिम गुफा से निकलकर रोजमर्रा की जिंदगी से जुड़ चुकी है। हिंदी ग़ज़लों में वर्तमान काल की भ्रष्ट व्यवस्था, जीवनव्यापी विसंगतियाँ, विडंबनाएँ, विकृतियाँ और विद्रूपताएँ खुलकर सामने आई हैं।”⁸³

रामप्रकाश पथिक कहते हैं- “हिंदी ग़ज़ल की व्यापक, सशक्त एवं ज्वलंत विशेषता है- सामाजिकता। आज के समाज के दर्द को साफ-साफ कहना और चुपके से उनके कारणों पर व्यंग्य भी कर जाना आज की सफल हिंदी ग़ज़ल की सार्थकता है। प्रेम वासना जैसा विषय हिंदी ग़ज़ल के लिए अब अप्रासंगिक तथा अनुप्रायुक्त हो चुका है।”⁸⁴

डॉ. रामजी तिवारी लिखते हैं- “ग़ज़ल विधा का विकास समकालीन काव्य चेतना के साथ हुआ, हिंदी ग़ज़ल में वर्तमान काल की भ्रष्ट व्यवस्था, जीवनव्यापी विसंगतियों, विडंबनाओं, विद्रूपताओं, विषमताओं, विकृतियों और दारुण परिणामों को प्रभावपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त किया गया है।”⁸⁵

शोधार्थी के अनुसार- “हिंदी ग़ज़ल वह आयातित लोकप्रिय काव्य विधा है, जो फ़ारसी-उर्दू के शिल्प तन में हिंदी मन की प्रतिष्ठा करते हुए वैयक्तिक प्रेम के संकीर्ण दायरे से आगे समाज प्रेम, राष्ट्रप्रेम व संपूर्ण मानवता से प्रेम तथा व्यक्तिगत वेदना से आगे समष्टिगत पीड़ा से अपना नाता जोड़कर आम आदमी के जीवन संघर्षों और सांप्रतिक समाज, राजनीति, धर्म व अर्थ जगत की विसंगतियों, विद्रूपताओं, विकृतियों,

विषमताओं, पर्यावरणीय चुनौतियों एवं आधुनिक जीवन मूल्यों व सत्यों को आमफहम भाषा में दैनंदिन जीवन से चुने नवीन प्रतीकों व बिंबों के माध्यम से आधुनिक भावबोध के साथ उद्घाटित करती है, विद्रूप व्यवस्था के प्रति विरोध का स्वर बुलंद करती है तथा बेहतर मानवीय समाज की स्थापना के लिए शाश्वत मानव मूल्यों की पुनर्स्थापना की पैरवी करती है। हिंदी ग़ज़ल जीवन 'सत्य' के उद्घाटन से मानवता के 'शिव' (कल्याण) के लिए की गई 'सुंदर' भाव-शब्द संयोजना है। संक्षेप में यह सत्यम् शिवम् सुंदरम् की त्रिवेणी है।

हिंदी ग़ज़ल का स्वरूप- हिंदी ग़ज़ल की जटिल शिल्प संरचना व व्यापक कथ्य परिधि के कारण इसकी कोई एक सर्वमान्य परिभाषा नहीं मिलती है। अतः हिंदी ग़ज़ल को सम्यक रूप में समझने के लिए उसके स्वरूप पर विचार आवश्यक है। हिंदी ग़ज़ल की स्वरूपगत कुछ सामान्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

1. हिंदी ग़ज़ल आज हिंदी कविता के अंतर्गत या उसके समानांतर एक स्वतंत्र व लोकप्रिय काव्यविधा के रूप में प्रतिष्ठित हो रही है।
2. हिंदी ग़ज़ल कल्पना की आकाशी उड़ान की जगह युगीन यथार्थ की ज़मीन से उपजी उसकी हूबहू अनुकृति है।
3. हिंदी ग़ज़ल ने पारम्परिक ग़ज़ल की कथ्यात्मा को प्रेम के संकीर्ण दायरे से विस्तृत करते हुए उसे जीवन के हर आयाम से जोड़ा है।
4. हिंदी ग़ज़ल सामयिक सत्यों और मूल्यों का दर्पण है। इसने अपने समय और समाज जीवन की तमाम असंगतियों और विसंगतियों को प्रभावशीलता के साथ दर्ज किया है।
5. हिंदी ग़ज़ल इश्क-आशिकी की वैयक्तिक वेदना के स्थान पर आम आदमी की सार्वजनिक पीड़ा की मुखर गायिका है।
6. हिंदी ग़ज़ल इश्के मजाजी व इश्के हकीकी से अधिक इश्के वतन व इश्के इंसानियत का गान है।
7. हिंदी ग़ज़ल व्यक्तित्व की दृष्टि से परम्परागत ग़ज़ल के एकदम उलट बहिर्मुखी व्यक्तित्व की धनी है। सामाजिकता इसकी एक बहुत बड़ी खूबी है तथा सामाजिक परिवेश से ही इसे प्राणवायु मिलती है।

8. हिंदी ग़ज़ल राजनीतिक विसंगतियों व विद्रूप व्यवस्था के खिलाफ विप्लवी गायन है।
9. हिंदी ग़ज़ल में रिवायती ग़ज़ल की तरह हर शेर में एक अलग विषय की सृजना के बजाय एक ग़ज़ल के सभी शेरों में एक ही विषय विशेष के विभिन्न पहलुओं को गहराई से चित्रित करने की प्रवृत्ति है।
10. हिंदी ग़ज़लों में मुख्यतः लोक के दैनंदिन जीवन में प्रचलित बोलचाल की हिंदी भाषा का प्रयोग हुआ है जिसमें उर्दू, अरबी, फ़ारसी व अंग्रेज़ी के बहुप्रचलित शब्द घुल मिल गए हैं।
11. हिंदी ग़ज़ल भावना की अपेक्षा विचार प्रधान है। उसमें निहित विचार तथ्यपूर्ण होते हुए भी गहन चिंतन की उपज होने से मनो- मस्तिष्क को उद्वेलित करने की क्षमता से युक्त एवं प्रभावोत्पादक है।
12. हिंदी ग़ज़ल में नवीन कथ्य की नवीन प्रतीकों और बिंबों के माध्यम से प्रभावी अभिव्यक्ति हुई है।
13. हिंदी ग़ज़ल में खुरदरे यथार्थ की कटु अभिव्यक्ति के कारण संगीतात्मकता कमजोर हुई है, पर उसमें जीवन की लय मुखर है।
14. हिंदी ग़ज़ल मानवता का मंगल गायन है। मानव के मानव के प्रति सहज प्रेम से युक्त विश्व बंधुत्व की भावना हिंदी ग़ज़ल का साध्य है।

हिंदी ग़ज़ल का स्वरूप शैल्पिक चेहरे की दृष्टि से फ़ारसी-उर्दू से बहुत मिलता जुलता है, परंतु उसकी कथ्यात्मा पूरी तरह से बदल गई है। वह व्यक्तिगत प्रेम से आगे बढ़कर जीवन के सभी आयामों से जुड़ी हैं। तथा संपूर्ण ब्रह्मांड को अपने आँचल में समेटने की कुव्वत रखती है।

1.8 हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा

हिंदी ग़ज़ल के उद्भव और उसके प्रथम प्रवक्ता के बारे में विद्वानों में मतभेद है। हिंदी के अधिकांश ग़ज़लकार खड़ी बोली के प्रथम कवि एवं फ़ारसी के ग़ज़लकार अमीर खुसरो को हिंदी ग़ज़ल का प्रथम उन्नायक मानते हैं। भोलानाथ तिवारी ने भी अमीर खुसरो को हिंदी का प्रथम ग़ज़लकार स्वीकारते हुए उनकी ग़ज़ल 'जब यार देखा नैन भर दिल की चिंता गई उतर' को हिंदी की प्रथम ग़ज़ल के रूप में रेखांकित किया है।⁸⁶ एम.ए.गनी जैसे कुछ लोग संत काव्य के प्रवर्तक कबीर को पहला ग़ज़लगी

मानते हैं। तो डॉ. नरेश व अन्य कुछ लोग आधुनिक हिंदी साहित्य के जनक भारतेन्दु हरिश्चंद्र को हिंदी ग़ज़ल का प्रथम प्रणेता मानते हैं। वही कुछ विद्वान हिंदी ग़ज़ल के उद्भव को और भी आगे खिसका ले जाते हैं। हिंदी कवि त्रिलोचन शास्त्री हिंदी ग़ज़ल का प्रथम उन्नायक जयशंकर प्रसाद को मानते हैं, तो ग़ज़लकार सुल्तान अहमद हिंदी ग़ज़ल का प्रवर्तक सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' को मानते हैं।

हिंदी के प्रथम ग़ज़लकार के बारे में मौजूद मत वैभिन्न के बावजूद आम धारणा है कि सर्वप्रथम अमीर खुसरो की ग़ज़लों में हिंदी ग़ज़ल का बीज मिलता है, जो एक लंबी अवधि के बाद आधुनिक काल में पल्लवित-पुष्पित होता है जिसे आगे चलकर दुष्यंत कुमार अपनी काव्य साधना के जैविक खाद-पानी से एक नए कलेवर के साथ वटवृक्ष का रूप देते हैं। दुष्यन्त कुमार के बाद हिंदी में ग़ज़लों की धूम मचती है और हिंदी ग़ज़ल का एक लम्बा कारवाँ शुरू होता है। हिंदी ग़ज़ल की इस विकास यात्रा को सुविधा की दृष्टि से पूर्व भारतेन्दु युग, भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, छायावादी युग, छायावादोत्तर युग, स्वातंत्र्योत्तर युग एवं समकालीन हिंदी ग़ज़ल आदि कालों में विभाजित किया जा सकता है।

1.8.1 पूर्व भारतेन्दु युग

पूर्व भारतेन्दु युग को हिंदी ग़ज़ल का आधार काल कहा जा सकता है। हिंदी में ग़ज़ल का उद्भव आदिकाल में तेरहवीं सदी में हुआ। हिंदी की धरती पर ग़ज़ल के बीज बोने का श्रेय अमीर खुसरो को जाता है। फ़ारसी के साहित्यकार अमीर खुसरो ने फ़ारसी ग़ज़ल में हिंदी भाषा का प्रयोग कर हिंदी ग़ज़ल की नींव डाली। भाषा की दृष्टि से इनकी ग़ज़लें दो प्रकार की हैं- एक तो ऐसी ग़ज़लें जिनमें फ़ारसी और हिंदी शब्दावली का सम्मिश्रण हुआ है। इन ग़ज़लों के पहले मिसरे में फ़ारसी तथा दूसरे मिसरे में हिंदी का प्रयोग हुआ है। यह शेर इसका उदाहरण है-

“शबानेहिजराँ दराज़ चूँ जुल्फ़ बरोज़े वसलत चूँ उम्र कोताह

सखि पिया को जो मैं न देखूँ तो कैसे काटूँ अँधेरी रतियाँ।”⁸⁷

उनकी ग़ज़लों का दूसरा रूप हिंदी में लिखी ग़ज़लों का है। हिंदी की पहली ग़ज़ल के रूप में स्वीकृत यह ग़ज़ल द्रष्टव्य है।

“जब यार देखा नैन भर दिल की गई चिंता उतर

ऐसा नहीं कोई अजब राखे उसे समझाय कर।

जब आँख से ओझल भया, तड़पन लगा मेरा जिया

हक्का इलाही क्या किया आँसू चले भर लाय करा।”⁸⁸

अमीर खुसरो की ग़ज़लों में नायिका के रूप सौंदर्य वर्णन व लौकिक प्रेम के साथ ईश्वरीय प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है। उन्होंने फ़ारसी शब्दों का हिंदीकरण किया- जैसे खतियाँ। अमीर खुसरो ने हिंदी की धरती पर अपनी ग़ज़ल रचना के पद चिन्हों से जो पगडंडी खींची, वही काल गति के साथ विकसित होकर हिंदी ग़ज़ल का हाईवे बनी।

पूर्व भारतेंदु युग में अमीर खुसरो के बाद हिंदी ग़ज़ल की आधार भूमि के तैयारकर्ता संत कबीर है। हालांकि कबीर की बीजक आदि रचनाओं में ग़ज़ल के बारे में कोई तथ्य उपलब्ध नहीं होते हैं, परंतु चूँकि ग़ज़ल सूफी संतों व फकीरों के लिए खुदा की बंदगी का माध्यम रही है। अतः संभव है कबीर ने भी सूफी संतों के अनुकरण पर अलौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए ग़ज़ल कही हो। उनकी एक प्रचलित ग़ज़ल को उद्धृत करके एम. ए. गनी उन्हें हिंदी का पहला ग़ज़लकार मानते हैं। यद्यपि सुल्तान अहमद, डॉ. नरेश व ज्ञानप्रकाश विवेक को ग़ज़ल का कबीर से संबंध जोड़ना अनुचित लगता है। इस ग़ज़ल में कबीर की काव्य वस्तु के अनुरूप अहम के विसर्जन व ईश्वरीय प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है। कबीर की यह प्रचलित ग़ज़ल है-

“हमन है इश्क़ मस्ताना हमन को होशियारी क्या

रहे आज़ाद या जग से हमन दुनिया से यारी क्या।

जो बिछड़े हैं पियारे से भटकते दर-बदर फिरते

हमारा यार है हममें हमन को इंतजारी क्या।

न पल बिछड़े पिया हमसे न हम बिछुड़े प्यारे से

उन्हीं से नेह लागी है हमन को बेकरारी क्या।”⁸⁹

मध्यकाल में कबीर के बाद जहाँगीर के समकालीन कवि प्यारेलाल शोकी की ग़ज़लों में हिंदी का रंग दिखाई देता है। कबीर की तरह उन्होंने अपनी ग़ज़लों में ईश्वरीय प्रेम की अभिव्यक्ति की है। उदाहरणार्थ-

“जिन प्रेमरस चाखा नहीं अमृत पिया तो क्या हुआ

जिन इश्क़ में सर ना दिया सो जग जिया तो क्या हुआ?

जिउ में नहीं पी का दरद बैठा मशायख होयकर

मन का रहट फिरता नहीं सुमिरन किया तो क्या हुआ?"⁹⁰

भक्तिकाल के कई भक्त कवियों ने भी ग़ज़ल की तकनीक पर काव्य रचना की। जिनमें मीराबाई व संत चरणदास के नाम प्रमुख हैं। संत चरणदास की एक ग़ज़ल के कुछ शेर प्रस्तुत हैं-

**“मेरी मिलने की कृष्ण से आरजू है
शबे रोज़ दिल में यही जुस्तजू है।
नहीं भाती है मुझको बातें किसी की
सुनी जब से उस यार की गुफ़्तगू है।”⁹¹**

रीतिकाल में हिंदी ग़ज़ल के ये अंकुरण झुलसने लगे क्योंकि रीतिकालीन कवि लक्षण ग्रंथों की रचना व अपने आश्रयदाताओं के प्रशस्ति गायन में व्यस्त रहें। इस कारण ग़ज़ल जैसी कठिन विधा की ओर उन्होंने ध्यान नहीं दिया। इस काल में भारतेन्दु हरिश्चंद्र के पिता गिरधर दास जिनका मूल नाम बाबू गोपाल चंद्र था, ने ग़ज़लें लिखीं। उनकी ग़ज़लों में हिंदी और उर्दू का सच्चा मिश्रण हुआ है। उर्दू वाले इन्हें उर्दू शायर मानते हैं-

**“हम भी उस बेपीर के आशिक हैं कहलाने लगे,
आह हम मजनूँ-खुमारी में गिने जाने लगे।
दास गिरधर तुम फ़क़त हिन्दी पढ़े थे खूब-सी,
किस तरह उर्दू के शायर में गिने जाने लगे।”⁹²**

स्पष्ट है कि पूर्व भारतेन्दु युग में खुसरो, कबीर व प्यारेलाल जैसे कवियों ने अपनी ग़ज़लों के पत्थरों से हिंदी ग़ज़ल की आधारशिला रखी। यद्यपि इस काल के कवियों ने प्रयोग के तौर पर ही ग़ज़ल को अपनाया।

1.8.2 भारतेन्दु युग

अमीर खुसरो के बाद भारतेन्दु युग तक हिंदी ग़ज़ल धारा क्षीण व खंडित रूप में ही बही। पर हिंदी ग़ज़ल की यह मौसमी धारा भारतेन्दु युग के बाद सदाबहार रूप में प्रवाहित होने लगी। या कहें कि हिंदी की धरती पर खुसरो के द्वारा डाले गये ग़ज़लों के बीज भारतेन्दु युग में ही ठीक-ठीक ढंग से अंकुरित हो हरे भरे होने लगते हैं। तथा इसके बाद निरंतर विकसित होते हैं। हिंदी साहित्य की अनेक विधाओं के जनक भारतेन्दु ने ही ग़ज़ल को हिंदी खड़ी बोली की एक विधा के रूप में स्थापित किया।

भारतेंदु हरिश्चन्द्र 'रसा' उपनाम से ग़ज़लें लिखते थे। उनकी ग़ज़लों पर उर्दू की ग़ज़लों का बहुत अधिक प्रभाव है। भारतेंदु एक ओर ग़ज़ल के पारंपरिक ढाँचें पर स्वयं को स्थापित करने की कोशिश करते हैं, तो दूसरी ओर उसमें हिंदी कविता का रंग भरते हुए उसे भक्ति और समसामयिक विषयों से संबद्ध करते हैं। इस कारण उनकी ग़ज़लों में एक ओर रूमानी भावों- प्रेम और शृंगार की मधुर चाशनी है, तो दूसरी ओर ग़ज़ल के पारंपरिक घेरे को तोड़ते हुए भक्ति के साथ आधुनिकता, देशभक्ति, अंग्रेज सरकार की नीतियों पर व्यंग्य व इंसानियत के स्वर भी हैं। इनकी कुछ ग़ज़लें उर्दू में लिखी गई हैं, कुछ हिंदी उर्दू मिश्रित हिंदुस्तानी में तथा कुछ हिंदी खड़ी बोली में, जिनमें बीच-बीच में एकाध उर्दू के शब्द आ गये हैं। उनकी विविधवर्णी ग़ज़लों से कुछ शेर पेश है-

प्रेम और सौंदर्य-

“अजब जोबन है गुल पर आमदे फ़सले बहारी है
 शिताब आ साक्रिया गुलरू की तेरी यादगारी है।
 इलाही ख़ैर की जो कुछ अभी से दिल धड़कता है
 सुना है मंजिले-अव्वल की पहली रात भारी है।”⁹³

*** ***** ***** *****

अंग्रेजी शासन पर व्यंग्य-

“उसको शहनशाही हर बार मुबारक़ होवे
 के सारे हिन्द का दरबार मुबारक़ होवे।
 बाग़बाँ- फूलों से आबाद रहे शहने चमन
 बुलबुलो गुलशन को खार मुबारक़ होवे।”⁹⁴

भारतेंदु युग के बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने अब्र नाम से हिंदी खड़ी बोली में ग़ज़लें लिखी। जो प्रेमघन सर्वस्व के प्रथम भाग में संगृहीत है। उनकी ग़ज़लें हिंदी की ज़मीन से उगी हैं। जिनमें लौकिक प्रेम की प्रेमिल मानसिक दशाओं के साथ अलौकिक प्रेम का चित्रण भी देखने को मिलता है। उनकी ग़ज़लों की भाषा हिंदुस्तानी है। यथा-

तुझे शेख़ जिसने बनाया है मोमिन,
 हमें भी है हिन्दू उसी ने बनाया।
 परीशां हो क्यों अब बेख़ुद भला तुम,
 कहो किस सितमगर से है दिल लगाया।”⁹⁵

भारतेंदु मंडल के कवि प्रताप नारायण मिश्र ने हिंदी कविता में नए छंदों के प्रयोग करते हुए ग़ज़ल के क्षेत्र में भी अपनी लेखनी चलायी। उर्दू भाषा में ही अच्छी ग़ज़लें हो सकती हैं। इस मिथक को तोड़ते हुए उन्होंने शुद्ध हिंदी में ग़ज़लें लिखकर समकालीन व परवर्ती ग़ज़लकारों के सम्मुख हिंदी भाषिक फ़लक पर ग़ज़ल रचना का आदर्श प्रस्तुत किया। भारतेंदु युग में उक्त के अतिरिक्त बालमुकुंद गुप्त व गोपाल लाल गुल ने भी ग़ज़लें लिखी हैं। गोपाल लाल गुल के ग़ज़ल संग्रह गुलबहार (1872ई.) में 30 ग़ज़लें संकलित हैं। वेदप्रकाश अमिताभ ने गुलबहार को हिंदी का पहला ग़ज़ल संग्रह माना है। प्रेमियों के लिए उनका एक शेर है-

“हो न मरहमकार जब तक दिल लगाना है बुरा

लग गया दिल जो किसी से तो छुड़ाना है बुरा।”⁹⁶

यद्यपि भारतेंदु युग की ग़ज़लों पर उर्दू ग़ज़लों का बहुत प्रभाव है। फिर भी इस युग के ग़ज़लकारों का अवदान यह है कि उन्होंने अपने पूर्व की ग़ज़ल परंपरा को आगे बढ़ाते हुए उसे रूमानी विषयों के अलावा आजादी व देशभक्ति जैसे तात्कालिक विषयों से जोड़कर परवर्ती रचनाकारों के लिए एक नया पथ प्रशस्त करने का प्रयास किया है।

1.8.3 द्विवेदी युग

हिंदी ग़ज़ल का पौधा द्विवेदी युगीन कवियों की ग़ज़ल साधना के खाद पानी से ऊर्ध्व गति करता है। इस काल के कवियों ने उर्दू बहरों व हिंदी छंदों में रचना की। इस काल के कवियों को ग़ज़ल रचना की दृष्टि से दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है- एक तो वे हिंदी कवि जिन्होंने अपने काव्य रचना के लिए ग़ज़ल शैली को अपनाया। दूसरे वे जिन्होंने बतौर ग़ज़लकार ग़ज़लें लिखी। प्रथम श्रेणी में मैथिलीशरण गुप्त, श्रीधर पाठक व रामनरेश त्रिपाठी आदि आते हैं। द्वितीय श्रेणी में भगवानदीन, हरिऔध, गया प्रसाद शुक्ल ‘सनेही’ व जगदंबा प्रसाद मिश्र के नाम उल्लेखनीय हैं।

द्विवेदी युगीन ग़ज़लकारों में लाला भगवानदीन का नाम प्रमुख है। उनकी ग़ज़लें नदीमे दीन में संगृहीत हैं। वे हिंदी में ‘दीन’ उर्दू में ‘रोशन’ तथा ब्रज में ‘प्रीतम’ के उपनाम से कविताएँ लिखते थे। उनकी ग़ज़लों में प्रेम, सौंदर्य, विद्रोह व प्रगतिवादी चेतना के विविध स्वर मिलते हैं। तथा हिंदी-उर्दू का सुंदर संगम है। उदाहरणार्थ-

प्रेम व सौंदर्य

“तुमने पाँवों में लगाई मेहँदी / मेरी आंखों में समाई मेहँदी।

है हरी ऊपर मगर अंतस है लाल / है ये जादू की जगाई मेहँदी।”⁹⁷

प्रगतिवादी चेतना

“खासे निखट्टुओं को शरबत अनार है

श्रमजीवियों को राख तो उसमें भी छार है।”⁹⁸

गया प्रसाद शुक्ल सनेही ने 'त्रिशूल' नाम से हिंदी में गज़लें लिखी। जो 'त्रिशूल तरंग' में संगृहीत है। उन्होंने उर्दू छंदों का हिंदीकरण किया। उनकी गज़लें राष्ट्रीय भावों से ओतप्रोत हैं। यथा-

“दिल मेरा क़ौम की ख़िदमत में लगा रहने दे

जान भारत पे मेरी जान फ़िदा रहने दे।”⁹⁹

जगदंबा प्रसाद मिश्र 'हितैषी' ने 'सनेही' की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए राष्ट्रभक्ति, स्वराज्य, देश प्रेम व क्रांति के स्वरो से युक्त गज़लें लिखी हैं। शेर प्रस्तुत है-

“इलाही वह भी दिन होगा, जब अपना राज देखेंगे

जब अपनी ही ज़मीं होगी, जब अपना आसमां होगा।

शहीदों की चिताओं पर लगेगे हर बरस मेले

वतन पर मरने वालों का यही बाकी निशां होगा।”¹⁰⁰

क्रांतिकारी रामप्रसाद बिस्मिल ने भी अपनी गज़ल रचना से क्रांतिकारियों में अंग्रेजी राज्य के खिलाफ विद्रोह और क्रांति की आग पैदा की। उनकी गज़लें एक तरह से क्रांति की मशालें हैं। उदाहरण के लिए एक गज़ल के चंद शेर प्रस्तुत हैं-

“बला से हमको लटकाए अगर सरकार फाँसी से

लटकते आए अक्सर पैक्रे-ईसार फाँसी से।

कभी ओ बेखबर! तहरीके-आज़ादी भी रुकती है

बढ़ा करती है उसकी तेज़ि-ए-रफ़्तार फाँसी से।

यहाँ तक सरफ़रोशाने-वतन, बढ़ जाएंगे क़ातिल

कि लटकाने पड़ेंगे नित तुझे दो-चार फाँसी से।”¹⁰¹

द्विवेदीयुगीन नारायण प्रसाद 'बेताब' और श्रीधर पाठक ने विशुद्ध रूप से ग़ज़लें नहीं कहीं। परंतु उन्होंने अपनी रचनाओं में ग़ज़ल शैली का प्रयोग किया है। इसी तरह राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के काव्य 'भारत भारती' के अन्तिम भाग में सोहनी लय पर आधारित गीत ग़ज़ल शैली का प्रयोग है। उनके काव्य से उदाहरण प्रस्तुत है-

“इस देश को हे दीन बन्धो! आप फिर अपनाइए

भगवान भारतवर्ष को फिर पुण्य भूमि बनाइए।

जड़ तुल्य जीवन आज इसका विघ्न-बाधा पूर्ण है

है रम्ब! अब अवलंब देकर विघ्नहर कहलाए।”¹⁰²

द्विवेदीयुग में केशव प्रसाद मिश्र, बद्रीनारायण भट्ट, गोपाल शरण 'नेपाली', मन्नन द्विवेदी व देवी प्रसाद 'पूर्ण' आदि ने भी ग़ज़लें लिखी हैं। द्विवेदी युगीन ग़ज़लों में प्रेम, भक्ति के साथ स्वराज्य, देशभक्ति, राष्ट्रप्रेम व क्रांति के स्वर मुख्य हैं। इन कवियों ने हिंदी-उर्दू मिश्रित हिंदुस्तानी के साथ विशुद्ध हिंदी में भी ग़ज़लें लिखी हैं।

1.8.4 छायावादी युग

छायावादी युग में हिंदी ग़ज़ल का पौधा तेजी से ऊर्ध्व गति करता है। इसका कारण यह है कि छायावाद व ग़ज़ल की ज़मीन एक ही है। दोनों का बीज तत्व प्रेम है। इस युग में प्रसाद व निराला की रचनाओं पर ग़ज़ल शैली की छाप दृष्टिगत है।

जयशंकर प्रसाद ने अंशतः ही ग़ज़ल शैली को अपनाया है। उनके नाटकों के गीतों में ग़ज़ल शैली दृष्टिगत होती है। प्रेम और सौंदर्य के कवि प्रसाद की ग़ज़लों में ग़ज़ल की प्रेमिल आत्मा चित्रित हुई है। उनमें लौकिक प्रेम के साथ ईश्वरीय प्रेम तथा सामाजिक व्यवहार का यथार्थ भी अभिव्यक्त हुआ है। प्रेम पर उनकी ग़ज़ल के शेर द्रष्टव्य हैं-

“स्वजन दीखता न विश्व में अब, न बात मन में समाय कोई

पड़ी अकेली विकल रो रही, न दुख में है समाय कोई।

पलट गए दिन सनेह वाले, नहीं नशा, अब रही न गर्मी

न नींद दुख की, न रंगरेलियाँ, न सेज उजला बिछाय कोई।”¹⁰³

ईश्वरीय प्रेम - “अपने प्रेम रस का प्याला पिला दे मोहन

तेरे में अपने को हम जिसमें भुला दे मोहन।”¹⁰⁴

प्रसाद की ग़ज़लों में छायावादी कविता शैली के प्रभाव स्वरूप प्रकृति सौंदर्य के अनेक कल्पनाप्रधान बिंब भी विद्यमान हैं। एक ग़ज़ल के कुछ शेर प्रस्तुत हैं-

“अस्ताचल पर युवती संध्या की खुली अलक घुँघराली है

लो माणिक मदिरा की धारा अब बहने लगी निराली है।

भर ली पहाड़ियों ने अपनी झीलों की रत्नमयी प्याली

झुक चली चूमने वल्लरियों से लिपटी तरु की डाली है।”¹⁰⁵

प्रसाद की ग़ज़लों में प्रेम, प्रकृति, आध्यात्मिकता के साथ राष्ट्रीय चेतना का स्वर भी विद्यमान है। उनकी ग़ज़लों की भाषा संस्कृतनिष्ठ हिंदी है। उर्दू शब्दों का प्रयोग उसमें नहीं के बराबर है। इसी कारण भाषा की दृष्टि से प्रसाद जी की ग़ज़लें हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा में अपनी विशिष्ट पहचान रखती हैं।

हिंदी ग़ज़ल के पौधे को ऊर्ध्व गति देने में निराला जी के रचना ताप का विशेष महत्व है। वे उर्दू बहरों से परिचित थे। तथा उन्होंने उर्दू ग़ज़ल का हिंदीकरण करते हुए अपनी रचना साधना से हिंदी ग़ज़ल को नए संस्कारों से संस्कारित करने का प्रयास किया। उनकी इस प्रयोगधर्मिता को देखते हुए ही ग़ज़लकार सुल्तान अहमद उन्हें हिंदी ग़ज़ल का प्रवर्तक मानते हैं। उनके काव्य संग्रह ‘बेला’ में 28 ग़ज़लें संकलित हैं। बेला की भूमिका में लिखा है- “बेला मेरे नए गीतों का संग्रह है। प्रायः सभी स्तर के गाए गीत इसमें हैं। नई बात है अलग-अलग बहरों की ग़ज़लें भी हैं, जिनमें छंद शास्त्र का निर्वाह किया गया है।”¹⁰⁶ निराला की ग़ज़लों में छायावादी काव्य चेतना के प्रभाव स्वरूप प्रेम, प्रकृति सौंदर्य व आध्यात्मिक चेतना के स्वर मुखरित हुए हैं। प्रकृति सौंदर्य के खूबसूरत चित्र भी उनकी ग़ज़लों में हैं। यथा-

प्रेम : “उनके बाग में बहार देखता चला गया

कैसा फूलों का उभार देखता चला गया।

मैंने उन्हें दिल दिया, उनका दिल मिला मुझे

दोनों दिलों का सिंगार देखता चला गया।”¹⁰⁷

निराला परंपरागत विषयों के वर्णन के साथ इनके संकीर्ण घरे के बाहर भी हिंदी ग़ज़ल की नई ज़मीन तैयार करते हैं। उनकी ग़ज़लें सुरा सुंदरी तथा विलास मस्ती के सामंती रंगों के स्थान पर मेहनतकश के श्रम सौंदर्य के रंगों से शोभित होती हैं। तथा विद्रूप यथास्थितिवाद के प्रति विद्रोह व परिवर्तनकामी चेतना का राग अलापती हैं।

शायद इसलिए उनके बारे में कहा गया है कि- “बहुत बाद में दुष्यंत कुमार ने ग़ज़ल की जो ज़मीन तोड़ी उसके लिए रास्ते को हमवार करने का काम निराला जी ने शुरू कर दिया था।”¹⁰⁸ उनकी एक ग़ज़ल जो हिंदी ग़ज़ल के उस मिज़ाज से परिचय करवाती है-

“चढ़ी हैं आँखें जहाँ की, उतार लाँगी / बढ़े हुआँ को गिराकर सँवार लाँगी।

समाज ने सर उठाया है, राज बदला है/ सयास वे पतझर से बाहर लाँगी ।

उगी खेती लहराई, हवा और बदली है / मिले बढ़े चलें, ऐसा विचार लाँगी।”¹⁰⁹

निराला की मान्यता है कि इस आर्थिक विषमता के मूल में पूँजीवादी व्यवस्था है, जो सर्वहारा का लहू चूसकर उसका शोषण करती है। उनका यह शेर इस शोषक पूँजीवादी व्यवस्था की परजीवी संस्कृति के खिलाफ़ आक्रोश के स्वर से युक्त है-

“खुला भेद विजयी कहाए हुए जो

लहू दूसरों का पिये जा रहे हैं।”¹¹⁰

छायावादी काल में हिंदी ग़ज़ल की कुछ विशेष प्रवृत्तियाँ उभरती हैं। इस युग में निराला और प्रसाद ने प्रेम के पारम्परिक विषय के अतिरिक्त राष्ट्रोत्थान, देशप्रेम, सर्वहारा व दलितों-वंचितों के प्रति हमदर्दी तथा पूँजीवादी व्यवस्था का व्यंग्य शैली में विरोध करते हुए हिंदी ग़ज़ल को उसका स्वतंत्र व्यक्तित्व देने की कोशिश करके आगे के रचनाकारों के लिए एक संभावनाशील सृष्टि की सृष्टि की।

1.8.5 छायावादोत्तर युग

छायावादोत्तर युग में ग़ज़ल रचना शैली से प्रभावित हिंदी कवियों में रामेश्वर शुक्ल ‘अंचल’, नरेंद्र शर्मा, हरि कृष्ण प्रेमी, जानकी बल्लभ शास्त्री, बलवीर सिंह ‘रंग’ आदि का नाम उल्लेखनीय है। रामेश्वर शुक्ल अंचल की ग़ज़लें प्रेम की माधुरी के साथ युगीन परिवेश से प्रभावित हैं। वे समकालीन दौर में जीवन मूल्यों व मानवता के हास, पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा चालित शोषण की चक्की में पिसते आम जन की पीड़ा, शोषणकारी व्यवस्था में समृद्ध होते सताधीशों व नौकरशाही की साजिशों तथा विद्रूप व्यवस्था में बदलाव के लिए क्रांति के स्वर से अपनी ग़ज़लों को अनुनादित करते हैं। उदाहरणार्थ-

शोषणकारी पूँजीवादी व्यवस्था व सत्ता की साजिशें-

“आज उन्हीं के जलवे सायों को जीवित करते हैं

स्याह अँधेरी की साजिश में दिन का जादू भरते हैं।
 चूस रही पूँजी की रिश्वत नफ़ाखोरियों की जोंके
 रोज़ हमीं मर-मर कर जीते हैं, जी-जी कर मरते हैं।”¹¹¹

मूल्यों का हास-

“साँस उल्टी चल रही है, गमज़दा ईमान की
 बस मनाओ ख़ैर उस बीमार बेपहचान की।
 मोल ले ले जो ख़ुदा तक को, दुकानें हैं यहाँ
 बात क्या हम तुम सरीखे मुफ़लिसों हैरान की।”¹¹²

उत्तर छायावादी युग में हरिकृष्ण प्रेमी ने हिंदी ग़ज़ल को नया यौवन व सावन दिया। प्रेमी जी की ग़ज़लें ग़ज़ल के पारंपरिक प्रेमी स्वभाव से मेल खाती हैं। उनकी ग़ज़लों का सेटेलाइट प्रेम ग्रह के आसपास ही चक्कर काटता है। उनमें प्रेम, यौवन, सौंदर्य तथा श्रंगार का चित्रण ही अधिक है। उनकी अधिकांश ग़ज़लें बेमतला हैं। भाषा लोक प्रचलित उर्दू शब्दों से युक्त हिंदी है। वियोगजन्य वेदना से युक्त ग़ज़ल के कुछ शेर प्रस्तुत हैं-

“दर्द दिल की धड़कनों में कह रहा है रात दिन कुछ
 कौन जाने कह सकेगा दिल कभी पूरी कहानी।
 साधना भी थक गयी है, प्यार प्रियतम से न पाया
 पर अमर धन वेदना का दे गये नादान दानी।”¹¹³

उत्तर छायावादी दौर में जानकी वल्लभ शास्त्री ने ग़ज़ल शैली में रचना की। इनकी ग़ज़लों में प्रेम की विविध मनोदशाओं के साथ देशप्रेम, आम आदमी की बेबसी, राजनीतिक षड्यंत्रों एवं राष्ट्रीय गौरव का स्वर है। इनकी ग़ज़लें गैरमुरदफ़ श्रेणी की हैं। पर उनमें क़ाफ़िये का सुंदर निर्वहन हुआ है। अपनी प्राचीन ज्ञान विज्ञान एवं सांस्कृतिक समृद्धि को भूलकर पश्चिमी संस्कृति के पिछलग्गू बनने की स्थिति को व्यक्त करता यह शेर द्रष्टव्य है-

“देश दुनिया का था सिरमौर हमीं भूल गए
 नज़र गगन में गड़ाई की ज़मीं भूल गए।”¹¹⁴

उत्तर छायावादी युग में बलवीर सिंह 'रंग' ने अपनी ग़ज़ल रचना से हिंदी ग़ज़ल को सुंदर रंग-रूप प्रदान किया। एक दौर में हिंदी ग़ज़लों पर 'रंग' जी के रंग की छाप चढ़ी हुई थी। उनकी ग़ज़लों में कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टि से उर्दू का रंग है। इसलिए उनकी ग़ज़लों में उर्दू जैसी लोच, नजाकत, अंदाज़-ए-बयाँ, उक्ति वैचित्र्य व संगीतात्मकता विद्यमान है। तथा उनमें प्रेम व शृंगार के साथ सामाजिक-राष्ट्रीय समस्याओं, आम आदमी के साथ हमदर्दी तथा मानवता के क्षरण के प्रति चिंता का स्वर भी है। प्रेम रंग से रंगी 'रंग' जी की ग़ज़ल देखिए-

“हमने तन्हाई में जंजीर से बातें की हैं / अपनी सोई हुई तकदीर से बातें की हैं।

तेरे दीदार की क्या खाक तमन्ना होगी / जिंदगी भर तेरी तस्वीर से बातें की हैं।

‘रंग’ का रंग जमाने ने बहुत देखा है / क्या कभी आपने बलबीर से बातें की है।”¹¹⁵

1.8.6 प्रयोगवादी युग या स्वातंत्र्योत्तर युग

इस युग की सीमा पचास के दशक से सतर के दशक या दुष्यंत कुमार से पूर्व तक मानी जाती है। इसलिए इसे स्वातंत्र्योत्तर युग भी कहा जाता है। प्रयोगवादी दौर के ग़ज़लकारों में शमशेर बहादुर सिंह, त्रिलोचन, रुद्र काशिकेय के नाम प्रमुख हैं। इनमें शमशेर ग़ज़ल से विशेष प्रभावित है। शमशेर की ग़ज़लें उर्दू शब्दावली बहुल होते हुए भी हिंदी-उर्दू का ऐसा शीरी-जलीय घुलनशील मिश्रण है, जिसमें दोनों मिलकर एक हो जाते हैं। कथ्य की विस्तृतता, विचारों की प्रौढ़ता, भावों की गहनता व भाषा की सांकेतिकता से सम्पन्न शमशेर की ग़ज़ले हिंदी में पहली बार ग़ज़लियत का दर्शन कराती हैं। तथा दुष्यंत जैसे परवर्ती कवियों के ग़ज़लगो व्यक्तित्व को गढ़ने में अहम भूमिका अदा करती हैं। नरेंद्र वशिष्ठ की टिप्पणी है- “शमशेर पहले कवि है जिन्होंने हिंदी पाठकों को ग़ज़ल के सही रूप से परिचित कराया। उनकी अधिकतर ग़ज़लों में नाजुक ख्याली, मर्म को छूने की क्षमता, भाषा का लोच और बहरों का निर्वाह दृष्टिगत होता है।”¹¹⁶ उनकी ग़ज़लों का मुहावरा उर्दू की रिवायती शायरी का होते हुए भी शमशेरियत की छाप से युक्त है। उनकी ग़ज़लों में वर्णित प्रेम वैयक्तिक से कहीं अधिक मानवता के संस्कार से युक्त है। तथा उनमें बयाँ पीड़ा विरहजन्य आत्मपरक होने के साथ आम आदमी के ज़ख्मों की आह से प्रसूत है। वे ग़ज़ल को रूमनियत की काल्पनिक दुनिया से बाहर निकालकर उसका सच से सामना करवाने के आकांक्षी हैं। और इसलिए वे आजादी के बाद की हकीकत को बयां करते हुए राजनीतिक व धार्मिक मूल्यों की गिरावट, आम जनता की पीड़ा तथा अपने समय से बहुत पहले

बाज़ारवाद के खतरों को चीन्हते हुए उसके सुरसाई चरित्र को उजागर करते हैं। उनकी ग़ज़लों के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं-

“वही उम्र का एक पल कोई लाए / तड़पती हुई सी ग़ज़ल कोई लाए।
हकीकत को लाए तख़्त्युल से बाहर / मेरी मुश्किलों का जो हल कोई लाए।
कहीं सर्द खूँ में तड़पती है बिजली / जमाने का रद्दोबदल कोई लाए।”¹¹⁷

राजनीतिक व धार्मिक मूल्यों में गिरावट

“किस लीलायुग में आ पहुंचे, अपनी सदी के अन्त में हम
नेता जैसे घास फूस के, रावण खड़े कराए गए।
जितना ही लाउडस्पीकर चीखा उतना ईश्वर दूर हुआ
उतने दंगे फैले जितने दीन धरम फैलाए गए।”¹¹⁸

बाजारवाद

“इल्मो- हिकमत, दीनो- ईमाँ, मुल्को-दौलत, हुस्नो-इश्क
आपको बाजार से जो कहिए ला देता हूँ मैं।”¹¹⁹

इस काल में त्रिलोचन शास्त्री की ग़ज़लों की अपनी अलग पहचान है। उनकी ग़ज़लें 'गुलाब और बुलबुल' संग्रह में संगृहीत हैं। कवि की सादगी और सरलता उनकी ग़ज़लों में भी सादगी और खरेपन के रूप में उतरती है। उनकी ग़ज़लों का मुख्य विषय प्रेम व शृंगार है। लेकिन केवल प्रेम के विषय तक सीमित न रहकर आम आदमी की पीड़ा, आधुनिक जीवन सत्यों और मानवता के भाव से पूर्ण है। कुछ शेर द्रष्टव्य हैं-

“बिस्तरा है, न चारपाई है
जिंदगी क्या खूब हमने पाई है।”¹²⁰

“त्रिलोचन तुम ग़ज़ल में खूब आये बात बन आई
नए जीवन का स्वर अब गान का स्वर होता जाता है।”¹²¹

रुद्र काशिकेय भी इस काल के महत्वपूर्ण ग़ज़लकार हैं। उन्होंने अपने ग़ज़ल संग्रह 'गज़लिका' में शायद पहली बार हिंदी ग़ज़ल का स्वरूप स्पष्ट करते हुए एक आलोचक की नजर से हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा को रेखांकित किया। रुद्र जी की

ग़ज़लों में प्रेम के साथ समाज जीवन व विकास की गाड़ी को चलाने वाले मेहनतकश वर्ग एवं सृष्टिकर्त्री स्त्री के प्रति श्रद्धा-सम्मान का स्वर गुंजित हुआ है। शेर प्रस्तुत है-

“मलिन भ्रांति से व्यस्त नक्षत्र मैं तो / तुम्हीं क्रांति से पूर्ण निहारिका हो

अगर ‘रुद्र’ संसार संहार कर्ता / तुम्हीं रुद्र की सृष्टि संहारिका हो।”¹²²

“जो न चलते मनुष्य ईंधन बन

गर्म हम तो कहीं ‘न’ मिल पाते।”¹²³

1.8.7 समकालीन हिंदी ग़ज़ल

स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान देश की आम जनता ने आज़ादी के बाद एक समृद्ध व खुशहाल जीवन का सपना देखा था। लेकिन स्वतंत्रता के बाद के राजनीतिक व सत्ता नेतृत्व की स्वार्थी कार्यप्रणाली के कारण आज़ादी के दो दशक से अधिक समय गुजरने के बाद भी आमजन की स्थितियों में कोई विशेष बदलाव नहीं हुआ और उसके सपनों पर पानी फिर गया। परिणामस्वरूप आम जनता का सत्ता व राजनीति से मोह भंग हो गया, आज़ादी उसे अंग्रेजों की शोषणकारी व्यवस्था को विस्थापित करने वाली अपनों की शोषणकारी व्यवस्था लगने लगी। आम आदमी की इस पीड़ा की अभिव्यक्ति समकालीन हिंदी कविता में प्रमुखता से हुई है। परन्तु सामाजिक सरोकारों, राजनीतिक व युगीन चेतना से प्रतिबद्धता का दावा व वकालत करने वाली स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता अत्यधिक गंभीरता, छंदमुक्तता, बौद्धिकता, क्लिष्ट शब्दावली व दुरुह बिंबों के कारण आम जन के लिए लिखी जाने पर भी आमजन से दूर होती गई। हिंदी कविता की इस आक्षेप से मुक्ति के लिए हिंदी के लब्धप्रतिष्ठ कवि दुष्यन्त कुमार ने आपातकाल की विकट परिस्थितियों में व्यक्ति की व्यक्तिगत और सार्वजनिक दोहरी पीड़ा को आम जन की भाषा में आम जन तक पहुँचाने के लिए ग़ज़ल काव्य विधा को चुना। यहाँ से हिंदी ग़ज़ल की एक नयी यात्रा शुरू होती है, उसका एक नया स्वरूप निर्मित होता है, नई पहचान व नई परंपरा स्थापित होती है। और उसके परंपरा पुरुष है ग़ज़ल सम्राट दुष्यन्त कुमार। दुष्यन्त कुमार नई कविता के मुहावरे के अनुरूप भावुक व काल्पनिक ग़ज़ल को युगीन यथार्थ का आईना बनाकर उसकी यथार्थवादी छवि निर्मित करते हैं तथा उसे राजनीतिक व सामाजिक चेतना से संपन्न करते हैं। परवर्ती ग़ज़लकार दुष्यन्त के परंपरा पथ का अनुसरण करते हुए हिंदी ग़ज़ल की यात्रा को आगे बढ़ाते हैं। इसलिए इस काल को दुष्यंतोत्तर

काल भी कहा जाता है। समकालीन हिंदी ग़ज़लकारों की सूची बहुत लंबी है। कुछ प्रमुख ग़ज़लकारों का परिचय निम्नानुसार है -

दुष्यंत कुमार- ग़ज़ल संग्रह- 'साये में धूप'

हिंदी ग़ज़ल को वास्तविक गौरव व नई दिशा प्रदान करने वाले दुष्यन्त कुमार ही हिंदी ग़ज़ल के सच्चे पुरोधा हैं। वे हिंदी ग़ज़ल की वैयक्तिक वेदना से भरी जर्जर नाव को आम आदमी की सार्वजनिक पीड़ा तथा राजनीतिक व सामाजिक चेतना से संपन्न करते हुए समकालीन यथार्थ की नदी में उतारते हैं। दुष्यन्त कुमार ने समकालीन स्थितियों से अनुभूत किया कि जहाँ स्वतंत्रता संग्राम से पूर्व के राजनीतिक व राष्ट्रीय नेतृत्व ने आम आदमी के सपनों का भारत बनाने के लिए आज़ादी का संघर्ष किया था, वहीं स्वातंत्र्योत्तर राजनीतिक व सत्ता नेतृत्व आम आदमी के सपनों पर अपने सपनों को तरजीह देने लगा। जिसके फलस्वरूप आम आदमी का खुशहाली का सपना दिवास्वप्न बनकर रह गया, उसका जीवन ज़ख्मों की वही कहानी बना रहा। दुष्यन्त आम आदमी की इस स्वप्न भंग से उपजी व्यक्तिगत व सार्वजनिक पीड़ा की प्रभावी तथा जनव्यापी अभिव्यक्ति के लिए ग़ज़ल को माध्यम बनाते हैं। उन्होंने स्वयं कहा है कि, "भारतीय कवियों में सबसे प्रखर अनुभूति के कवि मिर्ज़ा ग़ालिब ने अपनी पीड़ा की अभिव्यक्ति के लिए आखिर ग़ज़ल ही को क्यों चुना? और अगर ग़ज़ल के माध्यम से ग़ालिब अपनी तकलीफ़ को इतना सार्वजनिक बना सकते हैं, तो मेरी दोहरी तकलीफ़ (जो व्यक्तिगत है और सामाजिक भी) इस माध्यम के सहारे एक अपेक्षाकृत व्यापक पाठक वर्ग तक क्यों नहीं पहुँच सकती?"¹²⁴ वे अपनी ग़ज़लों के द्वारा आम आदमी की पीड़ा के लिए जिम्मेदार सत्ता नेतृत्व की कार्य शैली को प्रश्नांकित करते हैं, उसका तीव्र प्रतिरोध करते हैं तथा उसमें बदलाव की आवाज़ बुलंद करते हैं। इस प्रकार हिंदी ग़ज़ल को एक नई भाव भूमि, एक नया मुहावरा तथा नया स्वरूप देते हैं। हिंदी ग़ज़ल की यह नयी भावभूमि आम आदमी के सपनों के मोहभंग की पीड़ा, उसकी संघर्ष गाथा, उसके लिए नये सपने बुनने, राजनीतिक चेतना, अपने समय से जूझने की जुस्तजू तथा युगीन यथार्थ की अनुगूँज से युक्त है। उनका यह शेर आम जनता के सपनों के टूटन के समकालीन यथार्थ को प्रकट करता है तथा राजनीतिक नेतृत्व को प्रश्नांकित करता है-

"कहाँ तो तय था चिरागाँ हरेक घर के लिए

कहाँ चिराग मयस्सर नहीं शहर के लिए।"¹²⁵

दुष्यन्त की गज़लों में मुख्य रूप से तीन स्वर सुनाई देते हैं। पहला आमजन की दोहरी- व्यक्तिगत व सामाजिक तकलीफ़ों व पीड़ा का है, जिसमें विसंगतिपूर्ण विद्रूप व्यवस्था से असहमति व प्रतिरोध का स्वर मुख्य रूप से प्रस्फुटित हुआ है। उनके ये शेर आम हिंदुस्तानी के दर्द की कहानी और सत्ता के प्रतिरोध का उद्घोष है-

“कल नुमाइश में मिला वो चीथड़े पहने हुए

मैंने पूछा नाम तो बोला कि हिंदुस्तान है।

मुझमें रहते हैं करोड़ों लोग चुप कैसे रहूँ

हर गज़ल अब सलतनत के नाम एक बयान है।”¹²⁶

दूसरा स्वर इस विद्रूप व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन का है। जिसमें यथास्थितिवाद से मुक्ति व इसके स्थान पर एक मानवतावादी और सच्चे लोकतंत्रात्मक समाज की स्थापना की क्रांतिकारी आवाज़ है। उनकी गज़ल के ये अश्रुआर आमजन की हिमालयी पीर से परिवर्तनकारी क्रांति नदी के उद्गम की ज़रूरत पर बल देते हैं-

“हो गई है पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिए/ इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए

सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मक़सद नहीं/ मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए

मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही/ हो कहीं भी आग, लेकिन आग जलनी चाहिए।”¹²⁷

तीसरा स्वर इस दुर्धर्ष समय से संघर्ष में सफलता की आश्वस्ति, भविष्य के प्रति आशा, अदम्य आस्था व जिजीविषा का है। इनके अलावा दुष्यन्त की संघर्षधर्मी चेतना में प्रेम का स्वर भी तिरोहित नहीं होता है। आशावादिता व जिजीविषा को व्यक्त करता शेर प्रस्तुत है -

“कैसे आकाश में सुराख नहीं हो सकता

एक पत्थर तो तबीयत से उछालो यारो।”¹²⁸

दुष्यन्त कुमार एक युग का नाम है, जहाँ से समकालीन हिंदी गज़ल अपनी वास्तविक दिशा और गति प्राप्त करती है। मनोरंजन का साधन समझी जाने वाले गज़ल विधा के पैमाने में दुष्यन्त द्वारा पेश जीवनानुभूतियों के कटु यथार्थ के जाम पीकर जनता बेसुध नहीं होती है, बल्कि बेहोश जनता जाग्रत होती है। दुष्यन्त अपने समय के आमजन की पीड़ा मुक्ति के लिए तत्कालीन विद्रूप व्यवस्था की खोज खबर लेने के लिए व्यंग्यात्मक शैली को अपनाते हैं। उन्होंने समाज और सियासी

विद्रूपताओं और विडंबनाओं को करीने और सलीके से प्रस्तुत किया है। हिंदी ग़ज़ल में समकालीन यथार्थ के नये द्वार खोलकर हिंदी ग़ज़ल के विकास के नये आयामों को उद्घाटित किया। दुष्यंत के बाद का ग़ज़लगो समाज उनसे प्रभावित ही नहीं, उनका अनुगृहीत भी है।

गोपालदास नीरज- ग़ज़लसंग्रह- नीरज की गीतिकाएँ, नीरज की पाती, कारवाँ गुजर गया।

'कुछ सपनों के मर जाने से जीवन नहीं मरा करता', 'कारवाँ गुजर गया गुबार देखते रहे" जैसे कालजयी गीतों के रचयिता गोपालदास नीरज समकालीन हिंदी ग़ज़ल के लोकप्रिय व महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। जिन्होंने हिंदी ग़ज़ल को निजी पहचान देते हुए उसे मंचों से जोड़ा। उनकी ग़ज़लों के नाजुक तथा रूमानी भावों के कारण उन्हें हिंदी जगत में तो व्यापक जन स्वीकृति मिली ही सही, देश से बाहर भी उसकी अनुगूँज सुनाई देती है। डॉ. सुमेर सिंह शैलेश लिखते हैं- "नीरज की अपनी मस्ती है, अपना तरन्नुम है, और अपना चिंतन है। इस त्रिवेणी में अवगाहन करने वाले इस अनूठे शायर की कलम को हर जगह वाहवाही और प्रशंसा मिली है।"¹²⁹

नीरज की काव्य दृष्टि व्यापक भाव लोक में संचरण करती है। उनकी ग़ज़लें लोक की व्यक्तिगत प्रणयानुभूति से अलौकिक प्रेम, रहस्यानुभूति, अध्यात्म, दर्शन एवं मानवतावादी चिंतन के उत्तरोत्तर उच्च सोपानों की ओर अग्रसर होती हैं। उनकी प्रेम भावना समाज, धर्म व राष्ट्र की दीवारों को लांघकर संपूर्ण मानवता तक प्रसारित होती है। मानवता को संपोषित करने वाला आधारभूत तत्त्व धर्म ही जब कट्टरवादी व सांप्रदायिक ताकतों के हाथों में पड़कर मानव को मानव का दुश्मन बनाने का कारक बनता जा रहा है। ऐसे दौर में नीरज इंसानियत व मानवीय मूल्यों को सर्वोपरि रखते हुए तमाम धर्मों से ऊपर इंसानियत के धर्म की पैरवी करते हैं। वे कहते हैं -

“अब तो मजहब कोई ऐसा भी चलाया जाए /जिसमें इंसान को इंसान बनाया जाए

मेरा मक़सद है ये मेहफिल रहे रोशन यूँ ही/खून चाहे मेरा दीपों में जलायाजाए।”¹³⁰

नीरज एक संवेदनशील तथा जागरूक रचनाकार के धर्म का निर्वहन करते हुए ग़ज़ल की परंपरागत काया में युगीन यथार्थ को कलात्मक ढंग से ढालते हैं। युग के कटु यथार्थ की रागात्मक जिल्द के साथ कोमलकांत मिष्ठ शब्दावली में लयपूर्ण अभिव्यक्ति नीरज की जनप्रियता का मूल है। तथा यही समकालीन ग़ज़लकारों में उन्हें अलग पहचान देती है। युग की विसंगतियों पर उनके शेर दृष्टव्य हैं-

“समय ने जब भी अँधेरो से दोस्ती की है/जलाके अपना ही घर हमने रोशनी की है
सबूत है मेरे घर में ये धुएँ के धब्बे/कभी वहाँ पे उजालों ने खुदकुशी की है।”¹³¹

सूर्यभानु गुप्त- काव्य संग्रह- 'एक हाथ की ताली'

सूर्यभानु गुप्त जी ने हिंदी साप्ताहिक एक्सप्रेस में 'लोकप्रिय गज़लें' नाम से एक स्तंभ चलाकर हिंदी गज़ल के विकास, प्रचार-प्रसार तथा उसे लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। जीवन जगत के व्यापक विषयों की नए प्रतीकों व अछूते उपमानों के द्वारा अनुभूतिपरक अभिव्यक्ति उनकी गज़लों का एक अलहदा मिज़ाज तय करती है। उनके गज़ल रचनाकर्म के विषय में रतिलाल शाहीन का वक्तव्य है - “हिंदी में सूर्यभानु गुप्त ने गज़लों में अलग ही शैली बनाई है। सूक्ष्म से सूक्ष्म दृश्य, प्रतीक भाव को उन्होंने गज़लों में पिरोया है।”¹³² गुप्त जी अपने युग की विसंगतियों व सत्यों की तहों को टटके बिंबों के माध्यम से उधेड़ते हैं। जीवन के विविध आयामी सच उनकी गज़लों में व्यक्त हुए हैं। आधुनिक जीवन में भौतिकता की भूख के कारण स्नेह और प्रेम के सोते सूखते जा रहे हैं, रिश्तों का चेहरा क्रूर व अनजान होता जा रहा है। भौतिकता के एवरेस्ट की चढ़ाई में मूल्य खाई में समाते जा रहे हैं। युग की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं मूल्यगत विसंगतियों पर उनकी यह गज़ल द्रष्टव्य है

“पहाड़ों के ऋदों की खाइयाँ हैं / बुलन्दी पर बहुत नीचाइयाँ हैं।

है ऐसी तेज़ रफ़्तारी का आलम / कि लोग अपनी ही खुद परछाइयाँ हैं।

गले मिलिए तो कट जाती हैं जेबें / बड़ी उथली यहाँ गहराइयाँ हैं।

बिके पानी समन्दर के किनारे / हकीकत पर्वतों की राइयाँ हैं।

गगन-छूते मकां भी, झोपड़े भी / अजब इस शहर की रानाइयाँ हैं।

नगर की बिल्डिंगें बाँहों की सूरत / बशर टूटी हुई अँगड़ाइयाँ हैं।

जिधर देखो उधर पछुआ का जादू / सलीबों पर चढ़ी पुरवाइयाँ हैं।

नई तहज़ीब ने ये गुल खिलाए / घरों से लापता अँगनाइयाँ हैं।”¹³³

चंद्रसेन विराट- चर्चित गज़ल संग्रह- निर्वसना चाँदनी, आस्था के अमलतास, कचनार की टहनी, धार के विपरीत, इस सदी का आदमी, हमने कठिन सफर देखा है।

दुष्यंतोत्तर हिंदी गज़ल के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर चंद्रसेन विराट ने अपने हिंदीवादी दृष्टिकोण एवं अच्छी गज़ल के लिए उर्दू भाषा व बहरों की अनिवार्यता के मिथक को तोड़ते हुए उर्दू बहरों से मिलते जुलते हिंदी छंदों में तत्समनिष्ठ हिंदी भाषा का प्रयोग

कर हिंदी ग़ज़ल की संज्ञा व अवधारणा को सार्थक करने एवं हिंदी ग़ज़ल को हिंदी मिज़ाज प्रदान करने का कार्य किया। उनकी ग़ज़लें वस्तु एवं रूप दोनों दृष्टियों से हिंदी ग़ज़ल का सुन्दर सुरूप प्रस्तुत करती हैं। उनकी ग़ज़लें, ग़ज़ल के पारम्परिक कथ्य- प्रेम, युवा सौंदर्य व रोमांस के रंगों से तो भारतीय प्रतीकों व बिबों की कूंचियों के सहारे रंगी ही हैं, पर इसके साथ ही युग यथार्थ के स्याह रंग से भी रंगी हैं, जिसके सामने प्रेम के ये रंगीन चित्र केवल काल्पनिक उड़ान लगते हैं। डॉ. रोहिताश्व अस्ताना लिखते हैं- “उनकी ग़ज़लों के वर्ण्य विषय की यात्रा प्रेम, सौंदर्य एवं यौवन के व्यक्तिवादी स्वरों से आरंभ होकर देश, समाज, राजनीति, व्यवस्था, ज्ञान विज्ञान, मनोविज्ञान, दर्शन, श्रम, उद्योग, व्यापार, पूँजीवादी सभ्यता एवं अंतरराष्ट्रीय कूटनीति के दुर्गम पथों को पार करती हुई समष्टिवादी भाव धारा तक पहुँची है”¹³⁴ कुछ शेर प्रस्तुत हैं-

“रंग तेरा है जिसे छूकर के
चांदनी दुग्ध धवल होती है।”¹³⁵

“गिद्ध ऊपर और दलदल में/ गर्दनों तक हम गड़े हैं दोस्त
देश का परिधान, भीखों के/ रेशमी कुछ चीथड़े हैं दोस्त।”¹³⁶

“काटा था आदमी को मगर साँप मर गया
बढ़ता हुआ आदम में जहर देख रहा हूँ।”¹³⁷

बालस्वरूप राही- ग़ज़ल संग्रह- राही को समझाए कौन, चलो फिर कभी सही।

नवगीत के हस्ताक्षर बालस्वरूप राही दुष्यंत के समय से 21वीं सदी के द्वितीय दशक तक की दीर्घकालिक रचना यात्रा पथ के पथिक हैं। ग़ज़ल व्यक्तिगत या समष्टिगत पीड़ा की अभिव्यक्ति का साधन है। राही ग़ज़लकार की उस वेदनागत मानसिक मनोभूमि का संस्पर्श करते हैं, जो ग़ज़ल की उद्भाविका है। वे लिखते हैं-

“हम पर दुख का परबत टूटा तब हमने दो चार कहे
उस पे भला क्या बीती होगी जिसने शेर हजार कहे।”¹³⁸

राही जी की आरंभिक ग़ज़लों का कथ्य मुख्यतः प्रेम व श्रृंगार की भाव भूमि से संबंधित है, जिस पर गीतों का प्रभाव है। पर इसके साथ वे अपने युग के कड़वे

यथार्थ को भी प्रभावी ढंग से ग़ज़ल के साँचे में भरते हैं। उनकी ग़ज़लों में आम आदमी के सरोकारों की सशक्त अभिव्यक्ति है, जिसमें आम आदमी के सपनों की टूटन व संघर्षशीलता का स्वर है, तो इस टूटन के लिए जिम्मेदार सत्ताधीशों व राजनीतिक कर्णधारों को दायित्व बोध कराने का स्वर भी है। इन संदर्भों में ये शेर देख सकते हैं-

**“लोग शरमाए इसे अपना वतन कहने में / ऐसी खिदमत न करो क़ौम के ठेकेदारों
इस इमारत में रहेगी कई नस्लें राही / रेत इतनी न भरों नींव के ठेकेदारों।”¹³⁹**

देश की सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था में मूल्यों का निरंतर पतन हो रहा है। पूँजीवादी सभ्यता व आधुनिकता के दौर में आज मानव मूल्यों व मनुष्यता का निरंतर हास हो रहा है। इंसानियत मर रही हैं। शेर द्रष्टव्य है-

“हथकड़ी लेके किसे ढूँढ रहे हैं सब लोग

क्या शहर में कोई इंसान अभी बाकी है।”¹⁴⁰

शेरजंग गर्ग- ग़ज़ल संग्रह- ‘क्या हो गया कबीरों को’, ‘गुलाबों की बस्ती’, ‘शरारत का मौसम’

डॉ. शेरजंग गर्ग ने ‘नई ग़ज़लें’ ‘ग़ज़लें ही ग़ज़लें’ ‘हिंदी ग़ज़ल शतक’(तीन भाग) आदि ग़ज़ल संग्रहों का संपादन कर हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा को आगे बढ़ाने तथा हिंदी के ग़ज़लकारों को प्रतिष्ठा दिलाने का स्तुत्य प्रयास किया है। शेरजंग जी के पास ग़ज़ल कहने के लिए आवश्यक व्यापक चिंतन दृष्टि, सलीका, खूबसूरत अंदाज़े बयाँ मौजूद है। वे जीवन के अनुभवों पर विज्ञान सम्मत चिंतन कर जो सत्य व निष्कर्ष निकालते हैं, उन्हें ग़ज़ल में व्यक्त करते हैं। गर्ग जी सामयिक परिवेश से अनुभूत करते हैं कि आज के पूँजीवादी युग में मनुष्य दौलत का पुजारी बन गया है। कागज के निर्जीव टुकड़ों के पीछे दौड़ते-दौड़ते मनुष्य भी बेजान व यांत्रिक हो गया है। उसके भीतर से आदमियत तथा संवेदनशीलता खत्म हो रही है। प्रेम जैसे उदात्त मानवीय मूल्य बिकाऊ चीज हो गए हैं। शेरजंग जी इस अनुभूति को शेर में ढालते हैं-

“पत्थरों की हसीन बस्ती में / कुछ न बनता है यों शिकायत से

अब मुहब्बत की राह छोड़ ऐ दिल / आदमी तुल रहा है दौलत से।”¹⁴¹

डॉ. शेरजंग गर्ग एक सजग व सतर्क ग़ज़लकार की तरह अपने समय के प्रच्छन्न सच को परखते हैं। और आने वाले खतरों से समाज को सचेत करते हैं।

आज का राजनीतिक नेतृत्व स्वार्थी सियासत में संलिप्त है। वह गरीबी और बदहाली की यथार्थ स्थितियों के काले रंगों को आंकड़ों के चिकने रंगीन झूठे इशतहारी कागजों से खुशहाली तथा समृद्धि के तौर पर बयाँ करता है। राजनीति का यह षड्यंत्री चेहरा भयानक है। जिसके प्रति वे जनता को सजग करते हैं। उनके ये शेर प्रस्तुत हैं-

**“जब पूछ लिया उसने कि किस बात का डर है/ कहने लगे ऐसे ही सवालात का डर है
है खास खबर आज की हो जाओ खबरदार/ कागज पे सुधरते हुए हालात का डर है।”¹⁴²**

रामदरश मिश्र- बहुआयामी रचना व्यक्तित्व के धनी डॉ. रामदरश मिश्र ने समकालीन हिंदी कविता की विस्तृत भावभूमि, प्रौढ़ चिंतन तथा गहन अनुभूति से हिंदी ग़ज़ल को समृद्ध बनाकर ग़ज़लकार के रूप में भी प्रतिष्ठा प्राप्त की है। मिश्र जी की ग़ज़लें आधुनिक जीवन के विविध आयामी चित्रों से चित्रित हैं। चाहे स्वार्थी राजनीति और व्यवस्था के षड्यंत्रों में फँसी आम अवाम की पीड़ा हो, पूँजीवादी दौर में मनुष्य के रोबोट में तब्दील होते जाने के कारण संवेदनशीलता व अपनेपन के खत्म होने का दर्द हो, बाज़ारवादी संस्कृति में दम तोड़ते मानव मूल्यों की टीस हो, आत्मीय व इंसानी रिश्तों की टूटन का मातम हो, पाश्चात्य संस्कृति की चकाचौंध में अपनी सांस्कृतिक ज़मीन से दूर होती युवा पीढ़ी की भटकन हो, सभी सत्य उनकी ग़ज़लों में चित्रित हुए हैं। आम आदमी की पीड़ा एवं सियासी वादाखिलाफी पर उनके ये शेर द्रष्टव्य हैं-

**“इस हाल में जाने न कैसे रह रही ये बस्तियाँ
सुनता नहीं ऊपर कोई, कुछ कह रही ये बस्तियाँ
रोटी नहीं, पानी नहीं, अपने नहीं, सपने नहीं
वादे सियासत के कभी से सह रही ये बस्तियाँ।”¹⁴³**

मिश्र जी की ग़ज़लों में महानगरीय जीवन बोध अपनी तमाम विकृतियों व विद्रूपताओं के साथ व्यक्त हुआ है। महानगरों में व्यक्ति इंसानियत से दूर हो, किस तरह से पाश्विक प्रवृत्तियों का शिकार हो रहा है, उसको मिश्र जी ग़ज़लों में इस तरह लिखते हैं-

**“हम जहाँ से थे चले क्या फिर वहीं आना हुआ
अजनबी ये दृश्य कुछ लगता है पहचाना हुआ।**

याद सा आता है जंगल से कभी बिछड़े थे हम

फिर शहर के बीच उस से आज याराना हुआ।”¹⁴⁴

डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल- समकालीन हिंदी ग़ज़ल के ऐसे महत्वपूर्ण ग़ज़लकार हैं, जो ग़ज़ल पर आलोचनात्मक लेखन करने वाले चंद ग़ज़लकारों में शुमार हैं। वे ‘हिंदी की सर्वश्रेष्ठ ग़ज़लें’ संकलन का संपादन कर हिंदी ग़ज़ल को विकसित करने वाले विकास पुरुष हैं। अग्रवाल जी ग़ज़ल की ग़ज़लयित को सुरक्षित रखते हुए अपनी ग़ज़लों के माध्यम से आधुनिक युगबोध को स्वर देते हैं। उनकी ग़ज़लों में समकालीन जीवन के सभी पक्ष यथा- राजनीतिक विद्रूपताएँ, भ्रष्ट व्यवस्था, आतंकवाद व सांप्रदायिकतावाद तथा पर्यावरणीय चिंता आदि सब कुछ ध्वनित है, परंतु आधुनिकता व महानगरीकरण से उपजी विकृतियों, मानवीय संबंधों व मूल्यों की गिरावट विशेष रूप से दर्ज हुई है। भूमंडलीकरण के इस दौर में संचार साधनों की क्रांति से भौगोलिक दूरी तो पटी है, परंतु इसके साथ मानसिक व आत्मिक रूप से मानव-मानव से तथा अपनों से दूर होता जा रहा है। भौतिक तरक्की के बावजूद बढ़ती दूरियों को बयाँ करता उनका एक शेर है-

“साधनों की मुड्डियों में धरतियाँ सिमटी हुईं

और फिर भी फ़ासले ही फ़ासले चारों तरफ।”¹⁴⁵

इसी तरह पारिवारिक रिश्तों, पड़ोसी संस्कृति तथा पड़ोसी देशों के बीच बढ़ती कटुता को उजागर कर उसको मिटाने एवं मानवीय संबंधों की स्थापना की कामना से युक्त उनका यह बहुअर्थी शेर द्रष्टव्य है -

“यह क्या हुआ कि फ़ासले इतने बढ़ा लिये

इन दो घरों के बीच में दीवार ही तो है।”¹⁴⁶

राजेश रेड्डी- राजेश रेड्डी समकालीन हिंदी ग़ज़ल के एक लोकप्रिय व प्रतिष्ठित हस्ताक्षर हैं। उनकी ग़ज़लों में वस्तु और रूप सौंदर्य का अद्भुत समन्वय है। ग़ज़ल के परंपरागत साँचे में नए दौर की नई जीवनभूतियों को ढालने में उन्हें दक्षता हासिल है। सामयिक जीवन का बदसूरत चेहरा भी उनके द्वारा की गई शिल्प की प्लास्टिक सर्जरी से खूबसूरत शब्दाकार ग्रहण कर लेता है। जिंदगी के सभी रंग उनकी शायरी में हैं। उसमें प्रेम भी है, राजनीतिक विद्रूपता भी है, सामाजिक यथार्थ भी है, तो सांस्कृतिक अवमूल्यन भी है, सांप्रदायिकता व धार्मिक विकृतियाँ भी हैं, तो इन सब

के बावजूद जीवन दर्शन व मानवतावादी स्वर भी है। इस सम्बंध में यह ग़ज़ल दृष्टव्य है-

“इस अहद के इन्साँ मे वफ़ा ढूँढ रहे हैं / हम ज़हर की शीशी मे दवा ढूँढ रहे हैं।
पूजा में, नमाज़ों में, अज़ानों में, भजन में / ये लोग कहाँ अपना खुदा ढूँढ रहे हैं।
पहले तो ज़माने में कहीं खो दिया खुद को /आईने में अब अपना पता ढूँढ रहे हैं।
ईमाँ की तिजारत के लिए इन दिनों हम भी/बाज़ार में अच्छी-सी जगह ढूँढ रहे हैं।”¹⁴⁷

नूर मुहम्मद नूर- हिंदी-उर्दू की साझी संस्कृति से हिंदी ग़ज़ल को नूर देने वाले समकालीन हिंदी ग़ज़ल के कोहिनूर है नूर मुहम्मद नूर। नूर एक सचेतन ग़ज़लकार की तरह अपने समकालीन समय जीवन को देख परखकर उसकी बहुआयामी विषयवस्तु और संवेदना को ग्रहण करते हुए युग के सत्यों एवं अंतर्विरोधी विसंगतियों को अभिव्यक्ति देते हैं। वे मानवता के प्रति प्रतिबद्ध शायर हैं। यह प्रतिबद्धता ही उनमें राजनीतिक शक्तियों के प्रति क्षोभ व आक्रोश का स्वर पैदा करती है, जो अवाम की ज़िंदगी की चिंता करने की बजाय उसकी धार्मिक आस्थाओं के सहारे उसे सांप्रदायिकता की आग में झुलसने के लिए भटकाकर अपना स्वार्थ सिद्ध करती है। वे लफ़्ज़ों से इश्तिहारी सौंदर्य गढ़ने के दौर में मानवता से परिपूर्ण सुंदर समाज बनाने की आकांक्षा लिए ग़ज़ल कहते हैं।

“उधर इस्लाम ख़तरे में इधर है राम ख़तरे में
मगर में क्या करूँ है मेरी सुब्हो-शाम ख़तरे में।
ये क्या से क्या बना डाला है हमने मुल्क को अपने
कहीं होरी, कहीं हामिद, कहीं हरनाम ख़तरे में।”¹⁴⁸

“उनका सपना शब्द से पहचान सुन्दर चाहिए
मेरा सपना है कि हिन्दोस्तान सुन्दर चाहिए।
फिर कहीं दहशत न होगी फिर न होंगी आफ़तें
आदमी की भीड़ में इंसान सुन्दर चाहिए।”¹⁴⁹

कमलेश भट्ट ‘कमल’- समकालीन हिंदी ग़ज़ल सरोवर के खिलते कमल कमलेश भट्ट ‘कमल’ ने अपनी ग़ज़लों से हिंदी ग़ज़ल सरोवर की श्रीवृद्धि करने के अतिरिक्त

विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित अपने ग़ज़ल केंद्रित आलेखों के द्वारा हिंदी ग़ज़ल की दशा व दिशा को रेखांकित किया है। जीवन के विभिन्न दृश्यों को चित्रित करने वाली उनकी ग़ज़लें वर्तमान युग के यथार्थ से वाबस्ता है। चाहे वह अभावों में तड़पती किसानों-मजदूरों की जिंदगी हो, सामाजिक, आर्थिक व महानगरीय परिवेश की विद्रूपता हो, सियासत का विद्रूप चेहरा हो, न्यायपालिका की लेटलतीफी हो, बेरोज़गारी का दर्द हो, बाज़ार का आतंक हो, या पर्यावरणीय चिंता हो, समकाल की इन तमाम विद्रूपताओं के बावजूद आशावाद का स्वर उनकी ग़ज़लों का मूल है, जो पाठक वर्ग को न केवल ऊर्जस्वित करता है, अपितु मुश्किलों के बीच भी उदात्त जीवन की ओर अग्रसर करता है। उनकी ग़ज़ल साधना का उद्देश्य आदर्शवादी समाज की स्थापना है। उनका रचना व्यक्तित्व झूठ की सच्ची कहानियाँ गढ़ने के इस दौर में सच बोलने की सजा भोगते रचनाकार का आत्मसंघर्षी व्यक्तित्व है। जिसकी पुष्टि ये शेर करते हैं-

“अपनी तो कोशिश है सच जिंदा रहे बस

सच बयाँ करना सजा है, जानते हैं।”¹⁵⁰

“शराफत की उम्मीद इंसान ही से थी ज़माने को

मगर इंसान ही थे जो हमेशा जंगली निकले।”¹⁵¹

कमलेश जी के ग़ज़ल रचना कर्म पर नरेश शांडिल्य की टिप्पणी है कि- “कमलेश भट्ट कमल ने जिंदगी की जद्दोजहद को अपनी ग़ज़लों में इस खूबसूरती से पिरोया है कि भाषा, शिल्प और कथ्य मिलकर एक ऐसा समानुपात रचते हैं जिससे ग़ज़ल विधा और समृद्ध होती जान पड़ती है।”¹⁵²

समकालीन हिंदी ग़ज़ल के महत्वपूर्ण ग़ज़लकारों के रचनाकर्म के समीक्षोपरान्त कहा जा सकता है कि हिंदी ग़ज़ल का स्वतंत्र व्यक्तित्व दुष्यंत के बाद ही उभरता है, जो उत्तरोत्तर विकसित होता है। हिंदी ग़ज़ल की यह विकास यात्रा आज भी जारी है तथा दुष्यंत के परवर्ती पुरानी पीढ़ी के ग़ज़लकारों के साथ अनेक युवा ग़ज़लकार इसके वैभव की श्रीवृद्धि करने में संलग्न हैं। समकालीन हिंदी ग़ज़लकारों की यह सूची बहुत लंबी है। इस सूची में रुद्र काशिकेय, आर पी शर्मा 'महर्षि', हनुमंत नायडू, देवेंद्र शर्मा इंद्र, माधव मधुकर, पुरुषोत्तम प्रतीक, दरवेश भारती, बल्ली सिंह चीमा, अनिरुद्ध सिन्हा, भवानी शंकर, रोहिताश्व अस्थाना, मधुवेश, डॉ मधुर नज़मी, श्याम कश्यप बेचैन, दीक्षित दनकौरी, राजेंद्र तिवारी, शिव कुमार पराग, राजेन्द्र वर्मा, बी. आर.

विप्लवी, कृष्ण कुमार प्रजापति, ओम प्रकाश यती, नरेंद्र वशिष्ठ, नचिकेता, इन्दु श्रीवास्तव, अशोक अंजुम, आलोक श्रीवास्तव, धर्मन्द्र गुप्त साहिल, अवध नारायण मुद्गल, सुमेर सिंह शैलेश जैसे कई नाम शामिल हैं। इनके अलावा अनेक युवा ग़ज़लकार भी इस सूची में जोड़े जा सकते हैं, जिनमें रामचरण राग, प्रताप सोमवंशी, रामनारायण हलधर, लवलेश दत्त, सौरभ शेखर, श्रद्धा जैन, ए. एफ. नजर, पुष्पेंद्र पुष्प, संजू शब्दिता, नज़म सुभाष, के. पी. अनमोल, सुभाष पाठक 'जिया', ध्रुवगुप्त, रामनाथ यादव 'बेखबर', प्रणव मिश्र तेजस, संजय तन्हा, डा. भावना, जैसे कई नाम उल्लेखनीय हैं, जो हिंदी ग़ज़ल को नयी ऊँचाइयाँ देने के लिए समर्पण भाव के साथ इस पथ पर निरंतर अग्रसर हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. साएमा बानो, समकालीन हिंदी ग़ज़ल पहचान और परख, पृ. सं. 28
2. वीनस केसरी, ग़ज़ल की बाबत, पृ. सं. 23
3. रामप्रकाश पथिक, हिंदी ग़ज़ल का सौंदर्यशास्त्र, पृ. सं. 14
4. सं. धीरेन्द्र वर्मा, हिंदी साहित्य कोश, पृ. सं. 278
5. डॉ. अब्दुरशीद ए. शेख, ग़ज़ल सौंदर्य मीमांसा, पृ. सं. 5
6. साएमा बानो, समकालीन हिंदी ग़ज़ल पहचान और परख, पृ. सं. 28
7. डॉ. अब्दुरशीद ए. शेख, ग़ज़ल सौंदर्य मीमांसा, पृ. सं. 8
8. वशिष्ठ अनूप, हिंदी ग़ज़ल का स्वरूप और महत्वपूर्ण हस्ताक्षर, पृ. 12
9. ज्ञानप्रकाश विवेक, हिंदी ग़ज़ल की विकासयात्रा, पृ. सं. 10
10. वही पृ. सं. 11
11. वही पृ. सं. 11
12. डॉ. अब्दुरशीद ए. शेख, ग़ज़ल सौंदर्य मीमांसा, पृ. सं. 7
13. सरदार मुजावर, हिंदी ग़ज़ल ग़ज़लकारों की नजर में, पृ. सं. 26
14. डॉ. भावना कुँअर, साठोत्तरी हिंदी ग़ज़ल में विद्रोह के स्वर, पृ. सं. 17
15. सरदार मुजावर, हिंदी ग़ज़ल ग़ज़लकारों की नजर में, पृ. सं. 41
16. वही पृ. सं. 31
17. कुंवर भावना साठोत्तरी हिंदी ग़ज़ल में विद्रोह के स्वर पृ. सं. 17
18. सरदार मुजावर, हिंदी ग़ज़ल ग़ज़लकारों की नजर में, पृ. सं. 59
19. रोहिताश्व अस्थाना, हिंदी ग़ज़ल उद्भव और विकास, पृ. सं. 26
20. वही पृ. सं. 25
21. वीनस केसरी, ग़ज़ल की बाबत, पृ. सं. 23
22. चानन गोविंदपुरी, ग़ज़ल एक अध्ययन, पृ. सं. 44
23. वशिष्ठ अनूप, हिंदी ग़ज़ल का स्वरूप और महत्वपूर्ण हस्ताक्षर, पृ. 26
24. डॉ. जियाउर रहमान जाफ़री, ग़ज़ल लेखन परंपरा और हिंदी ग़ज़ल का विकास, पृ. 18
25. डॉ. अब्दुरशीद ए. शेख, ग़ज़ल सौंदर्य मीमांसा, पृ. सं. 11
26. डॉ. अब्दुरशीद ए. शेख, ग़ज़ल सौंदर्य मीमांसा, पृ. सं. 12
27. वही पृ. सं. 12

28. साएमा बानो, समकालीन हिंदी ग़ज़ल पहचान और परख, पृ. सं. 211
29. डॉ. अब्दुर्रशीद ए. शेख, ग़ज़ल सौंदर्य मीमांसा, पृ. सं. 16
30. विनय मिश्र, सच और है, पृ. सं. 53
31. डॉ. अब्दुर्रशीद ए. शेख, ग़ज़ल सौंदर्य मीमांसा, पृ. सं. 13
32. आर पी धायल, लपटों के दरमियां, पृ. सं. 19
33. साएमा बानो, समकालीन हिंदी ग़ज़ल पहचान और परख, पृ. सं. 210
34. जहीर कुरेशी, जिंदगी से बड़ा जिंदगी का समर, पृ. सं. 77
35. साएमा बानो, समकालीन हिंदी ग़ज़ल पहचान और परख, पृ. सं. 207
36. डॉ. मधु खराटे, जहीर कुरेशी की चुनिंदा ग़ज़लें, पृ. सं. 90
37. जहीर कुरेशी, जिंदगी से बड़ा जिंदगी का समर, पृ. सं. 119
38. डॉ. मधु खराटे, जहीर कुरेशी की चुनिंदा ग़ज़लें, पृ. सं. 79
39. जहीर कुरेशी, जिंदगी से बड़ा जिंदगी का समर, पृ. सं. 82
40. वही पृ. सं. 35
41. वही पृ. सं. 60
42. वही पृ. सं. 58
43. डॉ. जियाउर रहमान जाफ़री, ग़ज़ल लेखन परंपरा और हिंदी ग़ज़ल का विकास, पृ. 21
44. डॉ. कुँअर बेचैन, शामियाने कांच के, पृ. सं. 13
45. जहीर कुरेशी, जिंदगी से बड़ा जिंदगी का समर, पृ. सं. 105
46. हरेराम समीप, हरेराम समीप चयनित ग़ज़लें, पृ. सं. 17
47. वशिष्ठ अनूप, रोशनी खतरे में है, पृ. सं. 30
48. अदम गोंडवी, समय से मुठभेड़ पृ. सं. 95
49. डॉ. मधु खराटे, जहीर कुरेशी की चुनिंदा ग़ज़लें, पृ. सं. 53
50. सं. ओम निश्चल, धरती की सतह पर, पृ. सं. 48
51. वही पृ. सं. 46
52. विनय मिश्र, जिंदगी आने को है, पृ. सं. 57
53. जहीर कुरेशी, रास्तों से रास्ते निकले, पृ. सं. 85
54. दुष्यंत कुमार, साये में धूप पाँचवा संस्करण, पृ. सं. 15
55. डॉ. मधु खराटे, जहीर कुरेशी की चुनिंदा ग़ज़लें, भूमिका से पृ. सं. 5
56. जहीर कुरेशी, निकला न दिग्विजय को सिकंदर पृ. सं. 32,

57. डॉ. कुँअर बेचैन, ग़ज़ल का व्याकरण चौथा संस्करण, पृ. सं. 77
58. <http://www.rekhta.org>
59. <http://www.rekhta.org>
60. विनय मिश्र, लोग जिंदा है, पृ. सं. 81
61. कमलेश भट्ट कमल, हिंदी ग़ज़ल; सरोकार, चुनौतियां और संभावनाएं, पृ.सं.13
62. जहीर कुरेशी, जिंदगी से बड़ा जिंदगी का समर, पृ. सं. 12
63. वशिष्ठ अनूप, छंद तेरी हंसी का, पृ. सं. 45
64. सुशील कुमार, हिंदी ग़ज़ल का आत्म संघर्ष, पृ. सं. 137
65. विनय मिश्र, सच और है, पृ. सं. 97
66. सं. ओम निश्चल, धरती की सतह पर, पृ. सं. 38
67. वशिष्ठ अनूप, रोशनी खतरे में है, पृ. सं. 19
68. सं. रामकुमार कृषक, अलाव पत्रिका समकालीन हिंदी ग़ज़ल विशेषांक अंक मई-अगस्त 2015 पृ. सं. 453
69. अदम गौडवी, समय से मुठभेड़, पृ. सं. 64
70. महेश कटारे सुगम, ऐसी तैसी, पृ. सं. 36
71. साएमा बानो, हिंदी ग़ज़ल का सौंदर्यशास्त्र पृ. सं. 88
72. अदम गौडवी, समय से मुठभेड़, पृ. सं. 78
73. कमलेश भट्ट कमल, हिंदी नवनीत पत्रिका, सितंबर 87 पृ. सं. 75
74. सरदार मुजावर, हिंदी ग़ज़ल ग़ज़लकारों की नजर में, पृ. सं. 122
75. विनय मिश्र, लोग जिंदा है पृ. सं. 82
76. हरेराम समीप, समकालीन हिंदी ग़ज़लकार एक अध्ययन, पृ. 349
77. रोहिताश्व अस्थाना, हिंदी ग़ज़ल उद्भव और विकास, पृ. सं. 159
78. डॉ. जियाउर रहमान जाफ़री, ग़ज़ल लेखन परंपरा और हिंदी ग़ज़ल का विकास, पृ. 51
79. रोहिताश्व अस्थाना, हिंदी ग़ज़ल उद्भव और विकास, पृ. 158
80. डॉ. जियाउर रहमान जाफ़री, ग़ज़ल लेखन परंपरा और हिंदी ग़ज़ल का विकास, पृ. 51
81. वही पृ. सं. 50
82. रोहिताश्व अस्थाना, हिंदी ग़ज़ल उद्भव और विकास, पृ.159
83. डॉ. जियाउर रहमान जाफ़री, ग़ज़ल लेखन परंपरा और हिंदी ग़ज़ल का विकास,

पृ. सं. 51

84. रामप्रकाश पथिक, हिंदी ग़ज़ल का सौंदर्यशास्त्र, पृ. सं. 40
85. मधुप शर्मा, दर्द का सफर, पृ. सं. 10
86. साएमा बानो, समकालीन हिंदी ग़ज़ल पहचान और परख, पृ. 60
87. साएमा बानो, समकालीन हिंदी ग़ज़ल पहचान और परख, पृ. 62
88. डॉ. मधु खराटे, जहीर कुरेशी की चुनिंदा ग़ज़लें पृ. सं. 42
89. डॉ. जियाउर रहमान जाफ़री, ग़ज़ल लेखन परंपरा और हिंदी ग़ज़ल का विकास, पृ. सं. 54
90. रोहिताश्व अस्थाना, हिंदी ग़ज़ल उद्भव और विकास, पृ. 196
91. डॉ. जियाउर रहमान जाफ़री, ग़ज़ल लेखन परंपरा और हिंदी ग़ज़ल का विकास, पृ. सं. 56
92. रोहिताश्व अस्थाना, हिंदी ग़ज़ल उद्भव और विकास, पृ. 197
93. डॉ. जियाउर रहमान जाफ़री, ग़ज़ल लेखन परंपरा और हिंदी ग़ज़ल का विकास, पृ. सं. 58
94. रोहिताश्व अस्थाना, हिंदी ग़ज़ल उद्भव और विकास, पृ. सं. 199
95. डॉ. मधु खराटे, जहीर कुरेशी की चुनिंदा ग़ज़लें, पृ. 45
96. डॉ. जियाउर रहमान जाफ़री, ग़ज़ल लेखन परंपरा और हिंदी ग़ज़ल का विकास, पृ. सं. 59
97. डॉ. मधु खराटे, जहीर कुरेशी की चुनिंदा ग़ज़लें, पृ. सं. 46
98. डॉ. जियाउर रहमान जाफ़री, ग़ज़ल लेखन परंपरा और हिंदी ग़ज़ल का विकास, पृ. सं. 54
99. वही पृ. सं. 63
100. रोहिताश्व अस्थाना, हिंदी ग़ज़ल उद्भव और विकास, पृ. 209
101. वही पृ. सं. 210
102. रोहिताश्व अस्थाना, हिंदी ग़ज़ल उद्भव और विकास, पृ. 207
103. सरदार मुजावर, हिंदी की छायावादी ग़ज़ल, पृ. सं. 20
104. डॉ. जियाउर रहमान जाफ़री, ग़ज़ल लेखन परंपरा और हिंदी ग़ज़ल का विकास, पृ. सं. 67
105. सरदार मुजावर, हिंदी की छायावादी ग़ज़ल, पृ. सं. 21
106. निराला सूर्यकांत त्रिपाठी बेला भूमिका से

107. मुजावर डॉ सरदार हिंदी की छायावादी ग़ज़ल पृ. सं. 67
108. साएमा बानो, समकालीन हिंदी ग़ज़ल पहचान और परख, पृ.73
109. सरदार मुजावर, हिंदी की छायावादी ग़ज़ल, पृ. सं. 77
110. डॉ. जियाउर रहमान जाफ़री, ग़ज़ल लेखन परंपरा और हिंदी ग़ज़ल का विकास, पृ. सं. 65
111. रोहिताश्व अस्थाना, हिंदी ग़ज़ल उद्भव और विकास, पृ. 219
112. वही पृ. सं. 220
113. डॉ. मधु खराटे, जहीर कुरेशी की चुनिंदा ग़ज़लें, पृ. 53
114. साएमा बानो, समकालीन हिंदी ग़ज़ल पहचान और परख, पृ.82
115. डॉ. जियाउर रहमान जाफ़री, ग़ज़ल लेखन परंपरा और हिंदी ग़ज़ल का विकास, पृ. सं. 71
116. साएमा बानो, समकालीन हिंदी ग़ज़ल पहचान और परख, पृ.77
117. ज्ञानप्रकाश विवेक, हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा, पृ. सं. 64
118. ज्ञानप्रकाश विवेक, हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा, पृ. सं. 69
119. हरेराम समीप, हिंदी ग़ज़ल की पहचान पृ. सं. 25
120. त्रिलोचन शास्त्री, गुलाब और बुलबुल पृ. सं. 41
121. रोहिताश्व अस्थाना, हिंदी ग़ज़ल उद्भव और विकास, पृ. 227
122. साएमा बानो, समकालीन हिंदी ग़ज़ल पहचान और परख, पृ.80
123. वही पृ. सं. 80
124. रोहिताश्व अस्थाना, हिंदी ग़ज़ल उद्भव और विकास, पृ. 229
125. दुष्यंत कुमार, साये में धूप, पृ. सं.13
126. वही पृ. सं. 57
127. वही पृ. सं. 30
128. वही पृ. सं. 49
129. सुमेर सिंह शैलेष, हिंदी ग़ज़ल का विवेचनात्मक अनुशीलन पृ.157
130. सं. सरदार मुजावर, हिंदी ग़ज़ल का वर्तमान दशक पृ. 63
131. रोहिताश्व अस्थाना, हिंदी ग़ज़ल उद्भव और विकास, पृ. 231
132. साएमाबानो, समकालीन हिंदी ग़ज़ल की पहचान और परख, पृ.283
133. <http://www.kavitakosh.org>
134. रोहिताश्व अस्थाना, हिंदी ग़ज़ल उद्भव और विकास, पृ. 286

135. चंद्रसेन विराट, आस्था के अमलतास, पृ. सं. 60
136. रोहिताश्व अस्थाना, हिंदी ग़ज़ल उद्भव और विकास, पृ. 284
137. वही पृ. सं. 284
138. बालस्वरूप राही, चलो फिर कभी सही, भूमिका से
139. रोहिताश्व अस्थाना, हिंदी ग़ज़ल उद्भव और विकास, पृ. 294
140. वही पृ. सं.293
141. रोहिताश्व अस्थाना, हिंदी ग़ज़ल उद्भव और विकास, पृ. 288
142. साएमा बानो, समकालीन हिंदी ग़ज़ल पहचान और परख, पृ.269
143. ग़ज़लें रामदरश मिश्र <http://www.pustak.org.in>
144. <http://www.rekhta.org.in>
145. गिरिराजशरण अग्रवाल, सन्नाटे में गूँज, पृ. सं. 81
146. वही पृ. सं. 32
147. <http://kavitakosh>
148. हरेराम समीप, हिंदी ग़ज़ल की पहचान पृ. सं. 217
149. <http://kavitakosh>
150. हरेराम समीप, समकालीन हिंदी ग़ज़लकार एक अध्ययन पृ.431
151. वही पृ. सं.440
152. वही पृ. सं.432

द्वितीय अध्याय

21वीं सदी में यथार्थ चेतना के
प्रतिनिधि हिंदी ग़ज़लकार :
व्यक्तित्व एवं कृतित्व

द्वितीय अध्याय

21वीं सदी में यथार्थ चेतना के प्रतिनिधि हिंदी ग़ज़लकार :

व्यक्तित्व एवं कृतित्व

प्रस्तावना

अरबी-फ़ारसी से चली ग़ज़ल अब उर्दू कविता की ही नहीं, अपितु हिंदी काव्य की भी प्रतिष्ठित और लोकप्रिय विधा बन गई है। बीसवीं सदी के सातवें दशक के पश्चात हिंदी साहित्य में जितनी तीव्र गति से ग़ज़ल विधा का विकास हुआ, उतना किसी दूसरी विधा का नहीं हुआ, लोकप्रियता के मामले में तो इसका कोई सानी नहीं है। यद्यपि दुष्यन्त कुमार से पूर्व आधुनिक काल में हिंदी ग़ज़ल की इमारत की नींव प्रतिष्ठा तो होने लगी थी, पर हिंदी ग़ज़ल की इस इमारत को वास्तविक भव्यता व गरिमा प्रदान करने का कार्य दुष्यन्त कुमार ने किया। दुष्यन्त कुमार ग़ज़ल को भावुकता व रूमान की कल्पनाशील दुनिया से बाहर निकालकर उसे नई कविता की यथार्थवादिता एवं वैचारिकता से अनुप्राणित कर नवीन कलेवर, नवीन भावबोध और नवीन वैशिष्ट्य के साथ उसकी युग का आईना वाली यथार्थवादी छवि निर्मित करते हैं। दुष्यन्त कुमार के समकालीन एवं परवर्ती ग़ज़लकार उनकी ग़ज़ल परंपरा का अनुसरण करते हुए हिंदी ग़ज़ल के इसी यथार्थवादी स्वरूप को समृद्ध करते हैं। दुष्यन्त कुमार से प्रारंभ हुई समकालीन हिंदी ग़ज़ल की आज तक की विकास यात्रा में समय के साथ आये बदलावों को समझने एवं रेखांकित करने के लिए इस कालावधि को तीन खंडों में एवं इस काल के ग़ज़लकारों को तीन पीढ़ियों में विभाजित किया जा सकता है-

(i) प्रथम पीढ़ी-दुष्यन्त कुमार से 20वीं सदी के अंतिम दशक (1975-1990) तक

ग़ज़ल भागीरथ दुष्यन्त कुमार से प्रेरित हो उनके दौर में अथवा उनके कुछ बाद में ग़ज़ल रचना की ओर प्रवृत्त हुए दुष्यन्त की पीढ़ी के इस दौर के ग़ज़लकारों की ग़ज़लधारा में भी, आज़ादी के दो दशक बाद की बदहाल स्थितियों से उपजे मोहभंग और आपातकाल के दारुण दर्द के हिमालय से प्रस्फुटित दुष्यन्त की ग़ज़ल गंगा की तरह ही, रूमान के मृदु जल के स्थान पर सामाजिक-राजनीतिक विसंगतियों के प्रति तीक्ष्ण व्यंग्य के लवण से युक्त क्षोभ एवं आक्रोश का तिक्त जल प्रवाहित होता है, तथा यह धारा आम अवाम की दर्द से मुक्ति के बाबत विकृत एवं भ्रष्ट

व्यवस्था के किलों को ज़मींदोज़ करने के लिए विद्रोह व प्रतिरोध की प्रलयकारी बाढ़ बनकर प्रवाहित होती है। ग़ज़ल के मूल कथ्य के विपरीत आक्रोश-क्रांति के ओजस्वी कटु स्वरों से युक्त होते हुए भी इस दौर की ग़ज़लें ग़ज़लियत की कसौटी पर खरी उतरती हैं। इसके मूल में इस पीढ़ी के ग़ज़लकारों का उर्दू ग़ज़ल परंपरा एवं ग़ज़ल विधा का सूक्ष्म ज्ञान तथा ग़ज़ल के शिल्प व कहन के प्रति अत्यधिक सजगता का भाव है। यद्यपि पूरी तरह से त्रुटिरहितता फिर भी नहीं है, पर यदि कहीं त्रुटि है तो इसका कारण कहन की अनभिज्ञता नहीं, वरन तात्कालिक परिस्थितियों के दबाव में की गई प्रयोगशीलता है। दुष्यन्त के अलावा हिंदी ग़ज़ल को नयी ऊँचाई देने वाले इस पीढ़ी के ग़ज़लकारों में अदम गोंडवी, शेरजंग गर्ग, हंसराज रहबर, गोपालदास नीरज, रामदरश मिश्र, कुँअर बेचैन, जहीर कुरेशी, रामकुमार कृषक, बालस्वरूप राही, चंद्रसेन विराट, पुरुषोत्तम प्रतीक, बल्ली सिंह चीमा, ज्ञान प्रकाश विवेक, माधव कौशिक, माधव मधुकर आदि नाम प्रमुख हैं।

(II) द्वितीय पीढ़ी - बीसवीं शताब्दी का अंतिम दशक (1991 से 2000 ई.)

इस काल में जहाँ एक ओर दुष्यन्त की पीढ़ी के ग़ज़लकार अपनी ग़ज़लों को निरंतर प्रौढ़, परिमार्जित एवं परिष्कृत करते हुए साधनारत रहते हैं, वहीं दुष्यन्त के बाद एक नई पीढ़ी के रचनाकार वक्त के वेग से पैदा हुए नये विषयों व नवीन संवेदनाओं के साथ ग़ज़ल की दुनिया में पदार्पण करते हैं। इस कारण इस दौर की ग़ज़लें कथ्य और रूप के स्तर पर पूर्ववर्ती दौर से परिवर्तित व विस्तृत कथ्य वाली हैं। ये ग़ज़लें सामाजिक-राजनीतिक विसंगतियों के विरुद्ध आक्रोश के स्वर तक ही सीमित नहीं रहती हैं, अपितु इस दौर में घटित घटनाओं और जीवन जगत के अनेक विषयों को अपनी कथ्य परिधि के भीतर समाविष्ट करती हैं। 20वीं शताब्दी के अंतिम दशक में राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय पटल पर अनेक राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक घटनाएँ घटित होती हैं, जिसका प्रभाव इस दौर की ग़ज़लों में साफ़ दिखाई देता है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर खाड़ी युद्ध, सोवियत संघ का विघटन जैसे बड़ी घटनाएँ घटित होती हैं, वहीं राष्ट्रीय स्तर पर बाबरी मस्जिद ध्वंस व आर्थिक उदारीकरण की शुरुआत होती है। इन सबके परिणामस्वरूप इस दौर की ग़ज़लों में एक ओर जहाँ सांप्रदायिकता, युद्ध एवं आतंकवाद के खिलाफ़ विरोध व घृणा का स्वर मुखरित हुआ है, वहीं दूसरी ओर आर्थिक उदारीकरण, भूमंडलीकरण, वैश्विक गतिविधियों एवं वैज्ञानिक उपलब्धियों के कारण जीवन में होने वाले परिवर्तनों की छाप भी अंकित

होने लगती है। ग़ज़ल के शिल्प की दृष्टि से यह अराजकता का दौर है। इसका कारण यह है कि दुष्यन्त की लोकप्रियता से प्रभावित हो अनेक ग़ज़लकार रातोंरात दुष्यन्त बनने के चक्कर में ग़ज़ल के शिल्प और समय के सच की जाँच पड़ताल किये बिना ही सुनी सुनाई बातों को ग़ज़ल में ढालकर शाब्दिक क्रीड़ा करने लगे। जिससे ग़ज़लों का पहाड़ तो खड़ा हो गया, परन्तु तग़ज़ज़ुल के कीमती हीरों के अभाव में वह शाब्दिक पत्थरों का ढेर बनकर रह गया। इस अराजक दौर में भी पहली पीढ़ी के ग़ज़लकारों के साथ कुछ नए चेहरे सामने आते हैं, जो हिंदी ग़ज़ल के स्वरूप और संरचना को सुरक्षित रखते हुए उसकी विकासधारा को गति देते हैं। इनमें पहली पीढ़ी के गोपालदास नीरज, कुँआर बेचैन, जहीर कुरेशी, रामदरश मिश्र, चंद्रसेन विराट, ज्ञान प्रकाश विवेक, बाल स्वरूप राही के साथ नयी पीढ़ी के सूर्यभानु गुप्त, विज्ञान व्रत, शलभ श्रीराम सिंह, राजेश रेड्डी, अशोक अंजुम, गिरिराज शरण अग्रवाल, उर्मिलेश, अनिरुद्ध सिन्हा, किशन तिवारी, शिवओम अंबर, कमलेश भट्ट कमल, देवेंद्र शर्मा 'इंद्र', सुल्तान अहमद, मृदुला अरुण जैसे कई नाम शामिल हैं।

(III) तृतीय पीढ़ी-21वीं सदी के प्रारम्भ से अद्यावधि तक (2001 से आज तक)

इस कालखंड में जहाँ एक ओर दुष्यन्त की पीढ़ी के ग़ज़लकारों की लेखनी से प्रौढ़ और परिपक्व ग़ज़लें निसृत होती हैं, तो द्वितीय पीढ़ी के ग़ज़लकार अपनी ग़ज़लों को तराशने के लिए प्रयासरत रहते हैं, वहीं इन दोनों पीढ़ियों के ग़ज़लकारों के साथ कुछ नए ग़ज़लकार इक्कीसवीं सदी के नवीन मूल्यों और विषयों को लेकर ग़ज़ल की दुनिया में अवतरित होते हैं। इस दौर में ग़ज़ल की कथ्य परिधि पिछले कालखंड से और अधिक विस्तृत होती है और उसमें जीवन जगत के तमाम विषयों के साथ सम्पूर्ण ब्रह्मांड समाहित हो जाता है।

ज्ञान विज्ञान व तकनीक की इक्कीसवीं सदी में जीवन में द्रुत गति से परिवर्तन होता है। बीसवीं सदी के अंत में शुरू हुए आर्थिक उदारीकरण एवं भूमंडलीकरण के दुष्प्रभाव इस सदी के आरंभ में प्रकट होने लगते हैं। आर्थिक उदारीकरण के फलस्वरूप पूँजीवादी बहुराष्ट्रीय कंपनियों का आगमन होता है, जो अपनी आवारा पूँजी के सहारे बाज़ारवादी संस्कृति को स्थापित करती है। यह बाज़ारवादी संस्कृति उपभोक्तावादी जीवन शैली को बढ़ावा देती है। बाज़ारवादी व उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण धन का महत्व असामान्य रूप से बढ़ता है तथा धन मानव, मानवीय संबंधों एवं मानवीय मूल्यों से भी ऊपर हो जाता है। धन की अँधी दौड़ में मानव से सारे संबंध व मूल्य

पीछे छूटते जाते हैं। आज स्थिति यह हो गई है कि मनुष्य की जगह बाज़ार भोक्ता बन गया है, मनुष्य का पदार्थीकरण हो रहा है, रिश्ते बाज़ारी हो गए हैं, दोष गुण बनते जा रहे हैं तथा प्रेम, सत्य, सद्भाव, सहिष्णुता जैसे उदात्त मानवीय मूल्य अतीत की धरोहर व पुस्तकीय आदर्श बनकर रह गए हैं। फैशन और दिखावे की संस्कृति ने आत्मा के सौंदर्य को नष्ट कर दिया है। बाज़ार आज राजनीति, धर्म, समाज व संस्कृति सबको नियंत्रित करने वाला शक्तिशाली संस्थान बन गया है। जिसकी मुनाफावादी सोच व कार्य-प्रणाली के प्रभाव में जीवन के सभी क्षेत्रों में स्थापित आदर्शों व मूल्यों का पतन हो रहा है तथा जीवन का सौंदर्य उजड़ रहा है। चूँकि साहित्यकार समाज जीवन से प्रभावित होता है और उसे प्रभावित भी करता है। यही वज़ह है कि जीवन सौंदर्य के बिगड़ते स्वरूप को देखकर उसे बचाने की दृष्टि प्रधानता में इक्कीसवीं सदी के ग़ज़लकारों की नज़र ग़ज़ल के सौंदर्य पक्ष अर्थात् 'कला कला के लिए' के स्थान पर वस्तु पक्ष 'कला जीवन के लिए' पर ही अधिक केंद्रित रहती है, जिसके परिणामस्वरूप इस सदी की हिंदी ग़ज़ल में कल्पनाशीलता के स्थान पर अतिशय यथार्थवादिता की प्रवृत्ति उभरती है। 'साहित्य समाज की हू-ब-हू प्रतिकृति है' को चरितार्थ करती इक्कीसवीं सदी की हिंदी ग़ज़ल इस सदी में घटित होने वाले तमाम परिवर्तनों, उनके कारण पैदा हुई विकृतियों तथा समग्र सच्चाइयों को अभिव्यक्त कर ज़िंदगी व ज़माने की तर्जुमानी बन गयी है। समकालीन जीवन-जगत का कोई भी क्षेत्र हिंदी ग़ज़ल से अछूता नहीं है। इक्कीसवीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में साम्प्रतिक राजनीतिक विद्रूपता, सामाजिक विसंगतियों व विचलनों, आर्थिक विषमता, सांस्कृतिक संदूषण एवं धार्मिक विकृतियों के साथ जनवादी पक्षधरतास्वरूप किसान, मजदूर, स्त्री, आदिवासी, दलित, बाल, वृद्ध आदि वर्गों का विमर्श स्वर तथा परंपरागत सांस्कृतिक मूल्यों व परंपराओं के साथ पर्यावरण के सौंदर्य को बचाने एवं मानवतावाद की प्रतिष्ठा का स्वर है। नये दौर के नये सत्यों की नवीन प्रतीकों व बिम्बों के सहारे अभिव्यक्ति इस दौर की ग़ज़लों की विशेषता है। हालाँकि अति यथार्थवादिता के कारण इन ग़ज़लों में सांकेतिकता के स्थान पर सपाटबयानी अधिक दृष्टिगत होती है। बहरों के अनुशासन के प्रति इन ग़ज़लकारों का दृष्टिकोण शिथिल हुआ है। यद्यपि इस संबंध में अराजकता पर अंकुश के प्रयास भी किये जा रहे हैं।

इस काल में समकालीन हिंदी ग़ज़ल के प्रथम पीढ़ी के ग़ज़लकारों जैसे अदम गोंडवी, जहीर कुरेशी, कुँअर बेचैन, चंद्रसेन विराट, ज्ञान प्रकाश विवेक तथा द्वितीय पीढ़ी के विज्ञान ब्रत, सुल्तान अहमद, अशोक अंजुम, किशन तिवारी, शिव ओम अंबर,

कमलेश भट्ट कमल के साथ इक्कीसवीं सदी की तीसरी पीढ़ी के ग़ज़लकारों में लक्ष्मी शंकर बाजपेयी, महेश अग्रवाल, राम मेश्राम, वशिष्ठ अनूप, देवेंद्र आर्य, विनय मिश्र, डी.एम. मिश्र, हरेराम समीप, नचिकेता, आलोक श्रीवास्तव, इन्दु श्रीवास्तव, कमल किशोर शर्मा, अशोक रावत, श्याम कश्यप बेचैन, हस्तीमल हस्ती के साथ उभरते युवा ग़ज़लकारों में के.पी. अनमोल, संजू सब्दिता, हरीश दरवेश, सुदेश मेहर, अभिनव अरुण, नज़्म सुभाष व रामनाथ यादव बेखबर जैसे कई नाम शामिल हैं।

प्रस्तुत शोध में समकालीन हिंदी ग़ज़ल की इन तीनों पीढ़ियों के उन ग़ज़लकारों को शामिल किया गया है जिनकी ग़ज़लें 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में यथार्थवादी चेतना का प्रतिनिधित्व करती हैं। इन ग़ज़लकारों में दुष्यन्त के दौर के प्रथम पीढ़ी के अदम गोंडवी, जहीर कुरेशी, रामकुमार कृषक, माधव कौशिक, ज्ञान प्रकाश विवेक एवं द्वितीय पीढ़ी के किशन तिवारी, शिव ओम अंबर तथा तृतीय पीढ़ी के वशिष्ठ अनूप, देवेंद्र आर्य, राम मेश्राम, महेश अग्रवाल, विनय मिश्र, डी. एम. मिश्र, हरेराम समीप, महेश कटारे सुगम शामिल हैं। इन सभी ग़ज़लकारों की ग़ज़लें इक्कीसवीं सदी के अफ़सानों की मुकम्मल दास्तान एवं युग का यथार्थ आईना हैं; अपने समय व समाज का यथार्थवादी लेखा-जोखा एवं अनुकृति हैं। जिसकी पुष्टि इन ग़ज़लकारों के द्वारा आज की ग़ज़ल की प्रकृति के संबंध में कहे गये इन शेरों से होती है। एक तरह से इन अशआर को हिंदी ग़ज़ल के यथार्थवादी स्वरूप का घोषणा पत्र कहा जा सकता है-

“जामो-मीना की खनक से थी ये वाबस्ता ज़रूर

देखिए अब ज़िंदगी की तर्जुमानी है ग़ज़ल।”¹ (अदम गोंडवी)

“कौन कहता कि आकाश फल है ग़ज़ल

वक़्त के रू-ब-रू आजकल है ग़ज़ल।”² (वशिष्ठ अनूप)

“ग़ज़ल हूँ मैं मुहब्बत का खुला घर बार रखती हूँ

हकीक़त के सफर का दौरे कारोबार रखती हूँ।”³ (महेश कटारे सुगम)

2.1 जहीर कुरेशी

हिंदी ग़ज़ल-गगन को चार दशकीय दीर्घावधि तक अपनी ग़ज़ल रचनाई प्रातिभ प्रभा से रोशन करने वाले समकालीन हिंदी ग़ज़ल के जहीर सितारे का नाम है जहीर

कुरेशी। हिंदी ग़ज़ल के मिज़ाज और मुहावरे को निश्चित रूपाकार देने वाले दुष्यंतोत्तर ग़ज़लकारों में जहीर कुरेशी का अग्रगण्य स्थान है। उन्होंने उर्दू ग़ज़ल के पैमानों को हिंदी भाषाई संस्कारों व हिंदी काव्य संवेदना के जामों से पूरित कर उसे हिंदी की प्रकृति की ओर अग्रसर करते हुए साहित्य पटल पर एक नई पहचान दी। 'एक टुकड़ा धूप' संग्रह की भूमिका में वे लिखते हैं, "दुष्यन्त की ग़ज़ल को हिंदी अथवा हिंदी प्रकृति की ओर ले जाने का दायित्व मैंने अपने कंधों पर भी महसूस किया और तब नई शैली की ग़ज़लों को मैंने हिंदी में सोचा, उसके बिंबों, प्रतीकों, उसकी कहन सहित।"⁴ कुरेशी जी की सबसे बड़ी उपलब्धि व देन है कि उन्होंने ग़ज़ल की ग़ज़लियत को सुरक्षित रखते हुए समकालीन हिंदी कविता की विस्तृत विषय वस्तु को ग़ज़ल के साँचे में ढालकर उसके सृजन का विशाल फ़लक निर्मित किया है। तथा अपने समय व समाज को समग्र रूप में ग़ज़लों में चित्रित किया।

जहीर कुरेशी 5 अगस्त, 1950 को मध्यप्रदेश के चंदेरी कस्बे में शेख नज़ीर मोहम्मद कुरेशी और मासूमा बेगम दंपति की तीसरी संतान के रूप में पैदा हुए थे। हिंदी ग़ज़ल का यह सितारा 2021 में सदा के लिए अस्त हो गया, परंतु उसकी ग़ज़लों की रोशनी हिंदी ग़ज़ल लोक को अनंत काल तक रोशन करते रहेगी। कुरेशी जी को ग़ज़ल लेखन की प्रेरणा अपने पारिवारिक साहित्यिक वातावरण से मिली। हिंदी ग़ज़ल की दीर्घकालिक यात्रा में अब तक कुरेशी जी के ग्यारह ग़ज़ल संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। उनका पहला ग़ज़ल संग्रह 'लेखनी के स्वप्न' 1975 में, द्वितीय ग़ज़ल संग्रह 'एक टुकड़ा धूप' 1979 में, तृतीय ग़ज़ल संग्रह 'चांदनी का दुख' 1986 में तथा चतुर्थ ग़ज़ल संग्रह 'समंदर ब्याने आया नहीं है' 1992 ई. में प्रकाशित हुआ। इक्कीसवीं सदी में कुरेशी जी के सात ग़ज़ल संग्रह प्रकाशित हुए हैं, जिनमें 2003 में 'भीड़ में सबसे अलग', 2010 में 'पेड़ तनकर भी नहीं टूटा', 2014 में 'बोलता है बीज भी', 2016 में 'निकला न दिग्विजय को सिकंदर' 2017 ई. में 'रास्तों से रास्ते निकले' तथा 2019 में 'ज़िंदगी से बड़ा ज़िंदगी का समर' शामिल हैं। 2019 में ही कुरेशी जी का 'दोहों से दोहा ग़ज़लों तक' शीर्षक से एक दोहा व दोहा ग़ज़ल संग्रह प्रकाशित हुआ। कुरेशी जी के हिंदी ग़ज़ल के इस वृहत व महनीय अवदान का ही फल है कि उनकी कई ग़ज़लें विभिन्न विश्वविद्यालयों के स्नातक-स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में शामिल हैं।

जहीर कुरेशी अपने समय के समाज में पल-पल घटने वाली हर घटना और बदलाव को अनुभूति की तीव्रता के साथ ग़ज़ल के साँचे में ढालने का अधिकाराना हुनर रखते हैं और इसी कारण हिंदी ग़ज़लकारों की भीड़ में अपनी अलग पहचान रखते हैं। 21वीं सदी में प्रकाशित उनके प्रथम ग़ज़ल संग्रह 'भीड़ में सबसे अलग' पर इसी आशय की टिप्पणी करते हुए हिंदी के वरिष्ठ ग़ज़ल आलोचक नचिकेता लिखते हैं, "जहीर कुरेशी के एक ग़ज़ल संग्रह का नाम भीड़ में सबसे अलग है। यह असल में ग़ज़लकार जहीर कुरेशी हिंदी ग़ज़ल रचना की भीड़ में सबसे अलग होने का घोषणा पत्र है और वह हिंदी ग़ज़ल रचना की भीड़ में सबसे अलग पहचान और हैसियत रखते भी है कोई माने या ना माने।"⁵ उनका यह शेर इसकी पुष्टि करता है-

"भीड़ में सबसे अलग, सबसे जुदा चलता रहा

अंत में हर चलने वाला, 'एकला' चलता रहा।"⁶

कुरेशी जी की इस अलग पहचान का कारण है कि वे प्रेम की पीर के बजाय पेट की पीड़ा को भोगते, जड़ व्यवस्था से संघर्ष करते आम आदमी के दुख-दर्द को स्वर देते हैं। उनकी ग़ज़लों में हाशिए के समाज व आमजन से गहरी संपृक्ति व उससे संवाद स्थापित करने की बेचैनी है, जो उनकी ग़ज़लों को विशेष सौंदर्यबोध प्रदान करती है। जड़ व्यवस्था से जूझता आम आदमी जिसमें वे स्वयं भी शामिल है, उनकी ग़ज़लों का केन्द्र बिन्दु है। जिसके बारे में वे कहते हैं-

"किस्से नहीं हैं ये किसी विरहन की पीर के/ ये शेर हैं अँधेरी से लड़ते जहीर के।

में आम आदमी हूँ तुम्हारा ही आदमी/ तुम काश देख पाते मेरे दिल को चीर के।"⁷

जहीर कुरेशी की ग़ज़लें युगीन बोध से परिपूर्ण होकर अपने समय की नब्ज़ को टटोलती है और सामयिक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, वैयक्तिक व वैज्ञानिक सच्चाइयों का आईना बनकर उन्हें यथार्थ रूप में पाठक के सामने लाती है। इस संबंध में कुरेशी जी की ग़ज़लों पर आलोचक डॉ. शिवकुमार मिश्र की यह टिप्पणी उल्लेखनीय है- "हम जानते हैं कि बात को सहज सीधे ढंग से उसके पूरे प्रभाव और व्यंजकता के साथ कहना कठिन होता है। जहीर कुरेशी की ग़ज़लें ऐसा करती है। वे हमारे समय और सामाजिक जीवन का आईना है और आइने से आगे की हकीकत भी जिसमें वह सभी उनकी निगाहों की जद में आ जाते हैं, जो आइने की पकड़ से परे हैं।"⁸

विज्ञान व तकनीक की वर्तमान सदी में तकनीक, बाज़ारवाद व उपभोक्तावादी संस्कृति के समाज में प्रसार व प्रभाव, मशीनी युग में यांत्रिकता के बढ़ाव के साथ मानवीय संवेदना के घटाव, महानगरों की भागमभाग भरी कृत्रिम ज़िंदगी में ठंडी होती रिश्तों की आँच, समाज में बढ़ती अपराध व अराजकता की प्रवृत्ति, बेकारी, भुखमरी व गरीबी की समस्या से जूझती अवाम आदि समकाल के सभी चित्र इनकी गज़लों में स्पष्टतः दिखाई देते हैं। जिनमें कुछ शब्द चित्र द्रष्टव्य हैं-

तकनीक व अपराध-

“तरह-तरह के दिखे रोज नेट पर हमले

नई सदी में हुए आम साइबर हमले।”⁹

सोशल मीडिया व आत्मकेन्द्रितता-

“ट्विटर’ या ‘फेसबुक’ से न फुर्सत मिली कभी

मित्रों से जा के मिलने-मिलाने के दिन गए।”¹⁰

महानगरीय अलगाव व अजनबीपन -

“शहरों में पहचान खोने आ गए

भीड़ के पर्याय होने आ गए।”¹¹

रिश्तों की रुदाद -

“घर में रहकर भी नहीं संवाद हम दोनों के बीच

मौन पसरा है कई हफ्तों से संबंधों के बीच।”¹²

बाज़ारवाद-

“बाज़ारवाद आया तो बिकने की होड़ में

अनमोल वस्तुओं के भी तेवर बदल गए।”¹³

पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव-

“अति पारदर्शी वस्त्रों की फैशन परेड में

हार्थों से तन छुपाना जरूरी नहीं लगा।”¹⁴

कुरेशी जी की गज़लों की विशेषता है- सरलता, सहजता, साफ़ गोई तथा अपने समय की गहरी पकड़ और उसकी तीव्रानुभूति। उनकी गज़लें कथ्य और शिल्प की दृष्टि से गज़ल के मापदंडों पर खरी उतरती है। नपे तुले शब्दों में गहरी बात कहना,

प्रतीकों और मिथकों का प्रयोग उनकी ग़ज़लों में विशेष मेयार पैदा करता है। वे समसामयिक जीवन को शेरों में इस खूबी के साथ उकेरते हैं कि पाठक उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता और इसलिए उनके शेर पाठकों में काफी लोकप्रिय हुए हैं। यह शेर उनकी खुद की शायरी पर लागू होता है-

“तुम्हारा गीत तुम्हारा नहीं रहा अब तो
तुम्हारा गीत करोड़ों स्वरो ने गाया था।”¹⁵

2.2 अदम गोंडवी

दुष्यन्त कुमार के बाद हिंदी ग़ज़ल को फ़लक से ज़मीन पर उतारकर उसे आकाशी ऊँचाई देने वाले ग़ज़लकारों में सर्वहारा के शायर के रूप में विख्यात अदम गोंडवी का स्थान सर्वोपरि है। दुष्यन्त ने अपनी ग़ज़लों से जिस राजनीतिक चेतना का आगाज किया था, अदम ने उसे मंजिल तक पहुँचाने की सफल कोशिश की। इस राजनीतिक चेतना का उद्देश्य राजनीतिक पतनशीलता के हालिया दौर में राजनीतिक नेतृत्व को स्वतंत्रता आंदोलन के नायकों के राजनैतिक व राष्ट्रीय मूल्यों का स्मरण करवाकर उनको बचाने की कवायद थी। ताकि राष्ट्र और राष्ट्र की स्वतंत्रता अक्षुण्ण रहे तथा आज़ादी का मक़सद पूरा हो सके। इस निमित्त अदम अपनी ग़ज़लों में जीवन-जगत के सौंदर्यप्रधान काल्पनिक वर्णन के स्थान पर वर्तमान की विद्रूप व्यवस्था में जीवन-जगत के नष्ट होते हुए सौंदर्य का यथार्थ अंकन कर उसे बचाने का स्वर बुलंद करते हैं। उनकी ग़ज़लें हिंदी ग़ज़ल की उस व्यवस्था विरोधी धारा का प्रतिनिधित्व करती हैं, जिसमें सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था में वंचित-उपेक्षित हाशिए के वर्गों व शोषित-पीड़ित आम आदमी के प्रति सहानुभूति तथा शोषक व्यवस्था के प्रति प्रतिरोध का स्वर है। ये ग़ज़लें विद्रूप यथास्थितिवाद के विरुद्ध मुक्तिकामी चेतना के स्वर से अनुप्राणित हैं। इसलिए उनकी ग़ज़लों में रोमांस व कल्पना के स्थान पर यथार्थ पर बल है। वे अपने ज़माने के शायरों को भी इस बाबत नसीहत देते हुए कहते हैं -

“अदीबो ठोस धरती की सतह पर लौट भी आओ
मुलम्मे के सिवा क्या है फ़लक के चांद तारों में।”¹⁶

“भूख के एहसास को शेरों सुखन तक ले चलो

या अदब को मुफ़लिसों की अंजुमन तक ले चलो।

जो ग़ज़ल माशूक के जलवों से वाक़िफ़ हो गई

उसको अब बेवा के माथे की शिकन तक ले चलो।”¹⁷

प्रतिनिधि जनवादी ग़ज़लकार अदम गोंडवी का जन्म गोंडा जिले के अट्टा परसपुर ग्राम में 22 अक्टूबर 1947 को श्री देवकली सिंह एवं श्रीमती मांडवी सिंह दंपति के यहाँ ठाकुर परिवार में हुआ था। उनका वास्तविक नाम रामनाथ सिंह था। उनका बुनियादी काम खेती किसानी था। लेकिन इसके साथ उन्होंने साहित्य की ज़मीन पर ग़ज़लों की एक इंकलाबी फसल तैयार की थी, जिसके चाहने वाले पूरे देश में थे।

अदम गोंडवी जी का प्रथम ग़ज़ल संग्रह ‘धरती की सतह पर’ 1988 में प्रकाशित हुआ। जिसका संपादित संस्करण ओम निश्चल के संपादकत्व में 2020 में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह की ग़ज़लें परंपरागत ग़ज़ल की वायवीय यात्रा के स्थान पर यथार्थ की ठोस ज़मीन पर विचरण करती हैं। ग़ज़ल की नाज़ुक और भावुक विरासत को हकीकत की कठोर और निष्ठुर धरती पर उतारने का काम दुष्यन्त से ही शुरू हो गया था। परंतु सामयिक सच्चाइयों का सूक्ष्म, विस्तृत एवं प्रामाणिक गहन विवेचन पहली बार अदम की शायरी में हुआ। 2010 में प्रकाशित उनके द्वितीय ग़ज़ल संग्रह ‘समय से मुठभेड़’ की ग़ज़लें अपने समय की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक विसंगतियों-विडंबनाओं से मुठभेड़ करती हैं। ये ग़ज़लें विद्रूप व्यवस्था पर विरोध के चाबुक मारकर वर्तमान की जड़ स्थिति के विरुद्ध प्रतिरोध व मुक्ति का स्वर बुलंद करती हैं।

हिंदी ग़ज़ल परंपरा में दुष्यन्त कुमार की ग़ज़लें एक मोड़ मानी जाती हैं, तो अदम जी की ग़ज़लें उसके आगे एक और मोड़ अख्तियार करती हैं। अदम ने दुष्यन्त की राजनीतिक चेतना को तो सघन किया ही, पर इसके अतिरिक्त उनकी ग़ज़लें ठेठ देहाती स्थानीयता से लेकर भूमंडलीकरण तक से एक साथ संवाद स्थापित करती हैं। एक साक्षात्कार में उन्होंने स्वयं दुष्यन्त कुमार द्वारा धुँधला छोड़ दिये गये चिंतन को साफ़ करने की बात कही है। सामयिक समस्याओं व घटनाओं के अतिरिक्त सर्वहारा की पीड़ा उनकी ग़ज़लों के लिए ईंधन का काम करती हैं। ये ग़ज़लें आम जीवन के आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक प्रश्नों का समाधान खोजने का सशक्त प्रयास हैं। उनकी शायरी शोषित-पीड़ित आम जनता के दुख दर्द का मुखर

बयान करने के साथ समकालीन जीवन की सभी स्थितियों व सच्चाइयों जैसे आर्थिक विषमता व शोषण, आजादी का यथार्थ व मोहभंग, राजनेताओं का सामंती व पूँजीवादी चरित्र, चुनावी तंत्र की विकृतियाँ, राजनीति व पूँजी का गठजोड़, सरकारी तंत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार का खेल, सांस्कृतिक अवमूल्यन, नई पीढ़ी का विचलन, दलित-स्त्री चेतना, धार्मिक पाखंड, कट्टरता व सांप्रदायिकता, कृषि भूमि की छाती पर फलने-फूलने वाला महानगरीकरण व औद्योगीकरण, गाँवों की स्थिति आदि को आईने की तरह पारदर्शी रूप में प्रतिबिंबित करती हैं। उनकी गज़लों के विषय में नचिकेता जी का यह वक्तव्य महत्वपूर्ण है- “अदम की गज़लें राजनीतिक स्थिति या समाधान की गज़लों की शर्तों पर हमारे अनुभव का हिस्सा बनने में समर्थ है और यही उनकी गज़लों की सबसे बड़ी शक्ति है। उनकी गज़लों में समसामयिक जीवन की धड़कनें हैं। सामाजिक विषमताओं, राजनीतिक विसंगतियों और सांस्कृतिक विडंबनाओं को अदम की गज़लें केवल उजागर ही नहीं करती, बल्कि उनके अंतर्विरोधों को खोलती और उनसे मुक्ति की सार्थक प्रेरणा भी देती है।”¹⁸ उनकी गज़लों से समकाल के विभिन्न चित्र प्रस्तुत हैं-

आर्थिक विषमता- “आप कहते हैं सराफा गुलमुहर है ज़िंदगी

हम गरीबों की नज़र में एक कहर है ज़िंदगी।”¹⁹

भौतिक उन्नति के साथ मानवता का हास-

“चाँद है ज़ेरे कदम सूरज खिलौना हो गया

हाँ मगर इस दौर में किरदार बौना हो गया।”²⁰

राजनेताओं की सामंती विलासिता-

“काजू भुने प्लेट में व्हिस्की गिलास में

उतरा है रामराज विधायक निवास में।”²¹

कागजी विकास -

“तुम्हारी फाइलों में गाँव का मौसम गुलाबी है

मगर ये आँकड़े झूठे हैं, ये दावा किताबी है।”²²

राजनीति और साम्प्रदायिकता-

“हिंदू या मुस्लिम के अहसासात को मत छेड़िए

अपनी कुर्सी के लिए जज़्बात को मत छेड़िए।”²³

महँगाई और उत्तर आधुनिकता -

हीरामन बेज़ार है उफ! किस कदर महँगाई हैं

आपकी दिल्ली में उत्तर-आधुनिकता आई है।”²⁴

निष्कर्ष यह है कि अदम अपने चारों ओर के जीवन से संगृहीत अनुभवों को ग़ज़ल के साँचे में ढालने की कुव्वत रखते हैं और इसी कारण उनकी ग़ज़लों का कथ्य संसार विस्तृत है। उनकी भाषा बड़ी ही सधी हुई तथा आम बोलचाल की भाषा है। यद्यपि उर्दू की ओर अधिक झुकाव है, परंतु उसमें कृत्रिमता व बनावटीपन नहीं है। हाँलाकि सीधे-सीधे बात कहने के कारण उनकी ग़ज़लें कहीं-कहीं इकहरेपन व सपाटबयानी की शिकार हो जाती है। एक साक्षात्कार में वे अपनी ग़ज़लों में साफ़गोई होने की बात को साफ़गोई से स्वीकार करते हैं। संक्षेप में अदम जी की ग़ज़लें कटु यथार्थ बोध व श्रम के सौंदर्य बोध का मिश्रित रूप है। उनकी ग़ज़लें मार्क्स के सिद्धांतों को किताबों की बजाय व्यावहारिक जीवन में पढ़ने की आकांक्षी है तथा साम्प्रतिक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक जीवन का जीवंत प्रतिबिंब है। क्योंकि उनका आदर्श है-

“अदब गर ज़िंदगी के दायरे से दूर होता है

तो वो तहज़ीब के सीने में इक नासूर होता है।”²⁵

2.3 ज्ञान प्रकाश विवेक

समकालीन हिंदी ग़ज़ल जगत में ग़ज़ल के शिल्प, छंदानुशासन एवं अदाज़े बयों के सूक्ष्म ‘ज्ञान’ के सहारे युगीन जटिलताओं व यथार्थ को ग़ज़ल में ‘विवेक’ के साथ कलात्मक रूप में अभिव्यक्त कर हिंदी ग़ज़ल की इमारत को कहन के विशिष्ट मुहावरे से ‘प्रकाश’ मान करने वाले ग़ज़लकार का नाम है ज्ञान प्रकाश विवेक। उन्होंने दीर्घकालिक रचना ताप और तप से अर्जित ग़ज़ल कहन के एक अलहदा अदाज़ से हिंदी ग़ज़ल की नयी ज़मीन तोड़कर उसे सरसब्ज़ बनाया है। वे युगीन छवियों को नवीन प्रतीकों, बिम्बों व भाषा के सहारे इस अदाज़ में व्यक्त करते हैं कि परंपरा व आधुनिकता; यथार्थ व कल्पना के बीच एक सेतु निर्मित होता है। उनकी ग़ज़लें मनुष्य व मनुष्यता का राग है। इसलिए उनकी ग़ज़लों में वंचित समुदायों की संतुष्ट व पीड़ादायी जीवन स्थितियों के चित्रण के साथ उनके प्रति सहानुभूति की अभिव्यक्ति हुई है-

“जरा तू देख तो मेरे फटे हुए जूते

तू मुझसे पूछ मत मेरा कटा सफर कैसा”²⁶

प्रतिष्ठित ग़ज़लकार ज्ञानप्रकाश विवेक का जन्म 30 जनवरी, 1949 को बहादुरगढ़ हरियाणा में हुआ था। अपने पिता प्रीतमलाल ‘अरमान’ से विरासत में मिली साहित्यिक अभिरुचि व प्रेरणा से वे साहित्य लेखन की ओर प्रवृत्त हुए। अब तक उनके आठ ग़ज़ल संग्रह व चार ग़ज़ल केंद्रित आलोचनात्मक पुस्तकें- ‘हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा’, ‘हिंदी ग़ज़ल : दुष्यन्त के बाद’, ‘हिंदी ग़ज़ल की नई चेतना’, ‘हिंदी ग़ज़ल : शक्ति और संचेतना’ सहित तीन दर्जन से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। विवेक जी की ग़ज़ल यात्रा का प्रारंभ 1980 में प्रकाशित ग़ज़ल संग्रह ‘प्यास की खुशबू’ से हुआ। दूसरा ग़ज़ल संग्रह ‘धूप के हस्ताक्षर’ शीर्षक से 1984 में आया। इस संग्रह की ग़ज़लों में महानगरीय ज़िंदगी की जटिलताओं, अकेलापन व अजनबीपन एवं अवाम के दुख दर्द के चित्रण के साथ समाज को अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाने की कोशिश है। तीसरा ग़ज़ल संग्रह 1990 में ‘आँखों में आसमान’ शीर्षक से प्रकाशित हुआ। आम आदमी की वेदना के साथ व्यवस्था के प्रति आक्रोश, महानगरीय त्रासदी, मशीनीकरण, आर्थिक विषमता जैसे प्रश्न इस संग्रह की मूल संवेदना हैं। महानगरीय त्रासदी पर शेर द्रष्टव्य है-

“हमारे शहरे तिजारत का हाल मत पूछो

मरे हैं लोग तो महँगे हुए कफन यारों”²⁷

विवेक जी का चौथा ग़ज़ल संग्रह ‘इस मुश्किल वक्त में’ 1996 में तथा पाँचवाँ संग्रह ‘गुफ्तगू आवाम से है’ 2008 में प्रकाशित हुआ। अपने शीर्षक को चरितार्थ करती इस संग्रह की ग़ज़लें युगीन बोध को प्रखर रूप में अभिव्यक्त कर संवाद शैली में अवाम से मुखातिब होती हैं। आम आदमी की ज़िंदगी से चुनी हुई ये ग़ज़लें आम आदमी की ज़िंदगी की बेहतरी के लिए कही गयी हैं। उनका छठा ग़ज़ल संग्रह उनकी चुनिंदा ग़ज़लों के संकलित गुलदस्ते के रूप में ‘घाट हजारों इस दरिया के’ नाम से 2017 में आया। इस संग्रह की ग़ज़लों में नए समाज के मूल्यों और ज़िंदगी की अनुगूँज सुनाई देती हैं। विशेष रूप से महानगरीय जीवन में व्याप्त रिश्तों की रूक्षता, यांत्रिकता, घुटन, ऊब, संवेदनहीनता, स्वार्थपरता, सद्भाव का हास, दिखावटी व दोहरी जीवन शैली आदि सामयिक सत्यों की अभिव्यक्ति इन ग़ज़लों में हुई है। संग्रह की एक ग़ज़ल प्रस्तुत है-

“मन्दिर का टूटा दरवाजा भगवान की बातें करता है
 इन पाषाणों की बस्ती में इन्सान की बातें करता है।
 ऐ दोस्त, हमारे बीच कोई दूरी तो नहीं इतनी लेकिन
 मैं प्यार की बातें करता हूँ, तू ज्ञान की बातें करता है।
 बस्ती में नहीं सद्भाव कोई, हमदर्दी है न प्यार कोई
 अब हर कोई अपने-अपने अरमान की बातें करता है।
 इस शहरे-दिल्ली में आकर, इस दुख को मैंने जाना है
 मिलता है जो भी शख्स मुझे, पहचान की बातें करता है।”²⁸

विवेक जी का 2022 में प्रकाशित सातवाँ ग़ज़ल संग्रह ‘दरवाजे पर दस्तक’ अपने ज़माने एवं ज़िंदगी के हालात व फ़लसफे का अफ़साना है। 21वीं सदी में आदमी की जीवन शैली व मूल्यों में आए बदलावों को व्यक्त करती संग्रह की ग़ज़ल प्रस्तुत है-

“एक रोबोट की तरह चलता हुआ सा आदमी
 आदमी अब हो गया है साँस लेता आदमी।
 चंद बूढ़ी ऐनकें संदूक में कुछ चिड़ियाँ
 जंग खाए लैंप जैसा इक पुराना आदमी।
 सबसे सच्चा आदमी जो था यहाँ पे दोस्तों
 अब वही लगता है मुझको सबसे टूटा आदमी।”²⁹

विवेक जी का आठवाँ ग़ज़ल संग्रह ‘कागज़ी छतरियाँ बनाता हूँ’ 2022 में आया। यह संग्रह अपने समय के विचलनों की दास्तान है। संग्रह की इस ग़ज़ल में सामयिक राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक विसंगतियों के साथ वंचित समुदायों तथा धर्म, दर्शन की अभिव्यक्ति नवीन प्रतीकों व बिम्बों के सहारे हुई है।

“भूखे बच्चे ने तख़्ती पर / लिक्खी है इबारत रोटी पर।
 वो शापिंग मॉल से डरता है / सामान है जिसका रेहड़ी पर।
 माली तो बरी हो जाएगा / आरोप लगेगा तितली पर
 वो जल में जाल बिछाता है / भाषण देता है मछली पर।”³⁰

ज्ञान प्रकाश विवेक गज़ल के परंपरागत शिल्प और मूल स्वभाव को बरकरार रखते हुए प्रतीक, बिंब और भाषा के स्तर पर प्रयोगधर्मी गज़लकार है। इसी प्रयोगधर्मिता के बल पर वे कथ्य में आधुनिकता से पोषण प्राप्त करने पर भी मिथकों का बखूबी प्रयोग करते हैं तथा उत्तर आधुनिक समाज के सत्यों की नवीनता के साथ अभिव्यक्ति के दुस्साध्य कर्म को साधते हैं। उनके गज़ल रचना कर्म के बारे में आलोचक नचिकेता का मत है कि- “ज्ञान प्रकाश विवेक दिल से ही गज़ल कहते हैं, जिससे उनकी गज़लें अपने समय और समाज के अंतर्विरोधों, असंगतियों और विडंबनाओं की सार्थक आलोचना होती है। नितांत सांकेतिक भाषा में लिखी गयी ज्ञान प्रकाश विवेक जी की गज़लों का कथ्य आम आदमी की संघर्षगाथा, उसके सपनों का टूटना-जुड़ना, उसकी आशा, आकांक्षा, निराशा, उम्मीदें, जय-पराजय और संघर्ष चेतना ही है, अपने समय के रक्तरंजित यथार्थ से टकराने की जुस्तजू है, नए सपनों के बनने और बिखरने की अनुगूँजें हैं।”³¹

2.4 वशिष्ठ अनूप

वशिष्ठ अनूप समकालीन हिंदी गज़ल के सप्त ऋषियों में ‘अनूप’ (अनुपमेय) गज़ल ऋषि ‘वशिष्ठ’ है, जो अपनी गज़ल तपस्या से समस्त सृष्टि की मंगलकामना से युक्त शेरों रूपी वैदिकमंत्रों का सर्जन व गान कर रहे हैं। जो अपनी गज़ल साधना से राजमद में चूर, छली, आमजन के कष्टों की कारक, स्वजनपोषक राजसत्ता के विकृत चेहरे को उजागर कर उसे राजधर्म की सीख देते हैं तथा समकाल में जीवन मूल्य विरोधी आचरण शैली के रूप में निरन्तर ताकतवर होते रावणों (असुरों) के समूल विनाश एवं मूल्यों के राम को सशक्त बनाने हेतु समाज को जीवन मूल्यों की शिक्षा देकर राजगुरु के साथ-साथ समाज गुरु के शिक्षकीय धर्म का निर्वहन करते हैं। और ऐसे राम राज्य की स्थापना का सर्जनात्मक प्रयास करते हैं, जिसमें ना कोई अत्याचारी हो, ना कोई अत्याचार से शोषित-पीडित, जिसमें हर प्राणी सभी तरह की पीडाओं-कष्टों से मुक्त हो तथा हर व्यक्ति को उसका दाय मिले। वशिष्ठ अनूप सामाजिक-आर्थिक विषमताओं से मुक्त समता आधारित समाज की स्थापना के लिए अपनी गज़लों से समाज की नई वर्णमाला तथा नया व्याकरण तैयार करने की कोशिश करते हैं तथा नये समाज का शाब्दिक ताना-बाना बुनते हैं। ये शेर उनके रचनात्मक आत्मकथ्य को प्रकट करते हैं-

“फजा में हर तरफ ही दर्द का इजहार लगता है।

समूचा देश ही धृतराष्ट्र का दरबार लगता है।

दिनोंदिन रावण की शक्ल कद्दावर हुई जाती

हमारे दौर का राघव बड़ा लाचार लगता है।”³²

“असुर रोज ताण्डव मचाये हुए है

उन्हें मूल से अब मिटाने की जिद है।”³³

“एक व्याकरण नये ढंग का लिखना है इस दुनिया का,

इस समाज का इक सुन्दर- सा ताना-बाना लिखना है।

बन्दीगृह से मुक्त कराना है सूरज की किरणों को,

हर प्राणी के हक में उसका आबोदाना लिखना है।”³⁴

समकालीन हिंदी ग़ज़ल के स्वनामधन्य हस्ताक्षर, प्रसिद्ध जनवादी गीतकार एवं आलोचक डॉ वशिष्ठ अनूप का जन्म उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले के सहडौली गाँव में श्रीमती परम ज्योति एवं श्री लीलाधर द्विवेदी के घर 1 जनवरी, 1962 को हुआ था। वर्ष के पहले दिन जन्मे (1 जनवरी) अनूप जी शिक्षा, अध्यापन कार्य व लेखन में भी अपने समानधर्माओं में अनूप व प्रथम रहे हैं। उनकी पहली कविता आदि काव्य छंद ‘मा निषाद...काममोहितम’ की तर्ज पर सत्रह वर्ष की उम्र में अस्पताल में भर्ती होने पर वहाँ मरीजों के दुख-दर्द से हृदय के करुणाद्र होने से प्रस्फुटित होती है। अब तक उनकी 50 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें चार ग़ज़ल आलोचनात्मक पुस्तकें-‘हिंदी ग़ज़ल का स्वरूप और महत्वपूर्ण हस्ताक्षर’, ‘हिंदी ग़ज़ल की प्रवृत्तियाँ’, ‘हिंदी ग़ज़ल का परिप्रेक्ष्य’, ‘हिंदी ग़ज़ल के निकष’ के अलावा नौ ग़ज़ल संग्रह शामिल हैं।

डॉ. वशिष्ठ का प्रथम ग़ज़ल संग्रह ‘बंजारे नयन’ 2000 ई. में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह को २१वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल की परिभाषा एवं स्वरूप का घोषणा पत्र कहा जा सकता है क्योंकि इसमें अनूप जी ने परंपरागत ग़ज़ल से हिंदी ग़ज़ल की भिन्न रचना दृष्टि, कथ्य ज़मीन, कलादृष्टि व भाव भूमि का संकेत करते हुए लिखा है -

“राज महलों में पाला गया था इसे, आज हैं झोपड़ी की दुलारी ग़ज़ल

मनचलों ने पिन्हाये थे घुंघरू इसे, आज है माँ-बहन की-सी प्यारी गज़ल।”³⁵

वशिष्ठ अनूप जी का दूसरा गज़ल संग्रह ‘रोशनी खतरे में है’ 2006 में प्रकाशित हुआ। शीर्षक के अनुरूप इसमें गज़लकार सामयिक दौर में धीरे-धीरे जीवन से रोशनी अर्थात् जीवन के उज्ज्वल पक्षों के हास से उत्पन्न तमाम खतरों की ओर संकेत करता है। वह खतरा चाहे शाश्वत जीवन मूल्यों व मानवता के पतन का हो, संवेदनशीलता व निस्वार्थ प्रेम के समापन से बढ़ती कटुता का हो, बाज़ारवाद की चकाचौंध में जीवन से सहजता व सादगी के गायब होने का हो या पर्यावरणीय संकट से मानव जाति के अस्तित्व का खतरा हो, इन सभी से गज़लकार समाज को आगाह करते हुए अपनी मूल संस्कृति, इंसानियत और पर्यावरण को बचाए रखने की अप्रत्यक्ष वकालत करता है-

**“फूल की खुशबू हवा की ताज़गी खतरे में है/लोकगीतों की खनकती रागिनी खतरे में है।
सभ्यता इस दौर की है निर्वसन होने लगी/आदमीयत गुम रही है आदमी खतरे में है।
पानी-पानी को तरसती सोच में डूबी नदी/ हो रही हर रोज दूषित जिन्दगी खतरे में है।
पत्थरों के जंगलों में पल रहे विषधर तमाम/प्यार में डूबी हुई निश्छल हँसी खतरे में है।
दिन-ब-दिन रंगीन होता जारहा संसार यूँ/इन दिनों सदियों सराही सादगी खतरे में है।”³⁶**

अनूप जी का तीसरा गज़ल संग्रह ‘रोशनी की कोपलें’ 2010 में आया। यह उनके पिछले संग्रह ‘रोशनी खतरे में है’ से आगे की कड़ी है क्योंकि पिछले संग्रह में जहाँ वे जीवन से रोशनी के खत्म होने की बात करते हैं, वहीं इस संग्रह में उससे आगे इस बात की प्रतिष्ठा करते हैं कि जैसे कृष्ण पक्ष के बाद ही शुक्ल पक्ष आता है, वैसे ही जीवन की अँधेरगर्दी के बीच से ही प्रकाश की किरणों का उन्मेष होता है। शेर पेश हैं-

**“सूखने लगतीं जहाँ पर हर खुशी की कोपलें/फिर वहीं से फूटती है ज़िन्दगी की कोपलें।
उनका दावा है अँधेरा खूब पनपेगा यहाँ /मेरा वादा है उगेंगी रौशनी की कोपलें।”³⁷**

वशिष्ठ अनूप का चौथा गज़ल संग्रह ‘मशालें फिर जलाने का समय है’ 2013 में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में गज़लकार हमारे समय की तमाम तरह की विद्रूपताओं को बेनकाब करते हुए कहता है कि समाज जीवन में विद्रूपताओं के बढ़ते अंधकार से मुक्ति व रोशनी की कोपलों के प्रस्फुटन के लिए प्रतिरोध व क्रांति की मशालें जलाने की आवश्यकता है। इस हेतु वे गज़लों की मशालें रचते हैं-

“बहुत मनबढ़ बहुत शातिर हुआ है/ सितम का रूप कद्दावर हुआ है।

मशालें फिर जलाने का समय है/ अँधेरा और हमलावर हुआ है।”³⁸

अनूप जी का पाँचवाँ गज़ल संग्रह ‘तेरी आँखें बहुत बोलती हैं’ 2014 में प्रकाशित हुआ। संग्रह के शीर्षक में प्रयुक्त सर्वनाम ‘तेरी’ मानो इस संग्रह की गज़लों के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। इस संग्रह की गज़लें रूपी आँखें हमारे समय से मुखर संवाद कर समय के समूचे अफ़साने को प्रखर रूप में व्यक्त करती हैं। इन गज़लों की भाषा कहने से अधिक देखती है और ज़माने को देखने की हमारी दृष्टि को तेज करती है। यहाँ तक कि हमें युग के गोपन यथार्थ को देखने व समझने की सूक्ष्म पर्यवेक्षण दृष्टि देती है। इन गज़लों को पढ़ना दृष्टिवर्ती रचनाओं से गुजरकर अपने दौर को सुनना तथा अपने समय की तमाम सामाजिक असंगतियों, राजनीतिक विद्रूपताओं, सांस्कृतिक विचलनों, धार्मिक आडंबरों, राजनीतिक व नैतिक मूल्य क्षरण एवं बाज़ारवाद के विद्रूप प्रभावों से रूबरू होना है। प्रेमिका के लिए कहा गया यह शेर इन गज़लों के लिए भी सटीक है

“होठ तेरे भले बन्द हों पर मन का हर भेद यह खोलती हैं।

किस मदरसे में इनको पढ़ाया, तेरी आँखें बहुत बोलती हैं।”³⁹

अनूप जी का छठा गज़ल संग्रह ‘घरों पर गिद्ध मंडराने लगे हैं’ 2019 में आया। इस संग्रह में अनूप जी ने खतरनाक होते दौर को बयाँ करते हुए लिखा है कि वर्तमान में घर-परिवार से रिश्तों में आत्मीयता व सामाजिकता गायब हो रही है, आत्मकेन्द्रितता व असंवेदनशीलता बढ़ रही है, अपराध व हिंसा का ग्राफ बढ़ रहा है, तथाकथित आधुनिक व सभ्य होते जा रहे आदमी में जंगलीपन या बर्बरता का प्रसार हो रहा है और राजनीति ढोंगी स्वार्थी नेताओं का जमघट होती जा रही है। यह गज़ल चारों ओर पसरते सन्नाटे को व्यक्त करती है जिसमें मूल्य या शुभताएँ निरंतर घट रही हैं।

“अचानक लोग घबड़ाने लगे हैं/ लकड़बग्घे नज़र आने लगे हैं।

अजब-सी सनसनी है आसमाँ में,/ घरों पर गिद्ध मंडराने लगे हैं।

अचम्भित कर रहे हैं ये नजारे/ बया को बाज दुलराने लगे हैं।

निकल आये हैं विषधर सब बिलों से/ फनों को खोल लहराने लगे हैं।

वनों में अब न आदमखोर दिखते,/ सभाओं में वे गुराने लगे हैं।”⁴⁰

वशिष्ठ अनूप का सातवाँ ग़ज़ल संग्रह 'गरम रोटी के ऊपर नमक तेल था' 2021 में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में वर्तमान समय में राजनीति, धर्म व समाज जीवन में मूल्यों के क्षरण की चिंता, समाज के हर वर्ग- किसान, मजदूर, स्त्री, युवा, बाल, वृद्ध व बेरोजगारों की समस्याओं का चित्रण तथा गाँवों के सौंदर्य, पारंपरिक संस्कारों, परंपराओं आदि समकाल के सभी विषयों को स्थान दिया गया है। वशिष्ठ अनूप जी की प्रतिनिधि ग़ज़लों का संकलन 'छंद तेरी हँसी का' शीर्षक से 2023 में तथा एक अन्य ग़ज़ल संग्रह 'बारूद के बिस्तर पर' 2024 में प्रकाशित हुआ है, जिसमें भी उनकी पिछले वर्षों की ग़ज़लें संकलित हैं। 'गरम रोटी के ऊपर नमक तेल था' संग्रह में शहरी जीवन की चकाचौंधपूर्ण दिखावटी जीवन शैली के बीच गाँव की परंपराओं व संस्कारों को बचाए रखने का आकांक्षी स्वर है। यह शेर द्रष्टव्य हैं-

“नई तहजीब निर्वस्त्र होती जा रही दिन-दिन

सलीकेदार औरत गाँव वाली याद आती हैं।

शहर के होटलों में रोटियों के दाम जब पढ़ता

मुझे ममता भरी वो घर की थाली याद आती है।”⁴¹

वशिष्ठ अनूप जी की ग़ज़लों का फ़लक अत्यंत विस्तृत एवं व्यापक है। वे जीवन जगत के हर पहलू तक प्रसरित हैं। अपने रचना कर्म से उन्होंने हिंदी ग़ज़ल का पाट चौड़ा किया है। उनकी ग़ज़लों में हमारे दौर की राजनीति के विकृत चेहरे, सांस्कृतिक बदलावों, धार्मिक विडंबनाओं, आर्थिक विषमताओं के साथ आमजन व वंचित समुदायों की पीड़ा, प्राकृतिक आपदाओं के वीभत्स चित्रों के अलावा प्रकृति सौंदर्य एवं प्रेम की सुंदर व मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। ये ग़ज़लें समकाल की विद्रूप व्यवस्था पर करारा व्यंग्य कर इस विद्रूप व्यवस्था के प्रति प्रतिरोध का स्वर बुलंद करती हैं, परिवर्तन की ज़मीन तैयार करती हैं। इसके पीछे अनूप जी का लक्ष्य मानव जीवन की बेहतरी में वृद्धि करना है। वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लों में भाव पक्ष के साथ शिल्प पक्ष का सुंदर संयोजन हुआ है। हरे राम समीप से शब्द उधार लेकर कहें तो कभी-कभी अनूप जी के शेर का केवल एक मिसरा गद्य की सैकड़ों पंक्तियों से भी श्रेष्ठ बन जाता है।

2.5 माधव कौशिक

हिंदी ग़ज़ल के महाभारती रणक्षेत्र में अमानुषिक सत्ता शक्तियों के खिलाफ़ अपने शेरों को सुदर्शन चक्र बना, मनुष्यता व जीवन मूल्यों के पुनर्स्थापन, रक्षण व पोषण के लिए रचनात्मक संघर्ष के सूत्रधार 'माधव' हैं प्रसिद्ध ग़ज़लगो 'माधव कौशिक'। माधव अपने इस रचनात्मक युद्ध से ग़ज़ली रणक्षेत्र में पाश्विकता के ख़ून के निशान छोड़ते हुए चलते हैं, ताकि आने वाली पीढ़ियों को मनुष्यता की राह पर चलने की प्रेरणा मिलती रहे। हिंदी ग़ज़ल की यज्ञ वेदी में मानवता के मंगलार्थ ध्वन्यात्मक मंत्रोच्चार युक्त अशआरी हव्य की आहुतियाँ देने वाले 'कौशिक' का नाम है 'माधव कौशिक'। माधव हिंदी ग़ज़ल के वो मल्लाह ग़ज़लकार हैं, जो अपने शेरों के पतवार की सहायता से मानवता की कश्ती को मानवता विरोधी आँधियों के भंवर से निकालकर पार लगाने के लिए निरंतर संघर्षशील हैं। उनकी शायरी सामयिक अनात्म व अमानवीय दौर में इंसानियत और उसके एहसास को बचाए रखने, समाज में मानवता की ओर ऊर्ध्वगामी गुणात्मक बदलाव लाने एवं इंसानी जीवन शैली को धारण करने वाले सुंदर मानवीय समाज की स्थापना का रचनात्मक सांस्कृतिक अभियान है, मनुष्यता विरोधी शक्तियों के खिलाफ़ आदमीयत की विजय का घोषणा-पत्र है। इसके लिए जरूरी संघर्ष व शक्ति उनकी शायरी में है। और इसी के दम पर उनकी ग़ज़लें पाठकों में संवेदना व विचारों के दीप जलाने का कार्य करती हैं। मानवता की प्रतिष्ठा के लिए संघर्ष करते 'माधव कौशिक' के माधव, नाखुदा व कौशिक रूप की पुष्टि के तौर पर शेर देखे जा सकते हैं-

मानवता का पतन- "वक्त की सारी बुराई का सिला, कुछ भी नहीं

आदमी में आदमीयत के सिवा, कुछ भी नहीं।"⁴²

युद्ध, आतंक, अन्याय से मुक्त सुंदर मानवतावादी समाज की स्थापना की कामना-

"हमें युद्ध आतंक भूख से मारी धरती बख़शी है

आने वाली पीढ़ी को तो दुनिया सही सलामत दे।"⁴³

कौशिक जी का माधवी रूप-

"आने वाली पीढ़ियों को कुछ तो आसानी रहे

रास्ते भर ख़ून के ताजा निशान रख जाऊँगा।

वक्त की आँधी भी जिनको रोक पाएगी नहीं

आँधियों की कोख में वो आँधियाँ रख जाऊँगा।”⁴⁴

कौशिक जी का नाखुदा का रूप-

“बस एक काम यही बार-बार करता था

भँवर के बीच से दरिया को पार करता था”⁴⁵

बहुमुखी प्रतिभा के धनी ख्यातनाम ग़ज़लकार माधव कौशिक का जन्म 1 नवंबर, 1954 को भिवानी हरियाणा में हुआ था। उन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय से हिंदी में एम. ए. तथा स्नातकोत्तर अनुवाद डिप्लोमा की उपाधि प्राप्त की तथा 2014 में राजभाषा अधिकारी के पद से सेवानिवृत्त हुए। 2008 से 2012 तक राष्ट्रीय साहित्य अकादमी दिल्ली के सदस्य तथा 2018 से इसी अकादमी के उपाध्यक्ष पद पर विराजमान हैं। अब तक उनकी 37 रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें 17 ग़ज़ल संग्रह शामिल हैं।

समकालीन हिंदी ग़ज़ल के प्रतिष्ठित व सशक्त हस्ताक्षर माधव कौशिक का रचना व्यक्तित्व बहुआयामी है, लेकिन उनकी प्रसिद्धि एक ग़ज़लकार के रूप में है। उनका प्रथम ग़ज़ल संग्रह ‘आइनों के शहर में’ 1986 में, दूसरा ‘किरण सुबह की’ 1988 में, तीसरा ‘सपने खुली निगाहों के’ 1992 में तथा चौथा ‘हाथ सलामत रहने दो’ 1998 में प्रकाशित हुआ। 21वीं सदी के प्रथम वर्ष में प्रकाशित ‘नई सदी का सन्नाटा’ पाँचवाँ ग़ज़ल संग्रह है जिसमें वैश्वीकरण के समय में हमारे दैनन्दिन जीवन का हिस्सा बन रही उपभोक्तावादी व बाज़ारी संस्कृति का बयान है। 2003 में प्रकाशित छठे संग्रह ‘आसमान सपनों का’ में कौशिक जी ने वर्तमान दौर की तमाम विसंगतियों यथा राजनीतिक ढोंग, पाखंड, हिंसा, अपराध, आतंक, सामाजिक असंतोष व उपभोक्तावादी संस्कृति के सुरसाई प्रसार के दुष्परिणामस्वरूप मानव मूल्यों के हास के वर्णन के साथ इन तमाम तरह की कालिमाओं की पृष्ठभूमि में उजाले की रेखाएँ खींचते हुए जीवन को खूबसूरत बनाने के इंद्रधनुषी सपने देखे हैं। माधव कौशिक को अंतरराष्ट्रीय ख्याति दिलाने वाले 2007 में प्रकाशित सातवें ग़ज़ल संग्रह ‘अंगारों पर नंगे पांव’ की ग़ज़लों में उन्होंने वैश्वीकरण के समकालीन दौर में बदलते समाज की विद्रूपताओं के कारण अंगारों पर नंगे पांव चलने के लिए मजबूर मनुष्य की बेचैनी व छटपटाहट को बयाँ करते हुए मनुष्य और मनुष्यता के प्रति अपनी पक्षधरता व्यक्त की है। वर्ष 2012 में प्रकाशित कौशिक के आठवें ग़ज़ल संग्रह ‘खूबसूरत है आज भी दुनिया’ की ग़ज़लों में आम आदमी की पीड़ा, उसकी आशा-निराशा व संघर्ष को स्वर

देने के साथ दुनिया के नैसर्गिक सौंदर्य को बचाये रखने की वकालत है। वर्ष 2014 में प्रकाशित ग़ज़ल संग्रह 'सारे सपने बागी हैं' की ग़ज़लों में एक ओर जहाँ सत्ता व व्यवस्था की विद्रूपताओं के प्रति विद्रोह से ग़ज़लकार का स्वाभिमानी व बागी रूप व्यक्त हुआ है, तो दूसरी ओर ये ग़ज़लें हमारे समय की छवि को चित्रित करने व उसके साथ संवाद करने वाली हैं। वर्ष 2018 में प्रकाशित 'उड़ने को आकाश मिले' संग्रह की ग़ज़लों में ग़ज़लकार ने व्यापक जीवन परिधि को समेटते हुए सामयिक समाज-जीवन के संघर्षों, वर्तमान की विद्रूप स्थितियों में बदलाव की कामना तथा दम तोड़ती इंसानियत को ऑक्सीजन देने की आवश्यकता को स्वर व शक्ति दी है। वर्ष 2019 में प्रकाशित 'नयी उम्मीद की दुनिया' की ग़ज़लों में हमारे समय के समाज की हर विसंगति व विद्रूपता की विश्वसनीय अभिव्यक्ति के साथ अदम्य जिजीविषा के बल पर खुशहाल व ख़ूबसूरत संसार की रचना का संघर्ष है। इसके अतिरिक्त 'खिलौने माटी के' कौशिक जी द्वारा रचित हिंदी का प्रथम बाल ग़ज़ल संग्रह है, जिसमें बाल मनोविज्ञान आधारित 20 ग़ज़लें शामिल हैं। विभिन्न प्रकाशन संस्थानों ने अपनी-अपनी रुचि के अनुसार कौशिक जी की चयनित ग़ज़लों के 'सूरज उगने तक', 'जला दो चिराग आँधी में', 'सपना सही सलामत दे', 'पानी पर तहरीर नयी' व 'नयी सुबह की नयी दुनिया' पाँच ग़ज़ल संग्रह प्रकाशित किये हैं।

कौशिक जी की शायरी का केंद्र बिंदु मानव व मानवता के मंगल की भावना है, जिसके चारों ओर ही उनकी शायरी की परिधि खींची हुई है तथा उसका अधिकांश हिस्सा सामाजिक चेतना से संबंधित है। यह समाज चेतना उन्हें तकनीक व वैश्वीकरण की इस सदी के नये समाज के भौतिकतावाद, उपभोक्तावाद, बुद्धिवाद, पूँजीवाद, बाज़ारवाद जैसे नये जीवन संप्रत्ययों के यथार्थ एवं उनसे उत्पन्न समाज-संस्कृति विषयक नकारात्मक अमानवीय परिवर्तनों के प्रति सजग बनाती है। यह नया समाज भौतिक वस्तुओं के संग्रहण व उनके भोगजन्य भौतिक सुख को ही जीवन का अंतिम सुख व सत्य मानकर, कस्तूरी मृग की तरह वास्तविक सुख स्रोत से बेखबर हो, भौतिकता के रेगिस्तान को सुखों का बहता दरिया समझ आँधी दौड़ लगा रहा है। पर उसकी यह प्यास कभी नहीं बुझती वरन भौतिक सुखों के फूलों की बगिया की स्पर्श कामना में उसकी उंगुलियों के पोर-पोर खून से तर है। समाज में बाज़ार, भौतिकता व तकनीक केंद्रित बुद्धिवाद का जितना प्रसार हुआ है, मनुष्य के हृदय के तार उतने ही संकुचित होते गए हैं और वह दूसरों के दुख-दर्द से शून्य, राग-द्वेष हीन कलपुर्ज में बदलता जा रहा है। और समाज इन कल-पुर्जों का कबाड़ बनता जा रहा

है। इस नये समाज का मनुष्य स्वार्थी व आत्म केंद्रित हो अपने बदन के सीखचों में कैद है, परिणामस्वरूप रिश्तों की आँच धीरे-धीरे खत्म हो रही है तथा संबंधों के दरवाजे बंद हो रहे हैं। व्यक्ति व समाज और मनुष्य-मनुष्य के पारस्परिक संबंधों की जड़ें हिल रही हैं। जिससे प्रेम, सद्भाव, विश्वास, सहयोग जैसे मूल्य व अन्योन्याश्रितता की अवधारणा खत्म हो रही है। तथा पड़ोसी व पारस्परिक संस्कृति के स्थान पर छल-कपट, विश्वासघात और हिंसा-प्रतिहिंसा को प्रश्रय मिल रहा है। चारों ओर अपराध व अराजकता चरम पर है। आतंकवादी व सांप्रदायिक ताकतें निरंतर मानवता को क्षत-विक्षत कर रही है। कौशिक जी की शायरी इस तेजी से बदलते समाज के यथार्थ से बतियाती है और समाज में निरंतर बढ़ती विसंगतियों व विद्रूपताओं को रेखांकित कर एक खूबसूरत सुबह की उम्मीद पाठकों को देती हैं। कौशिक जी बाज़ारवादी व पूँजीवादी शक्तियों के ध्वंसात्मक कार्यों के खिलाफ व्यक्ति को अपने दिल-दिमाग को विचार और संवेदना से रोशन करने और उसे उपभोक्ता बनने की बजाय मनुष्य बनने का संदेश देते हैं। इन संदर्भों की पुष्टि करते शेर प्रस्तुत हैं-

भौतिक सुखों की मृगछलना- “कस्तूरी मृग की आँखों सी मेरी अँधी आँखों ने
रेगिस्तानों की मुट्ठी में बहता दरिया देखा है।”⁴⁶

भौतिक सुखों की लालसा में लहलुहान समाज-

“फूलों को छूने की चाहत में जब भी भरमाया है
अक्सर लहलुहान हुए हैं पोर-पोर हर उंगली के।”⁴⁷

बुद्धिवाद का फैलाव तथा हृदय, संवेदना, रिश्तों व मूल्यों की सिकुड़न-

“आदमी के खून में पहले सी वह हलचल कहाँ/दूसरो के दर्द से इंसानियत घायल कहाँ।
साफ़-सुथरे लॉन सा झूठा दिखावा है मगर/फूलते-फलते हुए रिश्तों का वह जंगल कहाँ।”⁴⁸

भौतिकता की जगह मूल्यों की पैरवी -

“जीवन को आसान बना/ मत इतना सामान बना।
प्यार की फ़सलें लहरायें/ रिश्तों को खलिहान बना
दरवाज़े गर बंद सही / दिल को रोशनदान बना।”⁴⁹

माधव कौशिक की गज़लों का आयतन बड़ा व्यापक व विस्तृत है। उनकी शायरी समकालीन दौर की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक

विसंगतियों व विद्रूपताओं का तो यथार्थवादी अंकन करती ही है, पर इसके साथ ही प्रकृति व जीवन के विविधरंगी खूबसूरत चित्रों तथा मानव मन के संत्रास, कुंठा, अवसाद व हर्ष सभी मनोभावों का चित्रण भी उनकी शायरी में है। वे समकाल की तमाम विद्रूपताओं व अमानवीय जीवन स्थितियों के बावजूद इंसानियत की जीत का ऐलान करते हैं। मानवता के अमर गायक होने के कारण वे अमर शायर हैं।

“सच को सच कहने की बस मैंने उठाई है कसम

वरना तो इस शहर में रहते हैं शायर और भी।”⁵⁰

माधव कौशिक जी की ग़ज़लों का अपना अलग अदाज़-ए-बयाँ तथा विशिष्ट मुहावरा है, जिसमें उनके गाढ़े अनुभवों की प्रौढ़ता व ग़ज़ल कहन का सलीका प्रतिबिंबित होता है। उनकी ग़ज़लों में भाव, भाषा और कल्पना की त्रिवेणी सहज रूप में प्रवाहमान है। वे जन प्रचलित सरल शब्दों में छोटे-छोटे बिंबों के माध्यम से लंबे रूपक गढ़ते हुए समसामयिक स्थितियों का भावपूर्ण अंकन करते हैं। प्रतीकात्मकता व सांकेतिकता के साथ सादगी का सौंदर्य, शैली का सुष्ठुपन व शिल्प का कसाव उनकी शायरी की विशेषताएँ हैं। परम्परित रूपक का उदाहरण द्रष्टव्य है-

“मर गये दहशतज़दा होकर कबूतर अमन के

हादसों की फड़फड़ाती चील कब तक देखते।”⁵¹

2.6 देवेंद्र आर्य

हिंदी ग़ज़ल के अमरलोक में मानव सभ्यता के देवत्व को निगलने को आतुर राजनीति, धर्म व अर्थ जगत की शैतानी राक्षसी प्रवृत्तियों व शक्तियों के खिलाफ़ दधीचि की हस्तियों से बने वज्र के समान सशक्त अपने अशआर के अस्त्रों से रचनात्मक लड़ाई लड़ने वाले ‘देवेंद्र’ का नाम है ग़ज़लकार ‘देवेंद्र आर्य’। ‘आर्य’ मानव समाज के लिए जो कुछ भी आर्य है, उसको बचाये रखने के लिए आर्य शायरी करने वाले आर्य शायर हैं क्योंकि वे शब्दों का कारोबार करने वाले शायर नहीं, बल्कि अपने समय के विद्रूप सच को बयाँ करने वाले और उसकी विद्रूपता के खिलाफ़ कबीर की तरह खुला बगावती ऐलान करने वाले शायर हैं। वे उन चुनिंदा शायरों में शामिल हैं, जिनके नाम के सिक्के हिंदी ग़ज़ल में चलते हैं। इसका कारण यह है कि उनकी शायरी मानव मात्र व मनुष्यता के हित के लिए समर्पित है। और इसके लिए वे शायरी को अनेक साधनों के रूप में इस्तेमाल करते हैं। उनकी शायरी कभी वह खुरपी

बनती है जिससे वे समकालीन समाज जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में निरंतर उगती व फैलती विसंगतियों के खरपतवार को दूर करते हैं, ताकि इंसानियत की फ़सल लहलहा सके। तो वही शायरी कभी दमकल बनती है, जिसके द्वारा वे मानवता के सरसब्ज़ खलिहानों में शैतानी शक्तियों के द्वारा लगाई गई आग के शमन का फायरमैनी कर्म करते हैं। उनकी यह सारी जंग व जद्दोजहद इंसानियत को बचाने तथा अधिक सुंदर, सुरक्षित व समरस बेहतरीन इंसानी दुनिया का नक्शा खींचने के लिए है। और उनकी शायरी इसी का उपक्रम है। उनके ये शेर उनके इन रूपों व कर्मों की स्पष्ट घोषणा करते हैं -

“कमजोर मानने की खता महँगी पड़ेगी

हड़डी है यह दधीचि की ता उम्र लड़ेगी।”⁵²

“है ग़ज़ल मेरे लिए खुरपी

जल रहे खलिहान में दमकल।”⁵³

“हमने तो दिल की रहबरी की है/लोग कहते हैं शायरी की है।

जर्द कर डाले अपने ख्वाब सभी/ लेकिन इंसानियत हरी की है।”⁵⁴

बहुआयामी रचना प्रतिभा के धनी देवेंद्र आर्य का जन्म 18 जून, 1957 को गोरखपुर उ. प्र. में हुआ था। उनकी रचना यात्रा की शुरुआत यौवनकाल में 1975-76 के आसपास हुई थी। अब तक उनके छह ग़ज़ल संग्रह सहित कुल 17 रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। समकालीन हिंदी ग़ज़ल में अपनी प्रयोगशीलता के कारण विशिष्ट स्थान व पहचान रखने वाले देवेंद्र आर्य जी नवें दशक के अंत में ग़ज़ल की दुनिया में आए। उनका पहला ग़ज़ल संग्रह ‘किताब के बाहर’ 1990 में प्रकाशित हुआ। इसका शीर्षक ही आर्य जी के रचना कर्म के प्रति संकेत करता है कि वे किताबी दुनिया तक सीमित रहने के बजाय वास्तविक ज़िंदगी के सवालों और संघर्षों से ग़ज़लों का संवेदनागत कच्चा माल प्राप्त करते हैं। दूसरा ग़ज़ल संग्रह ‘ख्वाब ख्वाब खामोशी’ 1999 में तथा तीसरा संग्रह ‘उमस’ 2012 में प्रकाशित हुआ। इन संग्रहों के आधार पर कहा जा सकता है कि आर्य जी मन की मौज को लफ़्ज़ों में ढालने वाली शौकिया शायरी नहीं करते, अपितु अपने समय के समाज के सूक्ष्म पर्यवेक्षण के बाद

उसकी गतियों व संवेदनाओं को समझते हुए बतौर उसकी समालोचना गज़लें कहते हैं। तथा कविता जीवन की समीक्षा के कथन को चरितार्थ करते हैं। आर्य जी गज़ल के कथ्य एवं शिल्प के स्तर पर नवीन प्रयोग कर हिंदी गज़ल को एक नया मुहावरा व नई पहचान देते हैं। इस संग्रह की एक गज़ल माला प्रस्तुत है, जो धर्म व विज्ञान के विद्रूप चेहरे के साथ प्रेम, दर्शन, समकालीन समाज व्यवहार व आम आदमी के जीवन संघर्ष आदि विषयों के विविधवर्णी फूलों के गुम्फन से बनी है। जिसमें समकालीन यथार्थ के साथ शाश्वत चिंतन का स्वर भी है।

“समय विज्ञान का है/ मगर शैतान का है।

चलो मिलवा दूँ रब से/ मेरी पहचान का है।

मोहब्बत है तो सौदा/ मगर सम्मान का है।

मकीं बेशक खुदा हो/ ये घर इंसान का है।

सुलगती है गरीबी/ धुँआ इमान का है।”⁵⁵

चौथा गज़ल संग्रह ‘मोती मानष चून’ सन 2014 में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह की गज़लों में समय के विचलनों, आम ज़िंदगी के साथ संवादधर्मिता, राजनीति की स्वार्थपरता, वर्चुअल वर्ल्ड और बाज़ारवाद के दौर में छीजती मानवता व रिश्तों पर तंज के साथ जीवन दर्शन भी है। पाँचवाँ गज़ल संग्रह ‘जो पीवे नीर नैना’ 2018 में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह की गज़लें अपने समय के समाज को उकेरती हैं। इनमें हमारे समाज की बदलती छवि व बदलावों की आहट साफ़ देखी-सुनी जा सकती है। इनमें राजनीति, धर्म, अर्थ, बाज़ार, रिश्ते, सर्वहारा, संस्कृति, दर्शन व विज्ञान आदि विषयों के छुए व अनछुए पहलुओं को नए अदाज़ में नए ढंग से उठाने के साथ प्रेम के उदात्त रूप की अभिव्यक्ति हुई है। प्रेम रंग में रंगी इस संग्रह की एक गज़ल प्रस्तुत है-

“क्या तो खुशबू, क्या तो रंग/ देख के भौरे रह गये दंग।

तुम से कितना मिलता है/ फूलों के हँसने का ढंग।

डोर इधर और छोर उधर/ जीवन उड़ती हुई पतंग।

दुनिया कर ली मुट्ठी में/ भाड़ में जाए प्यार की जंग।

तन और मन दोनों कैसे? प्रेम-गली थी बेहद तंग।”⁵⁶

आर्य जी का छठा गज़ल संग्रह 'मन कबीर' 2022 में आया । यह संग्रह एक साथ सात भाषाओं- अंग्रेजी, मराठी, बांग्ला, पंजाबी, गुजराती व उर्दू में अनूदित होकर प्रकाशित हुआ है, जो इनके गज़ल रचना कर्म की एक उल्लेखनीय उपलब्धि है। 'मन कबीर' धर्म व राजनीति के विकृत स्वरूप के खिलाफ इनके बगावती मन की शाब्दिक जंग है। ये अपने समय के समाज की कबीर मन से समीक्षा करते हुए इस संग्रह में धर्म के पाखंडी व इंसानियत विरोधी स्वरूप तथा राजनीति की विकृतियों पर व्यंग्य करते हुए राजनीति व धर्म की सत्ता शक्तियों के विरुद्ध विद्रोह का स्वर बुलंद करते हैं। राजनीतिक विकृतियों पर व्यंग्य करती संग्रह की यह गज़ल द्रष्टव्य हैं -

“वोट का मारा जाति के चश्मे से ही देखेगा भाई
जो भी जाति के बाहर होंगे, सब अंदर हो जाएंगे।
चीख मेरी और उनकी चुप्पी दोनों एक तराजू पर
राजनीति में काले गोरे हम बिस्तर हो जाएंगे।
फिर कोई दंगा होगा या जंग छिड़ेगी टी वी पर
फिर सारे असली मुद्दे दाखिल दफ़्तर हो जाएंगे।
लोकतंत्र के खेल में पूँजी का शेयर सौ प्रतिशत है
हमा-शुमा धीरे-धीरे खुद ही बाहर हो जाएंगे।”⁵⁷

देवेंद्र आर्य प्रयोगधर्मी रचनाकार है। उन्होंने गज़ल के वस्तु और रूप दोनों स्तरों पर नए नए प्रयोग किए हैं। गज़ल के कथ्य के संबंध में उनके विचार हैं- “मैंने अपने शेरों के लिए उस्तादों के शेरों से अधिक समकालीन आधुनिक साहित्य (विशेषतः कविता) को आइने की तरह रखा है। शेरियत की रक्षा करते हुए नए विषय उठाने और पुराने कथ्य को भी नई रोशनी में नए अंदाज़ में कहने की चुनौती सामने रखी है।.....मेरी एक जिद रही है। दुनिया के किसी भी विषय पर जिस पर कविता हो सकती है, शेर कहने की जिद। फलौं मज़मून शेर का नहीं है, इसे न सुनने, न मानने की जिद। शेर मेरा है तो आपकी तरह न लगे, इसकी जिद।”⁵⁸ उनकी इस रचना दृष्टि का परिणाम है कि देवेंद्र प्रयोगशील नज़र से समाज, राजनीति, लोक व्यवहार, रोजमर्रा के कामकाज व अर्थ व्यापार के बदलते संदर्भों से अपनी गज़लों के लिए भाव-भाषा ढूँढते हैं। उनकी गज़लों में हिंदी काव्य परम्परा व संस्कृति की अनुगूँज है, तो अपने समय की बदलती नवीन संस्कृति की आहट भी है। उन्होंने लोकबोलियों की

आम बोलचाल की शब्दावली के साथ मध्यमवर्गीय समाज में प्रचलित अंग्रेजी शब्दों से अपनी ग़ज़लों की भाषा को रूपाकार दिया है। उनकी शायरी में उर्दू, फ़ारसी, अरबी, अंग्रेजी, हिंदी व भोजपुरी शब्दों का प्रयोग हुआ है। उनकी भाषा का ग्राफ विविधवर्णी व प्रयोगधर्मी रहा है। यद्यपि अत्यधिक प्रयोगशीलता के कारण उनके कुछ शेर सपाटबयानी के शिकार हो गए हैं, फिर भी कर्णप्रिय शब्दावली का चयन, लयात्मकता और भाषा प्रवाह उनकी प्रयोगधर्मिता के इस कमजोर पहलू को आच्छादित कर देते हैं।

2.7 रामकुमार कृषक

समकालीन हिंदी ग़ज़ल की धरती पर 'कृषक' के समान आजीवन अभावों के वनवासी कष्टों को भोगते हुए, सामयिक दौर में जनविरोधी षड्यंत्रों के सूत्रधार रावणी सत्ता शक्ति संस्थानों के अमानवीय राक्षसी कृत्यों पर अपनी शायरी के धनुष से व्यंग्य के तीक्ष्ण तीर संधान कर उनके विद्रूप चेहरे के छेदन तथा जन के साथ संवाद कर जीवन मूल्य व समता आधारित समाज एवं समृद्धिमूलक राम राज्य की स्थापना का रचनात्मक संघर्ष करने वाले वय से वृद्ध पर मन से युवा 'कुमार राम' है लब्ध प्रतिष्ठित ग़ज़लगो रामकुमार कृषक। अपनी लेखनी के हल से शायरी की ज़मीन पर ग़ज़लों की खेती किसानी करने वाले 'रामकुमार' ऐसे जनवादी 'कृषक' हैं जो अपने रचनाकर्म से ग़ज़लों की गुलाबी (व्यावसायिक फसलें) नहीं, अपितु 'नीम की पत्तियों' जैसी औषधीय फसलों का सृजन करते हैं। जिनमें वर्तमान युग के समाज एवं मानवता की बिगड़ती सेहत को ठीक कर समाज को तंदुरुस्त व स्वस्थ बनाने की कुव्वत है और यही उनके सृजन का उद्देश्य है। उनकी ग़ज़लें वर्तमान दौर की राजनीति, समाज, संस्कृति व धर्म के क्षेत्र में व्याप्त विसंगतियों-विद्रूपताओं की गिल्टियों की व्यंग्य व प्रतिरोध के धारदार नशतरों से शल्य चिकित्सा कर उनसे मुक्ति तथा बेहतर मानवीय समाज की रचना का सृजनात्मक प्रयास है। उनकी प्रतिबद्धता समग्र मानव जीवन के प्रति है, जिसमें शोषित-पीड़ित आमजन की कष्टों से मुक्ति का स्वर प्रधान है। समाज के हाशिए पर खड़े आमजन की पीड़ा मुक्ति के लिए वे राम व विभीषण सभी तरह की भूमिकाएँ स्वीकारते हैं। और तीर की भाँति तनकर रावणी सत्ता का प्रतिरोध करते हैं तथा दौरे ज़िंदगी की बीमारियों के इलाज़ के लिए संजीवनी बूटी तैयारकर उसका जीवन आस्वाद बदल देने वाली 'नीम की पत्तियों'

जैसी ग़ज़लें कहते हैं। उनकी ये ग़ज़लें उनके 'राम' और 'कृषक' रूप की ओर संकेत करती हैं-

“भेद लंका का सभी जान लिया / हम विभीषण ही सही मान लिया।

राज अपना है पराया राजा / हमने नातों को इम्तिहान लिया।

शीश दस बीस बाहुओं वाले / रावणी राज को पहचान लिया।

हो कोई राम कहीं बनवासी / हम वहीं होंगे यही ठान लिया।

जुल्म काटेगा सिर निजामत का / अभी तो सिर्फ नाक-कान लिया।

काल- धनुर्ही की डोर पर हमने / तीर-सा खुद को स्वयं तान लिया।”⁵⁹

“हम हुए आजकल नीम की पत्तियाँ/ लाख हों रोग हल नीम की पत्तियाँ।

गीत गोली हुए शेर शीरीं नहीं/ कह रहे हम सजल नीम की पत्तियाँ।”⁶⁰

हिंदी ग़ज़ल की जनवादी धारा के सशक्त हस्ताक्षर रामकुमार कृषक का जन्म 1 अक्टूबर, 1946 को उत्तर प्रदेश के गाँव गुलड़िया में हुआ था। वे प्रेमचंद के साहित्य से बहुत प्रभावित हुए तथा उसके प्रभावस्वरूप उन्होंने अपना उपनाम 'कृषक' रखा था। समकालीन हिंदी ग़ज़ल के जनवादी पथ पर चार दशकीय दीर्घावधि से रचना यात्रा कर रहे रामकुमार कृषक के अब तक पाँच ग़ज़ल संग्रह प्रकाशित हुए हैं। उनका प्रथम ग़ज़ल संग्रह 1984 में 'नीम की पत्तियाँ' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। जिसमें आपातकाल से पूर्व और पश्चात के सामाजिक-राजनीतिक परिदृश्य के विविध चित्र चित्रित हैं। दूसरा ग़ज़ल संग्रह 2012 में 'अपजस अपने नाम' नाम से प्रकाशित हुआ। 1990 से 2010 के दौर के हमारे समाज में घटित घटनाओं व स्थिति-संदर्भों को कथ्य बनाकर लिखी गई इस संग्रह की ग़ज़लों में समकालीन यथार्थ की अनेक छवियाँ मौजूद हैं। उनका तीसरा ग़ज़ल संग्रह 'मुश्किलें कुछ और हैं' व चौथा संग्रह 'एकजुट है सब अँधेरे' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। जिनकी ज़मीन जनवादी है तथा जो समकालीन दौर में शोषणकारी शक्तियों की एकजुटता व उनके सामने आम आदमी की बेबसी व मुश्किलों की बयानी हैं। पाँचवाँ ग़ज़ल संग्रह 'पढ़िए तो आँख पाड़े' 2022 में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में 1978 से अब तक की प्रतिनिधि ग़ज़लें हैं, जो एक ओर उनकी रचना यात्रा के पड़ावों व विकास क्रम को संकेतित करती हैं, तो दूसरी ओर इस दीर्घावधि के सामाजिक राजनीतिक परिदृश्य का लेखा-जोखा प्रस्तुत करती

है। सत्ता, समाज और धर्म सभी की सच्चाइयाँ इनमें प्रकट हैं। ये गज़लें समकालीन दौर में राजनीतिक मूल्यहीनता, सत्ता का विकृत चेहरा व चरित्र, उपभोक्तावाद और बाज़ारवाद का सुरसामुखीय आतंकी विस्तार और उससे उपजी सामाजिक-सांस्कृतिक विद्रूपताएँ, आर्थिक विषमता की गहरी होती खाई, धार्मिक आस्थाओं का व्यवसायीकरण आदि सभी युगीन तथ्यों व सत्यों को बेनकाब करती हैं।

‘बंदा तो झोपड़ी का धूल का अदीब है’ मिसरे से आमजन के प्रति अपनी रचनात्मक प्रतिबद्धता का उद्घोष करने वाले रामकुमार कृषक हिंदी गज़ल की जनवादी धारा में एक आइकन की तरह हैं। जिनके लिए गज़ल उस आम अवाम की ‘आह को राह’ देने वाला शब्द विन्यास व साधन है, जो आज़ादी के सूर्योदय के समय से ही हर दिन अपने मुश्किल हालात से मुक्ति व खुशहाल जीवन का स्वप्न देखता है, पर आज तक हर नया दिन जिसके लिए और नयी मुश्किलों से भरा है, जिसका जीवन अँधेरों से घिरा है तथा जो समाज के शासक-शोषक वर्ग के जीवन की सुख समृद्धि को जोड़ने में खुद हासिल होकर रह गया है। उनकी गज़लें विकास की मुख्यधारा से दूर समाज के हाशिए के मेहनतकश व वंचित- किसान, मजदूर, दलित, स्त्री आदि वर्गों के सपनों-संघर्षों तथा मूक पीड़ा को जुबाँ देने का साधन व सहारा बनती है तथा उसकी इस दशा के लिए जिम्मेदार रावणी सत्ता शक्तियों का प्रतिरोध करती है। इन संदर्भों में ये गज़लें द्रष्टव्य हैं-

“ये गज़ल है ही नहीं सिर्फ इतिला साथी/ आह को राह मिली मजदूर को सिला साथी।
हमने गूंगों की जुबाँ कुंद कलम को सौंपी/ जिससे बहरे भी रहे आज तिलमिला साथी।”⁶¹

“मुश्किलों पर मुश्किलें लाता है दिन / खोलकर कुछ और कस जाता है दिन।
रोटियों के वास्ते रोता कहीं / रोटियों के वास्ते गाता है दिन।
जोतकर हर हाल ऊसर में हमें / दूसरों की फसल बन जाता है दिन।
बेबसी बैसाखियाँ थामे हुए / पास से निकला चला जाता है दिन।
सोचता है आज उबेरगा मगर / आज के सँग डूब खुद जाता है दिन।”⁶²

कृषक जी की यही जन प्रतिबद्धता उनकी गज़लों के प्रधान स्वर राजनीतिक चेतना का कारण रूप है। “हमारे हाथ से सूरज का क़त्ल तो न हुआ/ हमारे वास्ते फिर कैसे रात और हुई।”⁶³ शेर में एक और आमजन की दीर्घकालिक पीड़ा की

छटपटाहट व बेचैनी है, तो दूसरी ओर इसमें अप्रत्यक्ष रूप से आम आदमी की ज़िंदगी में दुख-दर्दों व अभावों की अँधेरी रात के लिए जिम्मेदार उन भ्रष्ट, स्वार्थलिप्त राजनीतिक शक्ति संरचनाओं के प्रति व्यंग्य का भाव है। जो हर बार चुनावों में आम आदमी के ज़िंदगी को अभावों व दुखों के काले घने अँधकार से बाहर निकाल कर उसकी ज़िंदगी में सुख समृद्धि की रोशनी के लिए विकास के सूर्योदय का आश्वासन देते हैं, पर उनकी यह आश्वास्ति रेगिस्तान में तैरना सिखाने की बात के समान झूठी व षडयंत्रकारी होती है, जिसके माध्यम से उनका निशाना केवल कुर्सी पर होता है। कुर्सी प्राप्त होते विकास का सूरज उस सत्ताधारी वर्ग की ऊँची इमारतों में ही कैद होकर रह जाता है तथा आम आदमी की फुटपाथी ज़िंदगी अँधेरो से घिरी रहती है। कृषक जी इस विद्रूप यथास्थितिवाद में क्रांतिकारी परिवर्तन के लिए शोषित-पीड़ित जन की सांगठनिक शक्ति की आवश्यकता को महसूसते हुए उसमें सामूहिक क्रांति बोध जाग्रत करते हैं। उनके ये शेर देखिए -

“जशने आज़ादी के दिन हैं जशने-आज़ादी के बाद

क्या बुरा आबाद हों गर लोग बरबादी के बाद

लोग नंगे और अधनंगे करोड़ों हैं तो हैं

रहनुमाओं ने ही कब पहना है कुछ खादी के बाद।”⁶⁴

“रोटियों का मुद्दा दिल्ली से सुलझेगा नहीं/और भूखा इस बहस में और उलझेगा नहीं।
मुद्दों से चाँद थाली में परोसा जा रहा/ इस निरे बहकावे को अब कौन समझेगा नहीं।
अब तो खाली पेट में बारूद भरकर आदमी/ गुंबदों में जा फटेगा सिर्फ सुलगेगा नहीं।”⁶⁵

रामकुमार कृषक समकालीन हिंदी ग़ज़ल लोक में ग्राम्य संवेदना के पंचदेवों में राम (विष्णु) हैं। ग्राम्य चेतना से पूरित उनकी ग़ज़लों में ग्रामीण परिवेश अपने समग्र रूप में जीवंत है। जिसमें सामाजिक-आर्थिक विकास की अनेक योजनाओं व उपलब्धियों के शोर के बावजूद विकास व आधुनिकता की दौड़ से दूर गाँवों के पिछड़ेपन, गाँवों में भूख, गरीबी व बेकारी की समस्याओं, ग्रामीणों का गाँवों से शहरों की ओर पलायन, गाँवों के प्राकृतिक-सामाजिक परिवेशगत सौंदर्य के हास के शब्द-चित्र हैं, तो मूल्यों के पतन के इस दौर में गाँवों को सदियों के उदात्त सामाजिक-

सांस्कृतिक मूल्यों के वाहक व प्रेरक के रूप में भी चित्रित किया गया। यह ग़ज़ल इन्हीं भावों को समेटे हैं-

“आइए, गाँव की कुछ खबर ले चलें/ आँख भर अपना घर खंडहर ले चलें।

धूल सिंदूर थी कल तलक माँग में / आज विधवा सरीखी डगर ले चलें।

एक सुबहा सुबकती सिमटती हुई / साँझ होती हुई दोपहर ले चलें।

देह पर रोज़ आँकी गई सुखियाँ / चीथड़े खून से तर-ब-तर ले चलें।

खेत-सीवान हों या कि हों सरहदें / चाक होते हुए सब्ज़ सर ले चलें।

देश दिल्ली की अँगुली पकड़ चल चुका/ गाँव से पूछ लें अब किधर ले चलें।”⁶⁶

रामकुमार कृषक जी कथ्य और शिल्प दोनों ही स्तरों पर ग़ज़ल की रूढ़िगत दीवारों को तोड़कर नए प्रयोगों के द्वार खोलते हैं। “हम नहीं कहते ग़ज़ल के हुस्न पर मत जाइए/ इस सराफा हूर को कुछ रूह के गहने भी दे।”⁶⁷ शेर ग़ज़ल रचना में रूप की अपेक्षा भाव को महत्व देने संबंधी उनकी दृष्टि को उजागर करता है। उन्होंने अपने समय की चुनौतियों को प्रतिबिंबित करने की बेचैनी में बहरों व रूप की बंदिशों को नज़रअदाज़ करते हुए कविता की तरह एकाशयी शेरों के फूलों से ग़ज़लों की मालाएँ गुंथी है। तथापि ग़ज़ल के शिल्प व संक्षिप्तता का रक्षण करते हुए जनप्रचलित शब्दों में समकालीन यथार्थ को बखूबी उकेरा है। ये ग़ज़लें पाठक के दिल दिमाग पर गहरी छाप छोड़ती हैं। तथा ज़माने को देखने समझने की दृष्टि देती हैं। शेर द्रष्टव्य हैं-

“पढ़िए तो आँख पाइए सुनिए तो कान हो

मुमकिन है दिल दिमाग पर गहरे निशान हो।”⁶⁸

रामकुमार कृषक जी की ग़ज़लों की रेंज जीवन के सभी संदर्भो-क्षेत्रों तक है। राजनीति, बाज़ार, भ्रष्टाचार, धर्म, सांप्रदायिकता, शिक्षा, स्वास्थ्य, घर-परिवार-रिश्ते, वंचित वर्गों, समाज के सभी क्षेत्रों व सभी वर्गों के सच्चे छवि चित्र उनकी ग़ज़लों में मौजूद है। हमारे समय की सच्चाइयाँ उनके शेरों में यक्ष प्रश्नों की तरह सामने आती हैं। और ये शेर हमसे बतियाते हुए लगते हैं, जैसे जीवन के मैदान में खड़े होकर आँखों देखा हाल सुना रहे हो। जिससे हमारे समय की तफ़सील नए अदाज़ में जीवंत रूप में हमारी आँखों के सामने प्रत्यक्ष हो जाती है। मनुष्यता के प्रति प्रतिबद्ध कृषक जी अपनी ग़ज़लों से नया मानवीय समाज बनाने का संदेश देते हैं। उनकी ग़ज़लें

इंसानी बंजरपन के दौर में मानवता को बचाए रखने का संदेश देने के लिए मानव समाज के नाम लिखे गये खत हैं। जिनको जेहन व आचरण में सँभालने की वक़्त-ए-ज़रूरत है।

“इन खतों को सँभालकर रखना / दौरे-वीरान में शजर रखना।
हर तरफ़ बुत हैं और बुतखाने / अपने अहसास पर नज़र रखना।
ज़िंदगी बूँद भर नहीं होती / दिल को हर हाल समंदर रखना।
लोग खुश हैं कि हैं मकानों में / अपनी चाहत में एक घर रखना।”⁶⁹

2.8 विनय मिश्र

समकालीन हिंदी ग़ज़ल के कैनवास पर ग़ज़ल के परंपरागत नाज़ुक अर्थात् ‘विनय’ मिज़ाज में सामयिक कटु यथार्थ के ‘मिश्र’ से हिंदी ग़ज़ल के मुहावरे के विशिष्ट रंग उकरने वाले ग़ज़लगो है विनय मिश्र। ग़ज़ल के अनुशासन और सलीके से पूरी तरह वाकिफ़ विनय मिश्र हिंदी ग़ज़ल को प्राण प्रण से प्रतिष्ठित करने तथा उसको यथोचित सम्मान दिलाने के लिए समर्पित है। वे ग़ज़ल को समाज जीवन की नदी बनाकर उसकी धुन में बहते हैं तथा सादगी से ज़िंदगी की बयानी को ग़ज़ल की ज़िंदगानी बनाते हैं। विनय मिश्र की ग़ज़ल रचना कर्म का मूल्यांकन करते हुए नचिकेता अपने गीत में लिखते हैं कि विनय मिश्र की कलम से निकल कर ही हिंदी ग़ज़ल अपना मुँह खोलती है तथा कुछ अर्थ बोलती है। उनकी ग़ज़लों के कुछ शेरों से ये बातें स्पष्ट होती हैं-

“ये समय का खुरदरापन है इसी पर तो
मेरी ग़ज़लों की उगी है मखमली घासें।”⁷⁰

“ग़ज़ल अब वो नदी है ज़िंदगी की
में जिसकी धुन में बहता जा रहा हूँ।”⁷¹

“सादगी से ज़िंदगी की बात
अब ग़ज़ल की ज़िंदगानी है।”⁷²

नचिकेता के गीत की पंक्तियाँ-

“गज़ल जहाँ कुछ बोल रही वह विनय मिश्र है

गज़ल अर्थ निज खोल रही वह विनय मिश्र है।”⁷³

समकालीन हिंदी ग़ज़ल के सशक्त हस्ताक्षर डॉ. विनय मिश्र का जन्म 12 अगस्त, 1966 को देवरिया, उत्तर प्रदेश में हुआ था। उन्होंने काशी हिंदू विश्वविद्यालय से में हिंदी में पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। विनय मिश्र के अब तक पाँच ग़ज़ल संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। प्रथम ग़ज़ल संग्रह 2012 में ‘सच और है’ शीर्षक से प्रकाशित हुआ। यह संग्रह वर्तमान दौर के प्रतीयमान यथार्थ और वास्तविक यथार्थ के अंतर को उजागर करते हुए पाठक वर्ग को अपने समय और समाज के प्रति सचेत करता है। तथा उसे समझने की एक दृष्टि देता है। विनय जी ने भूमंडलीकरण व बाज़ारी संस्कृति के साम्राज्यवादी दौर में सत्ता लालसा, आर्थिक लाभ व निजी स्वार्थ के लिए अलग-अलग संस्थानों द्वारा बहुत ही चतुराई से प्रचारित झूठे सच और उसके पार्श्विक प्रच्छन्न वास्तविक सच को मुखर रूप में बेनकाब किया है, जो उनकी गहरी अनुभवशील संवेदना की उपज है। संग्रह की शीर्षक ग़ज़ल के ये शेर ज़माने के गोपन सच की बयानी है-

“ढोल सियासत पीठ रही है जो दिन-रात विकास का

पेटभरे का झूठ यही है भूखों का सच और है।

सूख रहा उम्मीदों का जल छलनाओं की धूप में

आँखों देखी दुनिया झूठी आँखों का सच और है।”⁷⁴

विनय मिश्र का दूसरा ग़ज़ल संग्रह ‘तेरा होना तलाशूँ’ 2018 में आया। युग चेतना से संपन्न इस संग्रह में विनय जी की राजनीतिक, सामाजिक तथा मानवतावादी चेतना उम्दा अदाज़े-बयाँ के साथ मुखरित हुई है। सामयिक दौर में जबकि आर्थिक तथा साम्राज्यवादी ताकतें जीवन के सौंदर्य तत्वों को नष्ट कर विद्रूपताओं की जमीं से अपने सपनों की फ़सलें उगाने की कोशिश में लगी है। विनय जी इन ग़ज़लों से युग के प्रश्नों के उत्तर तलाशते हुए इन विद्रूपताओं के बीच जीवन सौंदर्य की तलाश करते हैं। संग्रह की एक ग़ज़ल प्रस्तुत है -

“क्या खूब तमाशा है दिखाने की कवायद / है घर में भी बाज़ार लगाने की कवायद।

इंसाफ़ जिसे कह रहे हैं आप तो क्यों है / क्रांतिल को सलाखों से बचाने की कवायद।

कुछ लोग जहाँ भूख से मरते हैं वहीं अब / होने लगी है सपने सजाने की कवायद।
दहशत की हवाओं ने बुझाया था जिसे कल / करता हूँ वही शम'अ जलाने की
क्रवायद।

जो बर्फ जमी है यही पिघलेगी किसी रोज़/ जिंदा है उमीदों को बचाने की कवायद।”⁷⁵

विनय मिश्र का तीसरा ग़ज़ल संग्रह ‘लोग जिंदा है’ शीर्षक से 2021 में प्रकाशित हुआ। यह संग्रह अपने समय और समाज की धड़कन है। इसमें 21वीं सदी की तमाम सच्चाइयाँ, मुद्दे व विसंगतियाँ यथा मूल्यों, संवेदना व नैतिकता का क्षरण, छल-प्रपंच का बढ़ता प्रसार, राजनीतिक षड्यंत्र, बाज़ारवाद का आतंकी चेहरा, गरीबी व बेरोजगारी जैसी समस्याएँ तथा आकाशी भौतिक उन्नति के बावजूद बदहाल जीवन दशाएँ सभी कुछ रेखांकित है। विनय जी इन ग़ज़लों में आज के दौर में भौतिकता की चकाचौंधपूर्ण बिजलियों के कारण आए बदलावों तथा बेचैनियों को उजागर करते हुए समकाल में वैज्ञानिक, बौद्धिक तथा भौतिक उन्नति की कोख से जन्म ले रहे आसन्न खतरों की ओर संकेत कर मानव समुदाय को इनके प्रति सचेत करते हैं। इन संदर्भों में कुछ ग़ज़लें या अशआर प्रस्तुत हैं -

“कहाँ सच्चाइयों का दौर है ये / महज मक्कारियों का दौर है ये।
यहाँ हाथों को कोई काम भी है / या केवल अर्जियों का दौर है ये।
समूची जिन्दगी ही पिस रही है / अनोखी चक्कियों का दौर है ये।
मसीहा भी वही है जो है कातिल / अजब दुश्वारियों का दौर है ये।
बुझाना प्यास को मुमकिन नहीं है / बड़ी बेचैनियों का दौर है ये।
यहाँ सबको सहारा भीड़ का है / मगर तन्हाइयों का दौर है ये।”⁷⁶

“इन्हीं में बदलियाँ देखूँ इन्हीं में बिजलियाँ देखूँ
इन्हीं ग़ज़लों में अपने दौर की बेचैनियाँ देखूँ।”⁷⁷

“ये जो सारा दिमागी सफर है / इस तरक्की में भी एक डर है
कितनी ऊँचाई से हम गिरेंगे / क्या हमें इसकी कोई ख़बर है
हर तरफ़ सोने के ही हिरन हैं / चाहतों का तिलस्मी नगर है।”⁷⁸

विनय मिश्र का चतुर्थ गज़ल संग्रह 'ज़िंदगी आने को है' शीर्षक से 2023 में आया। यह संग्रह वर्तमान सदी में आए सभी परिवर्तनों को रेखांकित करते हुए समकाल की आवाज़ बनकर पाठक के सामने आता है। यह वर्तमान दौर में राजनीतिक मूल्यों की गिरावट, सामाजिक-आर्थिक विषमता, धार्मिक पाखंड व उन्माद एवं सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन के संकटों को उजागर करता है। इस संग्रह में संकलित यह गज़ल आज के युग में व्यक्ति की सोच में हावी होती बाज़ारवादी व उपभोक्तावादी मानसिकता, व्यक्ति की भागमभाग भरी वयस्त यांत्रिक जीवन शैली, चरित्रिक पतन तथा भौतिक उपलब्धियों के बावजूद व्यक्ति मन के आंतरिक खोखलेपन व पराजय बोध को व्यक्त करती है।

“सोच में बाज़ार बाज़ारों में बैठा आदमी / सिर्फ सपने देखता है इस सदी का आदमी।

झूठ के दो चार जुमले याद कर के देखिए / बन गया मौकापरस्ती का नमूना आदमी।

आ गई है दुख छुपाने की कला जबसे उसे/ अब कभी रोता नहीं है मुस्कुराता आदमी।

कल का सूरज ढूँढ़ना है अपना चश्मा पोछकर/दिन के डूबे काम में रातों में जागा आदमी।

है विजय के दर्प में जो चूर सबको है पता/ इक पराजित चेतना का है मुखौटा आदमी।”⁷⁹

विनय मिश्र जी का पाँचवाँ गज़ल संग्रह 'रंग बारिश' शीर्षक से 2025 में प्रकाशित हुआ है। विनय मिश्र के लिए गज़ल शौक नहीं साधना है। गज़ल के मूड एवं मिज़ाज से पूरी तरह वाकिफ़ मिश्र जी को गज़ल कहन के सलीके और शऊर में महारत हासिल है। गज़ल में गज़लियत तभी आती है, जब उसमें वस्तु-रूप का सुंदर संयोजन हो तथा इस संबंध में उल्लेखनीय बात यह है कि विनय मिश्र अपनी गज़लों में उर्दू के शिल्प-छंदानुशासन तथा हिंदी कविता के संस्कार और सोच के संयोग से वस्तु-रूप का सुंदर संयोजन करते हैं, जिससे लगता है कि मानो हिंदी गज़ल उनकी लेखनी से निसृत होकर अपने वास्तविक मुहावरे को प्राप्त करती है। उनकी गज़लें ज़िंदगी के सरोकारों से संबंधित हैं। वे गज़ल को दरबारी राग के स्थान पर ज़िंदगी का राग बनाते हैं। मधु खराटे लिखते हैं, “विनय मिश्र अपने समय व स्थिति के भाष्यकार हैं। उनकी गज़लें मन मस्तिष्क को झकझोरती हैं, सच्चाई से साक्षात्कार करती हैं।”⁸⁰ शेर द्रष्टव्य हैं-

“जो गज़ल आई न अब तक थी कभी

वो गज़ल मेरे लिए आई है अब।”⁸¹

“ग़ज़ल में ज़िंदगी का राग आया

था इसमें राग दरबारी अभी तक।”⁸²

2.9 डी. एम. मिश्र

समकालीन हिंदी ग़ज़ल के आकाश में राग और आग, श्रम और सौंदर्य तथा जीवन के कोमल सुरुप प्रेम तत्व और सामयिक जीवन के कटु विद्रूप यथार्थ के अद्भुत व दुर्लभ ‘मिश्र’ से ग़ज़लों के विविध रंगी इंद्रधनुष रचने वाले ग़ज़लकार का नाम है डी. एम. मिश्र। वे हिंदी ग़ज़ल के स्वरूप निर्धारक शिखर ग़ज़लगो दुष्यन्त कुमार व अदम गौडवी की यथार्थवादी और समाजोन्मुख जनवादी ग़ज़ल परंपरा पथ के ऐसे पथिक हैं जिनकी ग़ज़लें अवाम की बोली में अवाम के ज़ख्मों की उपज हैं। जो अपनी ग़ज़लों से गूँगी बहरी आम जनता की मूक पीर को स्वर देते हैं और आम आदमी की इस पीड़ा के लिए जिम्मेदार संवेदनहीन राज व्यवस्था के प्रतिरोध व परिवर्तन के सशक्त हथियार के तौर पर ही ग़ज़लें कहते हैं। लोक शक्ति उनकी ग़ज़लों का प्राण है और इसी के बदौलत उनकी ग़ज़लें व्यवस्था परिवर्तन का माद्दा रखती हैं। शेर द्रष्टव्य है-

डी. एम. मिश्र की शायरी अवाम के दर्द की उपज -

“न मैं कबीर न ग़ालिब न मीर न मोमिन ही

मिला जो ज़ख्म ज़माने से वही गाता हूँ।”⁸³

डी. एम. मिश्र की शायरी अवाम की आवाज़ -

“ग़ज़ल मेरी ताकत, ग़ज़ल ही जुनूँ है

जो गूँगे थे उनकी जुबाँ बन गया मैं।”⁸⁴

डी. एम. मिश्र की शायरी व्यवस्था परिवर्तन का हथियार-

“अब ये ग़ज़लें मिज़ाज बदलेंगी / बेईमानों का राज बदलेंगी।

जिसमें इंसानियत की बात न हो/ ग़ज़लें ऐसा समाज बदलेगी।

ख़ूब दरबार कर चुकीं ग़ज़लें / अब यही तख़्त-व-ताज बदलेंगी।”⁸⁵

समकालीन हिंदी ग़ज़ल के जाने पहचाने हस्ताक्षर डींगुर मल मिश्र का जन्म 15 अक्टूबर, 1950 को उत्तर प्रदेश के सुल्तानपुर जिले के मखापुर गाँव में हुआ था। वे बचपन से ही कविता लिखने लगे थे। डी.एम.मिश्र के अब तक छह ग़ज़ल संग्रह

प्रकाशित हो चुके हैं। प्रथम ग़ज़ल संग्रह 'उजाले का सफर' शीर्षक से 2006 में तथा द्वितीय ग़ज़ल संग्रह 2012 में प्रकाशित हुआ। तीसरा ग़ज़ल संग्रह 'आईना दर आईना' नाम से 2016 में प्रकाशित हुआ। अपने नाम को चरितार्थ करते हुए इस संग्रह की ग़ज़लें हमारे समय, समाज व सत्ता के युगीन सत्यों को परत दर परत आईना दिखाती है। चतुर्थ ग़ज़ल संग्रह 'वो पता ढूँढे हमारा' 2019 में प्रकाशित हुआ। अपने शीर्षक के अनुरूप इस संग्रह की ग़ज़लें पूँजीवादी व महानगरीय संस्कृति के इस दिखावटी दौर में गुमनाम ज़िंदगी जीने वाले समाज के मेहनतकश आम आदमी को ढूँढती है, उसके जीवन संघर्षों का परिचय देती है। पाँचवाँ संग्रह 'लेकिन सवाल टेढ़ा है' 2020 में आया। यह संग्रह उनके पिछले संग्रह का अगला पड़ाव है। इसमें वे हाशिए के आम आदमी की पीड़ा के लिए उत्तरदायी सत्ता से निर्भीकता के साथ टेढ़े व उलझाऊ सवाल करते हैं। छठा ग़ज़ल संग्रह 'सच कहना यूँ अंगारों पर चलना होता है' शीर्षक से 2025 में आया। जिसमें समकाल में सच की राह की दुश्वारियों का बयाँ है। इनके अतिरिक्त 'समकाल की आवाज़' नाम से उनकी चयनित ग़ज़लों का संकलन 2022 में तथा जीवन सिंह के संपादकत्व में चयनित ग़ज़लों का संकलन 'डी. एम. मिश्र ग़ज़ल संचयन' शीर्षक से 2023 में आया। जो उनकी शब्द व ग़ज़ल साधना का प्रतिफल है। शेर द्रष्टव्य है-

“न मैं साधक हूँ, न मैं कोई संत हूँ

शब्द को बस साधना तक ले गया।”⁸⁶

डी. एम. मिश्र सही मायने में आम अवाम के ग़ज़लकार हैं। जनवादी चेतना उनकी ग़ज़लों का मुख्य स्वर है। या कहें कि उनकी ग़ज़लों की पैदाइश विकास की मुख्यधारा से वंचित शोषित-पीड़ित हाशिए के समाज के ज़ख्मों से हुई है, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं। वंचित समुदाय के सभी वर्गों- किसान, मजदूर, दलित, स्त्री, बाल, वृद्ध आदि की पीड़ा की दर्दभरी कसक उनकी ग़ज़लों में साफ़ सुनाई देती है। इन ग़ज़लों को पढ़ते समय शोषित-पीड़ित व वंचित समाज की त्रासदियों, विडंबनाओं और उसकी संघर्षशीलता के बहुविध बिंब पाठक के मन-मस्तिष्क में उभरते हैं। मिश्र जी ने जीवनानुभवों से महसूस किया है कि भ्रष्ट और स्वार्थपरता में आकंठ निमग्न असंवेदनशील व क्रूर सत्ता ही आम आदमी के दर्दों का मूल कारण है। इसलिए वे अपनी ग़ज़लों से सत्ता के इस विकृत चरित्र को उजागर कर व्यवस्था परिवर्तन की ज़मीन तैयार करते हैं। कुछ शेर पेश हैं-

मेहनतकश किसान-मजदूर वर्ग की अभावभरी कष्टमय ज़िंदगी का चित्र-

“विरासत में मिला था बाप दादाओं से जो उसको

अभी तक वह बिछौना है वही कंबल पुराना है।”⁸⁷

सत्ता का विकृत चेहरा-

“सत्ता की कामयाबियों में देखिए उसे/ जनता की परेशानियों में देखिए उसे।

जनता को सिर्फ आँकड़े दिखा रहा है वो/ यूँ झूठ की उपलब्धियों में देखिए उसे।

कहने को तो वह माननीय हो गया मगर/ इस मुल्क की बरबादियों में देखिए उसे।

अपराधियों में कल तलक उसका शुमार था/ अब कर्णधार मंत्रियों में देखिए उसे।”⁸⁸

डी. एम. मिश्र समकालीन हिंदी गज़ल के पंचदेवों में शामिल ब्रह्मा है, जो शहर में बसने के बाद भी अपने रचना संसार को शहरी मध्यमवर्गीय संवेदना तक सीमित करने के बजाए ग्राम्य चेतना से भी अनुप्राणित रखते हैं। वे कहते हैं, “सितारों के नगर में चाहता तो मैं भी बस जाता/ पर अपने गाँव से नाता कभी तोड़ा नहीं मैंने।”⁸⁹ उनकी ग्राम्य चेतना संवेदनात्मक ज्ञान की उपज है, केवल पुस्तकीय नहीं। वैश्वीकरण के इस दौर में अब धीरे-धीरे गाँवों में भी महानगरीय संस्कृति, बाज़ारवाद व उपभोक्तावाद पैर पसारता जा रहा है, जिसके परिणामस्वरूप गाँव का मूल आत्मिक ढाँचा ध्वस्त होने लगा है। और ग्रामीण जीवन शैली में बंधुत्व व आत्मीयता के हास, आत्मकेन्द्रितता की वृद्धि, गाँव से शहरों की ओर पलायन तथा पंचायती राज के माध्यम से भ्रष्टाचार, छल-कपट व अपराध जैसी विकृतियाँ बढ़ती जा रही है। मिश्र जी का ग्रामीण संस्कारी मन गाँवों में हो रहे इन नकारात्मक बदलावों को नहीं स्वीकारता है। और वे अपनी गज़लों से गाँव के बदलते परिवेश को उद्घाटित कर उसके मूल सौंदर्य को बचाए रखने के आकांक्षी है। उनके कुछ शेर पेश हैं-

गाँव के आत्मिक सौंदर्य का हास-

“गाँव भी अब कहाँ सुरक्षित है / अब यहाँ की हवा भी दूषित है।

गाँव में गाँव जैसा क्या है अब / घर भी अपना लगे अपरिचित है।

क्या हुई आपसी परस्परता / व्यक्ति सिर्फ आत्मकेन्द्रित है।”⁹⁰

गाँव के मूल स्वरूप को बचाने की आकांक्षा-

“गाँव में जब तक सरपत है बेघर नहीं है कोई

सरपत संगमरमर हो जाये ऐसा कभी न हो।”⁹¹

डी. एम. मिश्र की हिंदी गज़लें उर्दू गज़ल की नाज़ुकता तथा बहर की बंदिशों को हू-ब-हू न निभाते हुए भी बिना लाग लपेट के अनलंकृत शैली में साफ़गोई के साथ सीधे कहन के कारण दिल व दिमाग को सुकून देती हैं, और पाठक के ज़ेहन और जुबान पर चढ़ती हैं। उनकी शायरी अभिधा के प्रति अधिक आग्रही है। अभिव्यक्ति में नाटकीयता व सांकेतिकता नहीं, अपितु सहजता व सरलता है और यही उनके गज़लों की प्राण शक्ति है। यद्यपि सपाटबयानी के कारण कहीं-कहीं शेरियत का हास भी होता है। उनका यह शेर उनकी शायरी की साफ़गोई की सीधी स्वीकारोक्ति है-

“हमारी अदा साफ़गोई हमारी

गज़ल भी इशारों में कहते नहीं है।”⁹²

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि डी. एम. मिश्र की शायरी का कथ्य उनकी जीवनानुभूतियों एवं संवेदनशीलता के दायरे की तरह अत्यंत विस्तीर्ण है। उनकी शायरी जीवन की बहुरंगी शायरी है जिसमें सर्वहारा व ग्राम्य चेतना के रंग तो प्रधान हैं ही, पर इसके अतिरिक्त प्रेम, प्रकृति व सौंदर्य के खूबसूरत रंग भी हैं, तो समकालीन यथार्थ के बदरंग भी हैं। सार रूप में कहा जा सकता है कि मिश्र जी की विविधवर्णी शायरी में राजनीति भी है, धर्म भी है, दर्शन भी है, संस्कृति भी है और समाज जीवन भी है। मिश्र जी राग व आग, प्रेम व प्रतिरोध जैसे विरोधी तत्वों के दुर्लभ संयोजन से युक्त शायरी के सृजन से जीवन की विद्रूपताओं को मिटाकर एक सुंदर दुनियावी बगीचे की रचना करना चाहते हैं। यह उनकी मजबूरी के साथ मजबूती भी है। इस पर शेर पेश है-

**“प्राणों में ताप भर दे वो राग लिख रहा हूँ / मैं प्यार के सरोवर में आग लिख रहा हूँ।
मेरी जो बेबसी है, उस बेबसी को समझो/ उजड़े हुए चमन को मैं बाग लिख रहा हूँ।”⁹³**

2.10 महेश कटारे सुगम

समकालीन हिंदी गज़ल जगत में समाज के अंतिम पायदान पर खड़े आम आदमी की दयनीय व नारकीय जीवन दशाओं की जड़ में निहित सामाजिक व राजनीतिक व्यवस्था के पाखंडों और षड्यंत्रों पर बहुत ही ‘सुगम’ किंतु तल्लख तेवर में प्रतिरोध की तीक्ष्ण ‘कटारे’ (त्रिशूल) चलाकर कुत्सित व्यवस्था के विरुद्ध प्रलयकारी एवं

मानवता के लिए मंगलकारी गान (नाद) का सृजन करने वाले 'महेश' का नाम है महेश कटारे 'सुगम'। सुगम जी आमजन के प्रति प्रतिबद्ध ग़ज़लकार हैं। अतः वे सत्ता की साज़िशों के सामने बेबस आम आदमी पर व्यवस्था के जुल्मों का मौन समर्थन करने के बजाय उसका तीव्र प्रतिरोध कर एक संवेदनशील, जागरूक, चेतस व प्रतिबद्ध ग़ज़लकार के धर्म का निर्वहन करते हैं। उनकी ग़ज़लों का मुख्य स्वर मनुष्य व मनुष्यता के रक्षणार्थ जुल्मी व्यवस्था के प्रति तीव्र आक्रोश व प्रतिरोध का है। और इसी ध्येय के निमित्त वे अपनी ग़ज़लों से जड़ व्यवस्था में बदलाव के सूत्रों एवं मनुष्य मात्र की समता के मंत्रों का मंगल गान करते हैं। तथा मानवता की दृष्टि से परती होती जा रही बंजर धरती पर ग़ज़लों के पेड़ों पर प्रेम के फूल खिला कर उसे इंसानियत की खुशबू से महकाना चाहते हैं। यह ग़ज़ल द्रष्टव्य है-

“मैं ग़ज़लों के पेड़ लगाता फिरता हूँ / खुशहाली के समर पकाता फिरता हूँ।

शेर नहीं ये शाखाएं हैं ग़ज़लों की / मुहब्बतों के फूल खिलाता फिरता हूँ।

वजन, बह के माप तौल का मकसद है / बराबरी का मंत्र सुनाता फिरता हूँ।

नई रदीफें, नए काफिये, नई बहरें / बदलावों के सूत्र जुटाता फिरता हूँ।

जुल्मों का प्रतिरोध दिखाकर मतलों में / उपस्थिति में दर्ज कराता फिरता हूँ।”⁹⁴

बुंदेली ग़ज़ल के पुरोधा महेश कटारे सुगम का जन्म 24 जनवरी, 1954 को उत्तर प्रदेश के ललितपुर जिले के गाँव पिपरई में साधारण किसान परिवार में हुआ था। उनकी प्राइमरी शिक्षा गाँव के स्कूल में ही हुई थी। तथा स्कूली शिक्षा के दौर में वे कविता लेखन करने लगे। महेश कटारे सुगम का प्रथम ग़ज़ल संग्रह बुंदेली में 'गाँव के गेवड़ें' शीर्षक से 1998 में प्रकाशित हुआ था। जनबोली बुंदेली में रचना करने वाले वे पहले ग़ज़लकार हैं और इनका यह ऐतिहासिक रचना कर्म युगों तक उन्हें अमर बनाए रखेगा। हिंदी में उनका प्रथम ग़ज़ल संग्रह 'आवाज़ का चेहरा' 2013 में प्रकाशित हुआ और तब से अब तक एक दशक की अल्पावधि में ही 'दुआएँ दो दरख्तों को' सारी खींचतान में फरेब ही फरेब है, आशाओं के नये महल, शुक्रिया, अय हय हय, ख़्वाब मेरे भटकते रहे, कुछ तो है, ऐसी-तैसी, लाहौल वला कुव्वत, प्रतिरोधों के पर्व, प्यार के साये, आतिशफिशां, सन्नाटा तो बोलेगा आदि शीर्षकों से 14 ग़ज़ल संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, जो ग़ज़ल रचना के प्रति उनके समर्पण व कौशल का परिचायक हैं। उनकी ग़ज़लें महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड वि. वि. छतरपुर के पाठ्यक्रम में शामिल हैं, जो गौरव की बात है।

महेश कटारे 'सुगम' सच्चे अर्थों में जनवादी गज़लकार हैं क्योंकि लोक की साँस व उसके पसीने की गंध से पूरी तरह वाकिफ़ सुगम लोकानुभूत आमजन के कष्टों व जीवनानुभवों को उसकी अपनी लोक भाषा में वाणी देते हुए उसकी बदतर जीवन दशाओं के लिए कारणभूत व्यवस्था के सभी सत्ता प्रतिरूपों का तीव्र प्रतिरोध करते हैं और अपने प्रतिरोध गान से लोक की बिखरी प्रतिरोधी चेतना को संगठित करते हैं। 'सुगम' जी की गज़लें उस मेहनतकश आम आदमी की दुश्वारियों, जीवन संघर्षों, विडंबनाओं तथा उसकी बेबसी को पूरी संवेदनशीलता के साथ मुकम्मल रूप में व्यक्त करती हैं, जो अपने पसीने से समृद्धि व सुख सुविधाओं की फ़सल तैयार करता है, पर जिसका सुख भोग सत्ता के शीर्ष पर बैठे लोग ही करते हैं। और वे उस मेहनतकश को उसकी फ़सल के सुख भोग से वंचित कर भिखारियों जैसी हालत में जीवन यापन करने के लिए विवश कर देते हैं। 'सुगम' आम आदमी के साथ खड़े होते हैं, उसके हकों की आवाज़ बुलंद करते हैं और अंधकारपूर्ण व्यवस्था से संघर्ष करने के लिए उसमें चेतना जाग्रत करते हैं। आम आदमी की पीड़ा तथा उसके प्रति सहानुभूति के भाव से पूरित उनकी गज़ल पेश है

“ज़मीं हमारी छत, दीवारें उनकी हैं/ मेहनत अपनी मगर बहारें उनकी हैं।
कशती काँप रही जीवन की लहरों पर/ पार लगाने को पतवारें उनकी हैं।
कहने को जनतंत्र, मगर ये कैसा है/ वोट हमारा पर सरकारें उनकी हैं।
भिखमंगों की भीड़ उसी में शामिल हम/ लेकिन सब लगवाईं कतारें उनकी हैं।
खड़ा किया है हमने अपनी मेहनत से/ वे सब चीजें कोठी, कारें उनकी हैं।”⁹⁵

“मैं पीड़ित के साथ खड़ा हूँ/ हाँ प्रतिदिन और रात खड़ा हूँ
जुल्म भले ही कद्दावर हो/ बनकर उसकी मात खड़ा हूँ
झाँको तो मन की खिड़की से/ ले सब की बात खड़ा हूँ।”⁹⁶

आम अवाम के हितों के लिए संकल्पित 'सुगम' उसके जीवन की मुश्किल हालात की जड़ में निहित जड़ व बेहयाई व्यवस्था के सभी रूपों- राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक की न केवल पहचान करते हैं, बल्कि उनके खिलाफ़ प्रतिरोध का तीव्र शंखनाद भी करते हैं। वे अवाम की जीवन गरिमा के लिए आज व राज को बदलना चाहते हैं। आमजन के प्रति उनकी यह संकल्पबद्धता है कि जब तक

जुल्म रहेंगे, उनका अंत नहीं होगा, तब तक उनका प्रतिरोध जारी रहेगा। वे अपनी ग़ज़लों से आमजन में भी यह प्रतिरोधी चेतना जागृत करते हैं और उनकी सुप्त व छितरी प्रतिरोधी चेतना को संगठित कर व्यवस्था के विरुद्ध क्रांति व आक्रोश से भरा एक बड़ा प्रतिरोधी चेतना पुंज व वर्ग तैयार करते हैं। उन्हें विश्वास है कि इस अन्यायी व्यवस्था का एक न एक दिन अंत होगा। दुष्यन्त ने राजनीति को ग़ज़ल का विषय बनाया। अदम ने उसे आगे बढ़ाया, तो सुगम ने दोनों से आगे बढ़कर ग़ज़ल को राजनीति पर प्रहार करने का एक सशक्त व कारगर हथियार बनाया। उनकी ग़ज़लों में ये भाव द्रष्टव्य हैं-

“जब तक जुल्म रहेगा तब तक लिखना है/ जब तक गलत लगेगा तब तक लिखना है।

बहरा, गूंगा सत्ता का ये सिंहासन / जब तक नहीं सुनेगा तब तक लिखना है।

नरभक्षी हर पेड़ यहाँ दौलत वाला / फूले और फलेगा तब तक लिखना है।

हर किसान, मज़दूर बेदखल हक़ से हैं/ जब तक नहीं मिलेगा तब तक लिखना है।”⁹⁷

“हमारा प्यार अंगारा, तुम्हारा प्यार अंगारा

हमें भी हो गया प्रतिरोध का स्वीकार अंगारा।

सुनाकर दास्ताँ अपनी इकट्ठे हो गए हैं सब

सहज ही बन गया है इक बड़ा परिवार अंगारा।

भले ही जुल्म की दीवार ये मजबूत हो कितनी

जलाकर राख कर देगा हर एक दीवार अंगारा।”⁹⁸

सुगम हिंदी ग़ज़ल में ग्राम्य चेतना के पंचदेवों में महेश है। उनका ग्राम्य बोध उनके ग्रामीण जीवन के अनुभूत ज्ञान की उपज है। उनकी ग़ज़लों में गाँव के परंपरागत प्राकृतिक-सामाजिक-सांस्कृतिक सौंदर्य, जीवनमूल्यों के सौंदर्य एवं श्रम सौंदर्य के चित्रण के साथ वैश्वीकरण के दौर में बाज़ारवाद, उपभोक्तावाद तथा राजनीतिक व्यवस्था के षड्यंत्रों के गाँवों तक प्रसार के कारण ग्रामीण जीवन सौंदर्य के नष्ट होने, जीवन मूल्यों के क्षरण तथा सामाजिक-सांस्कृतिक ढाँचे के विघटन के रूप में बदलते समकालीन ग्रामीण परिवेश का चित्रण भी है। इन ग़ज़लों में गाँवों के उस दर्द का भी बयौं है, जो विकास की रोशनी की पहुँच से दूर आज भी पिछड़ेपन के

अँधेरे में डूबे होने तथा नगरीकरण, औद्योगीकरण व विकास योजनाओं के नाम पर गाँवों के विस्थापन से पैदा हुआ है। गाँव के जीवन सौंदर्य के क्षरण का चित्र प्रस्तुत करती ग़ज़ल पेश है-

“हमारे गाँव में भी अब सियासत आन पहुँची है
दिलों को तोड़ने वाली अदावत आन पहुँची हैं।
हर इक बेटी को सारा गाँव बेटी ही समझता था
नजर में अब वहाँ गंदी शरारत आन पहुँची हैं।
पुलिस थाने के शब्दों को जहाँ असगुन समझते थे
वहाँ चोरी, डकैती, भय, जमानत आन पहुँची हैं
जहाँ सच्चाई की इज्जत किया करते थे सब दिल से
वहाँ पर आजकल दौलत की शोहरत आन पहुँची है।”⁹⁹

महेश कटारे ‘सुगम’ यथार्थवादी ग़ज़लकार है। उन्होंने अपनी ग़ज़लों को समकालीन सच्चाइयों के विस्तृत कैनवास में रंगा है और उनमें परिवेश की आंचलिकता से लेकर सम्पूर्ण धरती का चक्कर लगाती वैश्विक संवेदना के चित्र चित्रित हुए हैं। उनकी ग़ज़लें हमारे समय से सीधा साक्षात्कार करती हैं और समकालीन जीवन के हर क्षेत्र में व्याप्त विसंगतियों, विडंबनाओं व विद्रूपताओं के एक-एक काले रेशे को खोलकर हमारे सामने लाती हैं। कहा जा सकता है कि इन ग़ज़लों की बनावट-बुनावट में समकालीन समय और समाज के सभी श्वेत-श्याम धागे हैं। वर्तमान दौर की राजनीति के छल छद्म, राजनीति का अपराधीकरण, वैज्ञानिक उन्नति के दौर में भी अंधविश्वास, पाखंड व धार्मिक कट्टरता की वृद्धि, नवपूँजीवाद व बाज़ारवाद के दौर में सामाजिक सांस्कृतिक ढाँचे का विघटन एवं इससे उपजी विद्रूपताएँ जैसे मानवता का हास, मूल्यों का विकृत होता स्वरूप, घटती संवेदना व बढ़ता एकाकीपन, पूँजी की अतृप्त लालसा, रिश्तों की बदहाली सभी का यथार्थ चित्रण हुआ है। उनकी इस ग़ज़ल में बदलते जीवन मूल्यों व स्थितियों का यथार्थ चित्रण इस प्रकार हुआ है-

“जो जितना बदमाश यहाँ पर / वो है उतना ख़ास यहाँ पर।
संत वही सबसे ऊँचा जो / करता भोग, विलास यहाँ पर।
लूटपाट, अपराध, झूठ का / होता है अभ्यास यहाँ पर।

सच्चाई, ईमान, प्यार को / दे डाला बनवास यहाँ पर।

बता रहे हैं अँध्यारे को / फैला हुआ प्रकाश यहाँ पर।

तृप्ति और भी बढ़ा रही है / कुछ लोगों की प्यास यहाँ पर।”¹⁰⁰

सुगम जी की ग़ज़लें शिल्प की दृष्टि से उनके उपनाम ‘सुगम’ को चरितार्थ करती हैं। सुगम जी ने बहुत ही सुगम व सहज-सरल रूप में बिना किसी लाग लपेट व अलंकरण के साफ़गोई के साथ ग़ज़लें कही हैं। अभिधा के प्रति आग्रही ये ग़ज़लें पाठकों के लिए सहज ग्राह्य व बोधगम्य हैं। यद्यपि कथ्य पर ही अधिक जोर होने के कारण सुगम जी की ग़ज़लें सपाटबयानी व कलात्मक बिखराव की शिकार हो गई हैं तथा कहीं-कहीं उर्दू बहरों पर भी ये खरी नहीं उतरती हैं। कारण यह है कि वे ग़ज़ल में शिल्प की अपेक्षा भाव पक्ष को अधिक महत्व देते हैं। इस संबंध में यह ग़ज़ल देखी जा सकती है-

“ये ग़ज़ल वो ग़ज़ल नहीं भैंये / जिस्म सूरत शकल नहीं भैंये।

बात महबूब की नहीं इसमें / कल्पना की फ़सल नहीं भैंये।

इसके शेरों की तख्तियां मत कर / इसमें उर्दू दखल नहीं भैंये।

कथ्य पर शिल्प कर दिया कुरबाँ / जब मिला और हल नहीं भैंये।”¹⁰¹

निष्कर्षतः महेश कटारे सुगम का ग़ज़ल साहित्य समकालीन जीवन का यथार्थवादी लेखा-जोखा है। सर्वहारा की पीड़ा व सत्ता के प्रतिरोध के मुख्य स्वर के साथ ये ग़ज़लें हमारे समय की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक व सांस्कृतिक जीवन की विसंगतियों- विद्रूपताओं की सच्चाइयों को आईना दिखाती हैं, तो इसके साथ ही जीवन की गरिमा, चमक व सौंदर्य को बचाए रखने की पैरवी भी करती हैं।

2.11 डॉ. शिव ओम अम्बर

समकालीन हिंदी ग़ज़ल के ‘अंबर’ में अपनी ग़ज़ल सृजना से मनुष्यता के क्षरण के युगीन तथ्यों पर तीक्ष्ण व्यंग्य प्रहार कर मानव समाज के ‘शिव’ के लिए शाश्वत जीवन सत्य के सुंदर भाव-शब्द संयोजन से ध्वन्यात्मक ‘ओम’कारी नाद भरने वाले ग़ज़लगो हैं शिवओम अम्बर। इसी बात को यूँ भी कहा जा सकता है कि अंबर जी की ग़ज़ले युगीन ‘सत्य’ का उद्घाटन कर मानवता के ‘शिव’ के लिए सुष्ठु शब्दावली में ‘सुंदर’ भावाभिव्यक्ति हैं। वे दुष्यन्त कुमार के राजनीतिक चेतना संपन्न व्यवस्था परिवर्तनकामी अग्निधर्मा ग़ज़ल पथ के राही हैं, जो अपनी ग़ज़लों से

समकालीन कटु यथार्थ का विषपान कर उसमें बदलाव हेतु 'आराधना अग्नि (क्रांति) की करते हैं, जिसका उद्देश्य लोककल्याण है। अपने ग़ज़ल संग्रह 'विष पीना विस्मय मत करना' की संक्षिप्त भूमिका में उन्होंने लिखा है-“ग़ज़ल मेरे लिए सबसे पहले अनय के प्रति आक्रोश की उद्भावना रही, अग्नि की आराधना रही। तदुपरांत गार्हस्थिक प्रीति की प्रस्तावना बनी, सामाजिक सद्भावना की मंगल कामना बनी। आज वह मेरे लिए आराध्य की उपासना है, अखिल विश्व के लिए शांति की प्रार्थना है।”¹⁰² उन्होंने मानवता के कल्याण के लिए ही ग़ज़लों की गंगाजली उठाई है। वे युग की मूल्यगत अँधेरी रात में भी अदम्य जिजीविषा के बल पर अपनी ग़ज़लों को मानवता को रोशन करने वाली मशाल बनाकर जलाना चाहते हैं। उनकी ग़ज़लों से इस आशय के कुछ शेर प्रस्तुत हैं-

“चंद आँसू चंद आहें है और कुछ ग़ज़लें /यही हमारी ज़िंदगी भर की कमाई है
लेखनी होगी तुम्हारी दृष्टि में / हाथ में गंगाजली हमने उठाई है।”¹⁰³

“समय के श्यामपट्ट पर ज्योति के अक्षर सजाना है
सवेरे तक हमें खुद को चरागों सा चलाना है।
अदब की पाठशाला में पढ़ा पहला सबक हमने
सुलगते पत्थरों पे पाँव रखकर मुस्कुराना है।”¹⁰⁴

अंबर के समान विराट व्यक्तित्व के धनी डॉ. शिवओम अंबर जी का जन्म पं. गौरीदत्त पांडेय व श्रीमती हरिप्रिया पांडेय दंपति के आँगन में 23 सितंबर, 1952 को फर्रुखाबाद में हुआ था। बचपन से ही कविता के प्रति उनका विशेष आकर्षण था। आपातकाल में दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों के तेवर से प्रभावित उनके युवा मन का आक्रोश ग़ज़ल छंद में फूटता है। उनका प्रथम ग़ज़ल संग्रह 'आराधना अग्नि की' शीर्षक से प्रकाशित हुआ और अब तक उनके लगभग 15 ग़ज़ल संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। जिनमें त्रिदलम, उद्भावनाएँ व अक्षरमालिका आदि प्रमुख हैं। उनका सबसे नवीन व चर्चित ग़ज़ल संग्रह 'विष पीना विस्मय मत करना' शीर्षक से 2018 में प्रकाशित हुआ। यह संग्रह 21वीं सदी के हमारे समाज की हकीकतों की मुकम्मल तहकीकात करता है। उनकी ग़ज़लों का संकलन 'शिव ओम अंबर की चुनी हुई ग़ज़लें' शीर्षक से नित्यानंद तुषार जी के संपादकत्व में प्रकाशित हुआ।

शिव ओम अंबर जी के गज़लों के केंद्र में हमारे समय का समाज है। उनकी गज़लें हमारे समय की सामाजिक समस्याओं, विद्रूपताओं व विडंबनाओं को उद्घाटित कर एक सुंदर मानवीय समाज की रचना के निमित्त सृजित हुई हैं। वैश्वीकरण के इस दौर में हमारे समाज में भौतिकता, पूँजीवाद व बाज़ारवाद का जादू सर चढ़कर बोल रहा है और समाज इस रास्ते पर द्रुत गति से गतिमान है। जिसके फलस्वरूप अनेक विकृतियों से समाज का परंपरागत स्वस्थ ढाँचा रुग्ण हो रहा है। भौतिकता की चोटी पर चढ़ने की दौड़ में जीवन से बहुत कुछ पीछे छूट रहा है। जीवन से सुकून-चैन गायब हो रहा है, संवेदनाएँ समाप्त हो रही हैं, स्वार्थ व आत्मकेंद्रितता की प्रवृत्ति चरम पर जा रही है, रिश्तों की आँच ठंडी हो रही है, रिश्ते, मानवता, प्रेम सब कुछ बाज़ार की जद में आकर बिकाऊ हो रहे हैं, सत्य, परोपकार, दया, ईमान एवं कर्तव्यनिष्ठा जैसे जीवन मूल्य जीवन से निर्वासित हो रहे हैं, उनके स्थान पर छल कपट, फरेब, अपराध, लूटपाट, चापलूसी जैसी विकृतियाँ आचरण शैली का अंग बन रही हैं। अंबर जी की गज़लें समाज के इस विद्रूप यथार्थ पर कटु व्यंग्य करती हैं। कुछ शेर इस संदर्भ में द्रष्टव्य हैं-

“क्षुद्रताएँ हैं गगन पे / भद्रताएँ भूमिगत हैं।

भावगत थे व्यक्तिगत थे / आज रिश्ते वस्तुगत हैं।”¹⁰⁵

“समझौते पहने मिले रेशम का परिधान/ बेलिबास पाये गये सारी उम्र उसूल।

हर क्यारी में यहाँ क्षुद्र स्वार्थ की बेल/मूल्य सर्वथा उपवन से हो गये निर्मूल।”¹⁰⁶

भौतिकतावाद व उपभोक्तावाद का चरम रूप महानगरीय जीवन शैली में देखने को मिलता है। इस कारण सामाजिक जीवन की विकृतियाँ वहाँ अधिक दृष्टिगत होती हैं। अंबर जी ने अपनी गज़लों में महानगरीय संस्कृति में भीड़ के बीच भी अजनबीपन, भौतिक समृद्धि के बीच आत्मीय रिश्तों व मूल्यों की गहरी खाई, भागदौड़ भरी यांत्रिक जीवनशैली, आत्मकेंद्रितता एवं बनावटीपन जैसी विद्रूपताओं को उजागर किया है। एक गज़ल के चंद शेर प्रस्तुत हैं -

“चतुर्दिक खाइयाँ ही खाइयाँ है/ बहुत अभिशप्त ये ऊँचाइयाँ है।

यहाँ से है शुरु सीमा नगर की/ यहाँ से हमसफर तनहाइयाँ है।

हुई किलकारियाँ जबसे सयानी/ बहुत सहमी हुई अँगनाइयाँ है।”¹⁰⁷

अम्बर जी अपनी गज़लों से इन विद्रूपताओं के कीचड़ में मानवता का सुंदर कमल खिलाकर समाज सरोवर को सुंदर बनाना चाहते हैं। इसलिए वे जटिलताओं-कुटिलताओं व पाखंडीपन को छोड़कर सरलता व प्रेम जैसे मूल्यों को आचरण का अंग बनाने का संदेश देते हैं। वे कहते हैं-

“क्लिष्टता छोड़िये, सरल बनिये/ गूढ़ दर्शन, नहीं गज़ल बनिये।

हो समाहित शताब्दियाँ जिसमें/ प्रीति का वो प्रशस्त पल बनिये।

कीच ही कीच है यहाँ माना/ आप इस कीच में कमल बनिये।”¹⁰⁸

शिवओम अंबर ज़मीन से जुड़े आमजन के गज़लकार हैं। उनकी लेखनी गज़ल रचना से समाज के उस मेहनतकश आम आदमी को विकास की किताब के मुख्य भाग में जगह दिलाने के लिए प्रयासरत है, जिसका आज तक प्राक्कथन या परिशिष्ट में नामोल्लेख मात्र कर इतिश्री की जाती रही है। समाज के इन वंचित वर्गों में चाहे स्त्री हो या बच्चे या मेहनतकश अवाम सभी की पीड़ा अंबर जी के शेरों में रूपाकार ग्रहण करती है। उनकी गज़लें वंचित समुदायों की संव्रस्त जीवन दशाओं के चित्रण के साथ उनके प्रति गहरी सहानुभूति के भाव से पूरित हैं, जिन्हें आज़ादी के बाद सत्ता द्वारा गायी जा रही विकास की मल्हार राग गाली के समान लगती है। कुछ अशआर प्रस्तुत हैं-

“ग्रंथ में है भी नहीं भी

प्राक्कथन परिशिष्ट हैं हम।”¹⁰⁹

“इस मुहल्ले में महीनों रही फ़ाकाकशी/इस मुहल्ले को मल्हारें लग रही हैं गालियाँ।

घोंपली जमूरे ने छुरी ही पेट में / भीड़ खुश होकर बजाए जा रही है तालियाँ।”¹¹⁰

“हिंदुस्तानी औरत यानी / घर भर की खातिर कुर्बानी।

ग्रहलक्ष्मी पद की व्याख्या है / चौका चूल्हा रोटी पानी।

क़त्ल हुआ कन्या भूणों का / तहज़ीबें दीखीं बेमानी।

निर्धन को बेटी मत देना / घट घट वासी अवढरदानी।”¹¹¹

अंबर जी की ग़ज़ल यात्रा की शुरुआत ही आपातकाल में दुष्यन्त कुमार की सत्ता प्रतिरोध की ग़ज़लों के प्रभाव व अनुकरण स्वरूप हुई थी। अतः राजनीतिक चेतना भी उनकी ग़ज़लों का एक मुख्य स्वर है। उन्होंने परिवेश से अनुभूत किया है कि जिन सत्ताधीशों पर राष्ट्रोत्थान का दायित्व है, वे ही कुकृत्यों व स्वार्थपरता में आकंठ डूबे हुए हैं। इसका कारण यह है कि अपराधी, अराजक, लुटेरे व रहजन भी आज सत्ताधीश बने बैठे हैं और इन भ्रष्ट सत्तानायकों की असंवेदनशीलता ही आम जनता के दर्दों की जड़ है। अंबरजी की ग़ज़लें सत्ता के इस आपराधिक व भ्रष्ट चरित्र को उजागर कर उसमें बदलाव हेतु क्रांति का शंखनाद करती हैं। कुछ शेर पेश हैं-

**“जो लगे थे राष्ट्र के उद्धार में
व्यस्त है कालिख के कारोबार में।”¹¹²**

**“ये सियासत की तवायफ का दुपट्टा है
ये किसी के हाथों से तर नहीं होता।”¹¹³**

**“शब्द को शंख की भूमिका दें / शब्द को मत मंजीरा बनाएँ।
गुनगुनाना हमारी प्रकृति है / आप कसते रहे श्रंखलाएँ।”¹¹⁴**

शिव ओम अम्बर जी की ग़ज़लें भाषा-शैली के लिए अपनी अलग विशिष्ट पहचान रखती हैं। उनकी ग़ज़लों में भाषा के तीन रूप दृष्टिगत होते हैं। उनकी बहुत थोड़ी ग़ज़लें उर्दू प्रकृति की है, कुछ ग़ज़लें हिंदी व उर्दू के लोक प्रचलित शब्दों और मुहावरों से बनी है। परन्तु अधिकांश ग़ज़लें ऐसी है, जिनमें संस्कृत की तत्सम शब्दावली युक्त शुद्ध हिंदी भाषा का प्रयोग हुआ है। जो समकालीन हिंदी ग़ज़लकारों में उन्हें विशिष्ट व अलग पहचान देती है।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि शिवओम अंबर जी की ग़ज़लें हमारे दौर के कटु यथार्थ को मुकम्मल रूप में अभिव्यक्त करती है। जीवन की तमाम प्रतिकूलताओं के बावजूद आशा, विश्वास और जिजीविषा के भाव से उनकी ग़ज़लें अनुप्राणित हैं। उनकी ग़ज़लों में ज्वालामुखी के उबलते लावे के बीच प्रेम की संदल समीर भी है, अंगारों सी दहकती जीवन दशाओं रूपी चट्टानों की कठोरता व तपन भी है, तो गुलाब के फूलों की नाजुकता व ठण्डक भी है। उनके संबंध में वशिष्ठ अनूप जी की टिप्पणी उल्लेखनीय

है- “डॉ. शिव ओम अम्बर इस समय हिंदी ग़ज़ल के पर्याय बन चुके हैं। उनका ताप और तेवर, उनकी सुलगती हुई अनुभूति और दहकती हुई भाषा, उनका कसा हुआ शिल्प और आक्रामक लहजा उन्हें सबसे अलग करता है। यदि दुष्यन्त कुमार के बाद पाँच ग़ज़ल हस्ताक्षरों के नाम लेने होंगे तो उनमें शिव ओम अंबर हर हाल में होंगे।”¹¹⁵

2.12 हरेराम समीप

समकालीन हिंदी ग़ज़ल समाज में, हमारे समय की समाजार्थिक संरचनागत सीढ़ी के सबसे निचले पायदान पर धकियाए मेहनतकश आम आदमी के ‘समीप’ खड़े होकर शोषक सत्ता शक्तियों द्वारा उसे दिए जा रहे गहरे ज़ख्मों से उपजी वेदना के कारण उसके मुख से निकली ‘हरेराम’ की मौन आहभरी पुकार को महसूसने, उसे वाणी देने तथा उससे मुक्ति के लिए रचनात्मक संघर्ष करने वाले जनवादी ग़ज़लगो है हरेराम समीप। इस संबंध में कहा जा सकता है कि आम आदमी की चिर सहचरी अभावजन्य वेदना से प्रसूत ‘हरेराम’ की पुकार मानो ईश्वरीय राम के लिए न होकर, उसी के समान हाशिए की पृष्ठभूमि पर उसके ‘समीप’ खड़े ग़ज़लकार हरेराम समीप के लिए है, क्योंकि यह वह ग़ज़लकार है जो आमजन को अपने सबसे समीप व आत्मीय लगता है, जिसके अशआर उस आम आदमी की त्रासद जीवन स्थितियों के ही सजीव शब्द चित्र हैं और जिनमें प्रयुक्त लफ़्ज़ मात्र शब्द नहीं, अपितु आम आदमी के रिसते हुए ज़ख्मों के नासूर हैं। जिन पर यदि संवेदना के साथ कान दिये जाए तो उस आम अवाम की चीत्कार और कराह स्पष्ट सुनाई देती है। यह चीत्कार व पुकार वर्तमान की भयावह परिस्थितियों की जकड़ में आए समाज व क्षत-विक्षत होती मानवता की हृदय विदारक चीख है, उसे जिंदा रखने की पुकार है। इस निमित्त वे अपनी लेखनी की दियासलाई से कागज़ पर मानवता को रोशन करने वाली ग़ज़लों की मशालें जलाते हैं। ये शेर उनके रचनात्मक उद्देश्यों को व्यक्त करते हैं -

“बेघर फिरे समीप क्यों तस्कर का महल है/ऐसे किसी भी प्रश्न का उत्तर क्या सरल है।

मुद्दत से इक शरीफ ही दुख भोग रहा क्यों/ हालात में क्यों आता नहीं रद्दोबदल है।

जब लूट के खिलाफ़ कोई शोर नहीं है /बस आदमीयत दर्द में है, शेष कुशल है।

इक जंग तो लड़ना ही पड़ेगी समय के साथ/ यह ज़िंदगी के नाम मेरी एक पहल है।

ये रात है तवील मगर जानता हूँ मैं / कुछ दूर ही तो भोर है कुछ दूर ही कल है।”¹¹⁶

“आज के हालात बतलाना जरूरी हो गया/ इसलिए मुझको ग़ज़ल गाना जरूरी हो गया।
जम गई है बर्फ़ सी ये जो मुहब्बत की नदी/आँच देकर उसको पिघलाना जरूरी हो गया।
अब यहाँ पर सबकी आंखों का ही पानी मर गया/इक नई भागीरथी लाना जरूरी हो गया।”¹¹⁷

“एक दिन इंकलाब लाएगी

अब ग़ज़ल है मशाल कागज पर।”¹¹⁸

सहज-सरल व मिलनसार व्यक्तित्व के धनी हरेराम समीप का जन्म 13 अगस्त, 1951 को मेख गाँव, जिला नरसिंहपुर, म. प्र. में हुआ था। पिता श्री शंकर लाल नेमा से बालक के जन्म की सूचना पाकर गांव में रहने वाले संत ‘हरेराम’ महाराज के मुख से कीर्तन स्वरूप निसृत शब्द ‘हरेराम’ ही उनका नाम हो गया। वे छह साल की उम्र से ही पिता की देखा-देखी में तुकबंदियाँ करने लगे। तथा कॉलेज शिक्षा के दौरान ‘मनोज’ उपनाम से कविता लिखने लगे। अब तक उनके आठ ग़ज़ल संग्रह तथा छह ग़ज़ल आलोचनात्मक पुस्तकों सहित दो दर्जन से अधिक रचनाएं प्रकाशित हो चुकी हैं।

हरेराम समीप अपने प्रथम ग़ज़ल संग्रह ‘हवा से भीगते हुए’ में ही ये ग़ज़ल रचना के कथ्य और शिल्प संबंधी पूर्वाग्रहों से पूरी तरह से मुक्त हो जीवन की यथार्थ भूमि पर खड़े होकर ग़ज़ल कहना शुरू करते हैं। दूसरे संग्रह ‘आँधियों के दौर’ में संकलित ग़ज़लों में साम्प्रतिक जीवन की विविधवर्णी सच्चाइयों व आम आदमी के संघर्ष को स्वर मिला है। तीसरे संग्रह ‘कुछ तो बोलो’ की ग़ज़लों में जीवन की विषम व भयावह स्थितियों के सामने आम आदमी की बेचारगी-बेचैनियों के बयान के साथ उनकी मूक संवेदना को जाग्रत करने के निमित्त की गई पुकार है। चौथे ग़ज़ल संग्रह ‘किसे नहीं मालूम’ में आम आदमी की सर्वविदित वेदना तथा पीड़ा को मार्मिक व्यंजना के साथ स्वर देते हुए प्रतिकूल हालात में निराशा-हताशा जन्य प्रलाप करने के बजाए उसे संघर्ष का हौसला देते हैं। पाँचवें संग्रह ‘इस समय हम’ की ग़ज़लों में समकालीन खौफनाक स्थितियों में मानवता के पतन का दर्द है, तो इसके क्रमिक विकास के रूप में अगले ग़ज़ल संग्रह ‘है तो सही’ में वर्तमान के मनुष्यता विरोधी दौर में इंसानियत के क्षीण रूप में मौजूद दृश्यों को रेखांकित कर जीवन के प्रति आस्था का स्वर व्यक्त है। सातवें ग़ज़ल संग्रह ‘यह नदी खामोश है’ में 21वीं सदी के समय-समाज की जाँच पड़ताल, उसके हाल-चाल व नए यथार्थों के चित्रण के साथ

शोषक शक्तियों के बढ़ते जुल्मों के खिलाफ जनमानस में प्रवाहमान प्रतिरोध की खामोश नदी की प्रलयकारी बाढ़ का चेतावनी भरा स्वर है। समीप के इन सभी ग़ज़ल संग्रहों की चुनिंदा ग़ज़लों का संकलन 2021 में 'हरेराम समीप चयनित ग़ज़लें' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। जिसमें इन सभी सातों ग़ज़ल संग्रहों के सतरंगी अशआर रूपी इंद्रधनुष रंगीन आभा में एक साथ प्रतिबिंबित होते हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने आलोचकों की उपेक्षित दृष्टि की शिकार हिंदी ग़ज़ल पर आलोचनात्मक कार्य करते हुए 'हिंदी ग़ज़ल की पहचान', 'हिंदी ग़ज़ल की परंपरा' तथा समकालीन हिंदी ग़ज़लकार: एक अध्ययन (चार खंड) पुस्तकों की सृजना की है।

प्रतिबद्ध ग़ज़लगो हरेराम समीप अपनी शायरी से आम आदमी की दर्दिली जीवन स्थितियों का शाब्दिक आईना रचते हैं। उनकी शायरी समाज के लिए सुख-सुविधाओं व सौंदर्य के सृजक तथा उदरपूरक उस मेहनतकश आदमी की त्रासदियों व जीवन संघर्षों की प्रखर रूप में मुखर अभिव्यक्ति है, जो राजनीतिक-सामाजिक-आर्थिक विसंगतिपूर्ण व्यवस्था में बदहाल, बेहाल व तंगहाल जीवनयापन के लिए विवश है; टूटन-घुटन से संत्रस्त है। जिसका जीवन अभाव व दर्द का पर्याय है। आम आदमी के ज़ख्मों के ये निशान समीप जी के हृदय पटल पर पीड़ादायी भावों के रूप में अंकित होते हैं, जिन्हें वे ग़ज़लों में उकेरते रहते हैं। और इसीलिए समीप जी के शेर आम आदमी की बेचैनी, छटपटाहट व उसके जीवन संघर्षों की उसकी ज़िंदगी से चुने गये प्रतीकों, बिंबों व रूपकों से गढ़े गये शब्द चित्र है। समीप जी बिना थके आम आदमी की परेशानियों व बेचैनियों को स्वर देते हुए उसके लिए एक बेहतर दुनिया की संभावना तलाशने तथा उसे प्राप्त करने की चेतना जागृत करते हैं। उनके शेरों में ये भावचित्र स्पष्ट दिखाई देते हैं

समीप की शायरी में आम आदमी की अभाव व संघर्ष भरी जीवन यात्रा का चित्र-

“झुलसती धूप, थकते पाँव, मीलों तक नहीं पानी

बताओ तो कहाँ धोऊँ सफर की ये परेशानी।

इधर भागूँ, उधर भागूँ, जहाँ जाऊँ, वही पाऊँ

परेशानी... परेशानी... परेशानी..... परेशानी।”¹¹⁹

समीप जी की शायरी आम आदमी की पीड़ा की उपज-

“ग़ज़ल का शेर हूँ बेशक दुखों का जाया हूँ / मैं अपने वक़्त की उम्मीद का सरमाया हूँ।

मुझे तो ज़िंदगी की राह खतरनाक मिली/ समझ लो आज यहाँ बच बचाके आया हूँ।
आँखें ज़ख्मी हैं, हाथ शूल हैं, जुबाँ भी बेदम/तुमको बतलाऊँ कैसे कितनी चोट खाया हूँ।”¹²⁰
जाग्रति बोध-

“धरती नई तलाश, नया आसमाँ तलाश

अब वक्त आ गया है, तू अपना जहाँ तलाश।”¹²¹

हरेराम समीप की शायरी आम आदमी के दुखों की पड़ताल करते हुए उसके लिए जिम्मेदार राजनीतिक सत्ता शक्तियों पर मारक प्रहार करती है और यहीं पर उनकी जन प्रतिबद्धता राजनीतिक चेतना से सम्बद्ध हो जाती है। आज राजनीति जनसेवा की ‘नीति’ से दूर हो धंधा बन गयी है। तथा राजनेताओं के लिए आम जनता सत्ता के सिंहासन पर चढ़ने की सीढ़ियाँ भर हो गई है। सत्ता प्राप्त होते ही जनकल्याण की चिंता का ढोंग रचने वाले ये रहबर ही राहज़न बनके जनकल्याण के बजाय अपने ही सुख चैन व समृद्धि में आकंठ डूबे रहते हैं, जिससे विकास का सूरज इन्हीं की इमारतों में कैद होकर रह जाता है तथा विकास योजनाएँ राजनीतिक-प्रशासनिक भ्रष्टाचारिता व स्वार्थपरता की शिकार हो महज़ कागज़ी तरक्की बनकर रह जाती है। व्यवस्था के फूटे घड़े के कारण विकास का गंगाजल कभी समाज में सबसे पीछे खड़े आम आदमी तक पहुँचता ही नहीं है और आम आदमी के लिए इस सियासत की देन व उपलब्धि केवल और केवल त्रासदी भर होती है। समीप जी आम जनता में इस राजनीतिक छल-पाखंड के खिलाफ प्रतिरोध व क्रांति का बोध जागृत करते हैं, जिससे वह अपने हिस्से के उजियारे की माँग करें तथा स्वार्थी राजनीति के स्थान पर जन कल्याणकारी व्यवस्था की स्थापना का बदलावी स्वर बुलंद करें। इन संदर्भों में ये शेर देखे जा सकते हैं -

“तू तख़्त पर चढ़ने के महज काम आएगी

जनता! तुझे पता है तू बस पायदान है।”¹²²

राजनीतिक षड्यंत्र, भ्रष्टाचार और विकास-

“सूरज दिखा के हमको नए इश्तिहार में

ले जा रहा वो राहनुमा अँधकार में।

नकली तरक्कियाँ ही सभी हाथ लग सकीं

बिजली नहीं है आज भी बिजली के तार में।”¹²³

सियासत की देन - “इस सियासत की गिनाऊँ क्या तुम्हें उपलब्धियाँ

त्रासदी दर त्रासदी दर त्रासदी दर त्रासदी।”¹²⁴

राजनीति नेतृत्व के प्रति प्रतिरोध का स्वर -

“हमको अपना उजियारा दो अँधियारा मंजूर नहीं

सदियों से बंदी हम जिसमें वो कारा मंजूर नहीं।

दूर भगाओ खुदगर्जों को, जनहित केवल काम करे

सत्ता हो अब सिर्फ हमारी, हरकारा मंजूर नहीं।”¹²⁵

समीप जी सांकेतिकता और संवादक्षमता को ग़ज़ल की ताकत समझकर अवाम के जीवन संघर्ष व सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए आम ज़िंदगी से ही बिंब, प्रतीक, रूपक व मुहावरों का प्रयोग कर शब्दों की बाज़ीगरी से चकित करने के बजाए आमजन की सरल भाषा में ग़ज़लें कहते हैं। निष्कर्षतः कह सकते हैं कि समीप जी की शायरी की विस्तृत कथ्य परिधि में समकालीन जीवन के सभी आयाम समाहित हैं। उनकी शायरी हमारे समय की सामाजिक-राजनीतिक चेतना का महत्वपूर्ण दस्तावेज़ है। हमारे दौर की सत्ता व राजनीति की स्वार्थपरता, धार्मिक पाखंडवाद, आम जन की संघर्षशीलता, बाज़ारवादी व उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रसार तथा उससे उपजी सामाजिक-सांस्कृतिक विसंगतियाँ यथा समाज में असंगतता, आत्मलीनता व अपराधिक प्रवृत्तियों के ग्राफ का बढ़ना, मानवीय मूल्यों का पतन, रिश्तों की धड़कन का गायब होना तथा आर्थिक विषमता सभी तरह की विद्रूपताओं को ये ग़ज़लें बेनकाब करती हैं। लेकिन इन सबके बावजूद अदम्य जिजीविषा, आस्था व संघर्ष का स्वर इन ग़ज़लों का प्राणतत्व है। इसी के बदौलत समीप जी अपनी ग़ज़लों में तमाम अशुभताओं के बीच भी शुभताओं के फूल चुनते हैं। अप्रियताओं के बबूल पर प्रियताओं की गुलाबी कलम चढ़ाने का कमाल उनकी कलम के कलाम में है। संक्षेप में समीप की शायरी न केवल हमारे समय के समाज के नए यथार्थों का अन्वेषण व प्रतिबिंबन करती है, बल्कि सामयिक विद्रूपताओं के बीच जीवन की बेहतरी के लिए ज़रूरी मूल्यों की पक्षधरता का स्वर बुलंद कर बेहतर मानवीय समाज की प्रतिष्ठा की पैरवी करती है।

“चलो ज़माने का नक्शा नया बनाते हैं / बिगड़ गया है अब ये दूसरा बनाते हैं।

हमारे बीच मुहब्बत हो बस मुहब्बत हो / हम अपने रिश्ते को इतना बड़ा बनाते हैं।

पसर न जाए कही ज़हन में अन्धेरापन / चलो हम अपने ही दिल को दिया बनाते हैं।
यहाँ पे राज जब इंसानियत का रहना है / इसी को क्यों नहीं अपना खुदा बनाते हैं।”¹²⁶

2.13 डॉ. किशन तिवारी

समकालीन हिंदी ग़ज़ल की ब्रजभूमि पर सामयिक जीवन की विविध रंगी लीलाओं को चित्रित करने तथा साम्राज्यवादी-पूँजीवादी शोषक अत्याचारी ताकतों रूपी कंसाँ के विनाश के लिए सुदर्शन शाब्दिक चक्रव्यूह रचने वाले ‘किशन’(कृष्ण) है ग़ज़लगो किशन तिवारी। तिवारी जी की ग़ज़लें केवल काफ़िया आजमाइश के लिए की गई शाब्दिक कीड़ा मात्र नहीं है, वरन जीवन के हर क्षेत्र के काले क्रीड़ा कौतुकों को समझने, उन्हें बेपर्दा करने तथा बढ़ती मूल्यहीनता के बीच इंसानियत की सीख देते हुए दुनिया को बेहतर बनाने के लिए की गई शब्द साधना है। एक ग़ज़ल बतौर उदाहरण प्रस्तुत हैं

“हमें मालूम है दुनिया में फिर ऐसी सहर होगी।
हर एक इन्साँ के दिल में प्यार की केवल लहर होगी।
हम अपनी राह पर जब चल दिये तो फिर न भटकेंगे
जो सच की राह चलते हैं, विजय उनकी अमर होगी।
ये दौलत बेवफा है, तुम जिसे अपना समझते हो
तुम्हारे साथ जो है आज-कल जाने किधर होगी।
तुम्हारी तोप, बन्दूकें, मिसाइल होंगी बेमतलब
समस्याएँ हमारी हल तो बस मिल बैठ कर होगी।”¹²⁷

समकालीन हिंदी ग़ज़ल के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर किशन तिवारी का जन्म भोपाल में श्रीमती कमला देवी एवं श्री गौरीशंकर तिवारी के घर 14 अक्टूबर, 1949 को हुआ था। उन्होंने दुष्यन्त की ग़ज़लों पर पीएच.डी की उपाधि प्राप्त की। तिवारी जी के अब तक छह ग़ज़ल संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। पहला ग़ज़ल संग्रह ‘भूख से घबराकर’ 1986 में तथा दूसरा ‘आपकी जेब में’ 1997 में प्रकाशित हुआ। यह संग्रह सर्वहारा वर्ग व उसकी मुक्तिकामी चेतना का प्रतिनिधित्व करने वाले लोगों को समर्पित है। आक्रोश व प्रतिरोध इस संग्रह की ग़ज़लों का मूल स्वर है। तीसरा संग्रह ‘सोचिए तो सही’ 2001 में आया। इस संग्रह की ग़ज़लें जीवन का यथार्थपरक चित्रण करने के साथ जनजागरण और जनचेतना के स्वर से अनुप्राणित है। चिंतन प्रधानता इन

ग़ज़लों की मुख्य विशेषता है। शीर्षक ग़ज़ल 'सोचिए तो सही' सत्ता के छल प्रपंचों, धार्मिक कुचालों को उजागर करने के साथ विकृत व्यवस्था में परिवर्तन के लिए शोषित-पीड़ित जन से क्रांति के बारे में सोचने का न केवल आग्रह करती है, बल्कि उन्हें सोचने के लिए मजबूर भी करती है।

“ज़ुल्म की दास्ताँ, सोचिए तो सही / आदमी बेजुबाँ, सोचिए तो सही।

चाल उनकी थी, वो रोज चलते रहे, / हम बने गोटियाँ सोचिए तो सही।

बिजलियाँ मजहबों की चमकने लगी / जल गई बस्तियाँ, सोचिए तो सही।

हाथ बांधे खड़े, किसने बांधा तुम्हें / भींचकर मुठियाँ, सोचिए तो सही।

माँगने से यहाँ, कुछ मिलेगा नहीं / आपका है जहाँ, सोचिए तो सही।”¹²⁸

तिवारी जी का चौथा ग़ज़ल संग्रह 'मैं तुम हो जाऊँ' शीर्षक से 2008 में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह की ग़ज़लों में समकालीन ज़िंदगी के विविध स्याह रंगों यथा संज्ञाशून्य होते रिश्ते, आत्मकेंद्रितता व एकाकीपन की बढ़ती प्रवृत्ति, महानगरीकरण के दुष्प्रभाव, धर्म का विकृत चेहरा, विज्ञान का सभ्यता विनाशक रूप, पर्यावरण का घटना स्वास्थ्य, बाज़ार का दानवी रूप, मूल्य विरोधी वातावरण आदि के चित्रण के साथ आज के पूँजीवादी दौर में यांत्रिक व मूल्यहीन जीवन शैली के अभ्यस्त होते समाज को आत्मालोचन का संदेश दिया गया है। इन काले चित्रों के साथ इसमें प्रेम व प्रकृति सौंदर्य के उजले चित्र भी हैं। इस संग्रह की शीर्षक ग़ज़ल 'मैं तुम हो जाऊँ' उस प्रेम की अभिव्यक्ति है, जिसका ऊर्ध्व व उदात्त रूप ही मानवता का मूल धर्म है।

“सोच रहा हूँ गुम हो जाऊँ / कुछ दिन को मैं तुम हो जाऊँ।

रहना चाहूँ साथ तुम्हारे / माथे की कुम-कुम हो जाऊँ।

तितली बनकर तुम आओ तो / कानन रहूँ कुसुम हो जाऊँ।

मन के मैल सभी धुल जायें / नयन-नयन पुरनम हो जाऊँ।”¹²⁹

तिवारी जी का पाँचवाँ ग़ज़ल संग्रह 'सारथी मैं हूँ' 2013 में प्रकाशित हुआ। यह संग्रह सामयिक जीवन की जटिलताओं और विडम्बनाओं का वृत्तांत है। 2019 में प्रकाशित छठे ग़ज़ल संग्रह 'धूप का रास्ता' 2019 में का शीर्षक 'धूप का रास्ता' व्यंजनार्थी है। यह एक तरफ जहाँ आज़ादी के बाद के राजनीतिक छल प्रपंचों के कारण आज़ादी की शीतल सुखद छाँव का स्वप्न देखने वाले आमजन के जीवन पथ के दारुण धूप का का रास्ता बन जाने से उत्पन्न दर्द की बयानी है, वही दूसरी तरफ

यह ग़ज़लकार की कष्टसाध्य संघर्षशीलता का भी द्योतक है। ग़ज़लकार सत्ता की चाटुकारिता करके सत्ता के छाया सुख के बजाय उसके प्रतिरोध व उससे संघर्ष करने का धूप का रास्ता चुनता है तथा अपनी रचनात्मक संघर्षशीलता से वसुधैव कुटुंबकम की भावना से युक्त एक बेहतर शांतिपूर्ण मानवीय जहान की कामना करता है। इन संदर्भों में ये शेर प्रस्तुत हैं-

“चाल फिर इक नई चल गई कुर्सियाँ / आज फिर से हमें छल गई कुर्सियाँ।

अब भरोसा करें किसके वादे पे हम / आज आई अगर कल गई कुर्सियाँ।

लोग पीकर जहर भोले शंकर हुए / खून पी कर मगर पल गई कुर्सियाँ।

आज मिलकर चलेंगे सभी साथ में / छोड़ कर हमको केवल गई कुर्सियाँ।

हम समझने लगे जब ये चालाकियाँ / रूप लेकर नया ढल गई कुर्सियाँ।”¹³⁰

“धर्म मजहब जात सबका एक ही मकसद रहे

हो अमन हर ओर केवल तो जहाँ रह जाएगा।”¹³¹

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि किशन तिवारी हिंदी ग़ज़ल के वे प्रौढ़ हस्ताक्षर हैं, जो ग़ज़ल की बारीकियों तथा उसके कहन के शऊर सलीके से अच्छी तरह परिचित हैं। और इसीलिए उनके शेर यथार्थ की ज़मीन से उपजे होने पर भी गहरी संवेदनशीलता व कल्पनाशीलता के कारण पाठक पर प्रभाव छोड़ने की कुव्वत रखते हैं। वे समकालीन जीवन के विविध पक्षों से अपने शेरों को सजाकर एक बेहतर इंसानी दुनिया की प्रतिष्ठा के लिए संघर्ष करते हैं। आर.पी. महर्षि कहते हैं, “वे अपनी ग़ज़लों के माध्यम से समाज और व्यक्ति में सुधार लाना चाहते हैं और इसी सद्प्रयास में बराबर लगे हुए हैं। वे ग़ज़लों में तथ्य कथ्य व्याकरण एवं गुणवत्ता के प्रति सजगता के पक्षपाती हैं।”¹³²

2.14 राम मेश्राम

राम मेश्राम समकालीन हिंदी ग़ज़ल में अपनी प्रयोगधर्मिता एवं अपने अलहदा अदाज़ से एक अलग पहचान कायम करने वाले गिने चुने प्रतिष्ठित ग़ज़लकारों में अग्रगण्य हैं। राम मेश्राम का पूरा नाम रामभाऊ अमृतलाल मेश्राम है। उनका जन्म 20 दिसंबर, 1946 को वारासिवनी नगर, बालाघाट, मध्य प्रदेश में हुआ था। संप्रति सेवानिवृत्ति के पश्चात स्वतंत्र रूप से ग़ज़ल लेखन कर रहे हैं।

राम मेश्राम 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में वैचारिक तल्लिखियों की प्रखर अभिव्यक्ति के कारण अपनी एक विशिष्ट पहचान एवं स्थान रखते हैं। उनके अब तक दो ग़ज़ल संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। उनका पहला ग़ज़ल संग्रह 'शोलों के फूल' सन 2006 ई. में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह के माध्यम से मेश्राम अपने दौर की सामाजिक विसंगतियों, सांस्कृतिक विचलनों एवं राजनीतिक विद्रूपताओं के शोलों को ग़ज़लों के फूलों के साथ प्रस्तुत करते हैं। अपने वक्त के समाज, धर्म, राजनीति, अर्थ एवं मीडिया जगत के व्यापारियों के वाक्यों से वाकिफ़ मेश्राम जी अपनी ग़ज़लों के माध्यम से उन्हें विवेचित विश्लेषित करते हैं। इस संग्रह की यह ग़ज़ल उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत है-

“आपने बेची ख़बर, ख़बरों ने बेचा आपको
मीडिया ने आप-हम-सबको परोसा और कुछ।
लूट इनकी, राज उनका, वोट ही तो आपका
मोहतरम आगे अभी देखें तमाशा और कुछ।
वाक़या था और कुछ अफवाह फैली और कुछ
फिर दलालों की दलाली ने दलेला और कुछ।
कर चुके जैसा महाजन, क्यूँ न हम वैसा करें
देश-पूजा, भेंट-पूजा, पेट-पूजा और कुछ।
धन्य गुरुघंताल! 'औरत-मुक्ति' का दर्शन तेरा
स्वर्ग था कुछ और ही, तूने दिखाया और कुछ।”¹³³

राम मेश्राम का दूसरा ग़ज़ल संग्रह 2024 में 'आग में उड़ान' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। इस संग्रह की ग़ज़लें 21वीं सदी के समाज की नब्ज़ को टटोलकर उसकी बीमारियों की पहचान व चिकित्सा करती है। इस संग्रह में वे 21वीं सदी में भूमंडलीकरण एवं उदारीकृत विश्व बाज़ार के जरिए हमारे समाज तक पहुँची उपभोक्तावादी, पूँजीवादी व साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों के कारण समाज में उभरते नवीन मूल्यों को उजागर करने तथा सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक क्षेत्रों में उत्पन्न मूल्यहीनता, समस्याओं व संकटों की ज्वालाओं को कैद करने के लिए ग़ज़लों रूपी ड्रोन की उड़ान भरते हैं तथा उसके माध्यम से इस आग के शमन हेतु व्यंग्य

जल की बौछार करते हैं। समकालीन राजनीति की चरित्रहीनता एवं मूल्यहीनता को व्यक्त करती यह ग़ज़ल प्रस्तुत है-

“वोट की चोट से जन-गण को हिलाने वाले / धन्य हैं, धन्य हैं भारत को चलाने वाले।
दफ्न करते हैं संविधान कि सत्ता तो मिले / जाति गणना का गड़ा प्रेत जिलाने वाले।
हार होते ही इलेक्शन में अचानक गायब / गर्म अफ़वाह से माहौल फुलाने वाले।
एक भी आम इलेक्शन कभी जीते ही नहीं / हो गए लोग वही देश चलाने वाले।
देश किस-किस से बचाएँगे कि जब घर ही में/खास अपनों ही में हैं, ज़हर पिलाने वाले।
चाँद- दर- चाँद हथेली पे उगाने वाले / घोषणाओं के बड़े डोज पिलाने वाले।
कोई आवाज़ उठाए, कोई हिम्मत तो करे / बाज कब आएँगे जन जन को रूलाने वाले।”¹³⁴

राम मेश्राम की ग़ज़लें आज के वक्त के सजीव हाल-चाल का हलफनामा हैं। उनकी ग़ज़लें मनुष्य की अस्मिता एवं अस्तित्व के रक्षण के लिए साहित्य के द्वारा राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक सांस्कृतिक एवं पर्यावरणीय स्तरों पर जारी जंग की जबरदस्त बयानी हैं। उनकी ग़ज़लों में आज़ादी के बाद की त्रासद स्थितियों से उपजे मोहभंग, उन स्थितियों से जूझते आम आदमी की बदहाली, फाकाकशी व शोषित जीवन दशाओं तथा इनके के लिए जिम्मेदारों के प्रति आक्रोश की अभिव्यक्ति से मुक्ति संघर्ष की चेतना मुखरित हुई है। समकाल की राजनीति की पैंतरेबाजी व स्वार्थपरता, प्रशासनिक तंत्र की विसंगतियाँ, समाज में उभरती नवीन जीवन शैलियाँ व प्रवृत्तियाँ, धर्म के नाम पर विकराल होती सांप्रदायिकता और विकास की आँधी में प्रकृति का बिगड़ता स्वरूप व सौंदर्य आदि अनेक चित्र उनकी ग़ज़लों में चित्रित हैं। कुछ ग़ज़लों के शेर द्रष्टव्य हैं-

समाज की बदलती जीवन शैली-

“यकसाँ फैशन यकसाँ कचरा/ नया नवेला नखरा पालें।

रहे रात-दिन मोबाइल में / हरदम यहाँ मशगला पालें।

‘लिव-इन’ के आज़ाद जगत में / जुनूँ ज़वानी वाला पालें।

जब चाहें, हमबिस्तर कर लें / छोड़ें सौहर, कुत्ता पालें।”¹³⁵

मूल्यहीनता

“रात-दिन मरने-खटने से राहत मिली/ फ़ाँड जीता, उसूलों को लानत मिली।

आदमीयत का आखिर जनाजा उठा/ मुल्क को वहशियाना अदावत मिली।

जिस्म कपड़ों में नंगा लगा हर तरफ / राह चलतों को जब बादशाहत मिली।”¹³⁶

राम मेश्राम की ग़ज़लें भाषा, शिल्प, प्रतीक, रदीफ़, काफ़िया के प्रयोग की दृष्टि से भी अपने समकालीन ग़ज़लकारों से बिल्कुल अलग हैं। इस संबंध में डॉ. कुँवरपाल सिंह की टिप्पणी उल्लेखनीय है- “राम मेश्राम दुष्यन्त की परम्परा के प्रमुख ग़ज़लकार हैं, जो इस परम्परा को विस्तार देते हैं। उनमें उर्दू की ग़ज़ल और हिन्दी के गीत की वह परम्परा मिलती है, जो अपने समय की संवेदनाओं को समेटते हुए उन पर तीखा व्यंग्य करती हैं। गौर से देखें तो राम मेश्राम की ग़ज़लों की बनावट और बनावट, शिल्प और भाषिक संरचना अत्यंत प्रयोगधर्मी होने के बड़े बड़े दावे करने वाले अन्य ग़ज़लकारों से सर्वथा भिन्न है।”¹³⁷

2.15 महेश अग्रवाल

हिन्दी ग़ज़ललोक में अपनी ग़ज़लों से विद्रूप यथास्थितिवाद के प्रति गहरी असहमति, तीव्र आक्रोश व परिवर्तनकारी क्रांति चेतना का तांडव रचने वाले समकालीन हिन्दी ग़ज़ल के ‘महेश’ हैं महेश अग्रवाल। वे दुष्यन्त कुमार द्वारा शुरू की गई तथा अदम गौड़वी द्वारा ऊँचाई प्रदत्त हिन्दी ग़ज़ल की उस व्यवस्था विरोधी परंपरा के ग़ज़लगो हैं, जो विद्रूप व्यवस्था का विरोध करते हुए व्यवस्था में सकारात्मक बदलाव लाने की शेरों-सी (शेरीय) कोशिश अपने शेरों में करते हैं। तीखी व मुखर संवेदना के ऊर्जावान ग़ज़लकार महेश जी की ग़ज़लों के शेर सर्वहारा के समर्थन तथा व्यवस्था विरोध के पथ पर शेर की सी निर्भीक चाल चलते हैं। महेश जी की ग़ज़लों में आम जनविरोधी पूंजीवादी-साम्राज्यवादी तथा कट्टरपंथी-सांप्रदायिक ताकतों के प्रतिरोध तथा आमजन से इस व्यवस्था में बदलाव के आग्रह का स्वर मुखरता से व्यक्त हुआ है। यह शेर द्रष्टव्य है

“हैं नहीं यह हाथ केवल हाथ मलने के लिए

तू इन्हें मुड़ी बना दुनिया बदलने के लिए।”¹³⁸

समकालीन हिन्दी ग़ज़ल के सशक्त हस्ताक्षर महेश अग्रवाल का जन्म अग्रवाल दंपति राजमल अग्रवाल व रामकली देवी के घर में 4 अगस्त, 1946 को भोपाल, मध्य प्रदेश में हुआ था। ये बचपन में ही कविता लेखन की ओर प्रवृत्त हो गए थे। जीवन की बसंतावस्था में महेश जी के कवि मन से श्रृंगारिक रचनाओं की रस निर्झरिणी प्रस्फुटित होती है, परन्तु आपातकाल के हालात ने उन्हें श्रृंगार से क्रांति के मार्ग पर लाकर खड़ा कर दिया और दुष्यन्त की तरह आपातकाल के विरोध में उनकी

कलम से जो कविता फूटी वह मिसरों में थी, यद्यपि वह ग़ज़ल नहीं थी। इसके बाद उनकी साहित्य साधना का पथ स्थाई रूप से ग़ज़ल की ओर उन्मुख हो गया।

महेश अग्रवाल मूलतः ग़ज़लकार है। एकमात्र ग़ज़ल विधा के साथ समग्रता से जुड़ाव का वैशिष्ट्य समकालीन ग़ज़लकारों में उनकी विशिष्ट पहचान गढ़ता है। उनका पहला ग़ज़ल संग्रह 'और कब तक चुप रहे' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। अपने नाम को चरितार्थ करती इस संग्रह की अधिकांश ग़ज़लों का तेवर तल्ख है। इन ग़ज़लों में आम आदमी की फटेहाल जीवन स्थितियाँ व इन दशाओं के लिए उत्तरदायी सत्ता के असंवेदनशील व क्रूर चेहरे के प्रति विरोध का स्वर है। दूसरा ग़ज़ल संग्रह 'जो कहूँगा सच कहूँगा' शीर्षक से 2009 में प्रकाशित हुआ। यह शीर्षक एक ओर जहाँ महेश जी की ग़ज़ल रचना के प्रति ईमानदारी व सत्यनिष्ठा का द्योतक है, वहीं दूसरी ओर इन ग़ज़लों के समकालीन सच्चाइयों का दस्तावेज़ होने को संकेतित करता है। इन ग़ज़लों में हमारे समय के विचलनों की अनुगूँज मौजूद है। यह संग्रह 80 ग़ज़लों का एक ऐसा गुलदस्ता है, जिसमें जीवन के विविध वर्णों-विवर्णों फूलों का संकलन है। यह दौरे हकीकत की ऐसी खुली किताब है, जो हमारे आज को ही नहीं, कल को भी प्रतिबिंबित करती है। ये ग़ज़लें हमारे समय की तमाम विकृतियों जैसे अराजकता, भ्रष्टाचार, धार्मिक उन्माद, विषमता, मूल्यों का पतन, सत्ता का संवेदनहीन व क्रूर चेहरा आदि सभी को पूरी कुशलता से चित्रित करती हैं। संक्षेप में कह सकते हैं कि इस संग्रह की ग़ज़लें समकालीन राजनीतिक विसंगतियों, सामाजिक-आर्थिक अंतर्विरोधों एवं धार्मिक-सांस्कृतिक विडंबनाओं के कृत्रिम रंगीन रेशों को उघाड़ कर उनकी कालिख सच्चाई से पाठक को रूबरू करवाती है। एक ग़ज़ल प्रस्तुत है-

“हुकमरानों की बड़ी क़ातिल अदाएँ हैं / ज़ख़्म देकर मरहमों की घोषणाएँ है।
रंग से तू ज़र्द पत्तों को हरा कर दे / पर हकीकत है कि गुलशन में ख़िजाएँ हैं।
नाखुदा ले जा रहा है उस तरफ कश्ती / जिस तरफ तूफान की संभावनाएँ हैं।
कौन सुनता है यहाँ मज़लूम की चीखें / कुर्सियों पर दोस्तों केवल शिलाएँ हैं।
नफरतों ने इस तरह हमला किया हम पर/दहशतों में फिर अजानें-अर्चनाएँ हैं।
जंगलों में यार आदमखोर मत ढूँढो /बस्तियों में आजकल उसकी गुफाएँ हैं।”¹³⁹

महेश जी का तीसरा ग़ज़ल संग्रह 'पेड़ फिर हरा होगा' सन 2014 में प्रकाशित हुआ। इस संकलन में अपने ज़माने रूपी जंगल के विभिन्न सदाबहार पेड़ों के सूखे

ठूठों में तब्दील होते जाने के विद्रूप चित्र मौजूद है। इस संग्रह की गज़लों में सर्वहारा के शोषण, अन्याय व अत्याचार की पीड़ा तो है ही, साथ ही सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक विद्रूपताएँ भी वर्णित हैं। पर इन सबके बावजूद इस संग्रह की गज़लों का मुख्य स्वर वर्तमान दौर में मानवीय मूल्यों के विघटन व इंसानियत के पतन की चिंता है। महेश जी इंसानियत के पेड़ के सूखते जाने से चिंतित हैं। वे अपनी गज़ल सृजना से मनुष्यता के इस तरु को फिर से हरा भरा कर एक खूबसूरत दुनियाई बगीचे की रचना करना चाहते हैं। और उन्हें उम्मीद है कि इंसानियत का यह पेड़ फिर से हरा होगा। इस संग्रह की शुरुआत में उन्होंने ने लिखा है-

मानवता का पतन- **“बोनसाई कर दिया इंसानियत के पेड़ को**

और फिर उससे बड़ी कर दी गयी है कुर्सियाँ।”¹⁴⁰

इंसानियत के पेड़ के हरा होने की उम्मीद -

“यह पेड़ फिर होगा हरा विश्वास है हमको

बस इसलिए उम्मीद का दामन नहीं छोड़ा।”¹⁴¹

“महेश अग्रवाल जी का चतुर्थ गज़ल संग्रह ‘अभी शेष है’ नाम से 2022 में प्रकाशित हुआ। यह संग्रह उनके पिछले संग्रह का अगला पड़ाव है। पिछले संग्रह ‘पेड़ फिर हरा होगा’ में वे इंसानियत के पेड़ के हरा-भरा होने की उम्मीद करते हैं और इस संग्रह में यह उम्मीद इंसानियत के क्षीण रूप में ही सही, पर आज भी जिंदा होने के प्रकटीकरण से पूरी होती दिख रही है। जीवन वन में मानवीय मूल्यों के सूखते पेड़ों के बीच कुछ पेड़ हैं, जो आज भी सघन रूप से हरे भरे हैं। यूँ कहें कि समकालीन जीवन में बड़े पैमाने पर व्याप्त राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व धार्मिक विद्रूपताओं की गहन अँधेरी रात में भी रोशनी की एक किरण कहीं ना कहीं आज भी मौजूद है। महेश जी रोशनी की उसी किरण को इस संग्रह की गज़लों से ढूँढते हैं और अच्छी बात है कि वह किरण इन गज़लों में प्रतिबिंबित होती है। इस संग्रह के आत्मकथ्य में वे लिखते हैं- “आज बहुत कुछ असहज और असहनीय भी है, इसके बावजूद एक आशावान गज़लकार, एक उम्मीद पसंद नागरिक कहता है कि अभी सब कुछ खत्म नहीं हुआ है, अभी शेष है जो हमें एक सुनहरी भोर की उम्मीद कायम रखने के लिए प्रेरित करता है।”¹⁴² इसी आशय को पुष्ट करते ये शेर प्रस्तुत हैं -

“अजब है आदमी काँटे कुबूल करके भी / सभी के हाथ में हँसकर गुलाब देता है।

सवाल नफरतों के रोज़ हल किया करता / मुहब्बतों से वो सब को जवाब देता है।”¹⁴³

“है अभी इंसानियत यह सरजमी बंजर नहीं

फूल भी हैं हर किसी के हाथ में पत्थर नहीं।”¹⁴⁴

महेश जी की ग़ज़लें सामाजिक सरोकारों से जुड़ी क्षोभित-पीड़ित समाज की ग़ज़लें हैं, जो सहजता व सरलता के कारण आमजन के लिए भी आसानी से बोधगम्य व सहजग्राह्य है और उस पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ती है। उनकी ग़ज़लों के बारे में पं. गिरी मोहन की ये पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं

“ग़ज़लें श्री महेश की वर्तमान की धूप/ गंदला पानी सोख कर देती रूप अनूप।

ग़ज़लें श्री महेश की शब्दों का विस्फोट/बाहर से दे सांत्वना भीतर मारे चोट।

गल्ले श्री महेश की दर्दों का अनुवाद/जादू सर चढ़ बोलता करना व्यर्थ विवाद।

ग़ज़लकार के पास है इक भविष्य की आँख/देखी करवट बदलती उम्मीदों की पाँख।”¹⁴⁵

महेश अग्रवाल अपने ग़ज़ल रचना कर्म के प्रति बेहद गंभीर, संजीदा व संवेदनशील रचनाकार है। वे गहन साधना से अपने शेरों को तराशते हैं और उनमें एक नई ताजगी, खुशबू और रंग भरने की भरसक सफल कोशिश करते हैं। अनुभूत भावना को शब्द, शब्द को अर्थ, अर्थ को रस और रस को छांदस अनुशासन व बहर में ढाल देने का कौशल महेश जी में है। इसी का परिणाम है कि उनकी अधिकांश ग़ज़लों में एकाधिक ऐसे शेर हैं जिन्हें हासिले ग़ज़ल की संज्ञा दी जा सकती हैं। उनकी ग़ज़लों की भाषा हिंदी उर्दू मिश्रित आम बोलचाल की सहज सरल भाषा है। उनकी ग़ज़ल साधना के संबंध में नचिकेता जी की आलोचकीय टिप्पणी उल्लेखनीय है, “महेश अग्रवाल की ग़ज़ल केवल उनकी सजग रचनाशीलता का मजबूत घोषणा पत्र ही प्रस्तुत नहीं करती, अपितु ग़ज़ल की परंपरागत समझ को चुनौती भी देती है। रचना के प्रभाव संगठक उद्देश्यों का उद्घाटन भी करती है। अपनी इस उद्देश्यपरक रचनाशीलता की वजह से यह दुष्यन्त कुमार, अदम गोंडवी, वशिष्ठ अनूप आदि की परंपरा से अनायास ही जुड़ जाते हैं।”¹⁴⁶

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अदम गोंडवी, समय से मुठभेड़ पंचम संस्करण, पृ.सं.15
2. वशिष्ठ अनूप, रोशनी खतरे में है, पृ.सं.19
3. महेश कटारे सुगम, ऐसी तैसी, पृ.सं. 36,
4. जहीर कुरेशी, एक टुकड़ा धूप, (भूमिका) अपनी बात से
5. सं. विनय मिश्र, जहीर कुरेशी; महत्व और मूल्यांकन, पृ.सं.28
6. सं. मधु खराटे, जहीर कुरेशी की चुनिंदा गज़लें, पृ.सं.102
7. जहीर कुरेशी, चाँदनी का दुख, द्वितीय संस्करण पृ.सं.64
8. जहीर कुरेशी, निकला न दिग्विजय को सिकंदर, पुस्तक फ्लेप से
9. जहीर कुरेशी, निकला न दिग्विजय को सिकंदर, पृ.सं.71
10. सं. निरंजन श्रोत्रिय समावर्तन पत्रिका, अगस्त 2017, पृ.सं.11
11. जहीर कुरेशी, बोलता है बीज भी, पृ.सं.80
12. जहीर कुरेशी, भीड़ में सबसे अलग, पृ.सं.15
13. जहीर कुरेशी, एक टुकड़ा धूप, पृ.सं.24
14. वही पृ.सं.103
15. सं. निरंजन श्रोत्रिय समावर्तन पत्रिका, अगस्त 2017, पृ.सं.09
16. अदम गोंडवी, समय से मुठभेड़ पंचम संस्करण, पृ.सं. 46
17. वही पृ.सं.47
18. सं. सरदार मुजावर, हिंदी गज़ल की नई दिशाएं, पृ.सं.108
19. सं. ओम निश्चल, धरती की सतह पर, पृ.सं.76
20. अदम गोंडवी, समय से मुठभेड़ पंचम संस्करण, पृ.सं.53
21. सं. ओम निश्चल, धरती की सतह पर पृ.सं. 62
22. वही पृ.सं.59
23. वही पृ.सं.88
24. वही पृ.सं 29
25. सं. ओम निश्चल, धरती की सतह पर, पृ.सं.92
26. हरeram समीप, समकालीन हिंदी गज़लकार एक अध्ययन, पृ.सं.291
27. वही पृ.सं.288
28. ज्ञान प्रकाश विवेक, घाट हजारों इस दरिया के, पृ.सं.39
29. ज्ञान प्रकाश विवेक, दरवाजे पर दस्तक, पुस्तक ब्लर्ब से,

30. ज्ञान प्रकाश विवेक, कागज़ी छतरियाँ बनाता हूँ, पृ.सं.93
31. हरेराम समीप, समकालीन हिंदी ग़ज़लकार एक अध्ययन, पृ.सं.304
32. सं. जहीर कुरेशी, सादगी का सौंदर्य ; वशिष्ठ अनूप का सृजन, पृ.सं.45
33. वही पृ.सं.67
34. वही भूमिका से पृ.सं. 11
35. सं. जहीर कुरेशी, सादगी का सौंदर्य; वशिष्ठ अनूप का सृजन, पृ.सं. 42
36. वशिष्ठ अनूप, रोशनी खतरे में है, पृ.सं.26
37. वशिष्ठ अनूप, रोशनी की कोपलें, पृ.सं.37
38. वशिष्ठ अनूप, मशालें फिर जलाने का समय है पृ.सं.36
39. सं. जहीर कुरेशी, सादगी का सौंदर्य; वशिष्ठ अनूप का सृजन, पृ.सं. 187
40. अनूप वशिष्ठ घरों पर गिद्ध मंडराने लगे हैं पृ.सं.24
41. सं. जहीर कुरेशी, सादगी का सौंदर्य; वशिष्ठ अनूप का सृजन, पृ.सं. 197
42. माधव कौशिक, नयी सुबह की नयी कहानी, पृ.सं 85
43. वही पृ.सं 11
44. सं. लालचंद गुप्त मंगल, माधव कौशिक सर्जन की समीक्षा, पृ.सं 57
45. वही पृ.सं 55
46. माधव कौशिक, नयी सुबह की नयी कहानी, पृ.सं.133
47. वही पृ.सं 77
48. माधव कौशिक, नयी सुबह की नयी कहानी, पृ.सं.61
49. सं. लालचंद गुप्त मंगल, माधव कौशिक सर्जन की समीक्षा, पृ.सं. 95
50. वही पृ.सं 26
51. वही पृ.सं 31
52. देवेंद्र आर्य, मन कबीर, पृ.सं.63
53. वही पृ.सं. 112
54. साएमा बानो, समकालीन हिंदी; ग़ज़ल पहचान और परख पृ.सं. 338
55. देवेंद्र आर्य, उमस, पृ.सं.86
56. देवेंद्र आर्य, जो पीवे नीर नैना का, पृ.सं.22
57. देवेंद्र आर्य, मन कबीर, पृ.सं.22
58. हरेराम समीप, समकालीन हिंदी ग़ज़लकार एक अध्ययन पृ.सं. 392
59. रामकुमार कृष्ण, पढ़िए तो आंख पाइए, पृ.सं.38

60. वही पृ.सं.46
61. वही पृ.सं.34
62. वही पृ.सं.51
63. वही पृ.सं.37
64. वही पृ.सं.111
65. वही पृ.सं.29
66. वही पृ.सं.44
67. वही पृ.सं.93
68. वही पृ.सं.57
69. वही पृ.सं.67
70. विनय मिश्र, तेरा होना तलाशूँ, पृ.सं.23
71. विनय मिश्र, लोग ज़िंदा है, पृ.सं.49
72. वही पृ.सं.111
73. सं. श्रीधर मिश्र, विनय मिश्र का रचना कर्म; दृष्टि और मूल्यांकन, पृ.सं.11
74. विनय मिश्र, सच और है, पृ.सं.19
75. विनय मिश्र, तेरा होना तलाशूँ, पृ.सं.31
76. विनय मिश्र, लोग ज़िंदा है, पृ.सं.101
77. वही पृ.सं. 23
78. वही पृ.सं.11
79. विनय मिश्र, ज़िंदगी आने को है, पृ.सं.25
80. सं. श्रीधर मिश्र, विनय मिश्र का रचना कर्म; दृष्टि और मूल्यांकन, पृ.सं.18
81. विनय मिश्र, ज़िंदगी आने को है, पृ.सं.99
82. विनय मिश्र, सच और है, पृ.सं.97
83. सं. जीवन सिंह, डी. एम. मिश्र; ग़ज़ल संचयन भूमिका, पृ.सं.7
84. डी. एम. मिश्र, समकाल की आवाज़, पृ.सं. 78
85. डी. एम. मिश्र, लेकिन सवाल टेढ़ा है, पृ.सं.7
86. सं. जीवन सिंह, डी. एम. मिश्र; ग़ज़ल संचयन, पृ.सं.55
87. वही पृ.सं.30
88. डी. एम. मिश्र, आईना-दर-आईना, पृ.सं.17
89. सं. जीवन सिंह, डी. एम. मिश्र; ग़ज़ल संचयन, पृ.सं.24

90. डी. एम. मिश्र, समकाल की आवाज़, पृ.सं.76
91. सं. जीवन सिंह, डी. एम. मिश्र; ग़ज़ल संचयन, पृ.सं. 37
92. वही पृ.सं. 18
93. वही पृ.सं. 29
94. महेश कटारे सुगम, अय हय हय, पृ.सं.47
95. महेश कटारे सुगम, सारी खींचतान में फरेब ही फरेब है, पृ.सं.94
96. महेश कटारे सुगम, लाहौल वला कुव्वत, पृ.सं. 23
97. महेश कटारे सुगम, ऐसी तैसी, पृ.सं.47
98. महेश कटारे सुगम, लाहौल वला कुव्वत, पृ.सं.4
99. महेश कटारे सुगम, दुआएं दो दरख्तों को, पृ.सं. 57
100. महेश कटारे सुगम, अय हय हय, पृ.सं.74
101. महेश कटारे सुगम, लाहौल वला कुव्वत, भूमिका से
102. शिव ओम अम्बर, विष पीना विस्मय मत करना, पृ.सं. 3
103. शिव ओम अम्बर, विष पीना विस्मय मत करना, पृ.सं.19
104. सं. भानुमित्र ग़ज़ल गरिमा त्रैमासिक पत्रिका, अप्रैल-जून 2016, पृ.सं.19
105. शिव ओम अम्बर, विष पीना विस्मय मत करना, पृ.सं.47
106. वही पृ.सं. 30
107. वही पृ.सं. 28
108. वही पृ.सं. 52
109. वही पृ.सं. 15
110. सं. मीना पांडे, सजन से, पत्रिका, गाजियाबाद जनवरी-जून 2014 पृ.सं. 19
111. शिव ओम अम्बर, विष पीना विस्मय मत करना, पृ.सं. 7
112. वही पृ.सं. 42
113. वही पृ.सं. 40
114. सं. भानुमित्र ग़ज़ल गरिमा त्रैमासिक पत्रिका, अप्रैल-जून 2016, पृ.सं. 23
115. वही पृ.सं. 19
116. हरेराम समीप, हरेराम समीप चयनित ग़ज़लें, पृ.सं. 78
117. वही पृ.सं. 93
118. वही पृ.सं. 11
119. वही पृ.सं. 9

120. वही पृ.सं. 102
121. सं. वरुण कुमार तिवारी, हरेराम समीर; व्यक्ति और अभिव्यक्ति पृ.सं. 57
122. हरेराम समीप, हरेराम समीप चयनित गज़लें, पृ.सं. 84
123. वही पृ.सं.24
124. वही पृ.सं.39
125. वही पृ.सं. 103
126. वही पृ.सं. 108
127. वही पृ.सं. 31
128. किशन तिवारी, सोचिए तो सही पृ.सं.13
129. किशन तिवारी, मैं तुम हो जाऊं पृ.सं.13
130. किशन तिवारी, धूप का रास्ता पृ.सं. 82
131. वही पृ.सं.75
132. हरेराम समीप, समकालीन हिंदी गज़लकार एक अध्ययन, पृ.सं. 312
133. सं. रामकुमार कृषक, समकालीन हिंदी गज़ल, अलाव पत्रिका पृ.सं. 428
134. राम मेश्राम, आग में उड़ान, पृ.सं. 24
135. वही पृ.सं. 126
136. वही पृ.सं. 112
137. हरेराम समीप, हिंदी गज़ल की परंपरा, पृ.सं. 186
138. महेश अग्रवाल, पेड़ फिर हरा होगा, पृ.सं. 96
139. सं. शैलेंद्र कुमार शैली, राग भोपाली पत्रिका, जुलाई 2016, पृ.सं. 15
140. महेश अग्रवाल, पेड़ फिर हरा होगा, पृ.सं. 94
141. वही पृ.सं. 11
142. महेश अग्रवाल, अभी शेष है, पृ.सं. 8
143. वही पृ.सं. 67
144. महेश अग्रवाल, पेड़ फिर हरा होगा, पृ.सं. 89
145. सं. शैलेंद्र कुमार शैली, राग भोपाली पत्रिका, जुलाई 2016, पृ.सं. 38
146. वही पृ.सं. 33

तृतीय अध्याय
21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल
में राजनीतिक यथार्थ

तृतीय अध्याय

21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में राजनीतिक यथार्थ

प्रस्तावना

राजनीति का संबंध राज्य से है और एक राज्य उसकी सीमाओं के भीतर रहने वाले मनुष्यों के सामाजिक जीवन का ही विकसित रूप होता है। किसी भी राज्य में सार्वजनिक जीवन को सुगठित व सुचारू रूप में संचालित के लिए एक शक्ति संपन्न राजनीतिक सत्ता की आवश्यकता होती है, जो राज्य के लिए नियंत्रणकारी व कल्याणकारी कार्य करती है। जिस प्रक्रिया या नीति के द्वारा व्यक्ति विशेष या व्यक्तियों के समुदाय को उन अधिकारों व शक्तियों की प्राप्ति होती है, जिनका सदुपयोग कर वह लोक कल्याण के कार्य पूरी स्वायत्तता एवं स्वतंत्रता के साथ कर सके, उसे राजनीति कहते हैं। राजनीतिक व्यवस्था द्वारा राज्य के लोगों के सार्वजनिक जीवन को समुन्नत एवं सुविधाजनक बनाने के लिए जरूरी कल्याणकारी योजनाओं, नियमों और कानूनों का निर्माण किया जाता है तथा प्रशासनिक तंत्र के माध्यम से उनकी क्रियान्विति करवायी जाती है। एक लोकतंत्रात्मक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा पर केंद्रित राजनीतिक व्यवस्था में मानव जीवन के सभी पहलू प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उस राजनीतिक व्यवस्था से प्रभावित व नियंत्रित होते हैं। संक्षेप में कहा जाए तो राजनीति नागरिक, समाज व राष्ट्र जीवन को सुखमय व सुविधाजनक बनाने के लिए की गई शक्ति संपन्न व्यवस्था है।

राजनीतिक व्यवस्था तंत्र के प्रति नागरिकों का सचेत दृष्टिवान होना ही राजनीतिक चेतना है। जब समाज के लोग राजनीतिक व्यवस्था को नागरिकों, समाज और राष्ट्र के हित-अहित से जोड़कर मूल्यांकित करते हैं, तो कहा जा सकता है कि उस समाज के लोग राजनीतिक चेतना सम्पन्न हैं। नागरिकों की अपने समय के राजनीतिक तंत्र की कार्य प्रणाली के प्रति संतुष्टि व असंतुष्टि का भाव तथा असंतुष्टि की स्थिति में उसमें बदलाव की सोच का विकास राजनीतिक चेतना है, तो अपने समय के शासक वर्ग या राजनीतिक नेतृत्व के आचरण, उसके द्वारा निर्धारित नीतियों, प्रशासनिक तंत्र द्वारा नीतियों की क्रियान्वित की स्थिति, प्रशासनिक तंत्र के आचरण की वास्तविक स्थितियों की जानकारी व जागरूकता राजनीतिक यथार्थ है।

संक्षेप में नागरिक जीवन को किसी भी रूप में प्रभावित करने वाले राजनीतिक तंत्र के अंगों की सच्चाइयों से रूबरू होना राजनीतिक यथार्थ है।

राजनीति और समाज का अभिन्न संबंध है। दोनों एक दूसरे से प्रभावित होते हैं, और प्रभावित करते हैं। राजनीति समाज को दिशा देती है और समाज राजनीति को। यही बात समाज व साहित्य के लिए भी लागू होती है। साहित्य समाज से प्रभावित होता है और समाज को प्रभावित भी करता है। चूँकि राजनीति व साहित्य दोनों समाज से प्रत्यक्ष रूप से संबद्ध हैं। इसलिए साहित्य का राजनीति से प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष संबंध जुड़ जाता है। साहित्य व राजनीति दोनों का ही उद्देश्य मानव जीवन या समाज जीवन की बेहतरी के लिए रचनात्मक कार्य करना है। इसलिए यदि राजनीतिक नेतृत्व की विसंगतियों के कारण आमजन की ज़िंदगी या समाज जीवन प्रतिकूल ढंग से प्रभावित होता है, तो साहित्यकार राजनीतिक सत्यों के प्रति जनता को सचेतकर अपने कवि कर्तव्य का निर्वहन करता है। आज हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था में विसंगतियों व विद्रूपताओं का ऐसा अंबार है कि उसके प्रति प्रतिक्रिया करने से साहित्यकार चाहकर भी नहीं बच सकता है। वह (साहित्यकार) लोकतांत्रिक विसंगतियों व विकृतियों तथा राजनीतिक षडयंत्रों व चालबाजियों को उद्घाटित कर एवं इनके प्रति जनता को जाग्रत कर अपने साहित्यिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय धर्म का निर्वहन करता है। “लोकतंत्र में इतने विरोधाभास हैं, इतनी अधिक विडम्बनाएँ हैं कि कोई संवेदनशील व्यक्ति उसके प्रति गहरी प्रतिक्रिया किये बिना रह ही नहीं सकता। नेताओं की चालबाजी, स्वार्थसिद्धि के लिए विविध हथकण्डों को अनेक प्रतीकों और बिम्बों में उभारकर कवि अपने राष्ट्रीय तथा सामाजिक दायित्व का निर्वाह करता है। कवि का कर्तव्य है कि वह जनता को समय से परिचित कराये, साथ ही उसे समय की धारा में निर्बुद्ध होकर बहने और डूबने से भी बचाये।”¹ इसी धर्म के पालनार्थ समकालीन हिंदी कविता और ग़ज़ल में राजनीतिक स्थितियों का यथार्थ चित्रण हुआ है।

हिंदी ग़ज़ल का वास्तविक जन्म राजनीति में व्याप्त विद्रूपताओं विकृतियों के उद्घाटन एवं उनके विरोध के स्वर से हुआ है। हिंदी ग़ज़ल को गौरवशाली स्वरूप प्रदान करने वाले ग़ज़ल सम्राट दुष्यंत कुमार की ग़ज़लें तत्कालीन राजनीति में व्याप्त और अराजकता-विसंगतियों की ही उपज हैं। यही उनकी प्रसिद्धि व लोकप्रियता का आधार भी है। उसी के प्रभावस्वरूप समकालीन हिंदी ग़ज़ल में राजनीतिक चेतना या राजनीतिक यथार्थ का स्वर प्रधान है। हिंदी ग़ज़ल आमजन के दुःख-दर्दों की संगी-

साथी है और आम आदमी की फटेहाल दशाओं के लिए जिम्मेदार राजनीतिक सत्ता के प्रति प्रतिरोध का स्वर हिंदी ग़ज़ल में मुखर रूप में व्यक्त हुआ है। सत्ता व स्वार्थ की वर्तमान राजनीति में राजनीतिक मूल्यों का तीव्र गति से अवमूल्यन हुआ है। भ्रष्ट व आपराधिक राजनीतिक नेतृत्व पूँजी व धर्म के साथ गँठजोड़ कर सत्ता व स्वार्थ की अवसरवादी राजनीति कर रहा है। और अपने स्वार्थ के लिए मीडिया व न्यायतंत्र को भी प्रभावित कर रहा है। 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल वर्तमान राजनीति के इन छल छद्मों, षड्यंत्रों, प्रपंचों एवं उसके भ्रष्ट चेहरे के मुखौटों को प्याज के छिलकों की तरह परत दर परत उघाड़ कर बेनकाब करती है। और समाज में व्यवस्था परिवर्तन की चेतना जाग्रत करती है। “यद्यपि जनतांत्रिक शासनप्रणाली सभी शासनप्रणालियों में सहज और श्रेष्ठ होती है, किन्तु भारतीय जनतंत्र का ढाँचा कुछ इस तरह से बिगड़ा है कि उसमें आम आदमी का जीना दूँधर हो गया है। जनतांत्रिक प्रणाली के दो तीन दशकों को भोगकर आज के कवि ने यह देख लिया है कि हमारी प्रजातान्त्रिक शासन व्यवस्था ने सुख सुविधाओं के स्थान पर दुःख और अभाव ही दिए हैं। आज हमारे देश में प्रजातंत्र महज एक मजाक बनकर रह गया है। इसीलिए आज का हिंदी ग़ज़लकार प्रजातंत्र की उपलब्धियों का मूल्यांकन करने के बजाय उसकी सार्थकता पर ही प्रश्न चिन्ह लगा देता है।”² प्रस्तुत अध्याय में 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल के माध्यम से सामयिक लोकतांत्रिक एवं राजनीतिक व्यवस्था की विकृतियों के तथ्यों व सत्यों को उजागर करने का प्रयास किया गया है।

3.1 युगीन राजनीतिक परिवेश

आज़ादी के बाद हमारे देश में दुनिया की सर्वश्रेष्ठ लोकतंत्रात्मक शासन प्रणाली को अपनाया गया। जिसमें शासन की शक्ति जनता में निहित होती है। लोकतंत्र का अर्थ होता है- जनता का, जनता के द्वारा, जनता के लिए शासन। लेकिन हमारे लोकतंत्र की वर्तमान सच्चाइयों को देखकर लगता है, जैसे आज जनतंत्र से जन गायब हो गया है और यह जनता के वोट से राजनेताओं का राजनेताओं के लिए शासन बनकर रह गया है। तथा इसमें जन की भूमिका वोट देने तक ही सीमित हो गयी है। लोकतंत्र में शासन की शक्ति जनता में निहित होती है और राजनेता जनता के सेवक होते हैं। लेकिन आज के हमारे लोकतांत्रिक परिदृश्य में देश के भाग्य विधाता मेहनतकश आमजन की शक्ति नियामक पहचान मिट गई है और वह सेवक की तरह बदहाल जीवन जीने को मजबूर है। इसके विपरीत राजनेता जो जनसेवक थे, वे राजा

या मालिक बन गए हैं। लोकतंत्र का अर्थ, ध्येय व मूल्य सब कुछ बदल गये हैं। हिंदी ग़ज़लकार लोकतंत्र की बदलती परिभाषा पर लिखते हैं-

“वोट” का अधिकार पा कर भी हमें क्या मिल गया

आप ‘राजा’ बन गए, हम लोग ‘जनता’ बन गए।”³ (जहीर कुरेशी)

*** *** *** ***

“कहने को जनतंत्र, मगर ये कैसा है

वोट हमारा पर सरकारें उनकी हैं।”⁴ (महेश कटारे सुगम)

*** *** *** ***

“हम भारत के भाग्य विधाता मतदाता चिरकुट आबाद

लोकतंत्र की ऐसी-तैसी नेता जी का ज़िंदाबाद।”⁵ (डी. एम. मिश्र)

लोकतंत्र की सफलता एवं लोकतांत्रिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आज़ादी के बाद स्वतंत्रता आंदोलन के अगुआ राष्ट्रभक्तों के देशप्रेम और त्याग के आदर्शों को राजनीतिक मूल्यों के रूप में देश की शासन-प्रशासन की कार्यप्रणाली में स्थापित किये जाने की जरूरत थी, लेकिन आज के राजनीतिक हालात को देखकर लगता है कि आज़ादी के बाद के राजनीतिक नेतृत्व ने त्याग, राष्ट्रहित, जनसेवा व जनकल्याण के मूल्यों की बजाय स्वजनहिताय, सत्ता व स्वार्थ की राजनीति को मूल्य बना लिया। जिससे राजनीति में अनेक तरह की विसंगतियाँ एवं विकृतियाँ घर कर गयी हैं। लोकतांत्रिक मूल्यों के विघटन से हमारा लोकतंत्र लक्ष्यभ्रष्ट हो गया है तथा उसकी गरिमा का ह्रास हुआ है। इस संबंध में विचार व्यक्त करते हुए डॉ. अनिलकुमार शर्मा लिखते हैं, “जनतंत्र मानव-कल्याण का वाहक होता है, किंतु ऐसा लगता है कि भारतीय जनतंत्र की समूची ऊर्जा ही आज जैसे स्खलित-सी हो गई है। जैसे-जैसे लोकतंत्र आयु की सीढ़ियों पर चढ़ता जा रहा है, वैसे-वैसे इसकी आंतरिक विकृतियाँ विकराल रूप लेती जा रही हैं। डरावना यथार्थ तो यह है कि जिन लक्ष्यों के लिए और जिन मूल्यों के संबल के साथ इसकी स्थापना की गई थी, वे वर्तमान राजनीति की गतिविधियों के कारण पूरी तरह लुप्त होते जा रहे हैं।”⁶ आज के राजनेताओं के लिए सियासत सेवा नहीं अपितु सौदागरी हो गई है। आज राजनीति से नीति गायब है, राज ही शेष है, जनतंत्र से जन विलुप्त हो गया है। राजनेताओं के तिजारती आचरण के कारण प्रजातंत्र के मूल मूल्यों की नींव हिल रही है। डॉ. हेतु भारद्वाज लिखते हैं, “जो राजनीति कभी देश सेवा का पर्याय थी, वह सत्ता तक पहुँचने का साधन बन गई और एक व्यवसाय में परिणत हो गई। उसका परिणाम हम देख रहे हैं साम्प्रदायिकता

का उभार, जातिवाद का प्रसार, राजनीति और अपराध का गठजोड़ एवं पूँजीवादी सोचवाली प्रवृत्तियों का आधिपत्य।”⁷ हिंदी ग़ज़लकार लिखते हैं -

“लग चुका है खून अब तो दाढ़ में
देश-सेवा अब कहाँ आदर्श है।”⁸ (महेश अग्रवाल)

“तिजारत है हुकूमत की हवस है,
सियासत आज कुर्बानी नहीं है।”⁹ (शिव ओम अम्बर)

“राज'नीति' कभी रही होगी
आजकल तो दुकानदारी है।”¹⁰ (हरेराम समीप)

“जड़ें हिलने लगीं जम्हूरियत की
कहीं नीयत में खामी आ रही है।”¹¹ (वशिष्ठ अनूप)

आज़ादी के बाद हमारे देश के राजनीतिक नेतृत्व में लोकतांत्रिक मूल्यों का निरंतर क्षरण हुआ है। आज के दौर की राजनेताओं की कथनी और करनी में जमीन-आसमान का अंतर है। सेवा की बातें करने वाले ये कथित जनसेवक सामंती संस्कृति के जीव हैं; देश की एकता की बातें करने वाले ये लोग जाति-धर्म के नाम पर विभेद की चुनावी राजनीति करते हैं और गरीबों के साथ खड़े होने के दावे करने वाले खद्दरदारी, पूँजीपतियों की मखमली गोद में बैठते हैं। रहबर, रहज़नों का आचरण करते हैं। कारण यह है कि राजनीति के अपराधीकरण के कारण आज खलनायक भी नायक बन हुए हैं। ये धर्म एवं पूँजी के साथ गुप्त गठबंधन कर कुर्सी की राजनीति करते हैं। और कुर्सी को पाने के लिए अवसरवादी व अलोकतांत्रिक आचरण करने से परहेज नहीं करते हैं। हिंदी शायर कहते हैं-

“कह रहे कुछ, कर रहे कुछ, हो रहा कुछ दोस्तों
साजिशों वाली सियासी बेईमानी देखिए।”¹² (महेश कटारे सुगम)

“नायकों के भेष में अब
रोज़ खलनायक मिले हैं”¹³ (किशन तिवारी)

कुर्सी की राजनीति के कारण समकालीन राजनीति में वंशवाद की परंपरा हावी है। यह किसी एक दल की नहीं, बल्कि पूरे राजनीतिक वर्ग की सच्चाई है। वंशवाद की पैदाइश स्वयंभू संवेदनहीन राजनेता चुनाव में जीत के बाद जनता के प्रति उदासीन हो, पाँच साल तक जीत का विलासमय जश्न मनाते हुए चुनावी खर्च की वसूली करने में लगे रहते हैं। और पाँच वर्ष के बाद फिर से चुनावी मौसम में चुनावी चुगले के रूप में मुफ्त की रेवड़ियों की सौगात लेकर आते हैं। सामयिक दौर में चुनावी राजनीति के लिए मुफ्तखोरी को बढ़ावा देने की तेजी से उभरती राजनीतिक प्रवृत्ति राष्ट्रहित की दृष्टि से उचित नहीं है। परिवारवाद एवं मुफ्तखोरी की चुनावी राजनीति पर शेर द्रष्टव्य हैं-

“वह तो पैदाइशी विधायक है

सेवा को जजमानी कहता है।”¹⁴

(देवेन्द्र आर्य)

*** *** ***

“किसी अगजर से ये हर ओर फेंटा मार बैठे हैं

समूचे देश की छाती पे कुछ परिवार बैठे हैं।”¹⁵

(वशिष्ठ अनूप)

*** *** ***

“मैं सियासतदां नहीं कोई

जेब काटूँ, रेवड़ियाँ बाटूँ।”¹⁶

(हरेराम समीप)

महात्मा गाँधी के मतानुसार जिन व्यक्तियों में समाजसेवा की प्रबल आकांक्षा एवं त्याग की भावना विद्यमान हो, उन्हें ही राजनीति के क्षेत्र में प्रवेश करना चाहिए। क्योंकि राजनीति तभी सार्थक और जनकल्याणकारी हो सकती है, जब वह त्याग, सेवा और नैतिकता के मूल्यों से सिंचित हो। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान या स्वातंत्र्योत्तर प्रारंभिक वर्षों में भारतीय राजनीति का चरित्र सेवा, आदर्श और राष्ट्रसेवा की भावना पर आधारित था। उस समय राजनीति जनसेवा का राजपथ थी, लेकिन आज यह व्यक्तिगत स्वार्थसिद्धि और सत्ता-लोलुपता का उपकरण बनती जा रही है। राजनीति, जो कभी सेवा, त्याग और लोकहित के आदर्शों की संवाहक थी, आज अपराधी माफिया वर्ग और धनबलियों के लिए स्वहितसाधन का साधन बन गई है। पूँजीवादी मानसिकता से प्रेरित लोगों के लिए राजनीति एक प्रकार का अवैध व्यवसाय बन चुकी है, जहाँ जनहित से अधिक निजी लाभ को प्राथमिकता दी जाती है। परिणामस्वरूप भ्रष्टाचार राजनीतिक संस्कृति का अभिन्न अंग बन गया है। यह भ्रष्टाचार केवल राजनीतिक तंत्र तक सीमित नहीं रहा, बल्कि इसकी विकृतियाँ

लोकतंत्र के अन्य स्तंभों—कार्यपालिका, न्यायपालिका और मीडिया—तक फैल चुकी हैं। इससे लोकतांत्रिक व्यवस्था के मूल्यों और आदर्शों का हास हो रहा है। हरिशंकर परसाई लिखते हैं, “भ्रष्ट राजनीतिक दौर की संस्कृति ने अपना असर सब जगह दिखाया। किसी का किसी पर विश्वास नहीं रह गया, न व्यक्ति पर, न संस्था पर, कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका का नंगापन प्रकट हो गया।.....लोकतांत्रिक स्पिरिट गिरावट पर है।”¹⁷ गज़लकार महेश कटारे सुगम कहते हैं-

“रेत, खनन, और मद्य माफिया राजनीति में आयेंगे

इनकी नज़रों में तो केवल पैसा ही पैसा होगा।

दौलत, बल की सघन राशि जब मतदानों में व्यय होगी

होड़ कमाने की होगी तो लोकतंत्र कैसा होगा।”¹⁸(महेश कटारे सुगम)

*** *** *** ***

“टिका जिन पर भी ये गणतंत्र अपना

वही खम्भे उखाड़े जा रहे हैं।”¹⁹

(महेश कटारे सुगम)

समकालीन राजनीतिक नेतृत्व की राजनीतिक मूल्यों एवं जीवन मूल्यों से दूरी के कारण युगीन राजनीतिक परिवेश अनेक विकृतियों व विद्रूपताओं से ग्रस्त होकर दूषित हो गया है। राजनीति के अनुकरण पर समाज में भी मूल्यहीनता बढ़ रही है और यही मूल्यहीनता वर्तमान की अनेक समस्याओं की जड़भूत बनी हुई है।

3.2 राजनीति का अपराधीकरण

समकालीन राजनीतिक परिवेश का एक यथार्थ पहलू यह है कि राजनीति का अपराधीकरण होता जा रहा है। इसे यूँ भी कह सकते हैं कि अपराधियों का राजनीतिकरण हो रहा है। राजनीति के अपराधीकरण से तात्पर्य है राजनीति में अपराध व अपराधियों का प्रवेश। वर्तमान दौर में हमारे देश में एक ओर जहाँ राजनीति में अपराध की मानसिकता तथा कार्यप्रणाली बढ़ रही है। तो वहीं दूसरी ओर अपराधियों का राजनीतिकरण हो रहा है। तथा आपराधिक पृष्ठभूमि वाले लोग राजनेताओं का चोला पहनकर जनप्रतिनिधियों के रूप में चुनकर संसद या विधानसभाओं में पहुँच रहे हैं। राजनीति के अपराधीकरण के कारण अपराधियों के सरदार सियासत की शाही सवारी कर रहे हैं और राजनीति का जनपथ इन अपराधियों का राजमार्ग बनता जा रहा है। सत्ता की गाड़ी पर बैठकर ये अपराध के हाड़वे पर और द्रुत गति से दौड़ रहे हैं। हिंदी गज़लकार लिखते हैं-

“रंग जो भरते रहे कल तक गुनाहों में
आज शामिल हैं हमारे खैरखवाहों में।”²⁰ (विनय मिश्र)

*** **

“जो कभी अपराधियों के सरगना थे
अब सियासत की सवारी ले रखी है।”²¹ (महेश कटारे सुगम)

*** **

“टोल-टैक्स या लूट, फिरौती जाने क्या-क्या छीनें
वे चोर, लुटेरे राजनीति के राजमार्ग पर बैठे हैं।”²² (हरeram समीप)

राजनीति के अपराधीकरण की स्थिति यह है कि चोरी, डकैती, हत्या, तस्करी यहाँ तक कि राष्ट्रीय सुरक्षा कानून के उल्लंघन के कुख्यात अपराधी धवल खादी धारणकर या साधु-सन्यासियों के भगवा चोले ओढ़कर संसद और विधानसभाओं में पहुँच रहे हैं। राजनीतिक दल वोट व सत्ता की राजनीति के चलते ऐसे उम्मीदवारों को टिकट देते हैं जो जिताऊ हो, भले ही उनकी पृष्ठभूमि आपराधिक क्यों न हो। “आज वोटों की राजनीति इस कदर हावी हो गई है कि अब नेता वर्ग या राजनीतिक दल राजनीति का अपराधीकरण करने से भी नहीं चूकते। संसद और विधानसभाओं में आज अपराधी प्रवेश कर चुके हैं। कत्ल के मुकदमों में भी जेल में बंद लोगों को चुनाव में लड़ने की इजाजत मिल जाती है।”²³ विधायिकाओं में इन आपराधिक रिकॉर्ड वाले राजनेताओं की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है। एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स के अनुसार 2004 के लोकसभा चुनाव में 24%, 2009 में 30%, 2014 में 34% तथा 2019 में 46% सांसद आपराधिक रिकॉर्ड वाले हैं। (स्रोत- <http://adrindia.org>) आपराधिक छवि वाले जनप्रतिनिधियों की बढ़ती संख्या से स्पष्ट है कि हमारे देश की राजनीति अपराधियों का जमघट होता जा रही है और विधायी संस्थान अपराधियों के लिए सुरक्षित आश्रयस्थल बनते जा रहे हैं। अपराधियों के राजनीतिकरण पर हिंदी गज़लकार कहते हैं।

“जिनके चेहरे पर लिखी है जेल की ऊँची फ़सील
रामनामी ओढ़कर संसद के अन्दर आ गए।”²⁴ (अदम गोंडवी)

*** **

“बड़े अपराधियों को जेल में रखना मना है अब
हमारे देश की संसद में अब उनकी व्यवस्था है।”²⁵ (वशिष्ठ अनूप)

“इसी को दोस्तो जम्हूरियत कहा जाता

चोर-उचक्के भी देश के वज़ीर होते हैं।”²⁶ (डी. एम. मिश्र)

राजनीति के अपराधीकरण की शुरुआत राजनेताओं द्वारा अपराधियों के संरक्षण से हुई। राजनीतिक मूल्यों के पतन के साथ राजनीतिक नेतृत्व ने अपराधियों के धनबल-बाहुबल के माध्यम से जनमत को प्रभावित करने के लालच में अपराधियों के प्रति अनुकूलता बरतते हुए उन्हें संरक्षण प्रदान किया है, तो राजनीति के सहयोग से अपराधी और भी अधिक दबंग तरीके से अपने आपराधिक हितों को अंजाम देते रहे हैं। सामयिक राजनीति माफियाओं व अपराधियों की न केवल संरक्षकस्थली है, अपितु पालनकर्त्री भी है। राजनीति में अपराध की रोकथाम के संबंध में नियुक्त की गई बोहरा समिति की रिपोर्ट का सार है-“अपराधी गिरोह राजनीतिक संरक्षण में फल-फूल रहे हैं। राजनीतिज्ञों और अपराधियों का गठबंधन एक समानान्तर सरकार चला रहा है जिसने राज्य को अप्रासंगिक कर दिया है।”²⁷ हिंदी गज़लकार राजनीति के अपराधी संरक्षक स्वरूप को उजागर करते हुए लिखते हैं-

“चोर, लुटेरे, गुंडे, कातिल, अपराधी

राजनीति के संरक्षण ने पाले हैं।”²⁸ (महेश कटारे सुगम)

*** **

“रही पक्ष में सदियों से बदमाशों के

सत्ता के माकूल रही है बदमाशी।”²⁹ (महेश कटारे सुगम)

*** **

“मिल रहा है सियासत का साथ,

इसलिए भी चुटेरे चले।”³⁰ (जहीर कुरेशी)

राजनीति की असीम शक्तियों ने राजनीति के संरक्षण में पलने वाले अपराधियों के मन में भी राजनेताओं की दया पर निर्भर रहने के बजाय, स्वयं जनप्रतिनिधि बनकर राजनीतिक रूप से सशक्त बनने की इच्छा पैदा की। ताकि राजनीतिक प्रभुत्व से वे कानून के डंडे से बच सकें तथा अपने गुनाहों को आवरित कर सकें। जब अपराधी राजनीति में प्रवेश कर जाते हैं, तो उनकी उच्च राजनीतिक प्रस्थिति के कारण अपराधियों पर डंडा चलाने वाले कानून के रक्षक पुलिस-प्रशासन की स्थिति अधीनस्थ की हो जाती है और वे अपने राजनीतिक प्रभुत्व के बल पर उससे बच रहते हैं। यही कारण है कि अपराधियों का राजनीति की ओर आकर्षण और अपराधियों का राजनीतिकरण निरंतर बढ़ता जा रहा है। राजनीति अपराधियों के लिए वरदान साबित

होती है। अपराधी जब चुनाव जीत कर जनप्रतिनिधि बन जाते हैं, तो वे शासकीय व सामाजिक मान-सम्मान के अधिकारी बन समाज की अग्रिम पंक्ति में स्थान पाते हैं। समाज की घृणा के पात्र तस्कर व डकैत, नेताओं की खादी को धारण करते ही मीडिया की सुर्खियों में आ जाते हैं, उसकी हेडलाइन बन जाते हैं। पुलिस द्वारा हिस्ट्रीशीटर एवं भगौड़े घोषित किये अपराधी राजनीति में आते ही राजधानियों के आइकन बन जाते हैं। हिंदी गज़लकार लिखते हैं -

“कटघरों से वो रिहाई माँगता है

अब तो मुजरिम रहनुमाई माँगता है।”³¹ (महेश अग्रवाल)

*** **

“वो गुण्डा चल रहा सीना फुलाकर

हुकूमत का जमाई हो गया है।”³² (महेश कटारे सुगम)

*** **

“जितने हरामखोर थे कुर्बो-जवार में।

परधान बनके आ गए अगली कतार में।”³³ (अदम गोंडवी)

राजनीति के अपराधीकरण के कारण आज के दौर का एक राजनीतिक यथार्थ है कि आपराधिक धंधों में लिप्त लोग आज संविधान एवं लोकतंत्र के मुखिया बने हुए हैं। जनप्रतिनिधि बनने पर भी इनकी अपराधी प्रवृत्ति व मानसिकता बदलती नहीं है। जब आपराधिक मानसिकता वाले ऐसे लोग कानून के निर्माता व रक्षक बन जाते हैं, तो कानून के राज की जगह जंगलराज कायम होता है। क्योंकि कानून के नियामक ये लोग ही पुलिस-प्रशासन में अवांछित हस्तक्षेप कर कानून की धजियाँ उड़ाते हैं। इससे समाज में आपराधिकता व अराजकता को बढ़ावा मिलता है तथा कानून व न्याय के शासन को वनवास मिलता है। और प्रजातंत्र अपराधियों का अपराध तंत्र बन जाता है। इस पर हिंदी शायर कहते हैं-

“अपराधों के घर में जिनका जन्म हुआ।

संविधान के आज वही रखवाले हैं।”³⁴ (महेश कटारे सुगम)

“साँप-नेवले एक साथ सरकार चलायेंगे / सारे अपराधी मिलकर अपराध मिटायेंगे।

कुछ हत्यारे कुछ डकैत कुछ तस्कर मिल-जुलकर/इस पगलाये लोकतंत्र की शान बढ़ायेंगे।

गुंडे जननायक हैं गाँधी के अवतार हैं ये / भूले से यदि जेल गये तो उन्हें छुड़ायेंगे।

सत्य न्याय इंसाफ़ की बातें यहाँ करेंगे जो / ऐसे पागल फाँसी पर लटकाए जाएँगे।”³⁵

-वशिष्ठ अनूप

राजनीति के अपराधीकरण का एक दुष्प्रभाव यह हो रहा है कि मूल्यजीवी एवं अच्छे लोग राजनीति से दूर होते जा रहे हैं। “आज के चुनावी दौर का मुख्य अंग गुंडागर्दी है, बिना इसके आज राजनीति की अहमियत ही नहीं है। गुंडागर्दी उसका अभिन्न अंग बन चुकी है, इसके आलावा आज अनैतिकता, भ्रष्टाचार, स्वार्थ आदि कई कुप्रवृत्तियाँ राजनीति का अंग बन गई हैं। सच्चाई और ईमानदार व्यक्ति इससे दूर भाग रहा है। अब राजनीति में सद्गुण नाम की कोई बात नहीं रह गई है, वह एक विषैला हस्तकौशल बनके रह गई है, जिसमें ईमान नहीं है।”³⁶ अगर अच्छे चरित्रवान व सदाचारी लोग राजनीति में आते भी हैं, तो चुनावों में सफल नहीं होते हैं। वशिष्ठ अनूप राजनीति में अपराधियों की बढ़ती भीड़ एवं अच्छे लोगों के राजनीति से दूर होने की बात को मिथकीय शैली में लिखते हैं-

“कई कंस बैठे हैं सिंहासनों पर

मगर अब कहाँ साँवले जीतते हैं।”³⁷

(वशिष्ठ अनूप)

*** *** *** ***

“रावण बैठा सिंहासन पर

मिला राम को निष्कासन है।”³⁸

(वशिष्ठ अनूप)

राजनीति के अपराधीकरण को रोकने के लिए कड़े कानूनी प्रावधान व अविलंबित पारदर्शी न्यायिक प्रक्रिया के साथ जनता में आपराधिक पृष्ठभूमि वाले प्रत्याशियों के प्रति तिरस्कार के भाव को जाग्रत करना आवश्यक है। जनता को शिक्षित किया जाना जरूरी है कि इन अपराधियों के कारण ही लोकतंत्र लूटतंत्र में बदलता जा रहा है और वह अपने वास्तविक अधिकारों से वंचित हो रही है। इसलिए उसे अपराधियों को कभी भी अपना प्रतिनिधि नहीं बनाना है, तभी राजनीति के अपराधीकरण पर कुछ लगाम लग सकती है। ग़ज़लकार वशिष्ठ अनूप कहते हैं-

“लूट लेंगे सरे आम ये देश को

राहज़न है, इन्हें रहनुमाई न दे।”³⁹

(वशिष्ठ अनूप)

3.3 राजनीति का पूँजी एवं धर्म से गठजोड़

धर्म एवं धन (पूँजी) भारतीय राजनीति के महत्वपूर्ण निर्धारक तत्व हैं। राजनीति के लिए धर्म समाज में जन शक्ति एवं जनमत को भावनात्मक रूप से प्रभावित करने का साधन है, तो पूँजी (पूँजीपति) चुनावों के दौरान जनमत को प्रभावित करने के लिये किये जाने तामझाम एवं चुनावी खर्चों का आर्थिक स्रोत है।

सामयिक राजनीति ने अपने हित साधने के लिए धर्म एवं पूँजी से गहरा व गुप्त गठजोड़ कर लिया है। राजनीतिक दल अपनी राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति हेतु धर्म एवं धन को बतौर साधन इस्तेमाल करते हैं।

राजनीति का पूँजी से गठबंधन-भारतीय राजनीति में धन या पूँजी की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। आज पूँजी राजनीति या लोकतंत्र के भविष्य को निर्धारित करने वाली महत्वपूर्ण नियामक तत्व हो गयी है। राजनीतिक दलों के चुनावी खर्चों का प्रबंधन पूँजीपति घरानों द्वारा दिए जाने वाले चुनावी चंदे से होता है। एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स (एडीआर) की नवीनतम रिपोर्ट के अनुसार वित्त वर्ष 2017-18 और वित्त वर्ष 2019-20 में मान्यता प्राप्त राष्ट्रीय राजनीतिक दलों ने 62 अरब रुपये के चुनावी बॉन्ड भुनाए हैं। इनमें से 92.3 फीसदी बॉन्ड दस करोड़ रुपये के मूल्यवर्ग के हैं, जो एडीआर के अनुसार कॉरपोरेट जगत का पैसा है। (स्रोत-<http://adrindia.org>) ये आँकड़े बताते हैं कि कॉरपोरेट जगत द्वारा चुनावी ट्रस्टों के माध्यम से राजनीतिक दलों को पूँजी का संस्थागत स्थानांतरण किया जाता है, जिसके बल पर राजनीति में पूँजीपतियों की पूर्ण हिस्सेदारी हो जाती है। और राजनीतिक शासक वर्ग लोकतंत्र की आड़ में पूँजीपतियों के हितों में काम करने वाली एक राजनीतिक व्यवस्था बन जाता है। राजनीति और पूँजी में आपसी स्वार्थाधारित गहरी संधि है, जो लोकतंत्र को खोखला करने वाली सुरंग बन गई है। हिंदी ग़ज़लकार राजनीति और पूँजी के बीच पर्दे के पीछे होने वाली अलक्षित दुरभिसंधि को उजागर करते हुए लिखते हैं-

“सत्ता की ये दुरभि संधि है / धनपतियों के संग हुई है

संग हुई जब धनपतियों के / गहरी एक सुरंग हुई है।”⁴⁰ (महेश कटारे सुगम)

*** *** *** *** ***

“लोकतंत्र के खेल में पूँजी का शेर सौ प्रतिशत है

हमा-शुमा धीरे-धीरे खुद ही बाहर हो जाएंगे।”⁴¹ (देवेन्द्र आर्य)

अर्थ प्रधान वर्तमान युग में अर्थ ही सबसे बड़ी शक्ति है। इसलिए आज राजनीति में भी धनबल का अत्यधिक महत्व हो गया है। इसके सहारे ही राजनीतिक दलों की चुनावी वैतरणी पार होती है, जिसके खेवनहार पूँजीपति घराने बनते हैं। चुनावी व दलीय खर्च की व्यवस्था कर सत्ता के सहयोगी बने पूँजीपतियों का हर जोड़-बाकी अपने लाभ के लिए होता है और चुनावी चंदे की पूँजी के बदौलत ये सत्ता के नियामक, प्रभावक व संचालक हो जाते हैं। सत्ता के बादल पूँजीपतियों की पूँजी

की हवाओं के प्रभावस्वरूप ही बनते, बिगड़ते और बरसते हैं। सत्ता की शक्तियों, नीतियों व खजाने के ताले-चाबी इन्हीं के हाथों में होते हैं। अर्थात् सत्ता पूरी तरह से इनके नियंत्रण में होती है। हिंदी गज़लकार लिखते हैं -

“बाहु-बल से भी अधिक धन-बल जरूरी हो गया
हाँ, तभी जा कर जुटा जन-बल सियासत के लिए।”⁴² (जहीर कुरेशी)

*** **

“कैसे सत्ता के सहयोगी
बनते बड़े कुबेर जमूरे।”⁴³ (महेश कटारे सुगम)

*** **

“पूँजी का हर गणित नफा की खातिर है
हाथ उसी के सारे चाबी, ताले हैं।”⁴⁴ (महेश कटारे सुगम)

पूँजीवादी इस दौर में पूँजी या पूँजीपतियों का राजनीति पर वर्चस्व व दबदबा बढ़ता जा रहा है। पूँजी एक तरह से सियासत या सत्ता की सौदागरी दलाल हो गई है और राजनीतिक सत्ता पूँजीपतियों के इशारों पर काम करने वाला कार्यतंत्र। राजनीति में पूँजीपतियों के बढ़ते प्रभाव के कारण आमजन की भूमिका गौण होती जा रही है। इस प्रच्छन्न सच को उजागर करते हुए गज़लकार कहते हैं। -

“जन-तंत्र में दलाली का अवसर बना लिया।
पूँजी ने राजनीति को चाकर बना लिया।”⁴⁵ (जहीर कुरेशी)

*** **

“सिर्फ पैसे से चलेगी देश की अब राजनीति
या कहीं शामिल इसी में देश की जनता भी है।”⁴⁶ (विनय मिश्र)

समकालीन लोकतांत्रिक परिवेश पर नजर डालें तो हम पाते हैं कि कि इसमें जाति, धर्म, वर्ग, क्षेत्र व भाषा आधारित अनेक प्रकार के दबाव समूह प्रभावी हैं, जो सरकारी नीतियों व निर्णयों को अपने अनुकूल बनाने के लिए सत्ता को प्रभावित कर रहे हैं। इनमें सबसे प्रभावशाली दबाव समूह पूँजीपति घरानों का है। ये घराने बड़े-बड़े व्यावसायिक सौदे अपने पक्ष में करवाने तथा अपने कारोबार के मुनाफेदार संचालन के लिए विभिन्न प्रकार की सरकारी सुविधाएँ व रियायतें पाने के लिए सत्ता पर दबाव डालते हैं और सत्ता को अपने अनुकूल कार्य करने के लिए मजबूर करते हैं, जिसका प्रभाव सरकारी नीतियों, नियमों व निर्णयों में इन घरानों के लिए की जाने वाली अनेक तरह की सुविधाओं व रियायतों के रूप में झलकता है। हिंदी शायर लिखते हैं -

“फीसें वसूलते मिले लाखों के बीच में।

‘लॉबिस्ट’ काम करते हैं ‘सौदों’ के बीच में।”⁴⁷ (जहीर कुरेशी)

*** *** *** *** ***

“सुविधाओं का नया पिटारा खोल दिया / सबके हाथों में इक इक कशकोल दिया।

पूँजीपतियों पर खुलकर उपकार किये / नफा कमाने कानूनों में झोल दिया।

छूट मिली काले धंधों की अपनों को / सोने चाँदी में अपनों को तोल दिया।”⁴⁸

(महेश कटारे सुगम)

राजनीति व पूँजी के गठजोड़ या कहें की राजनीति पर पूँजी के दबदबे का दुष्प्रभाव यह होता है कि पूँजी के सहयोग से बनी सरकारों के चिंतन व चिंता में कॉर्पोरेट जगत के खास घराने एवं उनके हित ही रहते हैं। ऐसे में राजनीतिक शासक वर्ग देश की तरक्की की बुनियाद व आधार स्तंभ मेहनतकश किसान-मजदूर एवं आम आदमी के हितों के ऊपर पूँजीपतियों के हितों को प्राथमिकता देता है, उनके हितों का संरक्षण-संवर्धन करता है, उन्हीं के वित्तीय हितों को ध्यान में रखकर नीतियाँ, नियम व योजनाएँ बनाता है। तथा उनके पूँजी सहयोग के बदले राज्य के संसाधनों को उन्हें सौंपता है। जिसका परिणाम यह होता है कि लक्ष्मी जहाँ से आती है, कई गुना होकर वापस वहीं चली जाती है। या कहें कि पूँजीपतियों की सत्ता के व्यापार में निवेशित पूँजी कई गुना होकर वापस लौटती है। इससे एक तो आम आदमी की हकमारी होती है। जिसकी वजह से ही आज़ादी के सात दशक बाद भी गाँव एवं ग्रामीण आम आदमी को अपनी फटेहाल दशाओं से निजात नहीं मिल पायी है। डॉ. तीर्थेश्वर सिंह लिखते हैं, “गाँव के गरीब का कोई सहारा नहीं है। सरकार वहाँ जो कुछ करती है, उससे अंततः अमीरों और शक्तिशाली लोगों को ही फायदा होता है। हमारी पूरी प्रणाली भूमिपतियों, व्यापारियों, साहूकारों और राजनीतिक सूबेदारों का पक्षपात करती है और ऐसा जिन कारणों से होता है हमारे राजनीतिक नेता उन्हें बिलकुल ही छोड़ना नहीं चाहते।”⁴⁹ दूसरे देश की तरक्की का एक बड़ा हिस्सा पूँजीपतियों के हिस्से में चले जाने से समाज में आर्थिक विषमता का डिवाइडर खड़ा होता है, जो कि लोकतंत्र के समता एवं न्याय के सिद्धान्तों के प्रतिकूल है। हिंदी गज़लकार समकालीन राजनीति के इस पक्षपातपूर्ण रवैये व विषमता उत्पादक दृष्टि पर प्रश्न चिन्ह लगाते हुए कहते हैं-

“सत्ताधीशों को ‘खास’ याद रहे हैं

करोड़ों में आम, भूल गए।”⁵⁰

(जहीर कुरेशी)

“सींच रहे पत्तों, शाखों को
जड़ें, तना सब भूल गए हैं।”⁵¹ (महेश कटारे सुगम)

*** **

“कभी बदलती नहीं अपना रास्ता लक्ष्मी
जहाँ से आती है, बिलकुल वहीं से जाती है।”⁵² (हरेराम समीप)

*** **

“साकी यही है क्या तेरा इंसाफ़ बता भी
खाली किसी का जाम है कोई नशे में चूरा।”⁵³ (डी. एम. मिश्र)

राजनीति का धर्म से गठबंधन -धर्म एवं राजनीति दो अलग-अलग विषय हैं। धर्म एवं राजनीति के संबंध में उल्लेखनीय हैं कि हमारे देश में राजनीति के धर्म की बात होती रही है। शासन द्वारा पूर्ण सत्य निष्ठा के साथ बिना किसी निष्पक्षता के न्यायपूर्ण ढंग से जनहित का पालन ही एक तरह से राजनीति का धर्म है। आधुनिक काल में राजनीति और धर्म के इस संबंध में प्रायोजित गड़बड़ी होती है। और राजनीति के धर्म की जगह धर्म की राजनीति शुरू होती है। इसकी शुरुआत अंग्रेजों द्वारा अपनी हुकूमत कायम रखने के लिए ‘फूड डालो और राज करो’ की नीति पर चलते हुए पारित किये ‘मार्ले मिंटो सुधार अधिनियम 1909’ के तहत धर्म के आधार पर अलग-अलग निर्वाचन मंडलों की व्यवस्था से हुई। अंग्रेजों द्वारा शुरू की गयी इस साम्प्रदायिकता की एक परिणति देश विभाजन के रूप में हुई। तो दूसरी आज़ादी के बाद राजनीतिक दलों द्वारा समाज को क्षेत्र, भाषा, जाति व धर्म के आधार पर बाँटकर अपनी राजनीतिक रोटियाँ सेंकने के षड्यंत्र के रूप में हुई। इनमें भी धर्म जनमत को प्रभावित करने वाला सर्वाधिक कारगर साधन है। इसलिए धर्म आधारित सांप्रदायिकता आज भारतीय राजनीति में चुनावों को प्रभावित करने वाला सबसे सशक्त हथियार है। चुनावों के दौरान बिखरे जनमत को एकत्र कर वोटों में तब्दील करने एवं मत प्रबंधन की दृष्टि से धर्म की भूमिका आज की राजनीति में सबसे महत्वपूर्ण हो गई है। तथा यह सत्ता प्राप्ति के लिए आवश्यक पायदान बन गया है। इस सच का उद्घाटन करते हुए हिंदी गज़लकार लिखते हैं-

“राजनीति धरम, दो अलग थे विषय
हो गई गड़बड़ी, खेल ही खेल में।”⁵⁴ (किशन तिवारी)

*** **

“मजहब, रंग, जात, नस्लें

राजनीति के पाये हैं।”⁵⁵

(किशन तिवारी)

*** **

“कत्ल करा दें, लाशों पर रोटी सेंके

कुछ ऐसी ही आज सियासतदारी है।”⁵⁶

(महेश अग्रवाल)

भारतीय लोकतंत्र में राजनीति और धर्म के संबंधों को मतदान दलों के गठन, चुनाव में प्रत्याशियों के चयन एवं मतप्रबंधन की राजनीति के संबंध में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। देश में आज़ादी के बाद धर्मनिरपेक्षता को अपनाने के बावजूद भी कुछ राजनीतिक दलों के गठन के पीछे धर्म एक महत्वपूर्ण आधार है। इसके अतिरिक्त राजनीतिक दलों का किसी न किसी धर्म विशेष की ओर झुकाव है। इस कारण धर्म विशेष के समुदाय को उनका वोट बैंक समझा जाता है। राजनीतिक दल चुनावों में धार्मिक मुद्दों को महत्व देते हैं। धर्म के आधार पर चुनावों में मतदाताओं को रिझाने तथा धार्मिक हथकंडों के द्वारा मतदाताओं को अपने पक्ष में करने की प्रवृत्ति राजनीतिक चरित्र का हिस्सा बनती जा रही है। एक प्रकार से मजहब की आड़ में लोगों को बाँटकर राजनीतिक दल चुनावी पारियाँ जीतने तथा सत्ता की कुर्सियाँ गढ़ने का खेल खेलते हैं। हिंदी गज़लकार लिखते हैं-

“थोड़ा मुश्किल है समझ पाना इस सियासत को

मज़हबी लोगों में मज़हब से आड़ का धंधा।

हैं तो सब एक ही थाली के चट्टे-बट्टे मगर

कोई तुलसी का करे, कोई ताड़ का धंधा।”⁵⁷ (देवेन्द्र आर्य)

*** **

“इक तरफ हैं रहीम वाले लोग

दूसरी ओर राम वाले हैं।”⁵⁸

(महेश कटारे सुगम)

“मन्दिर की चाह है, न ही मस्जिद की चाह है

सबकी ही दृष्टि तख्त पे शासन पे टिकी है।”⁵⁹ (वशिष्ठ अनूप)

राजनीतिक दल चुनावों में धर्म के आधार पर मतदाताओं को अपने पक्ष में मतदान हेतु प्रेरित करने के अपने स्तर पर तो प्रयास करते ही हैं, पर इसके साथ ही सांप्रदायिक संगठनों, धार्मिक मठाधीशों, पुजारियों, मौलवियों से अव्यक्त गठबंधन कर, उनके द्वारा अपने समुदाय के लोगों से दल विशेष के पक्ष में मतदान करने की अपील-फतवा जारी करवाते हैं। ये सांप्रदायिक संगठन राजनीति में मतदाताओं के मत

को प्रभावित करने के साथ दबाव समूह का कार्य करते हुए अपने संप्रदाय के अनुकूल नीतियाँ बनाने, उन्हें विशेष रियायतें, फंड व दान दिए जाने के लिए सरकार पर दबाव बनाते हैं और उसका प्रभाव सरकारों की कार्य प्रणाली पर होता भी है। सियासत जनता की समस्याओं के बजाय धार्मिक प्रतीकों के राजनीतिक इस्तेमाल व साम्प्रदायिक धुवीकरण पर ज्यादा ध्यान देती है। हिंदी ग़ज़लकार कहते हैं-

“धर्म जाति के नाम पर बो नफ़रत के बीज
नेता पड़ित मौलवी बाँट रहे इंसान।”⁶⁰ (विनय मिश्र)

*** *** *** ***

“ऐसा हवा चली कि वे जो जनता के साथ थे
मुल्ला के साथ है या पुजारी के साथ हैं।”⁶¹ (वशिष्ठ अनूप)

*** *** *** ***

“सांप्रदायिक सरोकार थे
देखकर दान होने लगा।”⁶² (जहीर कुरेशी)

धार्मिक सांप्रदायिकता सत्ता द्वारा जानबूझकर पैदा गया किया गया एक राजनीतिक षड्यंत्र है, जिसका उद्देश्य राजनीतिक दलों द्वारा समुदायों को धर्म के आधार पर बाँटकर एवं उनमें घृणा-द्वेष उत्पन्न कर अपनी राजनीतिक शक्ति को मजबूत करना तथा चुनावी राजनीति को चमकाना है। बहुधर्मी हमारे समाज में राजनीतिक क्षेत्र में प्रभावशाली बनने व राजनीतिक सत्ता प्राप्ति के लिए राजनीतिक दलों के द्वारा धर्म-जाति का राजनीतिकरण आज आम बात हो गई है। यह धार्मिक सांप्रदायिकता राजनीतिक दलों द्वारा अपनी लोकतांत्रिक विफलताओं और कमज़ोरियों को छुपाने का एक माध्यम बन गई है। राजनीतिक सत्ता जब शिक्षा, स्वास्थ्य व रोजगार देने तथा विकास के अपेक्षित मानकों पर विफल होती हैं, तो वह जनता को धर्म की अफीम चटा देती है, ताकि धर्म के नशे में अवाम अपनी समस्याओं से बेहोश रहें। राजनीतिक दल जानबूझकर चुनावों में धार्मिक मुद्दों एवं आस्थाओं को उठाते हैं, ताकि उनके बहाने आमजन का ध्यान विकास के वास्तविक मुद्दों से भटकाकर उसे भ्रमित कर सकें तथा अपने राजनीतिक षड्यंत्रों में सफल हो सके। शायर धर्म को हथियार के रूप में इस्तेमाल करने की राजनीतिक प्रवृत्ति को उजागर करते हुए कहते हैं-

“उसकी चाहत है केवल सत्ता-वैभव,
उसकी पूँजी केवल नफ़रत-दंगा है।”⁶³ (वशिष्ठ अनूप)

*** *** *** ***

“ये नफ़रत के व्यापारी हैं राग, द्वेष से भरे हुए
आपस में हिंसा फैलाकर राजनीति चमकाते हैं।”⁶⁴ (महेश कटारे सुराम)

**** *** ***

“बात गुरबत की उठनी थी पर
आस्था की उठाई गयी।”⁶⁵ (देवेन्द्र आर्य)

*** *** ***

“ध्यान हटा दे मुद्दों से बेहोश करे
जाति, धर्म का वो मयखाना ढूँढ़ लिया।”⁶⁶ (महेश कटारे सुगम)

राजनीति द्वारा पोषित यह सांप्रदायिकता देश की एकता व अखंडता के लिए बहुत बड़ा खतरा है। अतः हिंदी गज़लकार राजनीतिक लोगों को सांप्रदायिकता और नफ़रत की राजनीति को राष्ट्रीय एकता व हितों के लिए त्यागने एवं इसकी जगह विकास की राजनीति करने की सीख देते हैं। राजनीति द्वारा उद्धावित एवं उद्दीप्त सांप्रदायिकता और नफ़रत पर लगाम लगाने के लिए हिंदी गज़लकार आमजन में भी चेतना जाग्रत करते हैं। वे कहते हैं-

“बोट की राजनीति में अंधे,
देश की एकता को भूल गए।”⁶⁷ (जहीर कुरेशी)

*** *** *** ***

“हिन्दू या मुस्लिम के अहसासात को मत छेड़िए
अपनी कुर्सी के लिए जज़्बात को मत छेड़िए।
छेड़िए इक जंग मिल-जुलकर ग़रीबी के खिलाफ़
दोस्त मेरे मज़हबी नग़मात को मत छेड़िए।”⁶⁸ (अदम गोंडवी)

“खोल कर रखना हमेशा सोच की सब खिड़कियाँ
सिक न पायें मजहबों पर राजनैतिक रोटियाँ।”⁶⁹ (महेश अग्रवाल)

3.4 चुनावी राजनीति

चुनाव लोकतंत्र का आधार स्तंभ है। लोकतंत्र में जनता जनप्रतिनिधियों के माध्यम से शासन करती है और जनप्रतिनिधियों का चयन चुनाव के द्वारा होता है। इसलिए किसी भी सफल लोकतंत्र में स्वतंत्र, पारदर्शी एवं निष्पक्ष चुनाव प्रक्रिया बहुत जरूरी है। भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। यहाँ जनता प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष

चुनावी प्रक्रिया से अपने जनप्रतिनिधियों का चुनाव करती है। यद्यपि आज़ादी के सात दशकों में राजनीति जनता की अपेक्षाओं पर खरी नहीं उतरी है। इसके बावजूद भी भारतीय जनता का लोकतांत्रिक चुनाव प्रक्रिया में पूर्ण विश्वास है। हिंदी ग़ज़लकार कहते हैं

“हमने चुना या वोटों से हमको चुना गया
जनता के तंत्र में है जरूरी चुनाव भी।”⁷⁰ (जहीर कुरेशी)

*** *** *** ***

“कितने भोले हैं हरदम छले जाते पर
इनका विश्वास अब भी चुनावों पे है।”⁷¹ (वशिष्ठ अनूप)

लोकतांत्रिक संस्कृति में चुनाव पर्व की तरह होते हैं। लेकिन लोकतांत्रिक मूल्यों के पतन के इस दौर में चुनाव के लोकतांत्रिक उत्सव का माहौल दूषित हो गया है। सभी राजनीतिक दलों का चेहरा व चरित्र एक जैसा है तथा सभी का लक्ष्य आज जायज-नाजायज, लोकतांत्रिक-अलोकतांत्रिक तरीकों से चुनाव में जीत हासिल करना हो गया है। समकालीन लोकतांत्रिक परिवेश में चुनावों के दौरान धनबल व भुजबल की अत्यधिक प्रयोगबाजी, धार्मिक-सांप्रदायिक दंगाबाजी, विरोधी दलों-नेताओं पर आरोप-प्रत्यारोप की अमर्यादित बयानबाजी, वादों या आश्वासनों की जालसाजी एवं मुफ्तखोरी की चुगगाबाजी जैसे कई हथकंडे आम हो गए हैं। डॉ. रूपा मंगलानी का मत है कि "चुनाव प्रचार के दौरान अशोभनीय टीका-टिप्पणियाँ, निम्न-स्तरीय व्यक्तिगत हमले, सपाट बहस, मतदाताओं को लुभाने के लिए धनबल-बाहुबल का उपयोग, शराब से लेकर साड़ियों तक का वितरण, मतदाता सूचियों से हजारों का नाम संदिग्ध रूप से गायब होने, चुनावी प्रचार के लिए बॉलीवुड के सितारों से प्रचार, सुविधाजनक रूप से अपनी विचारधारा से पलायन, जातियों एवं उपजातियों के तीखे विभाजन जैसी प्रवृत्तियाँ मौजूद रही। चुनावी संस्कृति के कारण चुनाव हुडदंग के पर्याय बनते जा रहे हैं।”⁷² इस कारण हमारे देश में चुनाव की स्वस्थ व पारदर्शी प्रक्रिया रूग्ण हो रही है। हिंदी शायर राजनीतिक दलों के दूषित षडयंत्रों के कारण बिगड़ते चुनावी वातावरण के बारे में कहते हैं-

“दलों की चाल, चरित और बानियाँ हैं वही
चुनावी दौर के किस्से-कहानियाँ हैं वही।”⁷³ (जहीर कुरेशी)

*** *** *** ***

“सच मानो संक्रमण दुबारा फिर होगा / जेहनों पर आक्रमण दुबारा फिर होगा।

दौलत का फिर खेल चलेगा मनमाना / मत व्यवसायीकरण दुबारा फिर होगा।
 दोषारोपण होगा एक दूसरे पर / निजता पर अतिक्रमण दुबारा फिर होगा।
 राजनीति मज़हब को लेकर आएगी / नफ़रत का अंकुरण दुबारा फिर होगा।
 भाषा और भावों की सीमा टूटेगी / ज़ख़्म हर व्याकरण दुबारा फिर होगा।
 मुल्क बँटेगा दल वाले दो भागों में / नायक का अवतरण दुबारा फिर होगा।”⁷⁴

(महेश कटारे सुगम)

चुनावी राजनीति के इस दौर में सभी राजनीतिक दल ‘फूट डालो और राज करो’ की अंग्रेजी नीति का अनुसरण करते हुए चुनावों में लोगों की धार्मिक-जातिगत भावनाओं का तुष्टिकरण कर मतदान व्यवहार को प्रभावित करते हैं। चुनावी भाषणों में राजनेता लोगों की जातिगत-धार्मिक भावनाओं व आस्थाओं को उन्मादित करते हुए समाज को इन खाँचों में विभाजित कर अपना चुनावी उल्लू सीधा करते हैं। धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र में जाति-धर्म की यह चुनावी राजनीति चुनावी प्रक्रिया एवं लोकतंत्र के लिए कलंक हैं। हिंदी शायर कहते हैं-

“वोट गिरने के वक़्त गाँवों में

आज भी जाति का प्रभाव हुआ।”⁷⁵

(जहीर कुरेशी)

*** *** *** ***

“बातों में कुछ अहले उठाये जायेंगे / लोग यहाँ फिर मूर्ख बनाये जायेंगे।

श्रद्धा के कुछ नए भूत पैदा होंगे / अंध भक्ति के प्रेत जगाये जायेंगे।

मंदिर का फिर जिन्न निकाला जायेगा / मुल्क में फिर दंगे भड़काए जायेंगे।

काश्मीर फिर आएगा चर्चाओं में / युद्ध भरे उन्माद जगाये जायेंगे।”⁷⁶

(महेश कटारे सुगम)

समकालीन चुनावी परिदृश्य का एक यथार्थ यह है कि राजनीतिक दल चुनाव की वैतरणी को पार करने के लिए वादों के तूफ़ानी व जादुई स्टीमर का इस्तेमाल करते हैं। सभी राजनीतिक दल अपने-अपने चुनावी घोषणा पत्र में वादों की मैराथन दौड़ लगाते हैं। तमाम वास्तविकताओं को जानते हुए भी राजनीतिक दल ऐसे हवाई वादे भी करते हैं, जिनको ज़मीन पर लागू करना नामुमकिन सा होता है। चुनावों में राजनेताओं के मुख से वादों के मखमली फूल झड़ते हैं। जो आमजन के मतदान व्यवहार को प्रभावित करते हैं। चुनाव जीतने के बाद राजनीतिक दलों के ये वादे जुमले व नारे बनकर रह जाते हैं। क्योंकि ये सारे वादे और प्रलोभन केवल चुनावी विज्ञापन की सामग्री होते हैं। इस चुनावी राजनीति के कारण लोकतंत्र राजनेताओं का

जोकतंत्र बन रहा है। हिंदी ग़ज़लकार राजनीतिक दलों की चुनावी वादों की भटकाऊ जालसाजी को उजागर करते हुए लिखते हैं-

“हर चुनाव में वादों वाले

होते मैराथन की जय हो।”⁷⁷

(महेश कटारे सुगम)

*** **

“चाँद-दर-चाँद हथेली पे उगाने वाले

घोषणाओं के बड़े डोज पिलाने वाले।”⁷⁸

(जहीर कुरेशी)

*** **

“करें विश्वास कैसे सब तेरे वादे चुनावी हैं

हकीकत है यही सारे प्रलोभन इश्तहारी हैं।”⁷⁹ (डी. एम. मिश्र)

सामयिक राजनीति का एक सच यह भी है कि राजनेता चुनाव जीतने के बाद जनता से उदासीन हो चार साल तक राजधानियों में स्वपोषण में लगे रहते हैं और फिर चुनावी साल में चुनाव जीतने के लिए लोक लुभावन घोषणाओं एवं मुफ्तखोरी की योजनाओं के चुनावी चुगले के साथ जनता के समक्ष उपस्थित होते हैं। चुनावी वर्ष में सत्ताधारी दल द्वारा विद्यार्थियों को टैबलेट, आमजन को मोबाइल व ऐसी अन्य चीजें तथा मुफ्त बिजली-पानी, सस्ती गैस व राशन सामग्री जैसी राहत एवं मुफ्तखोरी की योजनाएँ अपने पक्ष में मतदान व्यवहार को प्रभावित करने के लिए शुरू की जाती हैं। इसके अतिरिक्त सभी दल अपने-अपने घोषणा पत्रों में भी देश के विकास की दीर्घकालिक योजनाओं की जगह जनता को सीधे लाभ पहुँचाने वाली राहत व मुफ्तखोरी की योजनाओं का वादा करते हैं। जनता भी मुफ्तखोरी की योजनाओं की आदी हो रही है एवं इनके लिए लालायित रहती है, जिसका फायदा राजनीतिक दल उठाते हैं। शायर चुनावी चुगले की साज़िश को यूँ प्रकट करते हैं-

“हाथ फैलाने के अन्दाज सिखाता क्यूँ है

राहतें देके मुझे इतना झुकाता क्यूँ है।”⁸⁰ (ज्ञानप्रकाश विवेक)

“मछली भी तक रही है कि चारा दिखे कहीं

बेचैन मछलियों को फँसाने की होड़ है।”⁸¹

(जहीर कुरेशी)

“गाँव-गाँव हो गया भिखारी / ये कैसी माया सरकारी।

विधवा बनकर पेन्शन लेती / देखा एक सुहागन नारी।

बोट के बदले नोट मिलेगा / खुला खज़ाना है सरकारी।”⁸² (डी. एम. मिश्र)

लोकतंत्र में जनता का मत अमूल्य है। परंतु चुनावी राजनीति के सामयिक दौर में राजनीतिक दलों ने जनता के मत का भी व्यवसायीकरण कर दिया है। चुनावों में मतों की सौदेबाज़ी आज आम बात हो गयी है। निर्धन मतदाताओं को शराब, नकदी, राशन सामग्री, कपड़े और अन्य जरूरी चीजें बाँटकर उनके मत को खरीदा जाता है। प्रत्याशियों द्वारा चुनावों के दौरान लंगर चलाए जाते हैं। चुनावी सभाओं में लोगों की भीड़ इकट्ठा करने के लिए दिहाड़ी मजदूरों को दैनिक मजदूरी एवं पूड़ी पैकेट के बल पर बुलाया जाता है। चुनावों के दौरान प्रत्याशियों द्वारा मतदाताओं के मत की खरीद-फरोख्त आज सामान्य चुनावी हथकंडा बन गया है। हिंदी गज़लकार मत व्यवसायीकरण के सच को व्यक्त हुए कहते हैं-

**“सिर पे आए हैं जब भी चुनाव / कुछ तो आहार में बिक गए।
जो खरीदे नहीं जा सके / वो पुरस्कार में बिक गए।”⁸³ (जहीर कुरेशी)**

*** *** *** ***

**“एक दिन के भोजन और तीन सौ दिहाड़ी पर,
रैलियां बुलाती हैं बार-बार लोगों को।”⁸⁴ (जहीर कुरेशी)**

*** *** *** ***

**“लोग धोखा खा गए इस बार फिर 'मतदान' में/फंस गए मजदूर फिरसे कोयले की खान में।
बोट के बाज़ार में हम इस तरह बेचे गए/नागरिक से आज परिवर्तित हुए सामान में।”⁸⁵**

(हरेराम समीप)

आज की चुनावी राजनीति का एक षडयंत्र यह भी है कि सत्ताधारी लोग व राजनीतिक दल चुनाव में विजय हासिल करने के लिए नए-नए सनसनीखेज दावपेंच चलते हैं, ताकि वे अपने पक्ष में मतदान की लहर पैदा कर सकें। राजनीतिक दल अपनी कमियों और खामियों को छिपाने और जनता का ध्यान भटकाने के लिए ऐसे हादसों को प्रायोजित करवाते हैं, ऐसे दुष्प्रचार करवाते हैं। जिससे जनमानस में दल विशेष के पक्ष में मतदान की मानसिकता व सहानुभूति जाग्रत हो। जनहित के ज्वलंत मुद्दों से जनता का ध्यान भटकाने के लिए कृत्रिम समस्याएँ या आपदाएँ पैदा करते हैं। इस पर हिंदी शायर कहते हैं-

**“करीब आने लगा है चुनाव का मौसम,
वो सोचता है नया हादसा, 'लहर' के लिए।”⁸⁶ (जहीर कुरेशी)**

“परखनलियों में पैदा कर रहे कुछ लोग बीमारी
उन्हें कहिए सियासतदाँ या कहिए ठेठ व्यापारी।
सँभाले कुसियाँ अपनी सहारे आपदाओं के
परस्पर पूछते कैसी है आगे और तैयारी।”⁸⁷ (रामकुमार कृष्णक)

सत्ता एवं स्वार्थ की राजनीति के इस दौर में लोकतंत्र में जनता की भूमिका आज वोट तक सीमित हो गई है। सभी राजनीतिक दलों के लोग एक समान चाल व चरित्र वाले हैं। तथा सभी की कोशिश व कसरत चुनावों के दौरान येन केन प्रकारेण जनता से वोट हासिल करना है। इसलिए जनता का राजनीति व चुनावों से मोह भंग हो रहा है। चुनाव आयोग के भरसक प्रयासों के बावजूद चुनावों में बड़ी संख्या में मतदाताओं की बेरुखी इसी मोहभंग की देन है। शायर इस सच को बयाँ करके बेरुख मतदाता को मत का मूल्यबोध कराते हैं-

“बुरों के बीच से चुनना है कम बुरा हमको
कुछ इस तरह से ही होते रहे चुनाव यहाँ।”⁸⁸ (जहीर कुरेशी)

*** *** *** ***

“वोट अपना फेंक आने के सिवा
अब यकीकन दूसरा चारा नहीं।”⁸⁹ (हरेराम समीप)

*** *** *** ***

“तुम्हारे वोट की कीमत तुम्हें नहीं मालूम,
तुम्हारे वोट से कुछ लोग 'बादशाह' हुए।”⁹⁰. (जहीर कुरेशी)

3.5 सत्ता एवं स्वार्थ की राजनीति

लोकतंत्र का महत् उद्देश्य देश में सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक न्याय एवं समता की स्थापना है। इसके लिए राजनीति का सामाजिक सरोकारों से जुड़ाव एक अनिवार्य शर्त है। आज़ादी के नायक महात्मा गांधी की राजनीति सामाजिक राजनीति का ही एक रूप थी। परन्तु स्वातंत्र्योत्तर दौर में राजनीतिक मूल्यों के विघटन के कारण राजनीति जनकल्याण से दूर हो, सत्ता एवं स्वार्थ तक सिमटती चली गई। लोकतंत्र में जनता ही वास्तविक स्वामी होती है। और इसलिए जनसेवा एवं राष्ट्र सेवा को ही राजनीति का उद्देश्य माना जाता है। परन्तु आज सत्ता और स्वार्थ में अंधे राजनीतिक नेतृत्व ने लोकतंत्र का नायकत्व जनता से स्वयं की ओर स्थानांतरित कर लिया है। हमारे दौर के राजनेता कहने को तो जनसेवक हैं, पर सच्चाई यह है कि खुद को जनसेवक कहने वाले राजनेता स्वामी बने बैठे हैं तथा जनसेवा की बजाय

सत्ता प्राप्ति और उसे बनाए रखना ही उनका राजनीतिक उद्देश्य है। सत्ता लोलुप राजनीतिक नेतृत्व की आंखों पर स्वार्थ की पट्टी बंधी है और उसकी चिंता व चिंतन में कुर्सी है। जनता जनार्दन के उपासक राजनेता आज सत्ता देवी के पुजारी बन गए हैं। डॉ. प्रतिमा सक्सेना जी लिखती हैं, “आज की राजनीति वास्तव में एक वेश्या है, जिसका न कोई ईमान है, न धर्म | स्वार्थ और पैसा ही उसका सब कुछ है। कुर्सी ही उसका ईमान और कुर्सी उसका धर्म है। कुर्सी को पाने के लिए कुछ भी किया जा सकता है। अपने धर्म, अपनी संस्कृति, अपने राष्ट्र किसी को भी दाँव पर लगाया जा सकता है।”⁹¹ शायर कहते हैं-

“कुर्सियाँ सिर पर, प्रजा उतरी है आँखों से
राजमद में सेवकों की चेतना बदली।”⁹² (विनयमिश्र)

*** **

“हुकूमत की आँखों पे पट्टी बँधी है
उसे तो लगी है कि कुर्सी बचाऊँ।”⁹³ (डी. एम. मिश्र)

*** **

“सत्ता उसकी देवी है
मथुरा और मदीना है।”⁹⁴ (महेश कटारे सुगम)

सत्ता की राजनीति ने राजनेताओं को कुर्सी लोलुप बना दिया है। कुर्सी गणिका से उन्हें इस कदर प्रेम हो गया है कि अंतिम साँसों तक वे सिंहासन या कुर्सी को नहीं छोड़ना चाहते हैं। और अपने बाद में अपने राजकुमारों का राज्याभिषेक करवाना चाहते हैं। इसी कुर्सी की राजनीति ने हमारे देश की राजनीति में परिवारवाद या वंशवाद को बढ़ावा दिया है। और यह हमारे दौर की राजनीतिक सच्चाई है कि राजनीति में आज़ादी से लेकर अब तक कुछ परिवारों का दबदबा बराबर कायम रहा है। यह परिवारवाद या वंशवाद की राजनीति लोकतंत्र के लिए घातक है। हिंदी गज़लकार कुर्सी से चिपटे राजनेताओं को नयी पीढ़ी व नए लोगों के लिए कुर्सी के मोह को छोड़ने की नसीहत देते हैं।

“ऐसे चला जादू सियासत की तवायफ का
अंतिम क्षणों तक राज सिंहासन नहीं छूटा।”⁹⁵ (महेश अग्रवाल)

“मुल्क जाए भाड़ में इससे उन्हें मतलब नहीं।
एक ही ख्वाहिश है कि कुनबे में मुख्तारी रहे।”⁹⁶ (अदम गोंडवी)

“पहले उनके नाम लिखी थी जो कुर्सी

उस पर अब उनके शहजादे बैठे हैं।”⁹⁷

(महेश कटारे सुगम)

“नई पीढ़ी को खुल कर खेलने दो,

तुम्हारी ख़त्म पारी हो गई है।”⁹⁸

(जहीर कुरेशी)

सत्ता की राजनीति राजनीतिक नेतृत्व को स्वार्थी बनाती है। और स्वार्थ राजनीतिक नेतृत्व को जनहित के प्रति असंवेदनशील बनाता है। ऐसा नेतृत्व राजनीतिक मूल्यों को ताक पर रखकर सत्ता की शक्तियों का दुरुपयोग जनहित की आड़ में स्व और स्वजनहिताय करने लगता है। स्वार्थी राजनीतिक नेतृत्व जनता को सत्ता के सिंहासन पर पहुँचने के लिए आवश्यक वोट रूपी पायदान मात्र समझता है, कुर्सी पर बैठते ही उसकी नज़र एवं नजरिये में स्वहित पहले व प्रधान होता है तथा जनकल्याण से विमुख हो वह सत्ता की शक्ति से अपनी दुकानदारी चलाता है। स्वार्थ की इस राजनीति के कारण लोकतंत्र भ्रष्टतंत्र-लूटतंत्र में तब्दील हो जाता है। सत्ताधीश जनहित के प्रति उदासीन हो अपनी ही सुख-सुविधाओं, ऐश्वर्य व विलास में डूबे रहते हैं, अपने वंश की सात पीढ़ियों के लिए धन-दौलत का इंतजाम करते रहते हैं। स्वार्थ की राजनीति के कारण सत्ताधीशों की नज़र में जनहित दोयम दर्जे पर चला जाता है, जिससे लोकतंत्र की मूल आत्मा ज़ख्मी होती है। हिंदी ग़ज़लकार कहते हैं-

“स्वार्थी का बन गया वो राजपथ

रास्ता जो भी सियासत को गया।”⁹⁹

(विनय मिश्र)

“जनहितों की राइफल में स्वार्थ की है गोलियाँ

और कंधा है गरीबों का सियासत के लिये।”¹⁰⁰

(महेश अग्रवाल)

“रहनी थी जिसको सबके कल्याण ही की चिंता

उसको पड़ी है अपनी दुकान ही की चिंता।”¹⁰¹

(हरेराम समीप)

सत्ता व स्वार्थ की राजनीति, राजनीतिक नेतृत्व को राष्ट्रहित से विमुख करती है। देश के विकास को गति देना, आमजन को जीवनावश्यक सुविधाएँ उपलब्ध करवाना एवं देश में शांति कायम करना राजनीतिक शासक वर्ग का आद्य कर्तव्य है। उनकी सोच एवं कार्यप्रणाली पर ही देश का विकास निर्भर होता है। परन्तु स्वार्थ की अंधी पट्टी के कारण राजनेताओं की सोच में सत्ता का अधिकार भाव ही रहता है तथा

ये राष्ट्र व राष्ट्र जन के प्रति अपने कर्तव्यों को भूल बैठते हैं। देश पूजा के नाम पर पेट पूजा के गुप्त मंत्र पढ़ते हैं। देश के भविष्य का निर्धारण करने वाले राजनेता चुने जाने पर अपनी पीढ़ियों के भविष्य को बनाने, संवारने व सुरक्षित करने में लगे रहते हैं। स्वार्थ के दलदल में आकंठ डूबे राजनीतिक नेतृत्व को मुल्क या जनता से कोई लेना देना नहीं होता है। राष्ट्रहित व राष्ट्रसेवा के दावे करने एवं उसकी कसमें खाने वाले ये लोग मौका मिलते ही देशहित का सौदा करने को तत्पर रहते हैं। स्वार्थ व सत्ता के नशे में चूर हो, ये स्वहितों व स्वसुखों को राष्ट्र से ऊपर समझते हैं और उनके लिए राष्ट्रहितों से समझौता करने से भी नहीं चूकते हैं। हिंदी शायर कहते हैं-

“मुल्क जाए भाड़ में इससे उन्हें मतलब नहीं।

कुर्सी से चिपके हुए हैं जाँफ़िशानी देखिए।”¹⁰² (अदम गोंडवी)

“अपने-अपने स्वार्थ भुनाते लोग सियासत में

और वतन पर मर मिटने की कसमें खाते हैं।”¹⁰³ (महेश अग्रवाल)

“हर दल का अपना निशान है, मगर निशाना सब का एक

पहले भरी तिजोरी अपनी मुल्क राष्ट्र फिर उसके बाद।”¹⁰⁴

(डी. एम. मिश्र)

सामयिक राजनीतिक परिदृश्य में सत्ता और स्वार्थ की राजनीति हावी है। सत्ता एवं स्वार्थ की राजनीति लोककल्याण के जवाबदेही सिद्धांत पर आधारित लोकतांत्रिक शासन प्रणाली को कमजोर करती है। हिंदी गज़लकारों को राजनीतिक नेतृत्व की यह स्वार्थपरता व्यथित करती है और वे राजनीति को सामाजिक राजनीति से जोड़ने की जरूरत पर बल देते हैं। राजनीति की शक्ति को स्वार्थ की बजाय जनकल्याण की ओर उन्मुख किया जाए तथा जनसेवा के आदर्शों का समावेश करते हुए राष्ट्रीयता के भाव से कार्य किया जाए। तभी एक सशक्त राष्ट्र का निर्माण होगा और जनतंत्र अपने उद्देश्यों में सफल हो सकेगा।

“हैं अपनी जगह कहकहे कुर्सियों के,

सिसकता प्रजातन्त्र अपनी जगह है।”¹⁰⁵ (शिवओम अंबर)

जहाँ खुदगर्जियाँ, मतलबपरस्ती, बेईमानी हो

हुकूमत की वहाँ मक्कारियाँ बेचैन करती हैं।”¹⁰⁶ (महेश अग्रवाल)

*** *** *** ***

हैं वतन के वास्ते कुछ अपनी ज़िम्मेदारियाँ

मत उन्हें नीलाम करिये स्वार्थ के बाज़ार में।¹⁰⁷ (महेश कटारे सुगम)

3.6 राजनीतिक नेतृत्व की सामंती विलासिता

आज़ादी के बाद हमारे देश में लोकतंत्रात्मक शासन प्रणाली को अपनाया जाता है। और सैद्धांतिक तौर पर राजतंत्र समाप्त हो जाता है, लेकिन व्यवहार में राजशाही समाप्त नहीं होती है। लोकतंत्र में राजशाही नये रूप में आती है। सत्ता पर कुछ परिवार काबिज़ हो जाते हैं और संसद-विधानसभाओं की कुर्सियाँ उनकी जागीर बन जाती हैं। राजा-रानियों का जनप्रतिनिधियों के रूप में नया अवतरण होता है, जो वचन से तो जनसेवक है, पर मन-कर्म से राजा या सामंत है। खुद को जनसेवक कहने वाले राजनेताओं का रौब व ठाठ-बाट कुर्सी प्राप्त होते ही राजाओं-नवाबों सरीखा हो जाता है। किसी परिवार से एक जनप्रतिनिधि चुनते ही पूरा परिवार राजपरिवार हो जाता है। इस राजशाही के कारण जनता जो जनतंत्र में कहने को स्वामी है, उसकी दशाओं में अपेक्षित बदलाव नहीं आया है। शायर कहते हैं-

“अब सियासत में नये सामंत पैदा हो रहे

दूसरे रूपों में फिर से राजा रानी देखिए।”¹⁰⁸ (महेश कटारे सुगम)

“संसद में कुर्सियाँ हैं, कुर्सियाँ रियासतें हैं

सेवक है स्वामियों-सा मगर तामझाम है।”¹⁰⁹ (रामकुमार कृष्णक)

“वो ही मालिक है खुदा है क्या नहीं है वो

मुद्दतों से आज भी तुम दास ही तो हो।”¹¹⁰ (विनय मिश्र)

लोकतंत्र के राजाओं की संस्कृति भी जनवादी होने के बजाय दरबारी है। जनतंत्रीय राजाओं की चौखट पर आज भी दरबारी संस्कृति फल-फूल रही है। संसद या चुनावों में खुद को लोकसेवक कहने वाले ये लोग निवास पर राजदरबार लगाते हैं। राजशाही में राजाओं से मिलने के लिए दरबारियों से गुहार लगानी पड़ती थी, वैसे ही आज के राजाओं से मिलने के लिए भी सेवकों के यहां अर्जियां लगानी पड़ती है। हिन्दी गज़लकार कहते हैं-

“इन प्रजातंत्रीय राजाओं की चौखट पर-

फूलती-फलती रही दरबार की भाषा।”¹¹¹ (जहीर कुरेशी)

“वो जो संसद में दिखते थे जन-तांत्रिक,

उनके घर 'राज-दरबार' होने लगे।”¹¹²

(जहीर कुरेशी)

यह लोकतांत्रिक विडम्बना है कि आज अभावग्रस्त जन के सेवकों का ठाठ-बाट सामंती है। जनता भले ही अभावों में पिसती रहे, पर ये सामंती विलासिता से जीते हैं। और जन्मती सुख भोगते हैं। इनके लिए हमेशा बासंती बहार बहती है। सामंतों की तरह सुरा और सुंदरी का भोग इनके राजशाही शौक है। राजाओं की तरह जन्मदिन एवं अन्य अवसरों पर लोगों से तरह-तरह के उपहार, तोहफे व बधाई की विज्ञापनी सुर्खियाँ नज़राने के रूप में लेना इनकी राजशाही शानो-शौकत है। ग़ज़लकार राजनेताओं की सामंती विलासिता पर कहते हैं-

“सुरा व सुन्दरी के शौक में डूबे हुए रहबर।

दिल्ली को रंगीलेशाह का हम्माम कर देंगे।”¹¹³

(अदम गोंडवी)

“हमारे मंत्री जी का जनम दिन मन रहा ऐसा

मुबारकबाद देने को भरा अखबार देखा है।”¹¹⁴

(महेश कटारे सुगम)

राजनेता चुनाव जीतते ही आम से खास हो जाते हैं और उन्हें सारी राजशाही सुख-सुविधाएँ सरकारी धन पर मिलती हैं। आलीशान बंगले, जेड प्लस सुरक्षा और लाल बत्ती वाली गाड़ियाँ सरकारी खर्च पर मिलती हैं। कई तरह के सेवक और अंगरक्षक उनकी सेवा में दिन-रात खड़े रहते हैं, जो कि राजशाही के ठाठ-बाट का लोकतांत्रिक संस्करण है। राजतंत्र में जब राजा की सवारी निकलती थी, तो आमजन के लिए वह रास्ता बंद कर दिया जाता था। राजशाही की यह वी आई पी संस्कृति लोकतंत्र में भी जिंदा है। जनतंत्र के राजाओं का काफ़िला जिधर से गुजरता है, उस पथ को आमजन के लिए बंद कर दिया जाता है। लोकसेवकों की एक बड़ी फौज इसके लिए खड़ी की जाती है। हिंदी ग़ज़लकार कहते हैं-

“कई रक्षक औ सेवादार खिदमत में खड़े देखो

सुगम जनसेवकों का ये नया अवतार देखा है।”¹¹⁵

(महेश कटारे सुगम)

“सभी रास्तों पर लगी बाँस-बल्ली,

शहंशाह की आ रही है सवारी।”¹¹⁶

(वशिष्ठ अनूप)

जनप्रतिनिधियों के इस सामंती विलासितापूर्ण जीवन का सारा भार देश की जनता पर आता है। यह विलास देश के आमजन की खून पसीने की गाड़ी कमाई से

चलता है। मेहनतकश जनता दिन-रात पीस रही है और जनसेवक सामंती सुख सुविधाएँ भोग रहे हैं। मानो राजशाही के दौर से चला आ रहा सिद्धांत 'राजा की सवारी का बोझ प्रजा पर' आज भी सत्य, मान्य व प्रचलित है। लोकतंत्र में नए-नए राजा पैदा हो रहे हैं, जिनके सामंती तामझाम का बोझ जनता पर बढ़ता जा रहा है। हिंदी ग़ज़लकार कहते हैं-

“हज़ारों साल पहले तय हुआ था
प्रजा ही होगी राजा की सवारी।”¹¹⁷ (देवेन्द्र आर्य)

“इस आवारा लोकतंत्र में राजे ही पैदा होंगे
जाहिर है वे चाहेंगे ही सारे काम गुलाम करें।”¹¹⁸ (देवेन्द्र आर्य)

हिंदी ग़ज़लकार लोकतंत्र में फलती-फूलती राजशाही मानसिकता व विलासिता को लोकतंत्र के लिए खतरा बताते हैं, उस पर प्रश्न चिह्न लगाते हैं। तथा लोकतंत्र की आत्मा को ज़िंदा रखने के लिए जनसेवकों को सामंती सुख सुविधाओं को छोड़कर जनता के साथ चलने, अवाम के जैसा जीवन जीने या फिर राजनीति छोड़ने की नसीहत देते हैं। हरेराम समीप कहते हैं-

“जम्हूरियत बचे तो भला किस तरह बचे
सेवक भी अब तो बोलते शाही जुबान में।”¹¹⁹ (हरेराम समीप)

“खुदा है वो तो चले साथ-साथ रस्ते भर
नहीं तो दे-दे अपनी रहबरी से छुटकारा।”¹²⁰ (हरेराम समीप)

3.7 दलबदल की अवसरवादी राजनीति

हमारे देश में बहुदलीय शासन व्यवस्था है। आज़ादी के बाद क्षेत्रीय दलों की संख्या एवं प्रभुत्व में निरन्तर वृद्धि होने के कारण नब्बे के दशक के बाद केन्द्र व राज्यों में किसी एक दल को सरकार बनाने के लिए जरूरी स्पष्ट बहुमत मिलने की प्रायिकता कम हो गई। जिससे राष्ट्रीय दल क्षेत्रीय दलों के साथ साँठगाँठ कर सरकार चलाने को मजबूर हुए। और तब 'कहीं की ईंट, कहीं का रोड़ा; भानुमति ने कुनबा जोड़ा' कहावत को चरितार्थ करती केवल सत्ता व कुर्सी की नीति पर केंद्रित बहुमेल खिचड़ी की गठबंधन सरकारों का दौर शुरू होता है। हिंदी ग़ज़लकार लिखते हैं-

“बिना 'गठजोड़' अब सत्ता नहीं संभव
हमारे युग की जनसत्ता भी बदली है।”¹²¹ (जहीर कुरेशी)

“कहीं से ईंट-पत्थर और कहीं से धूल-मिट्टी ले

हज़ारों चिप्पियों से इन दिनों सरकार कायम है।”¹²² (वशिष्ठ अनूप)

गठबंधन की जमघट सरकारों में प्रतिभागी दलों या जनप्रतिनिधियों के बीच में सत्ता के लिए सौदेबाजी होती हैं। जिसमें दलीय विचारधारा को किनारे कर दिया जाता है। चूँकि राजनेताओं की निष्ठा आज किसी दल या विचारधारा के प्रति न रहकर कुर्सी के प्रति हो गई है। इसलिए अवसरवादी जनप्रतिनिधि चुनावों में अस्पष्ट बहुमत की स्थिति में अपनी दलीय विचारधारा एवं प्रतिबद्धता को ताक पर रख जिस पार्टी की सरकार बनने की उम्मीद होती है। उसी का झंडा उठा लेते हैं; उसी के साथ गठबंधन कर लेते हैं। इस कारण गठबंधन सरकारों में दलबदल की अवसरवादी राजनीति को बढ़ावा मिलता है। हिंदी शायर कहते हैं-

“सत्ता के सौदे होते हैं

अक्सर गठबंधन के भीतर।”¹²³

(जहीर कुरेशी)

“बदलता देखते ही रुख हवाओं का

सुबह से शाम तक झंडे बदलते हैं।”¹²⁴

(विनय मिश्र)

“जब से गठबंधन की सरकारों का आया है रिवाज,

जो इधर थे, वो अचानक ही उधर होने लगे।”¹²⁵ (जहीर कुरेशी)

गठबंधन सरकारों के दौर में राजनीति में सैद्धांतिक एवं वैचारिक स्तर पर गहरी गिरावट आई है और राजनेताओं की सारी कसरत सत्ता के लिए हो गयी है। कुर्सी के लिए ही राजनीति करने वाले अवसरवादी राजनेताओं को किसी दल व विचारधारा से नहीं, अपितु कुर्सी से ही पैतृक विरासत जैसा लगाव व मोह होता है। दलबदल की बढ़ती प्रवृत्ति के पीछे जनप्रतिनिधियों की यह कुर्सी या लाल बत्ती की ख्वाहिश ही प्रमुख है। और कुर्सी मिले तो उन्हें दलबदल जैसी तिरस्कृत संज्ञाओं की भी कोई परवाह नहीं होती है। गठबंधन सरकार की स्थिति में सबसे बड़े राजनीतिक दल को अपनी सरकार बनाने या बचाने के लिए ऐसे अवसरवादी राजनेताओं की पदलिप्सा की पूर्ति करनी पड़ती है। हिंदी गज़लकार कहते हैं -

“अपने दल को छोड़ कर आए थे जो मौका परस्त

वो अचानक मंत्रि-मंडल में जगह पाने लगे।”¹²⁶

(जहीर कुरेशी)

“इलेक्शन भर हम मुसलमानों से रुमाल बदलेंगे
 अभी बदला है चेहरा देखिए अब चाल बदलेंगे।
 मिले कुर्सी तो दलबदलू कहो क्या फर्क पड़ता है
 ये कोई वल्दियत है पार्टी हर साल बदलेंगे।”¹²⁷ (अदम गोंडवी)

दलबदल की अवसरवादी राजनीति की एक वजह चुनावों में टिकट की कड़ी मारामारी है। पाँच साल के बाद आने वाले चुनावी मेले में मोटी रकम व तरह-तरह के भागीरथी प्रयासों के बावजूद भी जिन्हें टिकट नहीं मिलता है, वे बिना किसी झिझक-संकोच के अपने दल को छोड़कर दूसरे दल के पैराशूट से टिकट के साथ अवतरित होते हैं। ऐसे दलबदलू अवसरवादी नेता कुछ समय पहले तक जिस विरोधी दल पर हमले बोल रहे होते हैं, टिकट मिलने पर उसी के झंडे के नीचे खड़े होकर अट्टहास करते लोकतंत्र का मजाक उड़ाते हैं। टिकट की प्रतिस्पर्धा के कारण चुनावी मेले में दलबदल का बाज़ार परवान चढ़ता है। चुनावी बसंत में राजनेताओं के दिल और दल बदलते रहते हैं। जिससे अवसरवादी राजनीति को बढ़ावा मिलता है। हिंदी गज़लकार वशिष्ठ अनूप कहते हैं-

“गड़्डी देने पर भी उसको टिकट नहीं मिल पाया तो
 गाली देता फिरता है वह माला-फूल चढ़ाने वाला।”¹²⁸ (वशिष्ठ अनूप)

“कैसे ये कलाकार हैं मत पूछिए जनाब
 इस पार अभी थे, सुना उस पार हो गए।”¹²⁹ (वशिष्ठ अनूप)

कुर्सीलोलुप जनप्रतिनिधि हमेशा सत्ता में बने रहने के लिए गिरगिटि राजनीति करते हैं और कुर्सी के लिए आवश्यकतानुसार अपने दलीय पालों, विचारधाराओं की राहों, नारों और वादों को बार-बार बदलते हैं। कुर्सी के लिए दलबदल इनका आनंददायक खेल है। इनकी दलबदल की बहुआवर्ती फिल्मी सितारों के कपड़े बदलने जैसी हैं। भारतीय राजनीति में दलबदल की यह ‘आयाराम गयाराम’ वाली शैली बहुत प्रचलित हो गई है। प्रतिमा सक्सेना लिखती है, “दल-बदल की राजनीति ने तो वेश्याओं के चरित्र को भी मात दे दी। आज कोई नेता जिस दल में है, कल अपने स्वार्थ के लिए वह उसे छोड़कर किस दल में शामिल हो जायेगा कुछ कहा नहीं जा सकता। दलबदल पर रोक लगाने के लिए विधेयक भी पास किया गया परन्तु क्या उससे भी ये स्थिति रुकी है। सत्तापक्ष और विपक्ष दोनों ही इसके शिकार हैं। इन तरीकों से राजनीतिक मूल्यों का और भी हास हुआ है।”¹³⁰ शायर कहते हैं-

“साजन, किसी गिरगिट का किरदार जिया करना
भारत में अगर खुद को सरकार कहा करना।”¹³¹

(राम मेश्राम)

“रईसों के यहाँ जिस तरह से पर्दे बदलते हैं
सियासी लोग दिन भर में कई चेहरे बदलते हैं।
वे कुर्सी के सिवा सबकुछ बदल देने के हामी हैं
वे पाले यूँ बदलते जिस तरह कपड़े बदलते हैं।
हो कोई रास्ता उनको फ़कत मंजिल से मतलब है
विचारों को बदलते हैं, कभी राहें बदलते हैं।
जो खुद मक्कार होते, सब उन्हें मक्कार ही लगते
कभी नारे बदलते हैं, कभी वादे बदलते हैं।”¹³²

(वशिष्ठ अनूप)

अवसरवादी राजनीति के दौर में सत्ता प्राप्ति के साधन बदल गए हैं। अवसरवादी राजनेताओं ने विचारधारा और सिद्धांतों के पुराने औजारों की जगह पर दलबदल के नए हथियारों को अपना लिया हैं। जैसे ही अवसर मिलता है, कुर्सी के लिए ये लोग पाला बदल लेते हैं। और जब ये अपना दल बदलते हैं, तो क्षण भर में इनके नारे, वादे, विचार पूरी तरह से बदल जाते हैं। जैसे मानो क्षण भर में ही उनके तन-मन का अंतरण हो जाता है। दलबदल की इस अवसरवादिता को देखकर लगता है, जैसे आज के राजनेता अमीबा की तरह हो गए हैं, जिनका कोई सैद्धांतिक एवं वैचारिक आकार-प्रकार नहीं है। आवश्यकतानुसार जिनका रंग, रूप, चेहरा, मोहरा, आकार, प्रकार सब कुछ बदल जाता है। कुरेशी जी कहते हैं-

“दल बदला तो नारे बदले,
राजनीति के धारे बदले।”¹³³

(जहीर कुरेशी)

“पुराने तीर और तलवार बदले / सियासत ने भी अब हथियार बदले!

हमेशा स्वार्थ के अनुरूप उसने / 'अमीब' की तरह आकार बदले।”¹³⁴ (जहीर कुरेशी)

अवसरवादी राजनीति के दौर में ऐसे हैरतअंगेज कारनामे भी देखने को मिलते हैं कि चुनाव के दौरान दल विशेष के लोग जिन विरोधी दलों या उनके प्रत्याशियों को जनता के बीच भ्रष्ट व देश के विकास में बाधक बताकर आरोपित करते हैं, चुनावों के बाद स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं होने पर उन्हीं विरोधी दलों या उन जनप्रतिनिधियों के साथ समझौता कर लेते हैं। चुनावों में जो वाक्शस्त्र के द्वारा एक दूसरे के जानी

दुश्मन बने रहते हैं। चुनाव के बाद वही दोस्त बन साथ-साथ चलने लगते हैं। सियासत के इस जादुई कारनामे को शायर आग-पानी का चमत्कारी दुर्लभ असंभव संयोग कहते हैं।

“इस सियासत ने ये जादू कर दिखाया है

दोस्ती होने लगी है आग-पानी में।”¹³⁵

(जहीर कुरेशी)

“महिमा अगम अपार है इस राजनीति की

कल तक जो बहुत दूर था, सबसे करीब है।”¹³⁶

(वशिष्ठ अनूप)

सत्ता लोलुप राजनेताओं की आँखों पर स्वार्थ की पट्टी बंधी रहती है। सत्ता के मोह में उन्हें जनहित के बजाय केवल अपनी कुर्सी बचाने की चिंता रहती है। इसके लिए ये लोग गिरगिट की तरह बार-बार अपना दल, चेहरा व चरित्र बदलते रहते हैं। दलबदल की इस बढ़ती अवसरवादी चाल पर अंकुश लगाने के लिए दलबदल विरोधी कानून भी बनाया गया है, पर उसके भी अपेक्षित परिणाम नहीं निकले हैं। शायर सिद्धांत व विचारधाराविहीन बहुरंगी राजनीति का विरोध करते हुए सियासत का चेहरा-मोहरा बदलने की बात करते हैं।

“ये सियासत रंग बदलती रोज़ गिरगिट की तरह

इस सियासत का मगर चेहरा बदलना रह गया।”¹³⁷ (डी. एम. मिश्र)

3.8 विकास का अवरोधक राजनीतिक भ्रष्टाचार

आज़ादी के बाद लोकतांत्रिक मूल्यों में उत्तरोत्तर गिरावट के कारण राजनीतिक भ्रष्टाचार निरंतर पल्लवित-पुष्पित हुआ है। और आज यह एक गंभीर समस्या एवं विकास का एक बड़ा अवरोधक बन गया है। राजनीतिक नेतृत्व जब अपने पद की शक्ति व प्रभाव का दुरुपयोग किसी भी रूप में अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए करता है, तो इसे राजनीतिक भ्रष्टाचार की संज्ञा दी जाती है। राजनीतिक भ्रष्टाचार मुख्यतः दो कोटि का होता है-एक राजनीतिक सत्ता हासिल करने या उसे बरकरार रखने के लिए किया गया भ्रष्टाचार। राजनीतिक नेतृत्व द्वारा भ्रष्ट तरीकों से अर्जित धन का दुरुपयोग अवैधानिक तरीकों से सत्ता हासिल करने या सत्ता पर अपनी पकड़ मजबूत करने के लिए करना इस भ्रष्टाचार के अंतर्गत आता है। इसमें राजनीतिक दलों द्वारा कॉर्पोरेट घरानों से प्राप्त चंदे की राशि या सरकारी संसाधनों के दुरुपयोग से चुनावों में मतदाताओं को प्रभावित करना, चुनावों के बाद बहुमत प्राप्त करने या सदन में विश्वासमत हासिल करने के लिए सांसदों-विधायकों की खरीद-फरोख्त करना, मीडिया

व अन्य सरकारी संस्थाओं को अपने पक्ष में करना एवं सार्वजनिक संसाधनों के वितरण में पक्षपात शामिल है। संसद में विश्वास मत प्राप्त करने के लिए हुए 'वोट के बदले नोट' प्रकरण इस भ्रष्टाचार के उदाहरण हैं। अदम गोंडवी जी कहते हैं-

“सदन को घूस देकर बच गई कुर्सी तो देखोगे।

अगली योजना में घूसखोरी आम कर देंगे।”¹³⁸ (अदम गोंडवी)

राजनीतिक भ्रष्टाचार का दूसरा रूप शोषणकारी भ्रष्टाचार है, जिसमें राजनीतिक वर्ग द्वारा शासन सत्ता या राजनीतिक पद की शक्ति के प्रभाव व दुरुपयोग से किया गया भ्रष्टाचार आता है। इसमें सत्ताधारी जनप्रतिनिधियों द्वारा निजी कंपनियों या फर्मों को दिए जाने वाले ठेकों और लाइसेंसों के बदले गुप्त तरीके से घूस के रूप में लिया जाने वाला कमीशन, वांछित जगह पर पदस्थापन के लिए नौकरशाहों से रिश्वत, सरकारी धन का गबन, घोटाले व अन्य भ्रष्ट तरीकों से धन एकत्र करना शामिल है। मंत्रियों द्वारा अपने विभाग की योजनाओं या सौदेबाज़ी में तथा सांसद-विधायक कोटे से किए जाने वाले कार्यों में चोरी छिपे ली जाने वाली रकम शोषणकारी भ्रष्टाचार का रूप है। इस भ्रष्टाचार के कारण देश के विकास की जनहितकारी योजनाएँ कमीशन की भेंट चढ़कर आम जनता से ज्यादा राजनीतिक वर्ग का ही भला करती है। भ्रष्टाचार की यह कहानी शेरों की ज़बानी सुनिए-

“भेंट भ्रष्टाचार की ही चढ़ रही हर योजना

खेल खुलकर खेलती रहती सियासत देखिये।”¹³⁹ (महेश कटारे सुगम)

*** *** *** ***

“कहा था ये जिसने कि सेवा करेंगे

उसी रहनुमा की दलाली बहुत है।”¹⁴⁰ (महेश अग्रवाल)

*** *** *** ***

“उठाये जो कदम तुमने यहाँ 'जन' की भलाई में

हमें मालूम है, इसमें तुम्हारा ही भला होगा।”¹⁴¹ (महेश अग्रवाल)

राजनीतिक भ्रष्टाचार इस कदर व्यापक व स्वीकार्य हो गया है कि यह व्यवस्था का अप्रकट अनिवार्य अंग बन गया है। शासन-प्रशासन के निकाय को संचालित करने के लिए भ्रष्टाचार का रक्त प्रवाह तंत्र जरूरी हो गया है। यह तंत्र इतना संगठित हो गया है कि इसने उद्योग का रूप ले लिया है। दलाल नामक परजीवी सौदागरों के सहारे यह व्यवसाय बढ़ी तेजी से फल-फूल रहा है। निजी कम्पनियाँ या फर्म अपने आर्थिक सौदों के लिए दलालों के जरिए ही मंत्रियों तक पहुँच बनाते हैं, और अपने

पक्ष में फैसले करवाते हैं। बदले में संबंधित फर्मों या कंपनियों से कमीशन वसूली का कार्य भी दलाल ही करते हैं। जिसका एक बड़ा हिस्सा सत्ताधारी राजनीतिक नेतृत्व तक उसी तरह स्वतः पहुँचता है, जिस प्रकार मुख द्वारा लिये गये भोजन का प्रदाय सभी अंगों तक पहुँचता है। दलाली संस्कृति ने भ्रष्टाचार के आपराधिक कृत्य को सुरक्षित व्यवसाय बना दिया है। शायर कहते हैं-

“सरकारें भी क्या करतीं

खून में ही था भ्रष्टाचार।”¹⁴²

(देवेन्द्र आर्य)

*** **

“मुल्क में फैला रखा है भ्रष्टतर उद्योग को

जेब में कानून को ये रखने लायक हो गए।”¹⁴³ (महेश कटारे सुगम)

“रक्षा, सौदा, विकास या खेती

रुतबा बढ़ता गया दलालों का।”¹⁴⁴

(देवेन्द्र आर्य)

“मुँह में अपने आप निवाला आ जाता है

बड़ी सुरक्षित कुर्सी पर बैठा अजगर है।”¹⁴⁵ (डी. एम. मिश्र)

शोषणकारी राजनीतिक भ्रष्टाचार का दानवी रूप घोटाले एवं गबन है। लाइसेंस राज में भ्रष्टाचार के नाम पर घूसखोरी का खेल चलता था, लेकिन उदारीकरण के बाद तो लाखों-करोड़ों के घोटालों की बात सामान्य हो गई है। राजनीतिक घोटालेबाजी इतनी आम हो गई है कि करोड़ों-अरबों के घोटालों की चर्चा से भी न तो राजनीतिक स्तर पर और न ही जनता में किसी तरह की बड़ी हलचल होती है। हिंदी गज़लकार घोटालेबाजी पर कहते हैं-

“कसम गाँधी की खाकर कर रहे दिन-रात घोटाले

फिरंगी जो न कर पाये वो ये हुक्काम कर देंगे।”¹⁴⁶ (वशिष्ठ अनूप)

“घोटाले आजकल के

हिमालय से बड़े हैं।”¹⁴⁷

(महेश कटारे सुगम)

*** **

“रोज़ अखबारों में छपती है ख़बर छपती रहे

अब घोटालों की ख़बर पर चौंकता कोई नहीं।”¹⁴⁸ (डी. एम. मिश्र)

राजनीतिक भ्रष्टाचार विकास की गति को अवरुद्ध करने वाला एक बड़ा अवरोधक है। भ्रष्टाचार के कारण देश की विकास योजनाओं में आवंटित धन की बंदरबाँट होती है। तथा बहुत बड़ा भाग भ्रष्टाचार की भेंट चढ़ जाता है। जनता के खून पसीने की कमाई व टैक्स के पैसे से चलने वाली विकास योजनाओं के धन का एक बड़ा हिस्सा राजनीतिक पदधारियों द्वारा कमीशन के रूप में वसूल लिया जाता है। जिससे समाज के आखिरी छोर पर खड़े आम आदमी के कल्याण के लिए चलाये जाने वाले जनहितकारी कार्यक्रम एवं देश के आधारभूत ढाँचे को सुदृढ़ करने के लिए चलाई जाने वाली विकास की भागीरथी योजनाएँ केवल राजनीतिक वर्ग की सात पीढ़ियों का उद्धार करने वाली गंगा बनकर रह जाती है। हिंदी गज़लकार प्राकृतिक प्रतीकों के माध्यम से भ्रष्टाचार को उजागर करते हुए लिखते हैं-

“प्रजातन्त्र की लूट पाट में दौलत के

सारे बन्दर बाँट हमारे देखे हैं।”¹⁴⁹

(महेश कटारे सुगम)

*** *** *** ***

“बे-मेहर हुक्काम था सब कुछ उठाकर ले गया

जिस तरह दरियाओं का पानी समन्दर ले गया।”¹⁵⁰ (ज्ञान प्रकाश विवेक)

*** *** *** ***

“नदियाँ तमाम पीके भी प्यासे हैं आजतक

कुछ लोग आचरण में समुन्दर की तरह हैं।”¹⁵¹ (वशिष्ठ अनूप)

राजनीतिक-प्रशासनिक भ्रष्टाचार के कारण हमारी व्यवस्था एक फूटे घड़े के समान हो गई है, जिसके भ्रष्टाचार के छेद से धनजल निरन्तर टपकता रहता है और दूरस्थ प्यासे आमजन तक बहुत कम धनजल पहुँचता है। देश की विकास योजनाओं के लिए आवंटित अधिकांश पैसा भ्रष्टाचार के भोग में खप जाता है तथा बहुत कम अंश लक्षित जन समूहों या जगहों तक पहुँचता है। जिसको लक्षित करते हुए हिंदी गज़लकार लिखते हैं-

“कैसे पहुँचेगा हमारे द्वार तक पर्याप्त जल

जब व्यवस्था हो हमारी एक फूटा-सा घड़ा।”¹⁵² (हरेराम समीप)

***** ***** ***** *****

“सौ पैसे जनता तक आते दस पैसे रह जाते हैं

नीचे से ऊपर तक लाइन बैठी हिस्सेदारों की।”¹⁵³ (महेश कटारे सुगम)

आज़ादी के बाद देश के तीव्र विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाएं बनाई गई। जिनमें विपुल धनराशि खर्च की गई। जिससे आज़ादी के सात दशकों में विकास तो हुआ है, लेकिन राजनीतिक-प्रशासनिक भ्रष्टाचार के कारण विकास योजनाओं में खर्च राशि के अनुपात में नहीं हुआ। और इस कारण आज भी देश के दूर दराज के इलाकों में रहने वाले वंचित समुदायों व मेहनतकश आमजन के जीवन स्तर में अपेक्षित सुधार दृष्टिगत नहीं होता है। भ्रष्टाचार के कारण जिस आम आदमी के लिए ये योजनाएँ बनती हैं। उस तक वास्तव में इनका लाभ अत्यल्प मात्रा में पहुँचता है। जिससे अपेक्षित बदलाव नहीं हो पाता है। यही कारण है कि आम आदमी आज भी जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित है। दूरदराज के ग्रामीण इलाके आज भी सड़क, बिजली, पानी जैसी आधारभूत सुविधाओं से वंचित है। आमजन इनके लिए संघर्ष कर रहा है। उसका जीवन दुश्वारियों से भरा हुआ है। और वह आज भी विकास के सावन का इंतजार कर रहा है। डॉ. शैलजा लिखती हैं, “भ्रष्टाचार के राक्षस ने सोने की चिड़िया कहलाने वाले इस देश को भुखमरी, शोषण, बेरोजगारी, घोटाले, पिछड़ापन, अन्याय की तड़प-घुटन के सिवा कुछ नहीं दिया।”¹⁵⁴ हिंदी गज़लकार कहते हैं-

“एक सावन की में अब भी राह तकता हूँ
आज भी सूखी नदी का एक रस्ता हूँ।”¹⁵⁵ (विनय मिश्र)

“सड़क, नालियाँ, बिजली, पानी?
अब भी सब कुछ गोलमाल है।”¹⁵⁶ (महेश कटारे सुगम)

“जो बशर मुल्क के तक्रदीर की तामीर करे।
आज फुटपाथ के साये में उसकी रात ढले।”¹⁵⁷ (रामकुमार कृष्णक)

राजनीतिक भ्रष्टाचार के कारण जहाँ एक ओर विकास योजनाओं में आवंटित धन के अनुपात में विकास कार्य नहीं होते हैं। वहीं दूसरी ओर विकास कार्यों की गुणवत्ता भी प्रभावित होती है। भ्रष्टाचार के कारण विकास योजनाएँ केवल फाइलों तक सीमित रह जाती हैं। विकास आँकड़ों की शक्ल में कागज़ों में होता है, जिसका ज़मीनी हकीकत से कोई खास वास्ता नहीं होता है। या फिर विकास होता भी है, तो नाम मात्र का। विकास कार्यों के ठेके उन्हीं फर्मों को दिए जाते हैं, जो अधिक कमीशन देते हैं। ऐसे लोग कार्यों में केवल कागज़ी खानापूति करते हैं। और जो कार्य होते हैं, उनकी गुणवत्ता बहुत घटिया होती है। आज हम देखते हैं कि सरकारी निर्माण कार्यों

में बनी सड़कें, इमारतें व पुल आदि कुछ समय में ही क्षतिग्रस्त हो जाते हैं, जिसकी वजह तंत्र में मौजूद भ्रष्टाचार है। हिंदी ग़ज़लकार कहते हैं-

“तुम्हारी फाइलों में गाँव का मौसम गुलाबी है
मगर ये आँकड़े झूठे हैं, यह दावा किताबी है।”¹⁵⁸ (अदम गोंडवी)

*** **

“फाइलों ने विकास का चेहरा,
आँकड़ों की जुबान से देखा।”¹⁵⁹ (जहीर कुरेशी)

*** **

“बाढ़, सूखा, अकाल काग़ज़ पर / हम हुए मालामाल काग़ज़ पर।
लाइनें थीं जहाँ मरीज़ों की / था वहाँ अस्पताल काग़ज़ पर।”¹⁶⁰ (हरेराम समीप)

“उसी को है मिलते सड़क, पुल के ठेके / वो फर्जी रसीदें लगा करके लूटे।
बहुत बार उसकी हुई जाँच लेकिन/हुआ क्या, कमीशन खिला करके लूटे।”¹⁶¹

(डीएम मिश्र)

भ्रष्टाचार पर लगाम के तमाम दावों के बावजूद भी यह रुकता नहीं है। राजनीतिक दल हर चुनाव में जीरो कर्प्शन की बात करते हैं, लेकिन इन चुनावी दावों का परिणाम जीरो ही रहता है। भ्रष्टाचार के दीमक ने हमारी राजनीतिक-प्रशासनिक व्यवस्था में गहरे घर कर लिया है। यह देश के विकास की नींव को निरंतर खोखला कर रहा है। हिंदी ग़ज़लकार केवल भ्रष्टाचार के यथार्थ से ही रूबरू नहीं करवाते हैं, अपितु उसके उन्मूलन के लिए आमजन को भ्रष्टाचार के मुद्दे पर सत्ता से सवाल करने के लिए प्रेरित करते हैं।

“कमज़ोर हो के गिरने लगा है मेरा मकान
दीमक कहीं तो काठ में अब विद्यमान है।”¹⁶² (हरेराम समीप)

*** **

“हर विकास की नदी कहाँ खो जाती है
क्यूँ धुंधले समृद्धि चित्र ये पहचानो।”¹⁶³ (महेश कटारे सुगम)

3.9 सत्ता द्वारा विकास की विज्ञापनबाजी

सामयिक राजनीति की एक उदीयमान प्रवृत्ति विकास की सियासती विज्ञापनबाजी है। सत्ताधारी राजनीतिक दल विकास की अतिशयोक्तिपूर्ण विज्ञापनबाजी के जरिए अपने दल व दलनायकों की छवि को चमकाते हैं। येन केन

प्रकारेण सत्ता हासिल करना और सत्ता प्राप्त होने के बाद पाँच वर्षों तक सरकार की झूठी-सच्ची उपलब्धियों से अपने दल की छवि को बेहतर बनाना ही राजनीतिक दलों का मार्ग व मकसद तथा चाल व चरित्र है। विज्ञापनबाजी व इवेंटबाजी आज सत्ता की कार्यशैली बन गयी है। सत्ता आकर्षक व लोकलुभावन विज्ञापनों के सम्मोहक जादू से देश के खस्ताहालात को मखमली रूप में प्रस्तुत करती है। हिंदी ग़ज़लकार सत्ता की इस विज्ञापनी इवेंटबाजी के बारे में लिखते हैं-

“संसद से सड़कों तक फैला सिर्फ सियासत का जादू
भीतर भीतर टाट सरीखा बाहर-बाहर है मखमल।”¹⁶⁴ (महेश अग्रवाल)

*** **

“अब झाँकियों में देश की तस्वीर देखिए
वरना तो जिसने देखी हकीकत दहल गया।”¹⁶⁵ (महेश अग्रवाल)

*** **

“पोस्टर में मुस्कराता झूठ का चेहरा
में लिए इस मुल्क की तस्वीर बैठा हूँ।”¹⁶⁶ (विनय मिश्र)

सत्ता का ध्यान विकास कार्यों से कहीं अधिक उनकी विज्ञापनबाजी पर रहता है। विकास कार्यों के लिए भले ही बजट की कमी या कटौती हो सकती है। लेकिन चाहे किसी भी दल की सरकार हो, विज्ञापनों का खर्च निरंतर बढ़ता ही जाता है। इन विज्ञापनों में जनता के खून पसीने व टैक्स की कमाई को पानी की तरह बहाया जाता है। विकास के झूठ को सच बनाने के लिए करोड़ों रुपए के विज्ञापनों की बार-बार आवृत्ति होती है, जिससे सरकारी धन का अपव्यय होता है। हिंदी ग़ज़लकार जहीर कुरेशी कहते हैं-

“झूठ की बिक्री बढ़ाने के लिए
दिन में सौ-सौ बार विज्ञापन हुआ।”¹⁶⁷ (जहीर कुरेशी)

*** **

“करोड़ों रुपये के होते हैं ऐसे विज्ञापन
वो जिसने झूठ का सच की तरह प्रचार किया।”¹⁶⁸ (जहीर कुरेशी)

सत्ता द्वारा विकास की विज्ञापनबाजी जनता के साथ एक तरह का छल या विश्वासघात है, क्योंकि यह विज्ञापित विकास सच्चाई से कोसों दूर और भ्रामक होता है। विकास की विज्ञापनी और ज़मीनी स्थितियों में आकाश-पाताल का अंतर होता है, क्योंकि इन विज्ञापनों में राई को पर्वत तथा तिल का ताड़ बनाया जाता है। विज्ञापनों

में देश में विकास की बहार बतायी जाती है, भले ही वास्तविक स्थितियाँ कंटीले पतझड़ जैसी हो। विज्ञापनों की चकाचौंध से बदहाल एवं अँधेरी जीवन दशाओं को भी जगमगाया जाता है। सत्ता की विज्ञापनी बयार के झूठे गीतों के सच को प्रकट करते हुए ग़ज़लकार कहते हैं-

“एक छल है गुलाबी फ़सल देश में
दरअसल हैं असल नीम की पत्तियाँ।”¹⁶⁹ (रामकुमार कृषक)

*** **

“रंग से तू ज़र्द पत्तों को हरा कर दे
पर हक़ीक़त है कि गुलशन में खिजाएँ हैं।”¹⁷⁰ (महेश अग्रवाल)

*** **

“सिर्फ़ काँटे हाथ आए हैं चमन के, देखिए
गीत फूलों के हवा हरदम भले गाती रही।”¹⁷¹ (विनय मिश्र)

सत्ता में विज्ञापनप्रियता की प्रवृत्ति इस कदर है कि उसका ध्यान विकास कार्यों से अधिक उनके विज्ञापनों पर होता है। विज्ञापनबाजी के जरिए सत्ता अपनी नाकामियों को छिपाने तथा अपनी किंचित उपलब्धियों को बढ़ा-चढ़ा कर बताने के लिए आँकड़ों के आकाशी ग्राफ पेश करती है। परन्तु ये आँकड़े निराधार होते हैं। यही कारण है कि जो विज्ञापनों में दिखता है, वह असल जिंदगी में उस रूप में होता नहीं है। सत्ता द्वारा प्रचारित आँकड़ों के विकास के विज्ञापनी झूठ के सच को दिल्ली में सत्ता की नाक के नीचे बनी फुटपाथी बस्तियाँ बयाँ करती रहती है। फिर भी विकासी विज्ञापनों को इतना आकर्षक एवं लोकलुभावन रूप दिया जाता है कि उनकी चकाचौंध से सम्मोहित हो जनता सत्ता के प्रचार जलसे में शामिल हो जाए। हिंदी ग़ज़लकार आँकड़ों की विज्ञापनबाजी पर कहते हैं-

“आँकड़े ही आँकड़े हैं आँकड़े फिर भी नहीं
झूठ में सच जोड़िए मिलते सिरे फिर भी नहीं।”¹⁷² (रामकुमार कृषक)

*** **

“ये कैसे आँकड़े हैं
बिना पैरों खड़े हैं।”¹⁷³ (महेश कटारे सुगम)

*** **

“राजा जी के हर भाषण में जगजग चाँद सितारे हैं,

प्रगति कर रहा देश हमारा, विज्ञापन में, नारों में।”¹⁷⁴ (वशिष्ठ अनूप)

*** *** *** ***

“रिसालों में, बयानों में, खयालों में तो है लेकिन

कोई कहता मिला क्या जिंदगी में वाह वा, आहा!”¹⁷⁵ (देवेन्द्र आर्य)

सरकार द्वारा विज्ञापित विकास के आँकड़े झूठे व ज़मीनी यथार्थ से दूर होते हैं। आमजन की वास्तविक स्थितियों को जाने बगैर उनकी उपेक्षा कर खुशहाली के आँकड़े तैयार किए जाते हैं। उदाहरणार्थ गरीबों के बहुत से बच्चे आज भी बाल श्रम में लगे हैं, लेकिन सरकारी आँकड़ों में वे सभी स्कूल जाते हैं। बहुत से परिवार कचरा संग्रहण कर रोटी का जुगाड़ करते हैं, पर आँकड़ों में वे सभी खुशहाल हैं। इसलिए हिंदी गज़लकार सत्ता द्वारा विज्ञापित विकास पर प्रश्न चिन्ह लगाते हैं। सियासत जिस विकास का प्रचार-प्रसार करती है, वह वास्तव में चंद लोगों का विकास है। जो सावन में पैदा हुए हैं और जिनकी आँखों पर हरा चश्मा लगा है, उन्हीं के लिए यह विज्ञापनी विकास सच है। हिंदी शायर कहते हैं-

“जो कचरा बीन कर अपने लिए रोटी जुटाते हैं

तुम्हारे आँकड़े खुशहाल उनको भी बताते हैं

जो बचपन होटलों में जूठनों को साफ़ करता है

तुम्हारी फाइलों में वो सभी स्कूल जाते हैं।”¹⁷⁶ (महेश कटारे सुगम)

*** *** *** ***

“ढोल, सियासत पीट रही है जो दिन-रात विकास का

पेट भरे का झूठ यही है, भूखों का सच और है।”¹⁷⁷ (विनय मिश्र)

आमजन की ज़मीनी स्थितियों को देखने पर सत्ता द्वारा गाई जाने वाले विकास की मल्हार राग एवं तराने जूठे लगते हैं। सत्ता द्वारा मचाया जाने वाला विकासी शोर बुद्धिजीवी वर्ग की समझ से बाहर है। हिंदी गज़लकार विकास के शोरगुल के बीच भी आमजन की आह व कसक को सुनते हैं। वे सत्ता द्वारा विज्ञापित विकास पर प्रश्न चिह्न लगाते हैं तथा उसे ज़मीनी हालात को गौर से देखने एवं उसमें बदलाव की नसीहत देते हैं।

“इस विकास का शोर समझ से बाहर है

कहाँ है इसका छोर समझ से बाहर है।

तुम कहते हो चमक उठा है सूरज तो

ये धुंधली सी भोर समझ से बाहर है।”¹⁷⁸ (महेश कटारे सुगम)

“कोटियों से मुल्क के मेआर को मत आँकिए।

असली हिन्दुस्तान तो फुटपाथ पर आबाद है।”¹⁷⁹ (अदम गोंडवी)

3.10 नौकरशाही में अवांछित राजनीतिक हस्तक्षेप

राजनीति और प्रशासन का संबंध बड़ा जटिल एवं द्वंद्वपूर्ण है। जनतंत्र में निर्वाचित जनप्रतिनिधि विधायी प्रक्रिया से नीतियाँ एवं योजनाएँ बनाते हैं, तो प्रशासनिक नौकरशाह विधायिका द्वारा बनाई गई नीतियों एवं योजनाओं का क्रियान्वयन करते हैं। हमारे देश में राजनीति (विधायिका) और प्रशासन (कार्यपालिका) के कार्यों-शक्तियों का स्पष्ट विभाजन करते हुए तटस्थता का सिद्धांत अपनाया गया है। जिसके अनुसार प्रशासन की भूमिका ईमानदारी एवं तटस्थता के साथ विधायिका द्वारा बनाई गई नीतियों के क्रियान्वयन तथा जनप्रतिनिधियों को आवश्यक परामर्श प्रदान करने की है। परन्तु व्यवहार में प्रशासनिक तटस्थता के सिद्धांत का पूर्ण रूप से पालन नहीं हो पाता है। एक ओर नौकरशाही नीति निर्माण में अहम भूमिका अदा करती है, तो दूसरी ओर राजनीतिक नेतृत्व अपने उच्च सोपान के कारण नौकरशाही पर नीतियों-योजनाओं के क्रियान्वयन के नाम पर अपनी शर्तें थोपता है, जिससे नौकरशाही में अवांछित राजनीतिक दखलंदाजी बढ़ती है।

प्रशासन में राजनीतिक दखलंदाजी के बढ़ने का एक बड़ा कारण राजनीतिक नेतृत्व में अपने अधीनस्थ नौकरशाही के राजनीतिक स्वामी होने की अधिकार संपन्नता का दंभी बोध है। राजनीतिक नेतृत्व की चाहत व अपेक्षा होती है कि नौकरशाही उसके समक्ष नतमस्तक हो तथा वह स्वतंत्र रूप से कार्य करने की जगह उसके इशारों पर कठपुतली नृत्य करे। राजनीतिक वर्ग सत्ता के उच्चतम सोपान पर स्थित होने के दंभ में नौकरशाही के हर काम में बेवजह टाँग अड़ाने को अपने शक्ति परीक्षण और अहम की तुष्टि के तौर पर देखता है। ऐसे में नौकरशाह नौकरी की सुरक्षा एवं अनावश्यक परेशानियों से बचने के लिए अपने ज़मीर से समझौता करके भी सत्तासीन राजनीति के प्रति प्रतिबद्ध होने को मजबूर होते हैं। हिंदी ग़ज़लकार राजनीति के नौकरशाही में अवांछित हस्तक्षेप को अनुचित मानते हैं-

“मुल्क के अफसर हमारे सामने मुज़रा करें/इस तरह अधिकार की इक हद हमें दे दीजिए।
कोई भी मेरे गिरेबां तक नहीं पहुंचे कभी/ एक ऊंचे रौब वाला कद हमें दे दीजिए।”¹⁸⁰

(महेश कटारे सुगम)

“जब सब कुछ राजी बाजी है / नाहक क्यों दखलअंदाजी है

टांग अड़ाने की आदत को / समझ रहे हो जाँबाज़ी है।”¹⁸¹ (महेश कटारे सुगम)

“इशारे नाचे कठपुतली उसी के चाहने पर हैं
यहाँ पर्दे के पीछे में ये जिसकी उँगलियाँ देखूँ।”¹⁸² (विनय मिश्र)

***. ***. *** ***

“सिर झुकाए भी बचाना है उसे अपना ज़मीर
क्या करे जीना भी है और नौकरीपेशा भी है।”¹⁸³ (विनय मिश्र)

प्रशासन में राजनीतिक हस्तक्षेप का एक रूप राजनीतिक वर्ग द्वारा अवांछित कार्य करवाने के लिए नौकरशाही पर दबाव के रूप में सामने आता है। राजनीतिक नेतृत्व की इच्छानुसार कार्य नहीं करने वाले नौकरशाहों को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से दंडित किया जाता है। जिन मामलों में नौकरशाही के पास कानूनी संरक्षण होता है, उनमें भी राजनीतिक नेतृत्व अपने अनुकूल या प्रतिकूल नौकरशाही के प्रति बतौर पुरस्कार या दण्ड के स्थानान्तरण, निलंबन आदि को हथियार के रूप में इस्तेमाल करता है। सुगम कहते हैं-

“ट्रांसफर होता नहीं इनका कभी
प्यार इन पर है बहुत सरकार का।”¹⁸⁴ (महेश कटारे सुगम)

नौकरशाही में राजनीतिक दखलंदाजी का दुष्प्रभाव है कि अपने कर्तव्यों के स्वतंत्र रूप से कानूनसम्मत पालन की शपथ लेने वाले देश व जनता के प्रति प्रतिबद्ध प्रशासक राजनीतिक नेतृत्व के वफादार व रक्षक बनकर रह जाते हैं। राजनीति नौकरशाही की भाग्य विधायक बन जाती है, तो नौकरशाह जनता के दुख निवारक से ज़्यादा राजनीति के काले कारनामों के आवरण (पर्दे) तथा रक्षा कवच बनकर रह जाते हैं। हिंदी गज़लकार कहते हैं-

“ऊँचे महलों के रक्षा कवच
सबसे पहले अहाते रहे।”¹⁸⁵ (जहीर कुरेशी)

*** *** ***

“राजनीति के गुंडों का क्या बिगड़ेगा
आगे पीछे खाकी वर्दी होती है।”¹⁸⁶ (महेश कटारे सुगम)

3.11 प्रशासनिक कार्यप्रणाली का समकालीन यथार्थ

लोकतंत्रात्मक शासन व्यवस्था में विधायिका द्वारा बनाई गई नीतियों, नियमों एवं योजनाओं की क्रियान्विति के लिए राजनीतिक कार्यपालिका के साथ अधिकारियों एवं कर्मचारियों की एक स्थाई संगठनात्मक कार्यपालिका की आवश्यकता होती है जिसे नौकरशाही या प्रशासनिक तंत्र कहा जाता है। भारतीय नौकरशाही विश्व की श्रेष्ठ

नौकरशाही मानी जाती रही है। लेकिन राजनीतिक नेतृत्व के आचरण व कार्यव्यवहार में गिरावट के साथ धीरे-धीरे नौकरशाही का आचरण और कार्यपद्धति भी दूषित होने लगी तथा भ्रष्ट राजनीति की पिछलग्गू व सहायक बन नौकरशाही भी प्रशासनिक नैतिकता एवं मूल्यों से दूर होती चली गई। और आज भारतीय नौकरशाही की पहचान भ्रष्ट नौकरशाही की हो गई है। नौकरशाही के वित्तीय दायित्वों में वृद्धि के साथ नौकरशाह नागरिक सेवा संहिता में दी गई शक्तियों व अधिकारों का दुरुपयोग कर जनहित की जगह स्वार्थ को तरजीह देते हुए देश की कल्याणकारी योजनाओं के लिए आवंटित धन में हेरा-फेरी करने लगते हैं। जिससे राजनीतिक भ्रष्टाचार की छाया में प्रशासनिक भ्रष्टाचार भी निरंतर फलता-फूलता है। जिस प्रकार पानी में तैरती हुई मछली दो बूँद पानी कब ले लेती है, पता ही नहीं चलता है; उसी प्रकार सार्वजनिक धन के साथ नौकरशाह करते हैं। नौकरशाही के भ्रष्टाचार के बारे में कौटिल्य का यह मत आज न केवल शतांश सत्य है, बल्कि इससे आगे आज तो प्रशासनिक तंत्र में सरकारी धन की लूटमार मची हुई है। मंत्रीगण और अफसर विभागीय योजनाओं व कार्यों में इस तरह से घूस लेने लगे हैं, जैसे वो अपनी उधारी वसूल रहे हैं। सरकारी विभागों में भ्रष्टाचार व रिश्वत के नाम पर लाखों रुपयों का लेनदेन होने लगा है। भ्रष्टाचार के रोग से हर विभाग, कार्यालय एवं हर अधिकारी-कर्मचारी संक्रमित हैं। सरकारी तंत्र में रिश्वत की भ्रष्ट द्रव्यधारा अबाध रूप से बह रही है। जिसे रेखांकित करते हुए गज़लकार कहते हैं-

“सरकारी दफ्तर में पग पग

फैला भ्रष्टाचार मिला है।”¹⁸⁷

(किशन तिवारी)

*** *** *** ***

“हर कुर्सी, हर दफ्तर है संदेह के घेरे में

बड़ा भयानक छुआछूत का रोग है भ्रष्टाचार।”¹⁸⁸

(डी. एम. मिश्र)

*** *** *** ***

“सरकारी दफ्तर रिश्वत से चलते हैं

हर थाना खूँखार दिखाई देता है।”¹⁸⁹

(महेश कटारे सुगम)

*** *** *** ***

“हर तरफ़ बह रही है भ्रष्ट नदी कचरे की।

कौन बच पाएगा बेदाग़ भला ऐसे में?”¹⁹⁰

(डी. एम. मिश्र)

सामयिक दौर में प्रशासनिक मूल्यहीनता के कारण नौकरशाही में भ्रष्टाचार चरम पर है। हर अधिकारी-कर्मचारी का रिश्वत से इश्किया रब्त है। हर कोई रिश्वत पर कुर्बान है। चपरासी से लेकर बाबू, अधिकारी, मंत्री तक ऐसा कोई नहीं है, जो रिश्वत के वशीकरण में नहीं हो। अधिकारी वर्ग रिश्वत की राशि से अकूत दौलत जमा कर रहा है और दिखावटी ऐश्वर्यपूर्ण जीवन शैली पर विपुल धन खर्च कर रहा है। नौकरशाहों के द्वारा बेनामी संपत्ति, शादी-विवाह, गाड़ी-बंगलों पर खर्च किया जाने वाला अकूत काला धन घूस के गुप्त खजाने से ही आता है। भ्रष्ट अधिकारी मंत्रियों के भी कमाऊपूत बनकर हर सरकार में सम्मान पाते हैं तथा मलाईदार पदों से चिपके रहते हैं। महेश कटारे सुगम कहते हैं-

“बिना लिए तो कलम नहीं चलती उसकी

वो बस रिश्वत की बलिहारी होता है।”¹⁹¹

(महेश कटारे सुगम)

*** *** *** ***

“शादी, वर्षगांठ के उत्सव, दौलत की परवाह नहीं

कोई बताए इतनी दौलत कैसे लोग कमाते हैं।”¹⁹² (महेश कटारे सुगम)

सरकारी कार्यालयों में भ्रष्टाचार-रिश्वत का खेल आज आम बात है। अधिकारी, कर्मचारी रिश्वत को अपना प्रशासनिक धर्म व अधिकार समझने लगे हैं। जैसे यह उनका शिष्ट खानदानी पेशा है। रिश्वत के लिए अधिकारी-कर्मचारी जनता के कामों को जानबूझकर अटकाते हैं। जनता भी नौकरशाही के इस प्रपंच से अच्छी तरह वाकिफ़ हो गई है। इसलिए जरूरतमंद लोग दफ़्तरों के बार-बार चक्कर काटने के बजाय काम निकलवाने के लिए मजबूरन दफ़्तर के देवताओं को भेंट चढ़ाना अपना धर्म समझते हैं। डॉ. शैलजा लिखती है, “स्वाधीनता के साथ प्रचलन में आई भ्रष्टाचार एवं रिश्वतखोरी की समस्या पूरे देश में इस कदर फैल गयी है कि देश का आम आदमी सरकार के किसी भी विभाग के किसी कर्मचारी या मंत्री पर विश्वास ही नहीं कर सकता है। भ्रष्टाचार प्रशासनिक, राजनीतिक, व्यावसायिक, शैक्षणिक तथा बैंकों, बीमा, कानून, न्याय, चिकित्सा आदि क्षेत्रों में विद्यमान है। भ्रष्टाचार आज के युग में शिष्टाचार बन गया है।¹⁹³ यह नौकरशाही में व्याप्त लालफीताशाही एवं भ्रष्टाचार की चरम स्थिति की स्वीकार्यता है कि रिश्वत लेकर भी काम कर देने वाला नौकरशाह आज अच्छा माना जाने लगा है। हिंदी गज़लकार लिखते हैं

“रिश्वत को हक समझ जहाँ ले रहे हों लोग।

है और कोई मुल्क तो उसकी मिसाल दो।”¹⁹⁴

(अदम गोंडवी)

“लामुहाला, खेल भ्रष्टाचार का
शिष्ट पेशा खानदानी हो गया।”¹⁹⁵

(राम मेश्राम)

*** *** *** ***

“धन कमाने के करें सारे उपाय / हो सके उससे भी कुछ ज्यादा करें।

जब तलक उगले नहीं जेबें रकम/ तब तलक हर काम को टाला करें।”¹⁹⁶

(महेश कटारेसुगम)

“कुछ ले-देकर काम करा लो
कर देगा, अच्छा अफसर है।”¹⁹⁷

(वशिष्ठ अनूप)

भ्रष्टाचार अब एक उद्योग बन गया है और इस उद्योग के फलने-फूलने में दलालों की परजीवी संस्कृति का बहुत योगदान है। कानून के शिकंजे से बचने के लिए नौकरशाही ने कार्यालयों में दलाली संस्कृति को पोषित किया है। और आज स्थिति यह हो गई है कि हर विभाग, हर कार्यालय के दलाल हैं और बिना दलालों के कहीं भी कोई बमुश्किल हो पाता है। हर कार्य के बदले दलाल लोगों या फर्मों से नियत कमीशन वसूलते हैं, जिसमें बाबू से लेकर अधिकारी तक का हिस्सा होता है। जनहितकारी योजनाओं के लिए स्वीकृत अनुदान में से कार्यकारी निजी फर्मों या ठेकेदारों से कार्य की स्वीकृति व पूर्णता प्रमाण पत्र के बदले भी नौकरशाह कमीशन लेते हैं, जिसमें भी दलालों की भूमिका होती है। इस दलाली कार्यप्रणाली को देखकर लगता है कि शासन-प्रशासन को आज रिश्वत व भ्रष्टाचार के जीवंत प्रतिनिधि दलाल ही चला रहे हैं। दलाली संस्कृति से एक ओर अधिकारी-कर्मचारी सुरक्षित रहते हैं। उन्हें घर बैठे कमीशन मिलता है, तो दूसरी ओर दलाल भी मोटी रकम जेबों में धरते हैं। जिससे राजनीतिक-प्रशासनिक भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलता है। शायर कहते हैं -

“देश दलालों की मर्जी से चलता है दिन रात यहाँ

समझौतों में ऊपर नीचे सबकी हिस्सेदारी है।”¹⁹⁸

(विनय मिश्र)

“स्याह-लक्ष्मी फाड़ती है रोज छप्पर,

बाँस घर बैठे बिठाए फूलता है।”¹⁹⁹

(राम मेश्राम)

भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने के लिए भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, धनशोधन निवारण अधिनियम जैसे कई कानून तथा केंद्रीय सतर्कता आयोग, लोकायुक्त एवं लोकपाल जैसी नियंत्रण एजेंसियाँ गठित हैं। हर कार्यालय में भी हाथी के दिखाने के दाँतों की तरह भ्रष्टाचार विरोधी चेतावनी भी लिखी रहती हैं। सरकारों द्वारा जीरो

करप्शन की बातें की जाती है। लेकिन तमाम उपायों व दावों के बावजूद भ्रष्टाचार कम होने के बजाय बढ़ता जा रहा है। इसका कारण है कि एक ओर नियंत्रण एजेंसियाँ राजनीतिक दखल के कारण भ्रष्टाचार के खिलाफ लड़ाई में अपने को कमजोर पाती है, तो दूसरी ओर भ्रष्टाचार पर शिकंजा कसने वाली एजेंसियाँ खुद भ्रष्टाचार की गिरफ्त में हैं। ऊपर से नीचे तक सारा तंत्र ही भ्रष्ट है; रक्षक ही भक्षक बने हैं, तो भ्रष्टाचार कैसे कम होगा? ग़ज़लकार कहते हैं-

“घर में गिनेंगे आप तो पंजे से कम नहीं।

दफ़्तर में टाँगते हैं तिकोने निशान को।”²⁰⁰

(अदम गोंडवी)

*** *** *** ***

“कीजिएगा अब शिकायत किसकी किससे सोचिए

आज सारा तंत्र ही डूबा है भ्रष्टाचार में।”²⁰¹

(वशिष्ठ अनूप)

भारतीय प्रशासनिक तंत्र की कार्य प्रणाली अत्यधिक नियमों में उलझी हुई तथा जटिल है। हमारे देश की नौकरशाही नियमों के प्रति अत्यधिक औपचारिक है। इस कारण लालफीताशाही उसकी कार्यशैली की विशिष्ट पहचान है। जनता की अर्जियाँ और जनहित से जुड़े हुए कार्यों की फाइलें समय पर पूर्ण नहीं होती हैं या मंजूर नहीं होती हैं, तो उसे लालफीताशाही कहा जाता है। अधिकारियों-कर्मचारियों द्वारा लकीर के फकीर होकर नियमों का इतनी प्रतिबद्धता के साथ पालन किया जाता है कि अत्यधिक औपचारिकता के कारण सरल प्रकृति के कार्य भी अत्यधिक जटिल बना दिए जाते हैं। जिससे जनता की याचिकाओं और समस्याओं का समाधान समय पर नहीं हो पाता है। भारत का जटिल आर्थिक वातावरण जिसमें विभिन्न लाइसेंस एवं परमिट के अनुमोदन के लिए नियमों की औपचारिकता जरूरी है, लालफीताशाही के लिए अनुकूल है। भ्रष्ट अधिकारियों, कर्मचारियों द्वारा लालफीताशाही को जानबूझकर बढ़ावा दिया जाता है। अत्यधिक नियमों का जाल एवं जटिल नौकरशाही प्रक्रियाएँ व्यवसायियों और लोगों को औपचारिकता में शिथिलता एवं फाइलों के शीघ्र निपटान के लिए रिश्वत देने हेतु प्रेरित करती है। एक तरह से लालफीताशाही भी भ्रष्टाचार की जनक व पोषक है। प्रशासनिक अकर्मण्यता व लालफीताशाही पर शायर कहते हैं-

“रोज़ जन समस्याएँ, रोज़ के बहाने सौ

तर्क कामचोरी के, हम ज़हीन करते हैं।”²⁰²

(राम मेश्राम)

*** *** *** ***

“कहीं दफ़्तर से दफ़्तर तक, कहीं टेबिल से टेबिल तक

इसी भटकाव में दम तोड़ती हैं अर्जियाँ अक्सर।”²⁰³ (महेश अग्रवाल)

*** *** *** ***

“अजी पर अर्जी भेजी, दफ़्तर दफ़्तर घूमें

समाधान पर नहीं एक भी उत्तर बहुत मिले।”²⁰⁴ (किशन तिवारी)

3.12 न्यायिक व्यवस्था का युगीन यथार्थ

भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था के तीन प्रमुख अंग हैं-विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका। विधायिका कानून बनाती है और कार्यपालिका उनको क्रियान्वित करती है। ये दोनों अन्योन्याश्रित हैं। जबकि न्यायपालिका इन दोनों अंगों के हस्तक्षेप से मुक्त न केवल स्वतंत्र अंग है, अपितु दोनों अंगों के कार्यों का विधि के शासन की दृष्टि से पर्यवेक्षण करती है। और असंवैधानिक कृत्यों की स्थिति में प्रसंगज्ञान लेती है। यह संविधान की मूल आत्मा के अनुरूप विधि के शासन की सर्वोपरिता को सुरक्षित रखने के महनीय दायित्व का निर्वहन करती है। इसलिए इसे संविधान व लोकतंत्र का प्रहरी भी कहा जाता है।

लोकतांत्रिक मूल्यों के विघटन के दौर में न केवल विधायिका व कार्यपालिका के मूल्यों का अवमूल्यन हुआ है, बल्कि भ्रष्टाचार ने न्यायपालिका के स्वास्थ्य को भी संदूषित किया है। दबंग एवं धनी आपराधिक लोग अदालत में अपना भेष बदलकर धन या रिश्वत को हथियार बनाते हैं। और वकीलों-न्यायाधीशों को मोटी रकम देकर न्याय को खरीदते हैं। घूस के बल पर अपराधी या गवाह बदल दिए जाते हैं। और वास्तविक अपराधी सरेआम सीना चौड़ा करके घूमते हैं। घूस के कारण सत्य परेशान ही नहीं, बल्कि सबूतों की आड़ में कभी-कभी पराजित होने लगा है, न्याय बिकने लगा है। हिंदी गज़लकार लिखते हैं-

“मुंसिफ़ से मिल कर मुजरिम ने बेच दिया न्यायालय को

किसने, किसका कत्ल किया है इस गूंगे खंज़र से पूछ।”²⁰⁵ (माधव कौशिक)

*** *** *** ***

“करो जो जी में आये कौन किसको रोकता है

बड़े आराम से वो क़त्ल करके घूमता है।

बदल देगा वो सारा फैसला ही देखना कल

डरो बिल्कुल नहीं जज भी तो पैसा सूँघता है।”²⁰⁶ (डी. एम. मिश्र)

*** *** *** ***

“देने वाले न्याय स्वयं बिक जाते हैं

दुरभिसंधि का ऐसा करतब होता है।”²⁰⁷(महेश कटारे सुगम)

भारत में अंग्रेजों द्वारा स्थापित न्याय व्यवस्था पर अंग्रेजीयत का प्रभाव आज भी कायम है। न्यायपालिका की भाषा तथा न्यायालयों में होने वाली बहस से लेकर फैसले तक हर जगह अंग्रेजीयत की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों की कार्यप्रणाली में अंग्रेजी भाषा का ही वर्चस्व है, जो न तो न्यायाधीशों, न वकीलों और न ही मुवक्किलों की मातृभाषा है। न्यायालयों की भाषा अंग्रेजी होने के कारण वादी-प्रतिवादी पूरी तरह से अपने वकीलों पर निर्भर होते हैं तथा उन्हें यह भी पता नहीं होता है कि उनके वकील के द्वारा उनके पक्ष में क्या दलीलें दी जा रही हैं और क्या नहीं? अंग्रेजी भाषा में कार्यवाही का असर है कि वादी और प्रतिवादी को मुकदमे के फैसले में मिली हार या जीत का पता भी वकील से चलता है। भाषागत विडंबना के कारण न्याय के मंदिर में भी लोगों के साथ न्याय होता नहीं दिखता है। रामकुमार कृषक इस विडंबना के बारे में लिखते हैं-

“ऊँची कुर्सी काला चोगा यही कचहरी है

कोलाहल दीवारों जैसा चुप्पी गहरी है।

चश्मा-टाई-कोट बगल में कुछ अंधी आँखें

जिरह करेंगी देहातों से भाषा शहरी है।”²⁰⁸ (रामकुमार कृषक)

भारतीय न्याय प्रक्रिया इतनी जटिल है कि अदालतों में किसी एक मामले पर सालों तक बहस होती रहती हैं। अधिवक्ताओं द्वारा निजी स्वार्थों के चलते जानबूझकर तरह-तरह की दलीलें देकर मामलों को बार-बार स्थगित करवाने का प्रयास किया जाता है। अदालतों में मामलों की सुनवाई के नाम पर हर बार वादी और प्रतिवादी अथवा उनके अधिवक्ताओं के बीच अनिर्णीत बहस होकर रह जाती है और न्यायार्थी को हर बार न्याय के नाम पर एक नयी तारीख मिल जाती है। जिससे लगता है कि तारीख पे तारीख, तारीख पे तारीख, तारीख पे तारीख वाला फिल्मी संवाद भारतीय न्यायालयों की फैसले के नाम पर तारीखप्रदायी कार्यप्रणाली के लिए शतांश सत्य है। हिंदी गज़लकार न्यायतंत्र की इस खामी पर कहते हैं-

“तारीखों पर तारीखें फिर तारीखों पर तारीखें

बँटा हुआ है सारा जीवन हर अगली सुनवाई तक।”²⁰⁹

(वशिष्ठ अनूप)

*** *** *** ***

“उस अदालत में भी देखा फैसले के नाम पर

सिर्फ होने की दलीलें थी हुआ कुछ भी नहीं।”²¹⁰

(विनय मिश्र)

“कहाँ इंसफ माँगे, मुद्दतों से है ज़िरह जारी
 किसी को यह नहीं मालूम है कब फैसला होगा।”²¹¹ (महेश अग्रवाल)

*** **

“कोर्ट में वादी व प्रतिवादी बहस के बीच,
 न्याय होता है बहुत घायल विवादों में।”²¹² (जहीर कुरेशी)

भारतीय न्यायिक प्रक्रिया इतनी समयखाऊ एवं विलंबकारी है कि एक बार अदालत में चले जाने के बाद मामला सालों या जीवन भर तक अटका रहता है। न्यायालयों में न्यायाधीशों की कमी, मामलों की अधिकता एवं अन्य कारणों से कई बार न्यायार्थी की पूरी जिंदगी अदालतों के चक्कर काटने में गुजर जाती है, फिर भी न्याय नहीं मिल पाता है। कई बार फैसला इतनी देरी से आता है कि वादी या प्रतिवादी की मौत तक हो जाती है। मामलों का सालों तक विलंबित रहना पीड़ितों और ऐसे व्यक्तियों के लिए जो जेल में कैद है, किंतु जिन पर अपराधसिद्ध नहीं हुआ है, दोनों की दृष्टि से अन्यायपूर्ण है। देरी से न्याय मिलना न्याय के सिद्धांत के विपरीत एवं एक तरह से अन्याय ही है। इसका एक कारण है कि भारत में न्यायिक प्रक्रिया की अधिकतम समय सीमा तय नहीं है। जबकि अमेरिका में यह अधिकतम तीन वर्ष है। न्यायालयों की इस विलंबकारी कार्यप्रणाली को देखते हुए कहा जाता है कि कई बार दादा कोर्ट में जाता है और फैसला पोता सुनता है। गज़लकार न्यायालयों की विलंबकारी कार्यप्रणाली के सच को उजागर करते हुए करते हैं -

“अगर अदालत पहुंच गया तो
 जीवन भर चक्कर होता है।”²¹³ (किशन तिवारी)

*** **

“मुक़दमा पीढियों से चल रहा अब भी अदालत में
 भरोसा न्याय पर अपना सभी फिर भी जताते हैं।”²¹⁴ (महेश कटारे सुगम)

*** **

“देर से इंसफ का है फायदा कुछ भी नहीं
 आप कहते हैं अदालत की खता कुछ भी नहीं।”²¹⁵ (विनय मिश्र)

भारतीय न्याय प्रणाली की एक बड़ी खामी है कि यह बहुत महंगी व धनखाऊ प्रक्रिया है। इतनी महंगी कि न्याय के द्वार गरीबों की पहुँच से परे हो रहे हैं। जिससे गरीब आम आदमी के लिए न्याय मृग मरीचिका बन गया है। पूर्व मुख्य न्यायाधीश एन. वी. रमण ने महंगी न्यायिक प्रक्रिया की बात को स्वीकारते हुए कहा था कि

गरीबों के लिए न्याय के रास्ते करीब-करीब बंद हो चुके हैं। न्याय की चाहत में न्यायालयों का दरवाजा खटखटाने वाले निर्दोष गरीब आम आदमी को अच्छे वकीलों की फीस नहीं जुटा पाने के कारण न्याय नहीं मिल पाता है। वहीं गुनाहगार अमीर लोग भी महँगे वकीलों की फौज से एवं गवाहों को प्रलोभन या दबाव से प्रभावित कर न्याय को धत्ता बताते हुए बरी हो जाते हैं। ऐसे में न्याय माँगने वाले निर्दोष सच्चे गरीबों के लिए अपनी बेगुनाही साबित करना टेढ़ी खीर हो जाता है तथा निर्दोष व सच्चा होना भी उनके लिए सजा का कारण बन जाता है। बेगुनाह को सजा होने से बड़ा अन्याय कोई हो नहीं सकता। भारतीय कारा सांख्यिकी के 2019 के आँकड़ों के अनुसार जेलों में बंद कैदियों में से 60.9 प्रतिशत विचाराधीन कैदी है। जिन्हें अनुचित दोष सिद्धि या झूठे साक्ष्यों के आधार पर जेलों में डाल दिया गया है। तथा जो धनाभाव या अन्य कारणों से अपनी बेगुनाही साबित नहीं कर सके। न्यायालयों द्वारा ऐसे निर्दोष कैदियों को छोड़े जाने के कई उदाहरण हैं। हिंदी गज़लकार लिखते हैं-

“फरियाद बिना डर के, इंसान बिना पैसा

रहने दो कचहरी है, इजलास की बातें हैं।”²¹⁶ (देवेन्द्र आर्य)

*** *** *** ***

“कुचले और बरी हो जाये

दौलत सलमानी की जय हो।”²¹⁷ (महेश कटारे सुगम)

*** *** *** ***

“अपना गुनाह आप तलाशा तो पा लिया

हम क्यों हैं बेगुनाह यही तो गुनाह है।”²¹⁸ (रामकुमार कृषक)

*** *** *** ***

“किसी साज़िश की साज़िश में कहीं शामिल नहीं होता

सज़ा-ए-मौत मिलती है जिसे, क़ातिल नहीं होता।”²¹⁹ (माधव कौशिक)

संविधान की रक्षक न्यायपालिका ही करोड़ों नागरिकों के लिए आखिरी उम्मीद संस्थान है। देश के पचहत्तर वर्षों के लोकतांत्रिक इतिहास पर नजर डालें तो कह सकते हैं कि न्यायपालिका ने लोकतंत्र, संविधान एवं नागरिक अधिकारों की रक्षा करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। लेकिन सामयिक दौर में न्यायाधीशों की नियुक्ति व न्यायप्रणाली में सत्ता की बढ़ती दखलंदाजी, न्यायाधीशों की कमी, केसों की बढ़ती संख्या, न्यायपालिका में जवाबदेही के अभाव, भ्रष्टाचार एवं न्यायिक

प्रक्रिया के महुँगी होने के कारण न्यायपालिका के मूल्यों, निष्पक्षता व पारदर्शिता में गिरावट आई है। जिसमें सुधार की जरूरत है।

3.13 मीडिया जगत का सामयिक सच

लोकतंत्र में विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के क्रियाकलापों पर निगरानी रखने, उनकी हकीकत से आमजन को रुबरु करवाने एवं उनकी जवाबदेही सुनिश्चित करने हेतु जनजागरणकर्ता की भूमिका निभाने वाले मीडिया को प्रजातंत्र का चतुर्थ स्तम्भ माना जाता है। सुदृढ़ लोकतंत्र में इन चारों अंगों का ईमानदारी से कर्तव्य निर्वहन जरूरी है। लेकिन समकाल में लोकतंत्र के अन्य अवयवों के साथ उसके रक्षक अंग मीडिया में भी विकृतियाँ आने लगी है। मीडिया को आज देश व लोकतंत्र से ज्यादा अपनी लोकप्रियता व लक्ष्मी की चिंता है। धन व सत्ता के लालच एवं भय से प्रभावित समझौतावादी सिद्धांतविहीन मीडिया लोकतंत्र का प्रहरी होने की योग्यता खोता जा रहा है। वशिष्ठ अनूप कहते हैं-

“सच का छूटा साथ, अर्थ धुंधलाये सारे शब्दों के,
चौथे पाये के रखवाले, बिके चंद उपहारों में।”²²⁰ (वशिष्ठ अनूप)

*** *** *** ***

“अखबार तो तोपों के मुकाबिल हुआ करते
ये कैसा डर है किसलिए सब सह रहे हैं आप
स्तंभ लोकतंत्र का दम तोड़ रहा है

किस तरह ये सब देख के चुप रह रहे हैं आप।”²²¹ (वशिष्ठ अनूप)

मीडिया के निष्पक्षता, निर्भीकता, सत्यता, सटीकता, स्वतंत्रता आदि कुछ सिद्धांत होते हैं। स्वतंत्रता संग्राम के दौर में तथा स्वातंत्र्योत्तर प्रारम्भिक वर्षों में मीडिया ने इन सभी मूल्यों का पालन करते हुए सत्ता पर प्रभावी नियंत्रण व जनहित के प्रति प्रतिबद्धता से अपनी सकारात्मक भूमिका अदा की है। परन्तु समय के साथ मीडिया, पत्रकारिता के मूल्यों एवं सिद्धांतों से दूर होता गया तथा लालच, भय, द्वेष, बाज़ार एवं राजनैतिक कुचक्र के जाल में फँसकर अनेक विसंगतियों का शिकार होता गया। निहित स्वार्थों के चलते अपने समय और समाज के प्रश्नों एवं जनहित के मुद्दों की उपेक्षा, संवेदनशील मुद्दों को अतिशयोक्तिपूर्ण ढंग से पेश कर नकारात्मक माहौल तैयार करना, सुख सुविधाओं में बिककर झूठ को सत्य या अर्द्धसत्य के रूप में पेश करना, पूँजीपतियों का वरदहस्त हो उनका महिमामंडन करना, लालच एवं भय से सत्ता की चापलूसी करना, खबरों को मसालेदार बनाकर प्रस्तुत करना तथा जीवन

मूल्यां से संबंधित खबरों को नजरअंदाज करना आदि आज मीडिया के नकारात्मक कार्यलक्षण बन गये हैं। हिंदी ग़ज़लगो राम मेश्राम कहते हैं-

“वक्त की चुनौती से कटा हुआ मीडिया / सत्ता के क़दमों में बिछा हुआ मीडिया।
सेठों की मेहर पर टिका हुआ मीडिया / डालर के भोंपू का 'हुआ-हुआ' मीडिया
अपने ही कथनों में बुरी तरह ग्रस्त पस्त/कहाँ गया जनहित से चुका हुआ मीडिया
मनचाहे सर्वे को हरदम उपलब्ध है / जनता को ठगने पर तुला हुआ मीडिया
नेता के खून सने तलवों को चाटता / साधन-सुविधाओं में बिका हुआ मीडिया
सेठ की वकालत में दे रहा दलीलें सौ/दलदल में गले-गले धँसा हुआ मीडिया।”²²²

मीडिया जनहित के मुद्दों को उठाने एवं जनजागरूकता का सशक्त माध्यम है, किन्तु सामयिक मीडिया की चर्चा के केंद्र में समस्याग्रस्त आमजन की जगह सेलिब्रिटीज है। यह समाज के अभावग्रस्त लोगों या वर्गों की पीड़ा-कठिनाइयों को आवाज देने से ज्यादा राजनेताओं एवं फिल्मी सितारों को प्रसिद्धि व पॉपुलैरिटी देने में लगा है। समाज में व्याप्त बेरोजगारी, गरीबी जैसी समस्याओं, जीवन की मूलभूत ज़रूरतों एवं आधारभूत सुविधाओं पर चिंता व चिंतन के बजाय सेलिब्रेटीज के खान-पान, पोशाक, पसंद-नापसंद इसकी खबरों के केंद्र में हैं। मीडिया की स्क्रीन पर आम आदमी की बेरंग ज़िंदगी की जगह वी.आई.पी. लोगों की रंगीन दुनिया की सम्मोहक खबरें ही ज्यादा जगह पाती हैं। हिंदी शायर कहते हैं-

“हो रही गुमनाम मौतें जिक्र तक जिनका नहीं

छप गई मुखपृष्ठ पर जो इक सियासी छींक है।”²²³ (महेश कटारे सुगम)

*** *** *** ***

“ऐसे लोगों की सूची में हम तो नहीं

जो, शयन कक्ष में भी 'खबर' हो गए।”²²⁴

(जहीर कुरेशी)

“होरी की चीखें टकराई जाकर चाँद सितारों तक,

लेकिन उसकी खबर न पहुँची शहरों के अखबारों तक।”²²⁵ (माधव कौशिक)

सामयिक मीडिया जगत में संवेदनशून्यता का तेजी से प्रसार हो रहा है। जिसे प्रसिद्ध हिंदी कवि रघुवीर सहाय ने भी अपनी 'कैमरे में बंद अपाहिज' कविता में उद्घाटित किया है। मीडिया चैनलों में अपनी टी.आर.पी बढ़ाने की होड़ मची हुई है और इस होड़ में मीडियाकर्मी दिल से नहीं, बल्कि दिमाग से खबरों को घटनाओं के रूप में पेश कर रहे हैं। उन्हें खबर के केन्द्रस्थ लोगों के दुख-दर्द से कहीं अधिक अपनी प्रसिद्धि व लोकप्रियता की चिंता है। मीडिया के व्यवसायीकरण के कारण स्टोर

रूम में हार्दिक रूप से भावशून्य मीडियाकर्मी पीड़ित आम आदमी के दुख-दर्द को अपने मुनाफे एवं चैनल की लोकप्रियता बढ़ाने का माध्यम बनाने लगे हैं। हिंदी गज़लकार कहते हैं-

“टी आर पी दरों को बढ़ाने की बात की
दिल से नहीं, दिमाग से गाने की बात की।”²²⁶ (जहीर कुरेशी)

*** **

“पेश करते हैं दुख को शगल की तरह
चैनलों को न जाने ये क्या हो गया।”²²⁷ (विनय मिश्र)

मीडिया का एक दायित्व आमजन को देश-दुनिया के हालात से परिचित करवाने के साथ त्याग, बलिदान, सेवा, ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठा जैसे मानवीय मूल्यों की प्रेरक घटनाओं को उजागर कर समाज में सद्प्रवृत्तियों का संवर्धन करना है। लेकिन आज के मीडिया में मूल्यों से संबंधित खबरें हाशिए पर है। तथा अपराध, लूट, डकैती, हत्या, चोरी, दंगों जैसी अमानवीय घटनाओं की खबरें मुख्य धारा में है। ऐसी बुरी खबरों की बहुलता को देखकर लगता है कि आज मीडिया का काम भय और नफरत फैलाना रह गया है। शायर कहते हैं-

“लूट, हत्या, हादसे, धोखाधड़ी, दंगे, ठगी
बस यही होंगी सुबह अखबार वाली सुर्खियाँ।”²²⁸ (महेश अग्रवाल)

*** **

“चिन्ता दहशत गुस्सा चुप्पी बेचैनी
मुस्कानें देनेवाला अखबार कहाँ।”²²⁹ (विनय मिश्र)

*** **

“तस्कर का चित्र बीच में, गाँधी जी किनारे
ये कौन सा सन्देश है, क्या कह रहे हैं आप।”²³⁰ (वशिष्ठ अनूप)

पूँजीवाद व बाज़ारवाद के इस दौर में मीडिया का भी तेजी से व्यावसायीकरण एवं बाज़ारीकरण हो रहा है। आज़ादी से पहले सिद्धांतवादी भारतीय पत्रकारिता के सामने सबसे बड़ी चुनौती आर्थिक संकट की थी। वहीं आज के समझौतावादी मीडिया घरानों का मुनाफा या टर्न ओवर करोड़ों में है। आज मीडिया की प्रतिबद्धता सिद्धांतों एवं लक्ष्यों के प्रति न होकर लक्ष्मी के प्रति हो गई है। मीडिया घराने खबरों को बेचने के मॉल बन गए हैं और मीडियाकर्मी खबरों के सेल्समैन। सभी मीडिया चैनलों की चिन्ता खबरों को अधिक मुनाफे में बेचने की है। अब पत्रकारिता प्रोफेशनल मिशन बन

गया है। और इस व्यावसायिकता के दबाव में समाचार विज्ञापनी हो गये हैं तथा अखबार विज्ञापन पत्र। इससे प्रिंट मीडिया की गुणवत्ता घट रही है। हिंदी ग़ज़लकार मीडिया के व्यावसायीकरण पर लिखते हैं-

“लालची हो गये अखबार के मालिक सारे / धन के गठजोड़ की तैयारियों को देखा है।
चौथा स्तंभ भले नाम दे दिया इनको / सब ने इनकी छुपी गद्दारियों को देखा है।”²³¹

(महेश कटारे सुगम)

“जो चांदी की जूती खाकर चुप रहते
अब उनको अखबार लिख दिया है मैंने।”²³² (महेश कटारे सुगम)

*** *** *** ***

“इशितहारों की चमक में खो गईं सच्चाईयाँ
है मुनाफे का सबब अखबार के चारों तरफ़।”²³³ (महेश कटारे सुगम)

*** *** *** ***

“सोचता हूँ कुछ नया अखबार में आये
हर सुबह लेकिन वही बाज़ार कायम है।”²³⁴ (विनय मिश्र)

आज के मीडिया की एक बड़ी विकृति चुनावों के दौरान पेड न्यूज़ (भुगतान प्रेरित प्रायोजित समाचार) की बहुलता से संबंधित है। जिसके अंतर्गत मीडिया घराने किसी राजनीतिक दल या उम्मीदवार से नकदी या उपहार लेकर उसके अनुकूल खबरों को प्रकाशित कर तथा प्रतिकूल खबरों को दबाकर उसकी सार्वजनिक छवि को बेहतर बनाने के लिए उसके पक्ष में सकारात्मक प्रचार-प्रसार करते हैं। चुनावों में मीडिया चैनल किसी घटनाक्रम को इस तरह प्रस्तुत करते हैं। जिससे मीडिया के यार मित्र दलों या उम्मीदवारों को लाभ तथा उनके विरोधियों को नुकसान हो। अर्थ के लिए मीडिया का सिद्धांतों से समझौता उसकी लोकतंत्र के प्रहरी की भूमिका को कलंकित करने वाला है। हिंदी ग़ज़लकार कहते हैं-

“ये चुनावी समय है-समझ लीजिए,
पेड' खबरें ही छपती हैं अखबार में।”²³⁵ (जहीर कुरेशी)

*** *** *** ***

“बिजली पानी इलाज और तालीम
छोड़िए, आ गयी है पेड खबर।”²³⁶ (देवेन्द्र आर्य)

*** *** *** ***

“ये 'पेड न्यूज़' के किस्से, उदास करते हैं।

प्रजातंत्र के खंभे, उदास करते हैं।²³⁷ (जहीर कुरेशी)

राजनीति और पूँजी के गठजोड़ ने मीडिया घरानों को भी खरीद लिया है और ऐसे क्रीत मीडिया घराने सत्ता के सिंहासन तक पहुँचने में सहायक सीढ़ी तंत्र तथा सत्ता के गुणगान व प्रचार-प्रसार के चारणी-विज्ञापनी केन्द्र बनकर रह गये हैं। सच और झूठ से पूरी तरह वाकिफ होते हुए भी सत्ता का मित्र मीडिया उतना ही सच बोलता है, जितना सत्ता चाहती है। और एक तरह से सत्ता के बयानों को अपने शब्दों में बोलकर सत्ता का तोता मीडिया सत्ता के प्रति अपनी निष्ठा सिद्ध करने में लगा रहता है। मीडिया चैनलों की भाषा सत्ता की भाषा लगती है। जिससे लगता है कि जैसे सत्ता का गुणगान ही आज मीडिया की गुणवत्ता का मानक हो गया है। ऐसे गोदी मीडिया के बारे में हिंदी गज़लकार लिखते हैं -

“गोदी’ चैनल की तरह, हैं ‘गोदी’ अखबार,
भूल रहे अखबार ही, अखबारों का काम।”²³⁸ (जहीर कुरेशी)

*** *** *** ***

“चारणी सत्ता की, विज्ञापन की है रंगीनियाँ
सच कहाँ तुमको मिलेगा आज के अखबार में।”²³⁹(वशिष्ठ अनूप)

*** *** *** ***

“सत्ता की दासी लगती है
टी.वी. और अखबार की भाषा।”²⁴⁰ (महेश कटारे सुगम)

मीडिया की तमाम नकारात्मक भूमिकाओं के बावजूद यह भी सच है कि देश-दुनिया के हालात, आमजन की समस्याओं और पीड़ाओं को जानने-समझने का माध्यम मीडिया ही है। देश दुनिया के किसी भी कोने में होने वाले जुर्म, अत्याचार व बदहाली की घटनाएँ या खबरें मीडिया के माध्यम से ही उजागर होती है। गज़लकार शिवओम अम्बर अखबार के आईने में सत्ता के प्रति आक्रोश की अग्नि को सुलगते हुए देखते हैं-

पल रही है झोंपड़ी की कोख में लपटें
कह रही है हर सुबह अखबार की भाषा।²⁴¹ (शिव ओम अंबर)

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि यदि मीडिया नकारात्मकता को छोड़कर पूँजी, बाज़ार और राजनीति से प्रभावित हुए बगैर सिद्धांतों के साथ अपने दायित्वों का निर्वहन करें, तो वह लोकतंत्र के सच्चे प्रहरी होने की अपनी भूमिका को सत्य सिद्ध कर सकता है।

3.14 राजनीतिक व्यवस्था के प्रति प्रतिरोध का स्वर

समकालीन राजनीति लोकतांत्रिक मूल्यों के पतन के कारण अनेक विसंगतियों, विडंबनाओं एवं विकृतियों से ग्रस्त हो गई है। सत्ता और स्वार्थ की राजनीति के कारण शासक व शासित के बीच विषमता की गहरी खाई पैदा हो गई है। जनता के साथ उसके द्वारा निर्वाचित जनप्रतिनिधि ही चुनावों के बाद बेगानों सा व्यवहार करते हैं। वर्तमान की इस अव्यवस्था में बदलाव की कोई उम्मीद नहीं है। और ऐसे में जनता के पास सत्ता के प्रतिरोध का ही एकमात्र रास्ता बचता है। जिसकी अनिवार्यता को लेकर ग़ज़लकार कहते हैं-

“हमारा देश है हम सब वतन में एक जैसे हैं
करें अपने जो दुर्व्यवहार तो जनता कहाँ जाये?
पराये तो पराये हैं यहाँ अपने भी बेगाने
मिले गर हर तरफ इन्कार तो जनता कहाँ जाये?”²⁴² (डी. एम. मिश्र)

*** *** *** ***

“जनता के पास एक ही चारा है बगावत।
यह बात कह रहा हूँ मैं होशोहवास में।”²⁴³ (अदम गोंडवी)

हिंदी ग़ज़लकार वर्तमान की विद्रूप व्यवस्था का पूर्णतः विरोधी हैं। “समकालीन कवि वर्तमान व्यवस्था का पूर्णतः विरोधी है। इस व्यवस्था ने उसे सिद्धांत और आदर्श तो दिए हैं, पर वे स्वयं उस पर नहीं चल रहे हैं, जो इसके निर्माता हैं। वे आश्वासन और झूठे वादों के सहारे किसी तरह से भारतीय लोकतंत्र की गाड़ी खींचते जा रहे हैं। आज अधिक संख्या में लोगो के पास न रोटी का जुगाड़ है और न रात की निश्चिंत नींद। ऐसी विषम परिस्थिति में जिम्मेदार लोग देश में आज भी अव्यवस्था मानने से इन्कार करते हैं।”²⁴⁴ ग़ज़लकार मानते हैं कि देश का आम जन राजनीतिक नेतृत्व की इन चालबाज़ियों से वाकिफ़ हो गया है और वह अपने हक़ों की प्राप्ति के लिए ऐसे स्वार्थी राजनीतिक वर्ग के कृत्यों का हिसाब करने के लिए उद्यत है। शायर जनता के हक़ों की माँग व सत्ता के प्रतिरोध की आवाज़ को उठाते हुए जनता की ओर से सत्ताधीशों को उनकी औकात का एहसास कराते हैं-

“हमको अपना उजियारा दो अंधियारा मंजूर नहीं
सदियों से बंदी हम जिसमें वो कारा मंजूर नहीं।
दूर भगाओ खुदगर्ज़ी को, जनहित केवल काम करे
सत्ता हो अब सिर्फ़ हमारी, हरकारा मंजूर नहीं।”²⁴⁵ (हरेराम समीप)

“तंग आ चुके हैं अब तो तुमसे तमाशबीनो
तय है कि अब तुम्हारा पक्का हिसाब होगा।”²⁴⁶ (हरेराम समीप)

*** *** *** ***

“उठाते हैं जिसे उसको गिराने की भी ताकत है
जरा-सी बात पर अपनी सियासत क्यों ख़फ़ा निकले।”²⁴⁷ (विनय मिश्र)

समकालीन राजनीतिक व्यवस्था जड़ एवं भ्रष्ट हो गई है। तथा अनेक विकृतियों से ग्रस्त हो गयी है, जिसमें सुधार की अत्यंत जरूरत है। लेकिन इस व्यवस्था में स्वतः सुधार संभव नहीं है, क्योंकि वर्तमान राजनीतिक नेतृत्व निरंतर पतन की ओर गतिशील है। और ऐसे में व्यवस्था परिवर्तन के लिए जन क्रांति की आवश्यकता है। इसलिए हिंदी ग़ज़लकार समकालीन यथास्थितिवाद में परिवर्तन के लिए जनता में क्रांति चेतना जाग्रत करते हैं। वे चाहते हैं कि जनता सत्ता के आश्वासनों पर रहने के बजाय सत्ता के प्रतिरोध में खड़ी हो और सशस्त्र क्रांति की भाषा में बातें करें। साहित्यिक-बौद्धिक जागृति के फलस्वरूप जनता भी धीरे-धीरे क्रांति की भाषा सीख रही है और सत्ता के प्रतिरोध में खड़ी हो रही है।

“सड़ गये हैं फूल सारे इनको बदलो अब 'समीप'
आ रही दुर्गन्ध इस जनतंत्र के गुलदान से।”²⁴⁸ (हरेराम समीप)

*** *** *** ***

“नीलोफर शबनम नहीं अंगार की बातें करो
वक़्त के बदले हुए मेओर की बातें करो।
भाप बन सकती नहीं पानी अगर हो नीम गर्म
क्रान्ति लाने के लिए हथियार की बातें करो।”²⁴⁹ (अदम गोंडवी)

*** *** *** ***

“धीरे धीरे सीख रही है
जनता भी हुंकार की भाषा।”²⁵⁰ (महेश कटारे सुगम)

जब जन क्रांति व्यापक व हिंसक हो जाती है, तो सत्ता की शक्तिशाली दीवारें भी उसे रोक नहीं पाती हैं। और ऐसी जन क्रांति का परिणाम व्यवस्था में आमूलचूल बदलाव के रूप में होता है। सत्ताधीशों के सिंहासन उलट जाते हैं और उनके गगनचुंबी महल रेत की दीवार की तरह जमींदोज हो जाते हैं। सत्ताधीश कितने ही ताकतवर व तानाशाही क्यों न हो, जन आक्रोश की धारा में बह जाते हैं। शायर दंभी सत्ता को चुनौती देते हुए कहते हैं-

“ये महल जो गगन चूमते इस समय/रेत के घर के मानिन्द ढह जाएँगे।
चाहे हिटलर हलाकू या चंगेज हो/सब जनाक्रोश-धारा में बह जाएँगे।”²⁵¹

(वशिष्ठ अनूप)

“समय भी तख्त से उस दिन उतार देगा तुम्हें

उतरके आ गया जिस दिन अवाम सड़कों पर।”²⁵²

(माधव कौशिक)

जनक्रांति की इस ताकत पर हिंदी ग़ज़लकार को विश्वास है कि जुल्मी सत्ता का सिंहासन जनक्रांति से एक न एक दिन ढहेगा। और ऐसी समतावादी व्यवस्था स्थापित होगी जब सबको समान न्याय व अधिकार मिलेंगे। ग़ज़लकार किशन तिवारी कहते हैं-

“एक दिन सबको मिलेगा न्याय दुनिया में

एक दिन जनता स्वयं बन जायेगी जूरी।”²⁵³ (किशन तिवारी)

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि इक्कीसवीं सदी की हिंदी ग़ज़ल समकालीन राजनीतिक-लोकतांत्रिक परिदृश्य का एक सशक्त दर्पण है। जिसमें वर्तमान राजनीति-लोकतंत्र की तमाम कटु सच्चाइयाँ राजनीतिक नेतृत्व का अपराधीकरण, उसकी सामंती विलासिता, भ्रष्टाचार, विकास का विज्ञापनी शोर, धर्म व पूँजी के साथ गठजोड़ कर कुर्सी की राजनीति, जाति-धर्म-धनबल-भुजबल एवं तरह-तरह के चुनावी षडयंत्रों के सहारे चुनावी विजय, सत्ता के लिए दलबदल व अवसरवादिता, नौकरशाही में व्याप्त भ्रष्टाचार व लालफीताशाही तथा न्यायिक तंत्र व मीडिया जगत की विसंगतियाँ आदि सभी स्पष्टतः अंकित हैं। राजनीति के लक्ष्यभ्रष्ट स्वरूप के प्रति विद्रोह का स्वर भी समकालीन हिंदी ग़ज़ल में प्रखर रूप में मुखरित हुआ है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि इक्कीसवीं सदी की हिंदी ग़ज़ल समकालीन राजनीतिक-लोकतांत्रिक व्यवस्था का डिजिटल एक्स-रे चित्र है, जिसमें व्यवस्था के सभी अंगों की समस्त सच्चाइयाँ एवं विकार स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होते हैं। यह समकालीन राजनीति का अल्ट्रासोनिक शब्द चित्र खींच कर उसकी प्रच्छन्न विकृतियों का निदान करती है तथा उन विकृतियों की चिकित्सा के लिए जन चेतना की औषधि और उससे आगे बढ़कर जन क्रांति की शल्य चिकित्सा के लिए आवश्यक भावभूमि तैयार करती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सं. रवीन्द्रनाथ मिश्र, 21वीं सदी का हिंदी साहित्य; समय, समाज और संवेदना, पृ.सं. 36
2. डॉ. मधु खराटे, साठोत्तरी हिंदी गज़ल, पृ.सं. 101
3. जहीर कुरेशी, बोलता है बीज भी, पृ.सं. 74
4. महेश कटारे सुगम, सारी खींचतान में फरेब ही फरेब है, पृ.सं. 94
5. डी. एम. मिश्र, आईना-दर-आईना, पृ.सं. 37
6. सं. जहीर कुरेशी, सादगी का सौंदर्य ; वशिष्ठ अनूप का सृजन, पृ.सं. 142
7. हेतु भारद्वाज, साहित्य और संस्कृति, पृ.सं. 32
8. महेश अग्रवाल, पेड़ फिर हरा होगा, पृ.सं. 26
9. शिव ओम अम्बर, विष पीना विस्मय मत करना, पृ.सं. 41
10. हरेराम समीप, हरेराम समीप चयनित गज़लें, पृ.सं. 19
11. वशिष्ठ अनूप, मशालें फिर जलाने का समय है, पृ.सं. 74
12. महेश कटारे सुगम, लाहौल वला कुव्वत, पृ.सं. 20
13. किशन तिवारी, धूप का रास्ता, पृ.सं. 96
14. देवेंद्र आर्य, उमस, पृ.सं. 12
15. वशिष्ठ अनूप, रोशनी की कौपलें पृ.सं. 28
16. हरेराम समीप, यह नदी खामोश है, पृ.सं. 61
17. हरिशंकर परसाई, विकलांग श्रद्धा का दौर, कैफियत की भूमिका से
18. महेश कटारे सुगम, प्यार के साये पृ.सं. 115
19. महेश कटारे सुगम, अभी इम्कान बाकी है, पृ.सं. 65
20. विनय मिश्र, तेरा होना तलाशू पृ.सं. 118
21. महेश कटारे सुगम, प्यार के साये, पृ.सं. 35
22. हरेराम समीप, यह नदी खामोश है, पृ.सं. 33
23. प्रेम कुमार, एक मस्त फकीर नीरज, पृ.सं. 129
24. अदम गौडवी, समय से मुठभेड़, पृ.सं. 31
25. वशिष्ठ अनूप, मशालें फिर जलाने का समय है, पृ.सं. 44
26. डी. एम. मिश्र, आईना दर आईना, पृ.सं. 19
27. रजनी कोठारी, पॉलिटिक्स इन इंडिया, पृ.सं. 57-58
28. महेश कटारे सुगम, अय हय हय, पृ.सं. 24

- 29.महेश कटारे सुगम, कुछ तो है, पृ.सं. 103
- 30.जहीर कुरेशी, निकला न दिग्विजय को सिकंदर, पृ.सं. 81
- 31.महेश अग्रवाल, अभी शेष है, पृ.सं. 61
- 32.महेश कटारे सुगम, अभी इम्कान बाकी है, पृ.सं. 77
- 33.अदम गोंडवी, समय से मुठभेड़, पृ.सं. 71
- 34.महेश कटारे सुगम, अय हय हय, पृ.सं. 24
- 35.वशिष्ठ अनूप, रोशनी खतरे में है, पृ.सं. 58
- 36.डॉ. रघुनाथ कश्यप, 'कुंअर बेचैन की गज़लों का चिंतन पक्ष, पृ.सं. 113
- 37.वशिष्ठ अनूप, मशालें फिर जलाने का समय है, पृ.सं. 95
- 38.वशिष्ठ अनूप, रोशनी खतरे में है, पृ.सं. 53
- 39.वही पृ.सं. 40
- 40.महेश कटारे सुगम, प्रतिरोधों के पर्व, पृ.सं. 76
- 41.देवेंद्र आर्य, मन कबीर, पृ.सं. 22
- 42.जहीर कुरेशी, जिंदगी से बड़ा जिंदगी का समर, पृ.सं. 25
- 43.महेश कटारे सुगम, शुक्रिया, पृ.सं. 31
- 44.महेश कटारे सुगम, अय हय हय, पृ.सं. 24
- 45.जहीर कुरेशी, निकला न दिग्विजय को सिकंदर, पृ.सं. 54
- 46.विनय मिश्र, लोग जिंदा है, पृ.सं. 63
- 47.जहीर कुरेशी, निकला न दिग्विजय को सिकंदर, पृ.सं. 96
- 48.महेश कटारे सुगम, शुक्रिया, पृ.सं. 90
- 49.तीर्थेश्वर सिंह, समकालीन हिंदी कविता में यथार्थवादी चेतना, पृ.सं. 49
- 50.जहीर कुरेशी, रास्तों से रास्ते निकले, पृ.सं. 17
- 51.महेश कटारे सुगम, अय हय हय, पृ.सं. 77
- 52.हरेराम समीप, यह नदी खामोश है, पृ.सं. 47
- 53.डी. एम. मिश्र, समकाल की आवाज, पृ.सं. 107
- 54.किशन तिवारी, सोचिए तो सही, पृ.सं. 61
- 55.वही पृ.सं. 44
- 56.सं. शैलेंद्र कुमार शैली, राग भोपाली पत्रिका, जुलाई 2016, पृ.सं. 18
- 57.देवेंद्र आर्य, जो पीवे नीर नैना का, पृ.सं. 79
- 58.महेश कटारे सुगम, सारी खींचतान में फरेब ही फरेब है, पृ.सं. 57

- 59.वशिष्ठ अनूप, छंद तेरी हंसी का, पृ.सं. 126
- 60.विनय मिश्र, सच और है, पृ.सं. 73
- 61.वशिष्ठ अनूप, बारूद के बिस्तर पर, पृ.सं. 47
- 62.जहीर कुरेशी, बोलता है बीज भी, पृ.सं. 14
- 63.वशिष्ठ अनूप, घरों पर गिद्ध मंडराने लगे हैं, पृ.सं. 20
- 64.महेश कटारे सुगम, अभी इम्कान बाकी है, पृ.सं. 20
- 65.देवेंद्र आर्य, जो पीवै नीर नैना का, पृ.सं. 19
- 66.महेश कटारे सुगम, कुछ तो है, पृ.सं. 65
- 67.डॉ. मधु खराटे, जहीर कुरेशी चुनिंदा गज़लें, पृ.सं. 113
- 68.अदम गोंडवी, समय से मुठभेड़, पृ.सं. 88
- 69.महेश अग्रवाल, अभी शेष है, पृ.सं. 90
- 70.जहीर कुरेशी, रास्तों से रास्ते निकले, पृ.सं. 23
- 71.वशिष्ठ अनूप, रोशनी खतरे में है, पृ.सं. 43
- 72.रूपा मंगलानी, भारतीय शासन एवं राजनीति, पृ.सं. 453
- 73.जहीर कुरेशी, जिंदगी से बड़ा जिंदगी का समर, पृ.सं. 62
- 74.महेश कटारे सुगम, कुछ तो है, पृ.सं. 91
- 75.जहीर कुरेशी, जिंदगी से बड़ा जिंदगी का समर, पृ.सं. 83
- 76.महेश कटारे सुगम, कुछ तो है, पृ.सं. 29
- 77.महेश कटारे सुगम, ख्वाब मेरे भटकते रहे, पृ.सं. 115
- 78.जहीर कुरेशी, बोलता है बीज भी, पृ.सं. 24
- 79.डी. एम. मिश्र, आईना दर आईना, पृ.सं. 38
- 80.ज्ञानप्रकाश विवेक, गुफ्तगू अवाम से है, पृ.सं. 12
- 81.जहीर कुरेशी, रास्तों से रास्ते निकले, पृ.सं. 102
- 82.डी. एम. मिश्र, रोशनी का कारवां, पृ.सं. 67
- 83.जहीर कुरेशी, बोलता है बीज भी, पृ.सं. 58
- 84.जहीर कुरेशी, निकला न दिग्विजय को सिकंदर, पृ.सं. 41
- 85.हरeram समीप, यह नदी खामोश है, पृ.सं. 27
- 86.जहीर कुरेशी, निकला न दिग्विजय को सिकंदर, पृ.सं. 74
- 87.रामकुमार कृषक, पढ़िए तो आंख पाइए पृ.सं. 169
- 88.जहीर कुरेशी, जिंदगी से बड़ा जिंदगी का समर, पृ.सं. 30

89. हरेराम समीप, यह नदी खामोश है, पृ.सं. 112
90. जहीर कुरेशी, बोलता है बीज भी, पृ.सं. 103
91. डॉ. मधु खराटे, साठोत्तरी हिंदी गज़ल, पृ.सं. 104
92. विनय मिश्र, तेरा होना तलाशूं, पृ.सं. 20
93. डी. एम. मिश्र, लेकिन सवाल टेढ़ा है, पृ.सं. 49
94. महेश कटारे सुगम, प्रतिरोधों के पर्व, पृ.सं. 16
95. महेश अग्रवाल, पेड़ फिर हरा होगा, पृ.सं. 40
96. अदम गोंडवी, समय से मुठभेड़, पृ.सं. 52
97. महेश कटारे सुगम, ख्वाब मेरे भटकते रहे, पृ.सं. 72
98. जहीर कुरेशी, बोलता है बीज भी, पृ.सं. 39,
99. विनय मिश्र, तेरा होना तलाशूं, पृ.सं. 28
100. सं. शैलेंद्र कुमार शैली, राग भोपाली पत्रिका, जुलाई 2016, पृ.सं. 27
101. हरेराम समीप, हरेराम समीप चयनित गज़लें, पृ.सं. 53
102. अदम गोंडवी, समय से मुठभेड़, पृ.सं. 37
103. महेश अग्रवाल, अभी शेष है, पृ.सं. 84
104. डी. एम. मिश्र, आईना दर आईना, पृ.सं. 37
105. शिव ओम अंबर, विष पीना विस्मय मत करना, पृ.सं. 10
106. महेश अग्रवाल, अभी शेष है, पृ.सं. 71
107. महेश कटारे सुगम, कुछ तो है, पृ.सं. 96
108. महेश कटारे सुगम, लाहौल वला कुव्वत, पृ.सं. 94
109. रामकुमार कृषक, पढ़िए तो आँख पाइए, पृ.सं. 31
110. विनय मिश्र, लोग जिंदा हैं, पृ.सं. 71
111. डॉ. मधु खराटे, जहीर कुरेशी चुनिंदा गज़लें पृ.सं. 105
112. जहीर कुरेशी, निकला न दिग्विजय को सिकंदर, पृ.सं. 33
113. अदम गोंडवी, समय से मुठभेड़, पृ.सं. 40
114. महेश कटारे सुगम, अय हय हय पृ.सं. 51
115. वही पृ.सं. 51
116. वशिष्ठ अनूप, घरों पर गिद्ध मंडराने लगे हैं, पृ.सं. 55
117. देवेंद्र आर्य, मन कबीर, पृ.सं. 48
118. देवेंद्र आर्य, उमस पृ.सं. 36

119. हरेराम समीप, यह नदी खामोश है, पृ.सं. 81
120. हरेराम समीप, यह नदी खामोश है, पृ.सं. 25
121. जहीर कुरेशी, जिंदगी से बड़ा जिंदगी का समर, पृ.सं. 29
122. वशिष्ठ अनूप, रोशनी खतरे में है, पृ.सं. 44
123. जहीर कुरेशी, रास्तों से रास्ते निकले, पृ.सं. 76
124. विनय मिश्र, तेरा होना तलाशूं, पृ.सं. 79
125. जहीर कुरेशी, बोलता है बीज भी, पृ.सं. 65
126. जहीर कुरेशी, जिंदगी से बड़ा जिंदगी का समर, पृ.सं. 66
127. अदम गोंडवी, समय से मुठभेड़, पृ.सं. 95
128. वशिष्ठ अनूप, रोशनी की कॉपलें, पृ.सं. 46
129. वशिष्ठ अनूप, बारूद के बिस्तर पर, पृ.सं. 42
- 130.** डॉ. मधु खराटे, साठोत्तरी हिंदी गज़ल, पृ.सं. 104
131. राम मेश्राम, आग में उड़ान, पृ.सं. 72
132. वशिष्ठ अनूप, मशालें फिर जलाने का समय है, पृ.सं. 33
133. जहीर कुरेशी, बोलता है बीज भी, पृ.सं. 108
134. जहीर कुरेशी, निकला न दिग्विजय को सिकंदर, पृ.सं. 45
135. डॉ. मधु खराटे, जहीर कुरेशी चुनिंदा गज़लें, पृ.सं. 94
136. वशिष्ठ अनूप, रोशनी की कॉपलें, पृ.सं. 42
137. डी. एम. मिश्र, आईना दर आईना, पृ.सं. 36
138. अदम गोंडवी, समय से मुठभेड़, पृ.सं. 40
139. महेश कटारे सुगम, अभी इम्कान बाकी है, पृ.सं. 64
140. सं. शैलेंद्र कुमार शैली, राग भोपाली पत्रिका, जुलाई 2016, पृ.सं. 31
141. सं. शैलेंद्र कुमार शैली, राग भोपाली पत्रिका, जुलाई 2016, पृ.सं. 26
142. देवेंद्र आर्य, मन कबीर, पृ.सं. 41
143. महेश कटारे सुगम, अय हय हय, पृ.सं. 43
144. देवेंद्र आर्य, जो पीवे नीर नैना का, पृ.सं. 50
145. डी. एम. मिश्र, रोशनी का कारवां, पृ.सं. 20
146. वशिष्ठ अनूप, मशालें फिर जलाने का समय है, पृ.सं. 73
147. महेश कटारे सुगम, दुआएं दो दरख्तों को, पृ.सं. 116
148. डी. एम. मिश्र, रोशनी का कारवां, पृ.सं. 101

149. महेश कटारे सुगम, अय हय हय, पृ.सं. 54
150. ज्ञानप्रकाश विवेक, गुप्तगू अवाम से है, पृ.सं. 44
151. वशिष्ठ अनूप, मशालें फिर जलाने का समय है, पृ.सं. 79
152. हरेराम समीप, यह नदी खामोश है, पृ.सं. 36
153. महेश कटारे सुगम, शुक्रिया पृ.सं. 52
154. शैलजा जायसवाल, राही मासूम रजा के उपन्यासों में समकालीन संदर्भ, पृ० 181
155. विनय मिश्र, जिंदगी आने को है, पृ.सं. 76
156. महेश कटारे सुगम, प्यार के साये, पृ.सं. 85
157. रामकुमार कृषक, पढ़िए तो आँख पाइए, पृ.सं. 85
158. अदम गोंडवी, समय से मुठभेड़, पृ.सं. 59
159. डॉ. मधु खराटे, जहीर कुरेशी चुनिंदा गज़लें, पृ.सं. 76
160. हरेराम समीप, हरेराम समीप चयनित गज़लें, पृ.सं. 53
161. डी. एम. मिश्र, वह पता ढूँढे हमारा, पृ.सं. 88
162. हरेराम समीप, हरेराम समीप चयनित गज़लें, पृ.सं. 84
163. महेश कटारे सुगम, अय हय हय, पृ.सं. 50
164. महेश अग्रवाल, पेड़ फिर हरा होगा, पृ.सं. 68
165. वही पृ.सं. 97
166. विनय मिश्र, सच और है, पृ.सं. 50
167. जहीर कुरेशी, रास्तों से रास्ते निकले, पृ.सं. 103
168. जहीर कुरेशी, जिंदगी से बड़ा जिंदगी का समर, पृ.सं. 59
169. रामकुमार कृषक, पढ़िए तो आँख पाइए, पृ.सं. 46
170. सं. शैलेंद्र कुमार शैली, राग भोपाली पत्रिका, जुलाई 2016, पृ.सं. 15
171. विनय मिश्र, तेरा होना तलाशूं, पृ.सं. 95
172. रामकुमार कृषक, पढ़िए तो आँख पाइए, पृ.सं. 164
173. महेश कटारे सुगम, दुआएं दो दरख्तों को, पृ.सं. 116
174. वशिष्ठ अनूप, घरों पर गिद्ध मंडराने लगे हैं, पृ.सं. 18
175. देवेंद्र आर्य, जो पीवे नीर नैना का, पृ.सं. 108
176. महेश कटारे सुगम, आशाओं के नये महल, पृ.सं. 54
177. विनय मिश्र, सच और है, पृ.सं. 19

178. महेश कटारे सुगम, शुक्रिया, पृ.सं. 102
179. अदम गौडवी, समय से मुठभेड़, पृ.सं. 48
180. महेश कटारे सुगम, अभी इम्कान बाकी है, पृ.सं. 106
181. महेश कटारे सुगम, प्रतिरोधों के पर्व, पृ.सं. 60,
182. विनय मिश्र, लोग जिंदा है, पृ.सं. 23
183. वही पृ.सं. 63
184. महेश कटारे सुगम, अभी इम्कान बाकी है, पृ.सं.54
185. जहीर कुरेशी, रास्तों से रास्ते निकले, पृ.सं. 97
186. महेश कटारे सुगम, ख्वाब मेरे भटकते रहे, पृ.सं. 54
187. किशन तिवारी, धूप का रास्ता, पृ.सं. 54
188. डी. एम. मिश्र, रोशनी का कारवां, पृ.सं. 16
189. महेश कटारे सुगम, अय हय हय, पृ.सं. 23
190. डी. एम. मिश्र, लेकिन सवाल टेढ़ा है, पृ.सं. 27
191. महेश कटारे सुगम, ख्वाब मेरे भटकते रहे, पृ.सं. 120
192. महेश कटारे सुगम, अभी इम्कान बाकी है, पृ.सं. 20
193. शैलजा जायसवाल, राही मासूम रजा के उपन्यासों में समकालीन संदर्भ, पृ० 181
194. अदम गौडवी, समय से मुठभेड़, पृ.सं. 56
195. राम मेश्राम, आग में उड़ान, पृ.सं. 110
196. महेश कटारे सुगम, प्यार के साये, पृ.सं. 83
197. वशिष्ठ अनूप, रोशनी खतरे में है, पृ.सं. 51
198. सं. श्रीधर मिश्र, विनय मिश्र का रचना कर्म: दृष्टि और मूल्यांकन पृ.सं. 97
199. राम मेश्राम, आग में उड़ान, पृ.सं. 121
200. अदम गौडवी, समय से मुठभेड़, पृ.सं. 61
201. वशिष्ठ अनूप, रोशनी खतरे में है, पृ.सं. 60
202. राम मेश्राम, आग में उड़ान, पृ.सं. 87
203. महेश अग्रवाल, अभी शेष है, पृ.सं. 34
204. किशन तिवारी, धूप का रास्ता, पृ.सं. 61
205. माधव कौशिक, सारे सपने बागी हैं, पृ.सं. 15
206. डी. एम. मिश्र, रोशनी का कारवां, पृ.सं.18

207. महेश कटारे सुगम, लाहौल वला कुव्वत, पृ.सं.20
208. रामकुमार कृषक, पढ़िए तो आँख पाइए, पृ.सं. 49
209. वशिष्ठ अनूप, रोशनी खतरे में है, पृ.सं. 47
210. विनय मिश्र, लोग जिंदा हैं, पृ.सं. 78
211. सं. शैलेंद्र कुमार शैली, राग भोपाली पत्रिका, जुलाई 2016, पृ.सं. 26
212. डॉ. मधु खराटे, जहीर कुरेशी चुनिंदा गज़लें, पृ.सं. 78
213. किशन तिवारी, धूप का रास्ता, पृ.सं. 63
214. महेश कटारे सुगम, आशाओं के नये महल, पृ.सं. 54
215. विनय मिश्र, लोग जिंदा हैं, पृ.सं.100
216. देवेंद्र आर्य, उमस, पृ.सं. 84
217. महेश कटारे सुगम, दुआएं दो दरख्तों को, पृ.सं. 96
218. रामकुमार कृषक, पढ़िए तो आँख पाइए, पृ.सं. 61
219. माधव कौशिक, अंगारों पर नंगे पाँव, किंडले पृ.सं. 22
220. वशिष्ठ अनूप, घरों पर गिद्ध मंडराने लगे हैं, पृ.सं. 18
221. वशिष्ठ अनूप, मशालें फिर जलाने का समय है, पृ.सं. 43
222. राम मेश्राम, आग में उड़ान, पृ.सं. 94
223. महेश कटारे सुगम, लाहौल वला कुव्वत, पृ.सं. 85
224. जहीर कुरेशी, बोलता है बीज भी, पृ.सं. 48
225. मंजुला राणा, माधव कौशिक की काव्य संवेदना, पृ.सं.108
226. जहीर कुरेशी, जिंदगी से बड़ा जिंदगी का समर पृ.सं.118
227. विनय मिश्र, तेरा होना तलाशूं, पृ.सं. 74
228. महेश अग्रवाल, पेड़ फिर हरा होगा, पृ.सं. 53
229. विनय मिश्र, लोग जिंदा हैं, पृ.सं. 41
230. वशिष्ठ अनूप, मशालें फिर जलाने का समय है, पृ.सं. 43
231. महेश कटारे सुगम, प्रतिरोधों के पर्व, पृ.सं. 82
232. महेश कटारे सुगम, अय हय हय, पृ.सं. 101
233. महेश कटारे सुगम, प्यार के साये, पृ.सं. 104
234. विनय मिश्र, तेरा होना तलाशूं, पृ.सं. 87
235. जहीर कुरेशी, निकला न दिग्विजय को सिकंदर, पृ.सं. 79
236. देवेंद्र आर्य, उमस, पृ.सं. 45

237. जहीर कुरेशी, निकला न दिग्विजय को सिकंदर, पृ.सं. 38
238. जहीर कुरेशी, दोहों से दोहा गज़लों तक, पृ.सं.108
239. वशिष्ठ अनूप, घरों पर गिद्ध मंडराने लगे हैं, पृ.सं. 15
240. महेश कटारे सुगम, अय हय हय, पृ.सं. 107
241. शिव ओम अंबर, विष पीना विस्मय मत करना, पृ.सं. 37
242. डी. एम. मिश्र, लेकिन सवाल टेढ़ा है, पृ.सं. 100
243. अदम गोंडवी, समय से मुठभेड़, पृ.सं. 70
244. डॉ. रघुनाथ कश्यप, 'कुंअर बेचैन की गज़लों का चिंतन पक्ष, पृ.सं. 134
245. हरeram समीप, हरeram समीप चयनित गज़लें, पृ.सं. 103
246. हरeram समीप, यह नदी खामोश है, पृ.सं. 28
247. विनय मिश्र, सच और है, पृ.सं. 22
248. हरeram समीप, हरeram समीप चयनित गज़लें, पृ.सं. 49
249. अदम गोंडवी, समय से मुठभेड़ पृ.सं. 57
250. महेश कटारे सुगम, अय हय हय, पृ.सं. 107
251. वशिष्ठ अनूप, रोशनी की कोपलें, पृ.सं. 57
252. मंजुला राणा, माधव कौशिक की काव्य संवेदना, पृ.सं. 42
253. किशन तिवारी, सोचिए तो सही, पृ.सं. 55

चतुर्थ अध्याय
21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में
सामाजिक-आर्थिक यथार्थ

चतुर्थ अध्याय

21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में सामाजिक-आर्थिक यथार्थ

प्रस्तावना

बीसवीं शताब्दी में प्रादुर्भूत भूमंडलीकरण एवं उदारीकरण की नवीन विचारधाराओं का इक्कीसवीं सदी में तेजी से विकास होता है। जिसके प्रभावस्वरूप सामाजिक-सांस्कृतिक-आर्थिक परिदृश्य में तेजी से व्यापक बदलाव आते हैं। आर्थिक उदारीकरण के साथ बहुराष्ट्रीय कंपनियों का आगमन होता है, जिससे पूँजीवाद को बढ़ावा मिलता है। पूँजीवाद की उच्छृंखल पूँजी से बाज़ारवादी संस्कृति स्थापित होती है। बाज़ारवाद उपभोक्तावादी जीवन शैली को बढ़ावा देता है। तथा तकनीक के पंखों के सहारे यह बाज़ारस्थल से आगे बढ़कर हमारे घरों व मन-मस्तिष्क तक पहुँच जाता है। बाज़ारवादी संस्कृति में बाज़ार भोक्ता बन जाता है। तथा मनुष्य पदार्थ बन जाता है। व्यक्ति के भाव, विचार, मूल्यों, संबंधों के साथ शरीर से लेकर आत्मा तक सभी बाज़ार के लिए बिकाऊ चीज़ बन जाते हैं। जिससे पारिवारिक-सामाजिक संबंधों की जड़ें हिलने लगती हैं। रिश्ते बाज़ारी हो जाते हैं। रिश्ते की आत्मीय हरियाली सूखकर अविश्वास-आशंका-संदेह के रेतीले मरुस्थल में तब्दील होती जाती है। बाज़ार द्वारा प्रसारित उपभोक्तावाद के कारण समाज की सोच-संस्कार के केंद्र में अर्थ स्थापित हो जाता है। और जीवन में अर्थ का अनर्थक अतिक्रमण होता है। येन केन प्रकारेण धन कमाना ही जीवन का एकमात्र लक्ष्य बन जाता है। जिसके कारण समाज में मूल्य विरोधी आचरण शैली तथा हिंसा, अपराध व आतंक का ग्राफ तेजी से बढ़ता है और सामाजिक परिवेश खौफनाक व अग्निमय होता जाता है। बाज़ारवाद व उपभोक्तावाद के अलावा जीवन के हर क्षेत्र को अतिक्रमित करती समकाल की मूल्यहीन राजनीतिक शैली भी इसके पीछे एक कारण है। डॉ. तीर्थेश्वर सिंह लिखते हैं, “आज देश का लोकमानस अहिंसा के उपायों की तुलना में तोड़-फोड़ के कामों को अधिक कारगर मानता है। उसका कारण यह है कि लोकमानस का ही राजनीतिकरण हो गया है। राजनीति जीवन का कवच बन चुकी है। इसलिए आर्थिक-सामाजिक जीवन पद्धतियों में राजनीतिक छल-छद्म इतने अधिक प्रविष्ट हो गए हैं कि सामूहिकता की कोई बात ही नहीं, सामूहिक सहयोग, सद्भाव, प्रेम परस्पर सब बेमानी हो गए हैं।”¹

21वीं सदी में बाज़ारवाद का यह दैत्य महानगरों से आगे बढ़कर गाँवों को अपनी ज़द में लेने लगता है तथा इसके परिणामस्वरूप गाँव से भी परंपरागत

सामाजिक-सांस्कृतिक-प्राकृतिक जीवन सौंदर्य नष्ट होने लगता है। आर्थिक उदारीकरण से प्रेरित-प्रश्रित निजीकरण व पूँजीवादी सोच-संस्कृति के कारण आर्थिक शोषण को बढ़ावा मिलता है। जिससे एक ओर अमीरी का हिमालय निरंतर उन्नत होता है, तो दूसरी ओर गरीबी की घाटी और गहरी होती जाती है। और समाज में आर्थिक विषमता निरंतर बढ़ती है। पूँजीवाद व बाज़ारवाद की शैतानी शोषणकारी शक्तियाँ समाज के वंचित वर्गों-किसान-मजदूर, स्त्री, बालक, वृद्ध सभी को और भी हाशिए पर धकेल देती हैं। पूँजीवाद के साथ तकनीक के योग से मशीनीकरण को बढ़ावा मिलने के कारण बेरोजगारी की समस्या बढ़ती है, तो बाज़ारवादी एवं उपभोक्तावादी जीवन शैली के कारण महँगाई में निरंतर वृद्धि होती है। और हमारा समाज गरीबी, बेरोजगारी व महँगाई जैसी कई समस्याओं के साथ मूल्य के संकट का शिकार हो अपराधवृत्ति से ग्रस्त होता जाता है। तथा सामाजिक परिवेश निरंतर भयावह होता जाता है। गज़लकार माधव कौशिक ने अपने गज़ल संग्रह 'खूबसूरत है आज भी दुनिया' की भूमिका में लिखा है- "आज का समय इतिहास के सर्वाधिक संकटपूर्ण कालखंडों में से एक है। उपभोक्तावादी अपसंस्कृति तथा बाज़ारवाद का अजगर हमारे संबंधों की सारी ऊर्जा तथा ऊष्मा को सोखने लगा है। भूमंडलीकरण तथा उदारवाद की आँधी ने मानवीय समाज के ताने-बाने को छिन्न-भिन्न कर दिया है।"²

संक्षेप में यह कह सकते हैं कि अपने साथ सपनों का एक सुनहरा इंद्रजाल लेकर उदित होने वाली वैश्वीकरण और उदारीकरण की संकल्पनाएँ हमारी सामाजिक-आर्थिक संरचना पर गहरे दुष्प्रभाव डालती हैं। इनके कारण परंपरागत समरस एवं समृद्ध सामाजिक-आर्थिक ढाँचे को एक ग्रहण सा लग जाता है। तथा हमारा सामाजिक-आर्थिक परिवेश अनेक विसंगतियों, विकृतियों, विद्रूपताओं, समस्याओं व विषमताओं से घिरने लगता है। इसका परम्परागत सौंदर्य और आभा क्षीण होने लगती है। "आज व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एवं राजनीति के क्षेत्रों में एक भयंकर संक्रांति व्याप्त है। बेकारी, बेरोजगारी, भूख, कलह एवं अशांति आदि के कारण समाज में मूल्य विघटन हो रहा है। लोगों का दृष्टिकोण भौतिकवादी हो रहा है। उनमें अतिशय स्वार्थपरता, दिखावटी प्रेम, व्यक्तिवादी भावना, धुरीहीनता, पीढ़ी अंतराल में नए-पुराने संस्कारों संघर्ष दिखाई देता है। निजी हित को प्रमुखता देना आज के आदमी के लिए साधारण बात हो गई है। परम्परागत पारिवारिक संबंधों से दूर आज का मानव इतना आत्मकेन्द्रित व स्वार्थी हो गया है कि निकटतम संबंधों में भी अजनबीपन समाता जा रहा है।"³ सामाजिक-आर्थिक जीवन का यह बिगड़ता सौंदर्य समकालीन जीवन की

यथार्थ तस्वीर है। प्रस्तुत अध्याय में 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल की शाब्दिक कूँची से समकालीन सामाजिक-आर्थिक तस्वीर को यथार्थ रूप में उकेरने का प्रयास किया गया है।

4.1 सामाजिक यथार्थ

समाज की जीवन स्थितियों का वास्तविक चित्रण ही सामाजिक यथार्थ कहलाता है। समाज जीवन का लघुरूप पारिवारिक जीवन होता है। अतः सामाजिक यथार्थ की परिधि में पारिवारिक जीवन का यथार्थ स्वतः अंतर्निहित होता है। सामाजिक यथार्थवाद की उत्पत्ति आमजन या निम्न (वंचित) वर्गीय समुदायों की कठिन जीवन स्थितियों की प्रतिक्रिया स्वरूप हुई है। इसलिए सामाजिक यथार्थवादी साहित्य में समाज के उपेक्षित-वंचित वर्गों-दलित, स्त्री, किसान-मजदूर, बालक व वृद्धों की विषम जीवन स्थितियों का चित्रण मुख्यतः होता है। परिवेश के आधार पर समाज को ग्रामीण एवं शहरी समाज के रूप में विभक्त किया जा सकता है। जिनकी अपनी जीवन स्थितियाँ, विसंगतियाँ एवं समस्याएँ होती हैं। यथार्थवादी साहित्य समाज की घृणित व पतनोन्मुख विकृतियों व विद्रूपताओं को उद्घाटित करता है। इसलिए सामयिक दौर में समाज में बढ़ती अपराधवृत्ति व अराजकता भी आज के सामाजिक यथार्थवादी साहित्य के केंद्र में है। ऐसे साहित्य में साहित्यकार समाज की विसंगतियों, विकृतियों व विद्रूपताओं की कटु सच्चाइयों को मुख्य रूप से उजागर करता है। क्योंकि जहाँ आदर्शवादी साहित्य में साहित्यकार का मकसद जीवन की शुभताओं का कल्पनाप्रधान मंगलगान कर समाज जीवन को उत्कर्ष की ओर ले जाना होता है, वहीं यथार्थवादी साहित्य में साहित्यकार समाज जीवन में बढ़ती अशुभताओं एवं विकृतियों की व्यंग्यात्मक आलोचना के हथियार से शल्य चिकित्सा कर सामाजिक परिवर्तन एवं सामाजिक सुधार पर बल देता है। प्रस्तुत अध्याय में सामाजिक यथार्थ के अंतर्गत पारिवारिक जीवन का यथार्थ, वंचित समुदायों का यथार्थ, ग्रामीण एवं शहरी जीवन का यथार्थ तथा समाज में बढ़ती अपराधवृत्ति व अराजकता आदि उपशीर्षकों के अंतर्गत समकालीन समाज की कटु सच्चाइयों को इक्कीसवीं सदी की हिंदी ग़ज़ल के आइने से उजागर करने का प्रयास किया गया है।

4.1.1 पारिवारिक यथार्थ

परिवार समाज की छोटी इकाई है। यह व्यक्ति के जीवन का आधार है क्योंकि परिवार में ही व्यक्ति को प्रेम और सुरक्षा मिलती है। परिवार में ही वह जीवन जीने

का सलीका व शिष्टाचार सीखता है। परिवार ही उसके सुख-दुख का साझा केंद्र होता है। और परिवार से ही उसके सामाजिक संबंधों की शुरुआत होती है। एक तरह से परिवार से ही व्यक्ति को जीवन के लिए आवश्यक ऊष्मा व प्रकाश मिलता है। इसलिए हमारे पारम्परिक सामाजिक ताने-बाने में आपसी प्रेम, विश्वास, स्नेह, सम्मान एवं सहयोग आधारित संयुक्त परिवार प्रथा का प्रचलन रहा है। परिवारजनों के बीच का आपसी प्रेम, अपनापन एवं आत्मीयता किसी परिवार की जान होती है। लेकिन आज अनेक कारणों से परिवार की यह चेतन आत्मा जड़ होने लगी है। वैश्वीकरण, आधुनिकीकरण, सूचना तकनीक के प्रसार एवं भौतिक विकास के साथ पारिवारिक मूल्यों का तेजी से विघटन होता है। जिससे धीरे-धीरे पारिवारिक रिश्तों में प्रेम की ऊष्मा छीजने लगती है, आत्मीयता की आँच मंद पड़ने लगती है और एहसास का रक्त जमने लगता है। पारिवारिक संबंधों से अपनेपन, आत्मीयता, सौहार्द, संवाद एवं समन्वय के रस, राग व गंध का लोप होने लगता है और इन सब के अभाव में रिश्ते बेजान होने लगते हैं। समकाल में रिश्तों की निरंतर घटती ऊर्जा को संकेतित कर हिंदी ग़ज़लकार लिखते हैं-

“है फूल किन्तु, नदारद है फूल से खुशबू,
हमारे बीच के रिश्ते उदास करते हैं।”⁴

(जहीर कुरेशी)

*** *** *** ***

“धीरे-धीरे अहसासों की घाटी जमकर बर्फ़ हुई
कैसे आग बुझी रिश्तों की अंगारों को कहने दे।”⁵

(माधव कौशिक)

*** *** *** ***

“न सम्बन्धों की गर्माहट, न आँखों में चमक कोई
सगे लोगों से मिलना, अजनबी से मिलना होता है।”⁶

(वशिष्ठ अनूप)

*** *** *** ***

“मन के सरोवरों की सतह खुशक हो गयी
रिश्तों के दरमियान रवां कुछ नहीं बचा।”⁷

(हरेराम समीप)

“बाहमी रिश्तों में अब वो प्यार की खुशबू नहीं।

तल्लिख्यों से ज़िन्दगी के हाशिए खारे हुए॥”⁸

(अदम गोंडवी)

पारिवारिक मूल्यों के क्षरण के कारण सामयिक दौर में सरसब्ज़ परिवार रेगिस्तान में तब्दील होने लगे हैं। संयुक्त परिवार की सहनशीलता एवं सामाजिकता का हास होने और छोटी-छोटी स्वार्थी बातों को लेकर पारिवारिक सदस्यों के बीच

अनबन, विवाद और झगड़े होने से मूल्यों की पाठशाला रहे परिवार कुरुक्षेत्र बनने लगे हैं। जिससे रिश्ते लहलुहान हो रहे हैं। और दिली रिश्ते भी खत्म हो रहे हैं। आत्मीय रिश्ते जैसे आज आउटडेटेड हो चुके हैं। रिश्तों में आत्मीयता की जगह औपचारिकता एवं कृत्रिमता का रंग-रोगन चढ़ता जा रहा है। जिससे खूनी रिश्ते भी बेदम व बोझिल लगने लगे हैं। परिवार एवं रिश्तों में स्वार्थों की ऊँची दीवारें खड़ी होने से संयुक्त परिवार टूट रहे हैं। और एकल परिवारों का प्रचलन बढ़ रहा है। संयुक्त परिवारों के टूटने तथा सच्चे व आत्मीय रिश्तों के अभाव में पारिवारिक-सामाजिक जीवन का सौंदर्य समाप्त हो रहा है। जिसकी ओर संकेत कर शायर लिखते हैं-

“रिश्तों में दीखती अब हरियालियाँ कहाँ

स्वारथ के बढ़ रहे हैं मस्थल नये नये।”⁹

(हरेराम समीप)

*** *** *** ***

“रोज हम सम्बन्ध के कुरुक्षेत्र में मौजूद है

रोज आहत हो रहीं सद्भावनाएँ क्या करें।”¹⁰

(महेश अग्रवाल)

*** *** *** ***

“हरेक रिश्ते की तारीख जा चुकी यारो!

कराना भूल गया मैं नवीकरण उनका।”¹¹

(ज्ञानप्रकाश विवेक)

*** *** *** ***

“हम अपने ही लोगों की बस्ती में

संबंधों की लाश लिए फिरते हैं।”¹²

(जहीर कुरेशी)

*** *** *** ***

“अबधारणा कुटुम्ब की दिखती नहीं कहीं

लोगों ने सिर्फ 'तीन' का परिवार कर लिया।”¹³

(जहीर कुरेशी)

*** *** *** ***

“घर था, घर में आँगन था / रिश्तों में अपनापन था।

अब तो सब कुछ बदल गया / जीवन में तब जीवन था।

गये दिनों का जिक्र न कर / मन के अन्दर मधुबन था।”¹⁴ (माधव कौशिक)

रिश्तों के इस बदलते यथार्थ में पिता-पुत्र के जन्म आधारित खूनी रिश्तों से लेकर पति-पत्नी के जन्म-जन्मांतर के आत्मीय रिश्ते भी बदल रहे हैं। एकल परिवारों के चलन व अर्थ के असीमित महत्त्व के कारण बेटों का माता-पिता से रिश्ता केवल पुश्तैनी दौलत व वसीयत प्राप्ति के निमित्त ही रह गया है। शिक्षा के प्रसार के साथ

स्त्री की घर के बाहर बढ़ती कामकाजी भूमिका, शिक्षित स्त्रियों की अपनी स्वतंत्रता व अस्मिता के प्रति अतिशय सजगता, विवाह पूर्व व विवाहेतर प्रेम संबंधों की आशंका, सोशल मीडिया की आभासी दुनिया के कारण पसरती संवादहीनता एवं धन-दौलत के चलते आज पति-पत्नी के आत्मीय रिश्ते में तनाव, बिखराव, टूटन व तलाक आम बात हो गई है। पारिवारिक संबंधों में बदलाव का प्रभाव दोस्ती के रिश्ते पर भी हुआ है। जहाँ पहले यह रिश्ता पानी में शर्करा के समान पूरी तरह घुलनशील, आत्मीय और मृदुल होता था, वहीं आज अर्थ और स्वार्थ की अशुद्धियों से इसकी घुलनशीलता कम हो गई है। संक्षेप में सभी तरह के रिश्तों की वफ़ादारी को स्वार्थ के कारण बेवफ़ाई की हवा लग गयी है। शायर रिश्तों की इस विद्रूपता पर कहते हैं-

“वसीयत पढ़के बेटे हँस रहे थे,

पिता लाचार, तिल-तिल मर रहा था।”¹⁵

(ज्ञान प्रकाश विवेक)

*** *** *** ***

“पति-पत्नी के बीच हैं, कुछ आदिम संदेह,

दोनों ने जारी किए, जले-कटे आरोप।”¹⁶

(जहीर कुरेशी)

*** *** *** ***

“हर माह पति से पाएगी रुपये वो दस हजार

निर्णय 'तलाक' का भी समाधान-सा लगे।”¹⁷

(जहीर कुरेशी)

*** *** *** ***

“दे रही सावित्रियाँ अब सत्यवानों को ज़हर

कोख में यमराज की पलती निशानी हे प्रभो।”¹⁸

(वशिष्ठ अनूप)

*** *** *** ***

“मोहब्बत में वफ़ादारी नहीं है

सुदामा-कृष्ण की यारी नहीं है।”¹⁹

(वशिष्ठ अनूप)

रिश्तों के परिवर्तित होते स्वरूप एवं बदलते यथार्थ के अनेक कारण हैं। जिनमें बाज़ारवाद का भूचाली आगमन मुख्य है। जिसके कारण घर भी बाज़ार बन गया है तथा पारिवारिक सदस्यों के बीच होने वाला व्यवहार लेन-देन व लाभ हानि के सौदे पर आधारित बाज़ारी हो गया है। सारे संबंध व रिश्ते-नाते आज नफे-नुकसान एवं उपयोगिता-अनुपयोगिता को देखकर बनाए-बिगाड़े जाते हैं। जिससे कुछ स्वार्थ सिद्ध होना हो, कुछ लाभ की संभावना हो, उसी से रिश्ते निभाये जाते हैं। तथा स्वार्थ खत्म होते ही रिश्तेदार भी किनारा कर लेते हैं। प्रेम कुमार कहते हैं, “यह युग अर्थ युग है।

ग्लोबलाइजेशन और उदारीकरण की नीति ने उपभोक्तावाद को जन्म दिया है इसलिए आज हर चीज की परख का माध्यम उपयोगिता और लाभ हो गया है।”²⁰ बाज़ार का यह सिद्धांत रिश्तों पर भी लागू हो गया है। बाज़ारवाद के कारण भौतिक वस्तुओं का मूल्य पारिवारिक रिश्तों से अधिक हो गया है और रिश्ते जो भावगत थे, वस्तुगत हो गए हैं। बाज़ारवाद एवं उपभोक्तावाद के इस अर्थ प्रधान दौर में पारिवारिक संबंधों के मूल में भी अर्थ स्थापित हो गया है। और सारे संबंध अर्थोश्रित हो गए हैं। अर्थ के आगे सारे रिश्ते असहाय व बेबस हैं। अर्थ के गणित और स्वार्थ की धुरी पर टिके ऐसे कृत्रिम रिश्ते प्लास्टिक के खिलौनों की तरह होते हैं जिनमें सजीवता व स्थायित्व नहीं होता है। यद्यपि रिश्तों के व्यापार के इस दौर में भी सारे रिश्ते स्वार्थी व दिखावटी नहीं हैं। कुछ सच्चे एवं आत्मीय रिश्ते भी हैं। हिंदी ग़ज़लकार बाज़ारवाद व अर्थ के बढ़ते महत्त्व के कारण रिश्तों के बदलते यथार्थ को उजागर करते हुए लिखते हैं-

“खो गई घर-द्वार की परिवार की भाषा,
आँगनों तक आ गई बाज़ार की भाषा।”²¹ (शिव ओम अंबर)

*** **

“बाज़ार माहौल घरों के अन्दर जब से आया है
दिल का हर प्यारा सा रिश्ता सचमुच काँटेदार हुआ।”²² (माधव कौशिक)

*** **

“हो रहे अपने मुनाफे के लिए,
इस नए व्यापार में रिश्ते अलग।”²³ (विनय मिश्र)

*** **

“चली हैं आँधियाँ खुदगर्जियों की
दिली रिश्ते पनीले हो रहे हैं।”²⁴ (महेश कटारे सुगम)

*** **

“ये आर्टीफिसियल सम्बन्ध बस होते हैं मतलब के
जो रिश्ते प्लास्टिक के हैं, उन्हें टिकना नहीं आता।”²⁵ (वशिष्ठ अनूप)

*** **

“नहीं हैं सभी लेने देने के रिश्ते
ये दुनिया फ़क़त कारोबारी नहीं है।”²⁶ (राम मेश्राम)

4.1.2 वंचित समुदायों का यथार्थ

सामाजिक यथार्थवादी साहित्य में समाज के ऐसे वर्गों का विशेष रूप से चित्रण होता है, जो सामाजिक संरचना में पददलित एवं शोषित-वंचित-उपेक्षित हैं। तथा जो विकास की मुख्य धारा से दूर हाशिए की जिंदगी जीने को मजबूर हैं। जिनकी जिंदगी दुखों की एक अपरिवर्तित वर्णमाला है; दुखों का कथानक है। जो कहने को तो जिंदा है, परन्तु अपेक्षित मानवीय गरिमा व जीवनावश्यक सुविधाएँ न मिलने के कारण मौत से बदतर नारकीय जीवन जीने को अभिशप्त हैं। जिनका अतीत कड़वा है; वर्तमान बदहाल है तथा भविष्य अनिश्चित है। सभ्यता के कथित विकास के बावजूद जिनकी जीवन स्थितियों में अपेक्षित सुधार नहीं हुआ है। जिनकी आकांक्षाएँ, अपेक्षाएँ व सपने अधूरे हैं तथा जिन्हें समाज में उनका वास्तविक हिस्सा व प्रदाय नहीं मिला है, बल्कि पूँजीवादी व बाज़ारवादी शोषक शक्तियों के द्वारा जिनके खिलाफ आज भी कई तरह की साजिशें रची जा रही हैं और उन्हें हाशिए पर धकेला जा रहा है। हिंदी ग़ज़लकार हाशिए की जिंदगी जीने वाले वंचित समुदायों की पीड़ाओं का कारुणिक चित्रण करने के साथ इसके लिए जिम्मेदार व्यवस्थाओं के खिलाफ प्रतिरोध का स्वर बुलंद करते हैं। सामाजिक यथार्थ चेतना से अनुप्राणित 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल समाज के वंचित वर्गों- दलित-आदिवासी, स्त्री, किसान-मजदूर, बालक, वृद्ध सभी की पीड़ाओं और जीवन यथार्थ को व्यक्त करती है। वंचित समुदायों की स्थिति पर हिंदी ग़ज़लकार लिखते हैं-

“ग्रन्थ में हैं भी नहीं भी

प्राक्कथन परिशिष्ट हैं हम।”²⁷

(शिवओम अंबर)

*** *** *** ***

“हाशिये पर हम तो जिन्दा है यहाँ लेकिन

किस तरह इस जिंदगी को जिन्दगी मानें।”²⁸

(विनय मिश्र)

*** *** *** ***

“तीज, पिड़िया, राखियों, शहनाइयों का प्रश्न है

क़त्ल होती, भय में जीती बेटियों का प्रश्न है।

प्रश्न है कचरे में जीवन ढूँढ़ते बच्चों का भी

हर तरह असहाय बूढ़ी लाठियों का प्रश्न है।

जंगलों, नदियों, पहाड़ों के निधन का प्रश्न है ही

अपने घर में पिट रहे वनवासियों का प्रश्न है।”²⁹ (वशिष्ठ अनूप)

4.1.2.1 किसान-मजदूर

देश के विकास और समृद्धि में सबसे अहम भूमिका किसान और मजदूर वर्ग की होती है। किसान-मजदूर ही देश की अर्थव्यवस्था को आगे बढ़ाने व उसे गति देने वाले हाथ-पैर होते हैं। ये ही देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी हैं। इनका श्रमजल ही वह शिलातेल है, जिसकी ऊर्जा से राष्ट्रयान प्रगति की ऊँची उड़ान भरता है। जहाँ एक ओर किसान जीवन के लिए आवश्यक अन्न का सृजन करते हैं। वहीं मजदूर किसानों द्वारा उत्पादित फसलों के कच्चे माल से जीवन के लिए आवश्यक अन्य उत्पाद तैयार करते हैं। किसानों और मजदूरों के श्रम व सृजन के बगैर मानव जीवन का संचालन संभव नहीं है। लेकिन संपूर्ण धरती का भार ढोने वाले किसान-मजदूर वर्ग की विडंबना है कि अपने श्रम, स्वेद और शोणित से देश एवं समाज के लोगों के जीवन में सौंदर्य व सुख के रंग भरने वाले इस मेहनतकश वर्ग का जीवन बेरंग होता है। उसके ख्वाब कभी पूरे नहीं होते हैं। समाज व सरकार की उपेक्षा के कारण हाशिए का यह वर्ग जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं से महरूम हो बेबसी व अभावों में जीवनयापन करता है। हिंदी ग़ज़लकार लिखते हैं-

“कछुए की पीठ पर न शेष फन पे टिकी है
धरती श्रमिक के हाथ पे... गर्दन पे टिकी है।”³⁰ (वशिष्ठ अनूप)

*** *** *** ***

“न महलों की बुलन्दी से न लफ़्ज़ों के नगीने से।
तमदुन में निखार आता है घीसू के पसीने से॥”³¹ (अदम गोंडवी)

*** *** *** ***

“बोकर खून, पसीना सुखमय जीवन देते जो
हर किसान, मजदूर हमारे मस्त कलंदर हैं।”³² (महेश कटारे सुगम)

*** *** *** ***

“जो बहाते खूँ-पसीना, उनका आदर है कहाँ
घर बनाने वालों का, अपना कोई घर है कहाँ?
अन्न उपजाते हैं जो, सारे सृजन करते हैं जो
भूख भर भोजन अभी उनको मयस्सर है कहाँ?
अपनी मेहनत से बदलते भाग्य ये संसार का
इन अभागों का मगर, अपना मुकद्दर है कहाँ?
सुख तो मृगजल की तरह, हर रोज छलता ही गया

ख्वाब में देखा गया, मीठा सरोवर है कहाँ?

पत्थरों पर नाम राजाओं के खुदवाये गए

नाम गढ़ने वालों के, कोई भी पत्थर है कहाँ?"³³ (वशिष्ठ अनूप)

किसान- हमारे देश की लगभग 55-60 फीसदी जनसंख्या खेती-किसानी में लगी हुई है। भारत के किसानों में लगभग 60 फीसदी किसान लघु व सीमांत किसान हैं। आजादी के सात दशक बाद भी सरकारों के तमाम वादों और दावों के बावजूद इन लघु और सीमांत किसानों की माली हालात जस की तस दयनीय बनी हुई है। भूमंडलीकरण और उदारीकरण के वर्तमान दौर में किसान और खेती दोनों का संकट और भी बढ़ गया है। किसानों की समस्याओं के अनेक कारण हैं। जिनमें से मौसम की मार एक प्रमुख कारण है। कभी बाढ़, कभी सूखे, कभी बेमौसम बारिश, कभी पाला, तो कभी ओलावृष्टि के कारण किसानों की फसल बर्बाद हो जाती है। यद्यपि सरकारों द्वारा फसल बीमा योजना की बात की जाती है, लेकिन जितना इसका कागजी प्रचार और शोर है। व्यवहार में यह उतनी ही कमजोर है। कृषि यंत्रों, उन्नत बीजों, रासायनिक खादों, कीटनाशकों एवं सिंचाई की अत्यधिक लागत के बावजूद मौसम की प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण जमीन की उत्पादक क्षमता के अनुरूप फसल नहीं होती है। और जो होती उसका भी किसान को उचित मूल्य नहीं मिलता है। परिणामस्वरूप खेती घाटे का सौदा सिद्ध होती है और किसान को मजबूरन अपनी पारिवारिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कर्ज लेना पड़ता है। जिससे वह आजीवन मुक्त नहीं पाता है और जीवन भर की त्रासद परिस्थितियों से परेशान हो वह आत्महत्या करने के लिए विवश होता है। भूमंडलीकरण एवं आर्थिक उदारीकरण के साथ पूँजीपति मल्टीनेशनल कंपनियों के कृषि क्षेत्र में आने से किसानों की समस्याएँ और भी ज्यादा विकराल हो गई हैं। शहरीकरण व औद्योगीकरण के नाम पर किसानों की भूमि कौड़ियों के दाम पर पूँजीपतियों को सौंपी जा रही है। जिससे किसान अपनी पुश्तैनी ज़मीन से बेदखल होकर मजदूर बनने के लिए मजबूर हो रहे हैं। किसानों की त्रासद स्थितियों पर शायर कहते हैं-

“मार मौसम भी फ़सल को जाता

बीज बेशक हो शोधकर बोया।”³⁴

(रामकुमार कृषक)

*** *** *** ***

“सदियाँ बीत गई हैं लेकिन जाने कब घर लौटेंगे

खेतिहर अपने खेतों से सारी पैदावार लिए।”³⁵ (माधव कौशिक)

“बीज बेहन खाद बिजली पानी मातम पैसों का

फ़सल लागत से भी कम पर बिकने को तैयार है।”³⁶

(देवेन्द्र आर्य)

*** **

“मेहनत की छाती के ऊपर / शोषण के सम्मान खड़े हैं।

सबको जीवन देने वाले / भूखे दुखी किसान खड़े हैं।”³⁷

(महेश कटारे सुगम)

*** **

“हाथ आता कुछ नहीं कैसी किसानी है / कर्ज के दलदल में डूबी हर कहानी है।

ज़िन्दगी में हर क़दम पर त्रासदी देखी / यह विवशता आत्महत्या की निशानी है।”³⁸

(महेश अग्रवाल)

“उड़ी पुरखों की वो पगड़ी हवा में खानदानी भी

था खाली पेट पहले ही गई खेती किसानी भी।”³⁹

(विनय मिश्र)

मजदूर- मजदूर समाज का वह वर्ग है जिसके पास उत्पादन के साधन नहीं हैं, लेकिन जो अपने शारीरिक श्रम के बल पर समाज जीवन को सुखमय व सुविधाजनक बनाने के लिए आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन करता है। दुनिया की सारी चकाचौंध मजदूरों के खून पसीने की रोशनी से ही है। लेकिन दुर्भाग्य की बात है कि आज़ादी के सात दशक के बाद भी देश की अर्थव्यवस्था को मजबूती देने वाले भारतीय मजदूर आर्थिक विपन्नताओं एवं नारकीय स्थितियों में जीने के लिए मजबूर हैं। सर्दी, गर्मी व बरसात हर मौसम में बिना अवकाश के आकाश-पाताल हर विकट स्थिति में दिन-रात पशुओं की तरह हाड़तोड़ मेहनत करने के बाद भी मजदूर अपने परिवार के लिए दो जून की रोटी का जुगाड़ नहीं कर पाते हैं। और जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आजीवन संघर्ष करते हैं। अपनी ज़रूरतों की पूर्ति के लिए कभी-कभी अपने शारीरिक अंगों या संतानों को भी बेचने के लिए मजबूर होते हैं। मजदूर वर्ग की विडंबना है कि पूँजीपतियों के लिए गगनचुंबी इमारतें एवं बड़े-बड़े महल बनाने वाला मजदूर खुद फुटपाथ पर रहने को मजबूर है; सबके लिए कपड़े बुनने वाला खुद चिथड़ों में लिपटे रहने के लिए विवश है और सबको उजाले देने वाला खुद अँधेरो में मरता है। दिहाड़ी या असंगठित मजदूरों की हालत और भी ज्यादा खराब है। क्योंकि जिस दिन उन्हें काम नहीं मिलता है, उस दिन उन्हें खाने को भी नहीं मिलता है। प्राकृतिक आपदाओं के समय मजदूरों की समस्याएँ और भी विकट हो जाती हैं। कोरोना महामारी के समय मजदूरों को किस तरह की नारकीय स्थितियों का सामना करना पड़ा, यह हम सबने देखा है। श्रमिक वर्ग की इन बदहाल जीवन स्थितियों का कारण

पूँजीपत्तियों के हाथों उनके श्रम का शोषण है। भूमंडलीकरण के बाद के औद्योगिक विकास के पूँजीपति हितैषी नये मॉडल के कारण श्रमिकों की स्थिति और भी दुश्वार हो गई है। श्रमिकों के श्रम का उपभोग व शोषण करके पूँजीपति सैकड़ों गुना मुनाफा कमा रहे हैं। इसी श्रम के बदौलत कई उद्योगपति टाटा-बिरला-अडानी-अंबानी बन रहे हैं। परंतु मजदूर की स्थिति जस की तस है। कारण स्पष्ट है कि पूँजीपतियों को अपने मुनाफे के अलावा मजदूर से कोई लेना देना नहीं होता है। दरअसल उन्हें मजदूर से नहीं उसकी मेहनत से मतलब होता है। हिंदी ग़ज़लकार मजदूर वर्ग की त्रासद स्थितियों के बारे में कहते हैं -

“चिलचिलाती दोपहर में कंपकंपाती रात में
बैल-घोड़ों-सा जुता इन्सान का जीवन मिला।”⁴⁰ (वशिष्ठ अनूप)

*** **

“कुछ मजदूरों के जीवन में,
जीवन भर 'इतवार' न पहुँचे।”⁴¹ (जहीर कुरेशी)

*** **

“लहू जब बेचता है तब कहीं वह घर चलाता है
दुखी हैं आज वे करघे जिन्हें बुनकर चलाता है।”⁴² (वशिष्ठ अनूप)

*** **

“यहाँ अट्टालिकाएँ रोज बनती जा रहीं लेकिन
बनाने वाला क्यों फुटपाथ या छानी में रहता है।”⁴³ (वशिष्ठ अनूप)

*** **

“हिन्दुस्तानी मजदूरों की ऐसी हालत है
सिर्फ उसी दिन खाते हैं जिस रोज कमाते हैं।”⁴⁴ (महेश अग्रवाल)

*** **

“रोज ही मेहनत रहे हम मेहनताना कब रहे
लूटनेवालों को लेकिन बेशकीमत ज़र हुए।”⁴⁵ (रामकुमार कृष्क)

4.1.2.2 दलित

दलित का शब्दकोशीय अर्थ होता है- कुचला हुआ, रौंदा हुआ, दबाया हुआ। शाब्दिक अर्थ के अनुरूप समाज की जाति व्यवस्था में उच्च जाति के लोगों द्वारा दमित, शोषित, उपेक्षित और घृणित जातियों के लोगों को दलित कहा गया है। इस तरह दलित सामाजिक संरचना में उपेक्षित, अपमानित, शोषित व वंचित लोग हैं।

प्राचीन वर्ण व्यवस्था कर्म पर आधारित थी, जिसमें शूद्रों के लिए अन्य तीनों वर्णों की सेवा के साथ कठोर व घृणित कार्य करने की कार्य व्यवस्था की गयी थी। तथा उन्हें शिक्षा प्राप्त करने व स्वतंत्र व्यवसाय करने से वंचित रखा गया। आगे चलकर यह वर्ण व्यवस्था जाति व्यवस्था में बदल गई। जाति व्यवस्था में उच्च सोपान पर स्थित जातियों व निम्न जातियों के मध्य ऊँच-नीच की भावना रही है। निम्न जातियों के लोगों का स्पर्श भी अशुभ माना जाता था। उनकी परछाई छूना भी घृणित समझा जाता था। उनके यहाँ खाना-पीना अपमानित समझा जाता था। संक्षेप में कह सकते हैं कि भारतीय सामाजिक व्यवस्था में दलितों का सामाजिक-आर्थिक उत्पीड़न हुआ है। दलित लोग आज भी समाज के पृष्ठों में हाशिए पर अवस्थित हैं और आज भी उन्हें वांछित स्थान नहीं मिल पाया है। हिंदी गज़लकार कहते हैं-

“बता पुण्य परिणाम किया सुख को संचित / किया उन्हें शिक्षा, सम्मानों से वंचित।
 आत्मबोध से दूर रखा षडयंत्रों ने / अपराधी की तरह किया उनको मंचित।
 ये कैसा अभिशाप ये कैसी मजबूरी / सेवा, सुविधा देकर सदा रहे लांछित।
 अपना सब कुछ भूल खुशी जिनने बाँटी / कोई सुख मिल सका नहीं उनको वांछित।
 खुद सवर्ण के सिंहासन पर जा बैठे/शुद्र बताकर उनको किया गया परिचित।”⁴⁶

(महेश कटारे सुगम)

“छाया भी छूना गर्हित है / ऐसे सत्यानासी हैं हम ॥

धर्म के ठेकेदार बताएँ / किस ग्रह के अधिवासी हैं हम।”⁴⁷ (अदम गोंडवी)

आज़ादी के बाद सामाजिक समानता की दृष्टि से दलितों (निम्न जाति वर्गों) के लिए अनेक संवैधानिक प्रावधान किए गए। उन्हें सरकारी नौकरियों में आरक्षण दिया गया। ताकि वे समाज में बराबरी व सम्मान पा सकें। जिससे पहले की तुलना में दलितों की स्थितियों में बहुत सुधार हुआ है। लेकिन अपेक्षित समानता अभी तक नहीं आई है। लोगों की पुरातन भेदभावपूर्ण जातिवादी मानसिकता अभी तक पूरी तरह समाप्त नहीं हुई है। तमाम तरक्की के बावजूद छुआछूत और भेदभाव की मानसिकता आज भी उच्च पदस्थ लोगों में भी विद्यमान है। दलित लोग सरकारी पदों को धारित करने पर भी वैसा सम्मान नहीं पाते हैं, जैसा उच्च जातियों के लोगों को मिलता है। दलितों के प्रति घृणित मानसिकता कमोबेश आज भी है। छुआछूत व भेदभाव के असंवेदनशील और अमानवीय कृत्य आज भी यदा-कदा अखबारों में छपते रहते हैं। हिंदी गज़लकार लिखते हैं-

“क्या बदला है बोलो सत्तर सालों में / फँसे हुए हम जात पांत जंजालों में

मूर्ख ब्राह्मण का पद अब भी ऊँचा है/मेहनतकश मेहतर है गंदे नालों में।”⁴⁸

(महेश कटारे सुगम)

“लाख दलित सरकारी है

'बाभन' सब पर भारी है।”⁴⁹

(राम मेश्राम)

4.1.2.3 स्त्री

भारतीय समाज में महिलाओं के देवी तुल्य सम्मानजनक स्थान की एक आदर्शवादी परंपरा रही है। परंतु इस आदर्श के आकाश से यथार्थ की ज़मीन कोसों दूर है। प्यार, ममता, करुणा, संवेदना, त्याग व बलिदान की सजीव मूर्ति स्त्री ही अपने इन गुणों की बदौलत मानव समाज में वैभव व आनंद की कारक है। तथा वहीं मानव सृष्टि को आगे बढ़ाने का आधार है। परंतु उसके जीवन की विडंबना है कि उसके ये गुण ही उसके लिए सजा बन जाते हैं। तथा पुरुष प्रधान समाज में उसे कमजोर, अक्षम एवं अयोग्य मानकर उसकी भूमिका घर की चारदीवारी तक ही सीमित कर दी गई है। अपने पति, पुत्र और परिवार की इच्छाओं के अनुसार चलकर उनकी इच्छापूर्ति करने में अपने आप को मिटा देना ही उसके जीवन की नियति बन गई है। उसके लिए अपनी इच्छानुसार जीवन जीने तथा पुरुष की बराबरी का मानवीय व लोकतांत्रिक अधिकार दिवास्वप्न बन गया है। पुरुष प्रधान समाज में स्त्रियों की स्थिति पुरुषों की तुलना में निम्न, तिरस्कृत एवं अपमानजनक रही है तथा पुरुषों के अधीन वह पुरुषों के अत्याचारों व हिंसा की शिकार होती रही है। शायर कहते हैं-

“सब मानते हैं नारी है श्रेष्ठ, स्वाभिमानी

किसको है आज उसके सम्मान ही की चिंता।”⁵⁰

(हरेराम समीप)

*** **

“हिन्दुस्तानी औरत यानी, /घर भर की खातिर कुर्बानी।

गृहलक्ष्मी पद की व्याख्या है/ चौका-चूल्हा-रोटी-पानी।”⁵¹

(शिव ओम अंबर)

*** **

“मर्द के लिए औरत क्या है

कूच के थूके पान बराबर।”⁵²

(देवेन्द्र आर्य)

*** **

“कुछ अजन्मों की हत्या हुई गर्भ में

जन्म के बाद कोई जलाई गई।”⁵³

(वशिष्ठ अनूप)

सामंतवादी पुरुष प्रधान समाज में स्त्री को भोग विलास का एक उपकरण मात्र समझा जाता रहा है। बाज़ारवाद और उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण स्त्री के प्रति भोग की यह मानसिकता और भी तेजी से बढ़ी है। जिससे स्त्रियों के शारीरिक, मानसिक और यौन शोषण को बढ़ावा मिला है। बाज़ार ने महिलाओं को इंसान की जगह भोग की वस्तु के रूप में तब्दील कर दिया है। पुरुष वर्ग की भोगवादी मानसिकता का फायदा उठाकर वह स्त्री को नग्न करके बेचने पर तुला है। आज अपराधी तो छोड़िए बुद्धिजीवी वर्ग की सोच भी महिलाओं के प्रति भोगवादी दृष्टिकोण से ग्रस्त है। डॉक्टर पैसे के लिए उसे (स्त्री को) मारने को तत्पर है, तो कार्य स्थलों पर अधिकारी महिलाओं के शोषण के अवसर की तलाश में खड़े हैं। साधु-संत धर्म की आड़ में महिलाओं की अस्मत् लूट रहे हैं। समकाल में महिलाओं के साथ होने वाले यौन अपराधों का ग्राफ तेजी से बढ़ रहा है। महिलाएँ घर की चारदीवारी के भीतर या बाहर कहीं भी सुरक्षित नहीं हैं। गाँव, घर, गलियों, नगरों-महानगरों में हर जगह दिन दहाड़े लड़कियों-महिलाओं के साथ छेड़छाड़ व बलात्कार की घटनाएँ आम हो गई हैं। तकनीक व सोशल मीडिया के कारण भी स्त्रियों के प्रति यौन अपराधों को बढ़ावा मिला है। अपराधी प्रवृत्ति के युवा डीफफेक जैसे तकनीकी टूल्स से लड़कियों-महिलाओं की ब्लैकमेलिंग करके उनका यौन शोषण कर रहे हैं। हिंदी गज़लकार कहते हैं-

“इस बाज़ारू वक्त ने औरत को जी भर भटकाया
देख रही है वो अनसुलझी एक पहेली आँखों में।
चोरी हो जाते हैं उसके सपने क्यों हर रोज यहाँ
वो जो सपने रख आती है रोज़ पराई आँखों में।”⁵⁴ (हरेराम समीप)

“किस 'तितली' के साथ हैं, 'साहब' के संबंध,
ऐसे भी कुछ भेद थे, दरबानों के पास।”⁵⁵ (जहीर कुरेशी)

“पुरोहितों के लबों पर तो मुस्कराहट थी
मगर उदास लगीं देवदासियाँ अक्सर।”⁵⁶ (ज्ञानप्रकाश विवेक)

“निजी क्षण' डाल देगा 'फेस बुक' पर
युवा लड़की को इसका ही तो डर है।”⁵⁷ (जहीर कुरेशी)

“कहीं भी न महफूज़ है बेटियाँ अब

सिहरती है गलियाँ, फ़जाओं में डर है।”⁵⁸

(वशिष्ठ अनूप)

स्त्री समुदाय के समकालीन यथार्थ का एक पहलू यह भी है कि स्त्री शिक्षा, नारी आंदोलनों एवं स्त्रियों के संबंध में किए गए संवैधानिक व कानूनी प्रावधानों की बदौलत स्त्रियों की दशा में पहले से काफी सुधार हुआ है। तथा पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ घर की चारदीवारी की लक्ष्मण रेखा को लाँघकर जीवन के हर क्षेत्र में पुरुषों के साथ कदम मिलाकर चल रही हैं। इससे आगे बढ़ वे अनंत की अनंत ऊँचाइयों में उड़ रही हैं। आज महिलाएँ संगीत, नृत्य जैसे पारंपरिक क्षेत्रों के साथ खेल, सेना, शासन-प्रशासन सभी क्षेत्रों में कार्यरत हैं तथा सार्वजनिक जीवन में सर्वोच्च पदों पर भी पदासीन हैं। बेटियाँ आज माता-पिता को कंधा देते हुए श्मशान के वर्जित क्षेत्रों तक भी पहुँच रही हैं। व्यावसायिक स्वावलंबन व आत्मनिर्भरता के बल पर स्त्रियों की पुरुषों पर निर्भरता कम हुई है। तथा महिलाएँ पहले से अधिक सशक्त हुई हैं, परंतु यह आधी आबादी का आधा सच है। आज भी अनपढ़, ग्रामीण, निम्न वर्ग की महिलाओं की ज़मीनी स्थिति पहले से कुछ अधिक नहीं बदली है। ग्रामीण महिलाएँ स्थानीय निकायों में पद प्राप्त कर भी लेती हैं, तो वास्तविक शक्तियाँ व अधिकार उनके पतियों के हाथों में ही रहते हैं। सरपंच पति, प्रधान पति ऐसे ही प्रचलित असंवैधानिक पद बन गए हैं। स्त्री जीवन की इन सच्चाइयों को उजागर करते हुए हिंदी गज़लकार कहते हैं-

“खेल में कूद में जंग में हर जगह

किस दिशा में मिली लड़कियाँ अब नहीं।”⁵⁹

(किशन तिवारी)

*** *** *** ***

“बस यही था ना कि मुँह में आग देने वाला कौन!

फ़र्ज मरघट पर निभाने आ रही हैं बेटियाँ।”⁶⁰

(देवेंद्र आर्य)

*** *** *** ***

“वो जब से हो गई है स्वावलंबी

वो तब से मर्द की जागीर कम है।”⁶¹

(जहीर कुरेशी)

“लछमिनिया थी चुनी गयी परधान मगर

उसका "पती-प्रधान" देखकर आया हूँ।”⁶²

(डी. एम. मिश्र)

4.1.2.4 वृद्ध

पारंपरिक भारतीय पारिवारिक संरचना में वृद्धजनों की प्रतिष्ठित प्रस्थिति थी। जिसके पीछे सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं धार्मिक कारकों की अनुकूलता रही है। औद्योगीकरण, नगरीकरण, पाश्चात्यकरण व आधुनिकीकरण के कारण वृद्धों के अनुकूल परम्परागत सामाजिक-सांस्कृतिक-आर्थिक संरचना में व्यापक बदलाव आता है। जिससे वृद्धों की सम्मानित स्थिति में गिरावट आती है। आधुनिकता के नवीन मूल्यों की आदी होती नई पीढ़ी में वृद्धों के साथ स्वस्थ-मधुर वार्तालाप तथा सहानुभूति व प्रेमपूर्ण व्यवहार के बजाय उनके प्रति उदासीनता, विमुखता और उपेक्षा की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। और वृद्ध लोग जीवन की साँझ में शारीरिक, मानसिक, मनोवैज्ञानिक व आर्थिक समस्याओं के साथ तिरस्कार, अपमान और उपेक्षा के स्याह साए में जीने को मजबूर हो रहे हैं। या एकाकी जीवन जीने के लिए अभिशप्त हो रहे हैं। परिजनों द्वारा वृद्धों को ताने देना, डाँटना, धमकाना, गालियाँ देना, उपहास करना एवं अपमानित करना आज हर घर के बुजुर्गों के साथ होने वाली आम कहानी हो गई है। अपने ही बेटों के घरों में सम्मानपूर्वक स्वतंत्रता से साँस लेना भी आज वृद्धों के लिए दूभर हो गया है। ये अपमानजनक स्थितियाँ वृद्धों के हृदय को छलनी कर देती हैं, उन्हें भावनात्मक रूप से तोड़ देती हैं। और वृद्ध लोग अपनी अशक्त स्थितियों के चलते खून के आँसू रोने व अपमान के घूँट पीने के लिए विवश हैं। हिंदी शायर वृद्धों की पीड़ादायक एकाकी और उपेक्षित जीवन स्थितियों पर कहते हैं-

“सभी कुछ था जिनका नहीं कुछ भी उनका

अगर कुछ बचा है तो ताने बचे हैं।”⁶³

(रामकुमार कृष्णक)

*** *** *** ***

“जुबाँ भी है, बहुत बातें भी हैं, पर मौन रहती है

सभी दिन भर सुनाते फिर भी माँ कुछ कह नहीं पाती।

हजारों दुख सहे हैं उम्र भर औलाद की खातिर

बुढ़ापे में वो बच्चों की रुखाई सह नहीं पाती।”⁶⁴

(वशिष्ठ अनूप)

*** *** *** ***

“कुछ गूँगे विद्रोह थे, संतानों के पास

मात-पिता कम ही गए, तूफानों के पास।”⁶⁵

(जहीर कुरेशी)

*** *** *** ***

“कमरे के एकान्त में, जग कर सारी रात

एकाकी बूढ़े करें, यादों से संवाद।”⁶⁶

(जहीर कुरेशी)

आधुनिकता के इस दौर में भौतिकवादी, उपभोक्तावादी, अर्थवादी व वैयक्तिक सुखवादी मूल्यों के बढ़ जाने के कारण पारिवारिक रिश्ते-नाते व संबंध भी स्वार्थ एवं उपयोगितावाद पर आधारित हो गए हैं। उपयोगितावाद के संदर्भ में वृद्ध हाशिए पर आ जाते हैं और परिवार के सदस्यों के उत्पादक मूल्यों के अनुरूप व्यवहार करने वाले समकालीन समाज में उन्हें अनावश्यक बोझ के रूप में देखा जाता है। उपयोगितावादी दृष्टिकोण से संचालित आधुनिक शुष्क हृदय यांत्रिक संतानों को आर्थिक रूप से कमजोर वृद्धों की देखभाल हर तरह से घाटे का सौदा प्रतीत होती है। यही कारण है कि आजकल एक ही पिता की एक से ज्यादा संतानों में माता-पिता का भी बँटवारा होने लगा है। यही नहीं, इससे भी शर्मनाक स्थिति यह है कि माता-पिता के खर्च व उनकी देखभाल को व्यर्थ का बोझ समझकर बहुत से कलियुगी श्रवण कुमार अपने माँ-बाप को बुढ़ापे और बीमारी की लाचार स्थिति में घर से बाहर निकाल देते हैं। वृद्धाश्रम में छोड़ आते हैं। इन स्थितियों पर हिंदी शायर लिखते हैं-

“लगे फल तो सब आ गए दौड़े-दौड़े / झड़े फूल-फल कोई अपना नहीं है।

सहारा था जो नौजवानी में सबका / बुढ़ापे में कोई सहारा नहीं है।”⁶⁷ (वशिष्ठ अनूप)

*** *** *** ***

“बोझ का पर्वत है बूढ़ा बाप बच्चों के लिए,

झिड़कियाँ मिलती हैं उसको रोज, आदर की जगह।”⁶⁸ (जहीर कुरेशी)

*** *** *** ***

“दिनों में इन दिनों माँ-बाप के होते हैं बँटवारे

कभी बीते दिनों ने ऐसा बँटवारा नहीं देखा।”⁶⁹ (वशिष्ठ अनूप)

*** *** *** ***

“एक बूढ़ा महीनों से बीमार है

और ऊपर से घर से निकाला गया।”⁷⁰ (वशिष्ठ अनूप)

औद्योगिकीकरण एवं नगरीकरण के कारण बदली नवीन पारिवारिक आर्थिक संरचना में परिवार की युवा पीढ़ी परंपरागत व्यवसायों से जुड़े रहने के बजाय उच्च शिक्षा व नौकरी पाने के लिए नगरों-महानगरों की ओर दौड़ने लगी हैं। वृद्ध माता-पिता को पीछे छोड़कर शहरों में जाने वाले ये युवा शहरों के ही होकर रह जाते हैं। वहीं अपनी अलग दुनिया बसा लेते हैं। अच्छे पैकेज की नौकरियाँ प्राप्त करके कई युवा विदेश चले जाते हैं और खूब धन कमाते हैं। परन्तु धन की आकाशी दौड़ में वे

यांत्रिक, संवेदनहीन एवं आत्मकेंद्रित बन जाते हैं। तथा अपने पीछे छोटे जीवन देने वाले अपने वृद्ध माता-पिता से भौतिक रूप से ज्यादा मानसिक रूप से दूर हो जाते हैं। महानगरों व विदेशों में बसे युवाओं को फोन पर भी अपने माता-पिता के हाल जानने की भी फुर्सत नहीं होती है। औपचारिकतावश कभी कभार आते भी हैं, तो अपने तथाकथित ज्ञान व छद्म आधुनिकता के दंभ में अपने बुजुर्ग माता-पिता को रूढ़िवादी तथा आउटडेटेड बताकर चले जाते हैं। ऐसे में बुजुर्ग माता-पिता की बेटों से मुखाग्नि पाने की आखिरी ख्वाहिश भी पूरी नहीं हो पाती है। हिंदी गज़लकार कहते हैं-

“पद-प्रतिष्ठा ने इतना बौराया / पुत्र अपने पिता को भूल गए।

जिसके जलने से ज्योति जन्मी है / दीप उस वर्तिका को भूल गए।”⁷¹ (जहीर कुरेशी)

“हम बूढ़ों को आँख दिखाकर चले गये / बेटे कब आये कब आकर चले गये।

अब वो नये जमाने की बातें करते / हमको गुजरा वक़्त बताकर चले गये।

इतनी ही बस जीवन की उपलब्धि रही/चार पड़ोसी चिता जलाकर चले गये।”⁷²

(डी. एम. मिश्र)

4.1.2.5 बाल समुदाय

बालक ही मानव समाज का कल होते हैं। जिस राष्ट्र के बालकों का बचपन जितना खुशहाल, समृद्ध व सुनहरा होता है, उन बालकों के साथ उस समाज-राष्ट्र का भविष्य भी उतना ही स्वर्णिम होता है। क्योंकि बाल्यावस्था ही भविष्य की आधारशिला होती है। अतः बालकों के उज्ज्वल भविष्य के लिए बचपन की खुशहाल व स्वस्थ जीवन दशाएँ आवश्यक है। किंतु आधुनिकता व उत्तर आधुनिकता के सामयिक दौर में अनेक कारणों से समाज के हर वर्ग के बच्चों से उनका बचपन छिनता जा रहा है। देश-दुनिया के बालक बचपन के अधिकारों व सुविधाओं से वंचित हो रहे हैं। बचपन की सुविधाओं एवं अधिकारों की प्राप्ति में सबसे बड़ी बाधा गरीबी है। गरीबी के कारण जहाँ एक ओर बहुत से बच्चों को भरपेट पौष्टिक भोजन, पसंदीदा कपड़े व खेल सामग्री नहीं मिलती है। तो दूसरी ओर बहुत से बच्चे माता-पिता की आर्थिक मजबूरियों के चलते स्कूल नहीं जा पाते हैं। जिससे उनका नैसर्गिक विकास प्रभावित होता है। गरीबी बच्चों को बाल श्रम की ओर धकेलती है। बालश्रम के संवैधानिक प्रावधानों के आदर्श से दूर व्यावहारिक धरातल पर आज भी निर्धनता एवं आर्थिक विवशताओं के चलते बहुत से बच्चे घरेलू काम धंधों के साथ दुकानों, होटलों एवं छोटे-मोटे कारखानों में काम करने को अभिशप्त है। कार्य स्थलों की कठिनाइयों

एवं मालिकों के अमानवीय व अपमानजनक व्यवहार से जूझते ये निर्धन बच्चे बचपन को अश्रुपूरित श्रद्धांजलि दे रहे होते हैं। फुटपाथी बस्तियों के बच्चे कूड़े-कचरे के ढेर में अपने बचपन की लाश के टुकड़ों को ढूँढते रहते हैं। जीवन की समृद्ध विकासी दशाओं के अभाव में ये बच्चे जीवन भर बौने व्यक्तित्व को ढोने के लिए अभिशप्त होते हैं। हिंदी ग़ज़लकार गरीबी व बालश्रम के कारण बचपन से वंचित बालकों की पीड़ा को व्यक्त करते हुए कहते हैं-

“हँसी फूलों की आँखों में नमी हैं हाथ में छाले
कई बच्चों के हिस्से में यहाँ बचपन नहीं होता।”⁷³ (वशिष्ठ अनूप)

*** **

“बहुत मासूम बचपन पीठ पर ढोता विवशताएँ
कहो उस पीठ पर भी एक बस्ता क्यों नहीं होता?”⁷⁴ (महेश अग्रवाल)

*** **

“जन्म से बोझ पा गये बच्चे/ पालने में बुढ़ा गये बच्चे।
डस्टबिन से उठा चले रोटी / लोरियों को गिरा गये बच्चे।
फूल जैसे सुबह गये घर से / राख हो शाम आ गये बच्चे।
बन गया एक और शीशमहल/ नींव में काम आ गये बच्चे।”⁷⁵

(शिवओम अंबर)

सामाजिक-आर्थिक विषमतापूर्ण समाज में जहाँ एक और निम्न वर्ग के बच्चे निर्धनता के कारण बचपन की खुशियों व शिक्षा के अधिकार से वंचित रह जाते तो हैं, तो दूसरी ओर आर्थिक रूप से संपन्न मध्यम व उच्च वर्ग के बच्चे अपने अभिभावकों के सपनों एवं महत्वाकांक्षाओं के दबाव के चलते कम उम्र में ही शिक्षा के अत्यधिक बोझ के कारण बचपन से वंचित हो जाते हैं। अपने माता-पिता की भाग-दौड़ एवं व्यस्तता भरी जिंदगी के कारण इन परिवारों के बच्चे बचपन के सर्वोत्तम पोषण माँ-बाप के प्यार-दुलार से वंचित रहते हैं। बचपन से वंचित बच्चों में एक वर्ग अनाथालय में पलने वाले अनाथ बच्चों का है, तो दूसरा बाल तस्करी के शिकार बच्चों का है। इन स्थितियों पर हिंदी शायर लिखते हैं-

“अपने सपनों को बच्चों पर लाद दिया/ हम बच्चों की इच्छाओं को भूल गए।
हमने देखा है-गुस्से के बीच कभी/ पापा सब मर्यादाओं को भूल गए।”⁷⁶(जहीर कुरेशी)

*** **

“मशीनें लोरिया देंगी तमाम बच्चों को

ये होगा हादसा इक्कीसवीं सदी के लिए।”⁷⁷

(ज्ञानप्रकाश विवेक)

*** **

“बस्ती के गुलमुहर सब उत्सव मना रहे हैं

और मैं अनाथ कीकर तन्हा खड़ा हुआ हूँ।”⁷⁸

(ज्ञानप्रकाश विवेक)

*** **

“सेवा की दूकान चलाता था

वह बचपन का सौदागर।”⁷⁹

(किशन तिवारी)

4.1.3 महा-नगरीय एवं ग्रामीण समाज का यथार्थ

भारतीय समाज को परिवेश के आधार पर मोटे तौर पर दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है- एक शहरी समाज और दूसरा ग्रामीण समाज। इन दोनों समाजों की अपनी-अपनी अलग जीवन दशाएँ व जीवन शैलियाँ हैं। हिंदी ग़ज़लकार ग्रामीण और शहरी जीवन का यथार्थपरक चित्रण कर भारतीय समाज का समग्र रूप में विश्लेषण करते हैं। उनकी सृजनात्मक चेतना को ग्राम्य जीवन का सौंदर्य जितना आकर्षित करता है, महानगरीय जीवन की विकृतियाँ उतनी ही उद्बलित करती हैं। गाँव, जहाँ आज भी भारतीय संस्कृति के वाहक बने हुए हैं; वहीं नगरीय एवं महानगरीय समाज पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित हो उसका अंधा अनुकरणकर्ता बन गया है। भौतिक विकास की दृष्टि से जहाँ शहर गाँवों से समृद्ध है, तो जीवन मूल्यों व जीवन सौंदर्य की दृष्टि से गाँव शहरों की अपेक्षा अधिक संपन्न है। शहरों में भौतिकता की चकाचौंध व भागम भाग है, तो गाँवों में सादगी-सरलता की शालीन रोशनी है। नगरीय खान-पान व रहन-सहन जहाँ पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित व आधुनिक है, तो ग्रामीण खानपान व रहन सहन परंपरागत देशी अंदाज का। गाँव का वातावरण प्राकृतिक सौंदर्य से भरपूर व शुद्ध ताजी हवा से युक्त स्वास्थ्य की दृष्टि से उत्तम है, तो शहरी परिवेश भीड़भाड़ व औद्योगीकरण के कारण प्रदूषण से युक्त व स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। हिंदी ग़ज़लकार ग्रामीण व शहरी जीवन की विभिन्नताओं-विशेषताओं को उजागर करने के साथ विभिन्न कारणों से शहरों व गाँवों के उजड़ते जीवन सौंदर्य के प्रति चिंता प्रकट करते हैं और उसे बचाने की वकालत करते हैं।

“अब तरक्की की सड़क पर भागता जाए नगर

और हुक्का पी रहा है गाँव इत्मीनान से।”⁸⁰

(हरेराम समीप)

*** *** *** ***

“इस शहर में तो लोगों में हैं दूरियाँ बहुत
पर, मेल-जोल गाँव में, कस्बे में देखिये।”⁸¹

(डी. एम. मिश्र)

*** *** *** ***

“खैर मनाओ झोपड़ियों में बच्चे ज़्यादा हैं / भरे ताल, वीरान महल से अच्छे ज़्यादा हैं।
गाँवों में सादगी और ताजी हरियाली है/शहर में बासी हुस्नों के बस नखरे ज़्यादा हैं।”⁸²

(डी. एम. मिश्र)

“वो गाँव में थी तो लज्जा था उसका आभूषण
शहर में बसते ही 'लाजो' को लाज आई नहीं।”⁸³ (जहीर कुरेशी)

*** *** *** ***

“शहर से तुम सभी आये हुए हो / हमारे गाँव में सब ही नये हो।
यहाँ ताजी हवा का लुत्फ तो लो / प्रदूषण झेलकर सब पक गये हो।
महेरी का मजा लो दूध के संग / कहाँ पिज्जा औ बर्गर में फँसे हो।
बंधे बी.पी., सुगर के संक्रमण से / न जाने कितने रोगों से घिरे हो।”⁸⁴

(महेश कटारे सुगम)

महानगरीय जीवन की विडंबना है कि यहाँ व्यक्ति बड़ी आबादी के बीच भी अकेलेपन व अजनबीपन का शिकार होता है। वह भीड़ के बीच भी भटका हुआ सा रहता है। लोगों की बड़ी तादाद में भी तन्हा रहता है। यहाँ व्यक्ति अपनी वास्तविक पहचान व चेहरा खो बैठता है और अपनों के बीच भी अपरिचित व अजनबी सा बना रहता है। शहरों की यांत्रिक जीवन शैली में भीड़ के बीच भी काम के बोझ तले दबा आदमी अपने आप को बहुत असहाय व अकेला महसूस करता है। इस अकेलेपन का कारण है कि शहरों में हर कोई अपने आत्मकेंद्रित साँचों में कैद होता है। और उसे अपने आसपास की कोई खोज खबर नहीं रहती है। एकाकीपन व अजनबीयत का शिकार शहरी आदमी आत्मनिर्वासन की पीड़ा भोगता है। तथा साँसों का भार ढोने वाली जिंदा लाश बन जाता है। गज़लकार कहते हैं-

“भीड़ भरे हर महानगर में तन्हा था / जो भी मुझको मिला शहर में तन्हा था।
तन्हाई का आलम यह था रस्ते में / हर कोई इन्सान सफ़र में तन्हा था।”⁸⁵

(माधव कौशिक)

“चाहतों का खेल है या भीड़ का जादू
हर समय ही इक अकेलापन ये मुझमें है।”⁸⁶

(विनय मिश्र)

*** *** *** ***

“महानगर की इसी बात ने डराया है

जिसे भी देखिए यारो वही पराया है।”⁸⁷

(ज्ञानप्रकाश विवेक)

*** *** *** ***

“सबके सब अपने बदन के सीखचों में कैद हैं

कोई दरवाजा शहर में अब बिना सांकल कहां।”⁸⁸

(माधव कौशिक)

*** *** *** ***

“अमीरे शहर की हमने कई उपलब्धियाँ देखी

कि मुर्दा जिस्म देखे और ज़िन्दा वर्दियाँ देखी।”⁸⁹ (ज्ञानप्रकाश विवेक)

शहरों या महानगरों में भौतिक उन्नति के कई साधन व संभावनाएँ विद्यमान होती हैं। लेकिन भौतिक उन्नति में सहायक ये संसाधन महानगरीय जीवन के लिए वरदान से कहीं अधिक अभिशाप बन जाते हैं। महानगरीय मानव भौतिकता की मृगतृष्णा में दिन-रात भटकता है। भौतिक सुखों व धन की इस अंधी दौड़ में परिवार व सारे रिश्ते-नाते उससे पीछे छूट जाते हैं। तथा वह हर समय बदहवासी व बेचैनी में जीता है। वह जीवन का वास्तविक अर्थ, सुख एवं जीने का सही तरीका भूल बैठता है। और एक निश्चित दिनचर्या पथ पर ऑटोमेटिकली दौड़ लगाने वाली मशीन बनकर रह जाता है। एक तरह से महानगरीय संस्कृति में व्यक्ति का पदार्थीकरण व अमानवीकरण हो जाता है। महानगरीय सोच व दिमागी कसरत का जिस तीव्र गति से विस्तार हो रहा है। लोगों का हृदय उतना ही संकुचित होता जा रहा है। महानगरों के उन्मुक्त वातावरण में वैयक्तिक विकास की प्रतिस्पर्धा तथा स्वार्थी प्रवृत्ति ने व्यक्ति को आत्मकेंद्रित, असामाजिक, अमानवीय एवं संवेदनहीन यंत्र बना दिया है। लोगों के दिल में अपने आसपास के लोगों के सुख-दुख में सच्ची संवेदना या सहानुभूति के लिए भी जगह नहीं बची है। उसमें भी औपचारिकता व बनावटीपन देखने को मिलता है। भौतिक प्रतिस्पर्धा ने पड़ोस कल्चर को समाप्त कर दिया है और पड़ोसियों के प्रति व्यवहार ईर्ष्या-द्वेष से युक्त हो गया है। महानगरीय लोगों में अर्थ की आकांक्षी आकांक्षा में अनैतिक तरीकों से धन कमाने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। जिससे चोरी, डकैती, अपहरण, हत्या जैसी अपराधी प्रवृत्तियाँ वहाँ तेज गति से बढ़ रही हैं। इस कारण नगरों-महानगरों का वातावरण दहशतपूर्ण हो रहा है। ऐसा लगता है कि तथाकथित सभ्यता और आधुनिकता के केंद्र बने नगर और महानगर आदिम जंगली संस्कृति की ओर दौड़ रहे हैं। “महानगरों का तथाकथित आधुनिक और प्रगतिशील

वातावरण अपनी ऊपरी चमक-दमक से हमें भले ही आकर्षित क्यों न करे, किन्तु भीतर ही भीतर उसने अन्याय, झूठ, छल, स्वार्थ, भ्रष्टाचार, प्रदर्शन और शोषण की जो दीवारें खड़ी कर दी हैं, उन्होंने हमारे विश्वासों और मूल्यों को ही डगमगा दिया है।⁹⁰ शहरी परिवेश में व्याप्त इन विसंगतियों के बीच एक सुखद सच्चाई यह है कि शहरों में मानवीयता व मूल्य पूरी तरह समाप्त नहीं हुए हैं, क्षीण रूप में ही सही पर अभी मौजूद हैं। हिंदी ग़ज़लकार लिखते हैं-

“हरेक शख्स यहाँ प्यास के असर में है
कि एक रेत का दरिया मेरे शहर में है।”⁹¹ (ज्ञानप्रकाश विवेक)

*** **

“क्या हुआ, हँसते हुए लोगों को सड़कें खा गईं
सिर्फ पथराए हुए चेहरे नगर में रह गए।”⁹² (माधव कौशिक)

*** **

“सिकुड़ती जा रही है दिल की दुनिया,
नगर विस्तार होता जा रहा है।”⁹³ (वशिष्ठ अनूप)

*** **

“मानवी अनुबंध तोड़े शहर में / हो गये रिश्ते हथोड़े शहर में।
भर गई बारूद उनकी साँस में / पाँव नंगे जो भी दौड़े शहर में।
खून का कतरा किसी में भी नहीं / हमने सबके दिल निचोड़े शहर में।
इस कदर सिमटे हैं अपनी कोख में / लोग अपना तन सिकोड़े शहर में।
देखकर यह जिंदगी की भाग दौड़ / हो गये सारे भगोड़े शहर में।”⁹⁴
(माधव कौशिक)

“शहर लगने लगे घने जंगल,
कैसे कह दूँ कि लोग वन में नहीं।”⁹⁵ (जहीर कुरेशी)

*** **

“इसे मुरदों का टीला फिर न कहना
अभी कुछ लोग ज़िन्दा हैं नगर में।”⁹⁶ (माधव कौशिक)

भारत की आत्मा गाँवों में बसती है। और इसलिए भारतीय समाज का चित्र ग्रामीण जीवन के चित्रण के बगैर अधूरा है। हिंदी ग़ज़लकारों को ग्रामीण जीवन और उसका सौंदर्य विशेष आकर्षित करता है। इसीलिए हिंदी ग़ज़ल में ग्राम्य जीवन का सौंदर्य, वहाँ की परंपराएँ व परिस्थितियाँ तथा वैश्वीकरण के दौर में अनेक कारणों से

गाँवों के उजड़ते परम्परागत सौंदर्य के प्रति चिंता का स्वर मुखरित हुआ है। आज़ादी के बाद हमारे देश ने हर क्षेत्र में प्रगति की है, लेकिन यह विकास असमानता लिए हुए है। औद्योगीकरण व अन्य कारणों से जहाँ शहरों का तीव्र गति से बड़े पैमाने पर विकास हुआ है, वहीं गाँव अभी भी अपेक्षाकृत बहुत पिछड़े हुए हैं। दूरस्थ गाँवों में अभी भी बिजली, पानी, सड़क जैसी आधारभूत सुविधाएँ नहीं पहुँची है तथा गाँवों के लोग आज भी अच्छी जीवन दशाओं के लिए संघर्ष कर रहे हैं। गाँव में उद्योग धंधों तथा रोजगार के साधनों का अभाव है। तथा परंपरागत व्यवसायों के नष्ट होने व कृषि के घाटे का सौदा होने के कारण युवा पीढ़ी का गाँवों से मोह भंग हो रहा है। और युवा वर्ग शहरों की ओर पलायन कर रहा है। इससे गाँव खाली हो रहे हैं और गाँवों का स्वरूप बदल रहा है। हिंदी गज़लकार लिखते हैं-

“तरक्की पर है अपना मुल्क ऐसा कह रही दिल्ली

यहाँ कंगाल-सा आँसू बहाता गाँव अब भी है।”⁹⁷

(वशिष्ठ अनूप)

*** *** *** ***

“गाँव में सड़कें नहीं, बिजली नहीं, पानी नहीं

और दुल्हन सी सजी हर राजधानी देखिए।”⁹⁸

(महेश कटारे सुगम)

*** *** *** ***

“जवाँ जैसे हुए बच्चे शहर की ओर भागे / हमारे गाँव का दस्तूर होता जा रहा है।

हमारा गाँव कैसे गाँव रह पाये बताओ / बदलने के लिए मजबूर होता जा रहा है।”⁹⁹

(डी. एम. मिश्र)

शहरों में, जहाँ भौतिकता की चकाचौंध है; वहीं गाँवों में प्राकृतिक व सामाजिक सौंदर्य तथा जीवन मूल्यों की स्वर्णिम चमक है। ग्रामीण संस्कृति शाश्वत मूल्यों की वाहक है। वहाँ प्रेम, दया, करुणा, सत्य, अपरिग्रह, परोपकार, संवेदनशीलता, ईमानदारी जैसे मानवीय मूल्य व मानवता अभी जिंदा है। ग्रामीण जनों का प्रेम, परिवार और समाज से आगे मानवेत्तर प्राणियों और प्रकृति तक विस्तृत है। पारिवारिक एवं सामाजिक सौंदर्य में भी गाँव शहरों से उन्नत है। वहाँ संयुक्त परिवारों का प्रचलन है तथा पारिवारिक रिश्ते आत्मीयता, अपनेपन एवं प्रेम की प्रभा से दीप्तिमान है। तमाम अभावों और संघर्षों के बावजूद ग्रामीण लोग संयुक्त परिवार की तरह रहते हैं। और एक दूसरे के सुख-दुख के सहभागी व सहयोगी बनते हैं। सामाजिक समरसता, भाईचारा, सौहार्द, मैत्री जैसे संस्कार वहाँ के सामाजिक जीवन की शोभा है। ग्रामीण लोगों में निश्छलता, सच्चाई, सरलता तथा खानपान व रहन-सहन की सादगीपूर्ण

सुंदरता है। अभावों व कष्टों के बावजूद ग्रामीणों में जीवन के प्रति अटूट आशावाद, अदम्य जिजीविषा, तीज-त्योहारों के प्रति उल्लास-उत्साह तथा लोकगीतों और लोकनृत्यों की जीवंत परम्परा वहाँ के उल्लासपूर्ण जीवन सौंदर्य को प्रतिबिम्बित करती है। गाँव खेत-खलिहानों, फसलों और प्रकृति के सौंदर्य के साथ किसानों-मजदूरों के श्रम सौंदर्य के चित्रों से भी सजे-सँवरे हैं। कुल मिलाकर भौतिक रूप से पिछड़े होने के बावजूद भी गाँव हर दृष्टि से सुषमावान है। यही गाँवों की मूल आत्मा है और यही हिंदी ग़ज़लकारों के ग्राम्य-प्रेम का आधार है। ग्राम्य सौंदर्य का चित्रण करते हुए हिंदी ग़ज़लकार कहते हैं-

“फूल खुशबू तितलियाँ अब भी हैं मेरे गाँव में / नेह की पुरवाईयाँ अब भी हैं मेरे गाँव में।
आपदा-विपदा को भी सब बाँट लेते हैं यहाँ / दर्द सँग खुशहालियाँ अब भी हैं मेरे गाँव में।
अहद पर अबभी हैं मरते, पाप से डरते हैं लोग/अनगिनत अच्छाईयाँ अबभी हैं मेरेगाँव में।
अबभी किस्से-लोरियाँ सुनते हैं बच्चे शामको/घरों में अंगनाइयाँ अबभी हैं मेरे गाँव में।”¹⁰⁰

(वशिष्ठ अनूप)

“पल-पल परिवर्तित होते प्रतिमानों के युग में
शाश्वत-मूल्यों की पहरेदारी है माटी मेरे गाँव की।
गमले नागफनी के नागर संस्कृति की प्रतिकृतियाँ हैं
हरसिंगारों की क्यारी है माटी मेरे गाँव की।
व्यंग्यों-विदुषों की बस्ती के बाशिन्दे क्या जाने
आशीषों की फुलवारी है माटी मेरे गाँव की।”¹⁰¹

(शिवओम अंबर)

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के बाद गाँवों के सामाजिक-सांस्कृतिक-आर्थिक जीवन में बड़ी तेजी से परिवर्तन हुआ है। वैश्वीकरण और सूचना क्रांति के कारण नगरीय सभ्यता-संस्कृति एवं भौतिकतावादी जीवन शैली गाँवों तक पहुँची है। ये भौतिक बदलाव गाँव के मूल ढाँचे और उसके आत्मिक सौंदर्य के लिए अभिशाप साबित हुए हैं। और इनके कारण ग्राम्य जीवन का पारिवारिक, सामाजिक एवं मूल्यगत सौंदर्य क्षरित हुआ है। नगरीय संस्कृति के गाँवों में प्रसार के साथ नगरीय जीवन के विद्रूप पहलू ग्रामीण संस्कृति में और भी अधिक विद्रूपता के साथ उभरकर उसके सौंदर्य को नष्ट कर रहे हैं। भौतिक-आर्थिक महत्वाकांक्षाओं ने गाँवों में भी संयुक्त परिवार प्रथा को विभक्त परिवारों में बदल दिया है। तथा रिश्तों की आत्मीय ऑक्सीजन को सोख लिया लिया है। पारिवारिक मूल्यों के साथ नैतिक एवं मानवीय मूल्यों का भी हास हुआ है। भौतिक समृद्धि जितनी बड़ी है, मूल्यों की कंगाली भी

उतनी ही पसरी है। प्रेम, दया, त्याग, अपरिग्रह, संतोष, सहयोग, संवेदनशीलता, सत्य व ईमानदारी जैसे मूल्यों का विस्थापन घृणा-नफरत, ईर्ष्या-द्वेष, असंतोष, संवेदनशून्यता, झूठ, बेईमानी जैसे दुर्गुणों से हो रहा है। सादगी, सरलता, भोलापन, निष्कपटता के स्थान पर चालाकी, छल-कपट, बनावटीपन और मुखौटावादी प्रवृत्ति बढ़ रही है। गाँवों का सामाजिक सौंदर्य भी बिगड़ने लगा है। सामाजिकता पर आत्मकेंद्रितता हावी होती जा रही है। गाँवों की चौपालें- जो कभी सामाजिक समरसता, आपसी मेलजोल तथा गाँव के समाचारों और सुख-दुख का साझा केंद्र हुआ करती थी, अब लगभग समाप्त हो गई हैं। गाँवों के सामाजिक सौंदर्य के नष्ट होने का एक कारण विद्रूप राजनीति की पंचायती राजव्यवस्था के माध्यम से गाँवों तक पहुँच भी है। जिसके कारण वहाँ भी राजनीतिक उठापटक, चालबाजी, षड्यंत्र एवं दाँव-पेंच चलने लगे हैं। जिससे गाँवों में सामाजिक सौहार्द, एकता व भाईचारे के स्थान पर कटुता, द्वेष और गुटबाजी बढ़ रही है। हिंदी गज़लकार गाँव के बदरंग होते स्वरूप के बारे में लिखते हैं

“गाँव इतना ज़ियादा बदल जाएगा मैंने सोचा न था

वो शहर से भी आगे निकल जाएगा मैंने सोचा न था।”¹⁰² (ज्ञानप्रकाश विवेक)

*** *** *** ***

“गाँव से गाँव की खूबियाँ खो गई

मुझसे जो भी मिला वह सयाना मिला।”¹⁰³ (वशिष्ठ अनूप)

*** *** *** ***

“चौपालों की चर्चाओं को भूल गए।

लोग गाँव की भाषाओं को भूल गए।”¹⁰⁴ (जहीर कुरेशी)

*** *** *** ***

“चौपालों के रंग सुनहरे कहाँ गये/ हँसी ठिलोली करते बूढ़े कहाँ गये?

सभी मुखौटे पहने घर से निकले हैं / सोच रहा हूँ असली चेहरे कहाँ गये।

कल तक दिल में धड़कन बनकर रहते थे/प्यार-मुहब्बत के वे जज़बे कहाँ गये?”¹⁰⁵

(माधव कौशिक)

“राजनीति की काली काली करतूतें/ मचा रहीं उत्पात हमारे गाँवों में।

गली गली में सत्ता है षड्यंत्रों की /घायल हैं जज्बात हमारे गाँवों में।

सत्य अहिंसा दीन धर्म ईमानों की / रोज हो रही मात हमारे गाँवों में।

मरहम के बदले में ताजे ज़ख्मों की / रोज मिले सौगात हमारे गाँवों में।”¹⁰⁶

(महेश कटारे सुगम)

सूचना क्रांति के साथ बाज़ारवाद महानगरों व नगरों की सीमा को लाँघकर गाँवों तक पहुँच गया है। बाज़ारवाद एवं उसके द्वारा पोषित उपभोक्तावादी संस्कृति ने ग्रामीण जीवन शैली को व्यापक स्तर पर प्रभावित किया है। बाज़ारवाद ने गाँवों के लोगों की आवश्यकताओं एवं महत्वाकांक्षाओं को बढ़ाया है, जिससे भौतिक और उपभोक्तावादी वस्तुओं के संग्रह की प्रवृत्ति में वृद्धि से उनकी भौतिक दुनिया का विस्तार हुआ है। जिसके परिणामस्वरूप ग्रामीणों में शांति और संतोष के स्थान पर असंतोष और बेचैनी बढ़ी है। उपभोक्तावाद के कारण आरामपसंद और विलासी जीवन शैली का प्रचलन बढ़ रहा है, जिससे ग्रामीणों में श्रम के प्रति आस्था कम होने लगी है। बाज़ारवाद व उपभोक्तावाद ने अर्थ के महत्व को अप्रत्याशित रूप से बढ़ाया है, जिससे गाँव के लोगों की नजरों में भी मूल्यों से ज्यादा मूल्य पैसों का हो गया है। आर्थिक एवं भौतिक महत्वाकांक्षाओं ने ग्रामीणों में प्रतिस्पर्धा-प्रतियोगिता को जन्म दिया है, जिससे वहाँ भी पड़ोस संस्कृति समाप्त हो रही है। तथा पड़ोसियों में ईर्ष्या-द्वेष और जलन की भावनाएँ उत्पन्न हो रही हैं। बाज़ारवाद के कारण गाँवों में भी परंपरागत खान-पान, रहन-सहन के स्थान पर नगरीय खानपान और रहन-सहन का प्रचलन हो रहा है। गाँव, जो पहले खाद्यान्न व अन्य जीवन आवश्यकताओं की दृष्टि से आत्मनिर्भर थे, अब बाज़ारी चीजों पर निर्भर होते जा रहे हैं। यहाँ तक की दूध और दूध निर्मित जिन उत्पादों के लिए गाँवों की पहचान थी, उनके स्थान पर वहाँ भी डिब्बाबंद दूध-घी का उपयोग होने लगा है। बाज़ारवाद व पाश्चात्यवाद के कारण सादगीपूर्ण जीवन शैली एवं रहन-सहन के स्थान पर तड़क-भड़क वाली जीवन शैली प्रचलन में आने लगी है। गाँवों में हो रहे इन बदलावों को हिंदी गज़लकार यूँ लिखते हैं-

“गाँव तक आ ही गया बाज़ारवाद,

गाँव के लोगों की दुनिया बढ़ गई।”¹⁰⁷

(जहीर कुरेशी)

*** *** *** ***

“अब दलानों में नहीं मिलती पुरानी खाट वो

अब शहर जैसी कहानी गाँव में भी देखिये।”¹⁰⁸

(डी. एम. मिश्र)

*** *** *** ***

“नहीं रहा अब गाँव सुकू देने वाला / बड़ी कठिन जिंदगी हुई कोलाहल में

तब तलाशते पशु मेले में मुरा भैंस / करें सर्च अब ताजा मक्खन गूगल में।”¹⁰⁹

(डी. एम. मिश्र)

“हमारा गाँव कैसा हो गया है / कि इसका इश्क पैसा हो गया है
नफ़ा के सूत्र उसने ढूँढ़ रक्खे / कि साहूकार जैसा हो गया है।”¹¹⁰ (महेश कटारे सुगम)

*** *** *** ***

“किसी जन्नत से जाकर हुस्न की दौलत उठा लाये
हमारे गाँव से क्यों सादगी लेकिन चुरा लाये।”¹¹¹ (डी. एम. मिश्र)

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि वैश्वीकरण, बाज़ारवाद एवं सूचना तकनीक के प्रसार के कारण गाँवों का परम्परागत स्वरूप व यथार्थ बदल रहा है तथा ग्रामीण जीवन का सौंदर्य नष्ट हो रहा है। रोजगार की तलाश एवं शहरी चकाचौंध के आकर्षण से गाँव से लोगों का शहरों की ओर निरंतर पलायन हो रहा है। आधुनिकता के कारण पढ़ी-लिखी नयी युवा पीढ़ी गाँव में रहने को पिछड़ेपन व गँवारुपन का प्रतीक मानने लगी है और वह शहरों की ओर दौड़ रही है। सूचना क्रांति और शहरों में जाने वाली इस पीढ़ी के साथ महानगरीय भौतिकवादी संस्कृति और बाज़ारवादी संस्कृति गाँवों तक पहुँच रही है, जिससे गाँवों में कई नकारात्मक परिवर्तन हो रहे हैं और गाँवों का परंपरागत जीवन सौंदर्य नष्ट हो रहा है। हिंदी गज़लकार इस सौंदर्य के नष्ट होने से चिंतित है। उन्हें आज भी ग्राम्य संस्कृति का सौंदर्य आकर्षित करता है। और वे गाँवों की पारिवारिक, सामाजिक एवं मानवीय मूल्यों की हरियाली और सुंदरता के साथ प्राकृतिक हरियाली को बचाये रखने के आकांक्षी हैं। डी.एम.मिश्र कहते हैं-

“गाँव में रहना कोई चाहे नहीं / धूप में जलना कोई चाहे नहीं
सेठ की जाकर करेंगे चाकरी / खेत में खटना कोई चाहे नहीं
गाँव में रहते नकारा लोग हैं / व्यंग्य यह सुनना कोई चाहे नहीं
गाँव है तो पेट को रोटी मिले / गाँव को वरना कोई चाहे नहीं।”¹¹²(डी. एम. मिश्र)

*** *** *** ***

“नम मिट्टी पत्थर हो जाये ऐसा कभी न हो/ मेरा गाँव, शहर हो जाये ऐसा कभी न हो।
खेत मेरा परती रह जाये कोई बात नहीं / खेत मेरा बंजर हो जाये ऐसा कभी न हो।
गाँव में जबतक सरपत है बेघर नहीं है कोई/सरपत सँगमरमर होजाये ऐसा कभी नहो।”¹¹³

(डी. एम. मिश्र)

4.1.4 समाज में बढ़ती अपराधवृत्ति एवं अराजकता

मानव समाज में अपराध एक सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक घटना रही है। हाँ, इतना ज़रूर है कि देश काल के अनुसार अपराध की प्रकृति व दर में परिवर्तन होता रहा है। समकालीन दौर में अपराध की प्रकृति में परिवर्तन के साथ उसकी आवर्ती

(दर) में चिंताजनक वृद्धि हुई है। भौतिकतावादी व उपभोक्तावादी अर्थ प्रधान इस युग में अर्थ व भोग को ही जीवन का लक्ष्य मान लेने के कारण अपराधवृत्ति एवं आपराधिक गतिविधियों में तेजी से बढ़ोतरी हुई है। और ये उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही हैं। निरंतर पल्लवित-पुष्पित होती यह अपराध वृत्ति आज समाज के लिए गंभीर समस्या बन गई है तथा सरकार व इंसानियत के लिए खतरनाक चुनौती और समाजशास्त्रियों के लिए एक गंभीर चिंतनीय स्थिति हो गई है। हमारा देश बुद्ध व गाँधी की अहिंसावादी नीति पर चलने वाला शांतिप्रिय देश रहा है। परन्तु आधुनिक काल में हत्या, हिंसा, बलात्कार व साइबर अपराधों का ग्राफ तेजी से बढ़ा है। आज कहीं भी किसी भी समय आपराधिक घटनाएँ और गतिविधियाँ होना आम बात हो गई हैं। जिससे समाज में अराजकता बढ़ती जा रही है। जिसे ग़ज़लकार यूँ लिखते हैं-

“है बढ़ रही अपराध की रफ्तार इन दिनों / ईमान बहुत लग रहा लाचार इन दिनों।
हर ओर है व्यभिचार का अम्बार इन दिनों/क्यों दहकता नहीं कोई अंगार इन दिनों।”¹¹⁴

(वशिष्ठ अनूप)

“हदों के पार होता जा रहा है/ समय खूँखार होता जा रहा है
शरारे उड़ रहे हैं हर गली में / शहर अंगार होता जा रहा है।”¹¹⁵

(वशिष्ठ अनूप)

“हमारा दौर हिंसक हो गया है
हर इक मंजर भयानक हो गया है।”¹¹⁶

(महेश कटारे सुगम)

*** **

“चारों ओर अराजकता है
ज़ख्मी हिंदुस्तान यहाँ पर।”¹¹⁷

(महेश कटारे सुगम)

अपराध एक असामान्य मानव व्यवहार है, जो समाज स्वीकृत व्यवहारों-मान्यताओं, सामुदायिक हितों एवं कानूनों के प्रतिकूल होता है, जिसे कारित करने वालों को दंडित करने का सरकार को अधिकार होता है। भारतीय दंड संहिता में अपराध को मानव शरीर, संपत्ति, लोक शांति व लेख संबंधी अनेक श्रेणियों में बाँटा गया है। भौतिकवादी व उपभोक्तावादी संस्कृति के समकालीन दौर में धन का अप्रत्याशित महत्व बढ़ जाने के कारण जहाँ एक ओर संपत्ति से संबंधित- चोरी, डकैती, लूट, धन के लिए हत्या व अपहरण जैसे अपराध बढ़े हैं, तो वहीं पाश्चात्य संस्कृति की भोगवादी प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलने से महिलाओं के खिलाफ होने वाले अपराधों जैसे बलात्कार, बलात्कार के बाद हत्या, एसिड अटैक, ऑनलाइन उत्पीड़न या

ब्लैकमेलिंग आदि में अतिशय वृद्धि हुई है। सूचना तकनीक के दौर में आर्थिक लेन-देन का डिजिटाइजेशन होने से साइबर फ्रॉड व आनलाइन ठगी जैसे साइबर अपराधों में तेजी से वृद्धि हुई है। अपराध वृत्ति में तेजी से हुई वृद्धि चिंताजनक है। पर इससे भी चिंता की बात यह है कि यह संगठित अपराध तंत्र का रूप धर व्यवसाय बनती जा रही है। आज अपराध संगठित उद्योग बन गया है तथा कुख्यात अपराधी इस जगत के उद्योगपति बन गये हैं। अपराधियों के गिरोह सक्रिय है। तथा गैंगस्टर विदेशों में बैठकर भी आपराधिक गतिविधियों को अंजाम दे रहे हैं। यह अपराध उद्योग इतना सशक्त हो गया है कि अपराध निरोधक तमाम कानूनों व पुलिस तंत्र के बावजूद आपराधिक गतिविधियाँ निरंतर बढ़ रही है। हिंदी गज़लकार कहते हैं-

“हत्या, चोरी, लूट, डकैती

यों तो चौकीदार बहुत है।”¹¹⁸

(महेश अग्रवाल)

*** **

“तरह-तरह के दिखे रोज 'नेट' पर हमले।

नई सदी में हुए आम 'साइबर हमले।”¹¹⁹

(जहीर कुरेशी)

*** **

“कुछ नये उद्योग पनपे हैं हमारे देश में

अपहरण, हत्या, डकैती, तस्करी की कोपलें।”¹²⁰

(वशिष्ठ अनूप)

*** **

“अपहरण था जुर्म कल तक आज इक उद्योग है

इस नयी तकनीक का भी बाहुबल अद्भुत लगा।”¹²¹

(विनय मिश्र)

समकालीन दौर में आपराधिक प्रवृत्ति वाले लोगों द्वारा अपराध को वृत्ति बना लिए जाने के कारण अपराधों की आवर्ती में बेतहाशा बढ़ोतरी हुई है। और बढ़ते अपराधों के कारण घर से गली, गाँव से शहर, संसद से सड़क तक कोई भी जगह अपराध मुक्त नहीं है। हर समय व हर जगह व्यक्ति पर अपराध का साया मँडराता रहता है। व्यक्ति ना घर में सुरक्षित है, ना घर से बाहर। दिन हो या रात, सुबह हो या शाम हर तरफ हर समय अपराधों का नंगा नाच व उत्सव होता रहता है। प्रतिदिन खून सने अखबार इन अपराधों के खतरनाक खूनी चेहरे को उजागर करते रहते हैं। आपराधिक घटनाएँ आज इतनी आम हो गई हैं कि अब लोगों को अपने आसपास या अपने सामने होती अपराधिक घटनाओं को देखकर या अखबारों में उनके समाचार

पढ़कर बिल्कुल भी हरकत एवं हैरानी नहीं होती है। अपराध और हिंसा की यह बढ़ती आग मानवता के लिए घातक है। गज़लकार कहते हैं-

“दिन-दहाड़े 'रेप' हत्याकांड, डाके,

आजकल सड़कें ये मंजर देखती हैं।”¹²²

(जहीर कुरेशी)

***| ***

“गुंडागर्दी सड़कों पर तो आम हुई

संसद ने भी ऐसा ही मंजर देखा।”¹²³

(महेश अग्रवाल)

*** **

“हर तरफ उत्सव मनाता

जानलेवा हादसा है।”¹²⁴

(विनय मिश्र)

*** **

“कब कहाँ कट जाये सिर अपना बदलते दौर में

हर जगह हमको नज़र आती है मक़तल की तरह।”¹²⁵

(महेश अग्रवाल)

*** **

“हत्या की हो या लूट की, कोई किसी की हो

अब चौकते नहीं हैं किसी भी खबर से हम।”¹²⁶

(माधव कौशिक)

*** **

“लूट, डकैती, ज़ोर, जुल्म से खौफ़ज़दा

खून सना अखबार दिखाई देता है।”¹²⁷

(महेशकटारे सुगम)

*** **

“क्या पता आदमी बचे न बचे

इन दिनों जिस तरह बढ़ी है आग।”¹²⁸

(विनय मिश्र)

समकालीन समाज में बढ़ती अपराधवृत्ति एवं अराजकता हिंदी गज़लकारों के अंतरतम को कचोटती है। उन्हें अपने आसपास होने वाले दंगों, हत्याओं व अपराधों की घटनाओं को देखकर भी मौन रहने वाले लोगों की चुप्पी हैरान करती है। तथा उनका मन-मस्तिष्क अनेक सवालों से जूझता है। वे लोगों को अपराधों व अपराधियों के खिलाफ आवाज उठाने के लिए प्रेरित कर ऐसे मूल्यजीवी समाज की प्रतिष्ठा करना चाहते हैं जिसमें व्यक्ति अपराध करने में शर्मिंदगी महसूस करें और गुनाह करने से बचे। गज़लकार लिखते हैं-

“देवियों और सज्जनों कुछ बोलिए

लूट हिंसा और दंगे देखकर।”¹²⁹

(विनय मिश्र)

*** **

“परीशां हूँ, बहुत हैरां हूँ, उलझा हूँ सवालों में

अंधेरा कब छटेगा, खौफ़ का मंज़र ये बदलेगा।”¹³⁰ (डी.एम.मिश्र)

*** **

“जरूर इस तरह का हो जमीर इन्साँ का

करे गुनाह तो वो शर्मसार हो जाये।”¹³¹ (डी.एम.मिश्र)

4.2 आर्थिक यथार्थ

अर्थ मानव जीवन की धुरी है। जीवन के सम्यक संचालन के लिए अर्थ अनिवार्य आवश्यकता है। इसीलिए हमारी सनातन संस्कृति में अर्थ को भौतिक सुखों का साधन मानते हुए पुरुषार्थ चतुष्टय में शामिल किया गया है। तथा उसे धर्म के अधीन रखते हुए धन के धर्मसम्मत यथावश्यक अर्जन एवं उपभोग पर बोल दिया गया। धन के सीमित संग्रह की यह अवधारणा आज हमारे समाज का पुराना सच बन गया है। आज का आर्थिक परिवेश व यथार्थ पूरी तरह से बदल गया है। भूमंडलीकरण और आर्थिक उदारीकरण के साथ देश में पूँजीवादी बहुराष्ट्रीय कंपनियों का आगमन होता है, जो अपनी आवारा पूँजी के सहारे बाज़ारवाद को प्रतिष्ठित करती है। बाज़ारवाद अपने मुनाफे के लिए उपभोक्तावादी जीवन शैली को प्रचारित-प्रसारित करता है। जिससे धन का महत्व अनंत गुना बढ़ जाता है। व्यक्ति की अर्थ की आकांक्षा अनंत व असीमित हो जाती है और येन-केन-प्रकारेण धन कमाना ही मानव का लक्ष्य बन जाता है। राजा से लेकर भिखारी तक हर व्यक्ति अर्थ के पीछे अंधा होकर दौड़ने लगता है। अर्थ की इस दौड़ में पूँजीवादी ताकतों के हाथों मेहनतकश की हितमारी और उनका आर्थिक शोषण होता है। जिससे समाज में आर्थिक विषमता बढ़ती है। अमीर और अमीर होते जाते हैं। और गरीब, गरीबी के दलदल में धँसते चले जाते हैं। पूँजीवाद और तकनीक के योग से मशीनीकरण को बढ़ावा मिलने एवं हस्तशिल्प व कुटीर उद्योगों के बंद होने से बेरोजगारी की समस्या बढ़ती जाती है। साथ ही पूँजीवादी एवं उपभोक्तावादी जीवन शैली के कारण महँगाई में वृद्धि होती है और आम आदमी का जीवन इस महँगाई के कारण बड़ा दुश्वार हो जाता है। आज़ादी के 77 साल बाद भी गरीबी, बेरोजगारी और महँगाई जैसी आर्थिक समस्याओं से हमारा समकालीन समाज जूझ रहा है। इस संबंध में डॉ. तीर्थेश्वर सिंह लिखते हैं, "भारत को राजनीतिक प्रतिष्ठा तो प्राप्त हुई, लेकिन उस प्रतिष्ठा को अक्षुण्ण रखने

के लिए जनता के सुखी जीवन हेतु उसके जीवन स्तर को उठाने के लिए अर्थ की आवश्यकता थी। भारतवर्ष में स्वतंत्रता प्राप्ति के तदन्तर अभाव, दरिद्रता, निरक्षरता और बेरोजगारी की समस्या को दूर करने के लिए राजनीतिक नेताओं के समक्ष समाज की दशा को परिवर्तित करने के लिए आयोजना की प्रभावशाली विधियों को चलाने की अनिवार्यता थी।¹³² यद्यपि इस दिशा में कदम बढ़ाए गए, लेकिन अपेक्षित उन्नति नहीं हुई। तथा ये समस्याएँ कमोबेश आज भी बनी हुई हैं। संक्षेप में कहें तो समाज का नियंता व संचालक बनता शक्तिशाली बाज़ारवाद, अर्थ की आकाशी दौड़, अमीरी और गरीबी की गहरी होती खाई, गरीबी से जूझता आम आदमी, दर-दर भटकता बेरोजगार युवा और महँगाई की मार में मरता मध्यम व निम्नवर्ग आज के समय का आर्थिक सच है। आर्थिक यथार्थ के अंतर्गत समकालीन आर्थिक यथार्थ के इन्हीं पहलुओं को उजागर किया गया है।

4.2.1 अर्थ की असीम एवं अतृप्त आकांक्षा

बाज़ारवादी व उपभोक्तावादी संस्कृति के सामयिक दौर में व्यक्ति की आकाक्षाएँ व आवश्यकताएँ अनंत हो गई हैं, जिनकी पूर्ति की दौड़ में उसकी अर्थ की अभीप्सा भी आकाशी हो गई है। और वह सैटेलाइट की तरह अर्थ ग्रह के दिन-रात चक्कर लगा रहा है। चाहे गरीब हो या अमीर, सभी नकदी के लिए नशोन्मत्त हैं; सभी रूपयों के रोगी हैं। हर कोई लक्ष्मी का लाजवाब लालची व पैसों का पुजारी बना हुआ है। बच्चों से लेकर बूढ़ों तक सभी धन-प्रेम में उन्मत्त हैं। पैसों की यह प्यास कभी पूरी नहीं होती है; अर्थ की इस अनुरक्ति से कभी तृप्ति नहीं होती है। ग्रहस्थ से लेकर संन्यासी तक, सेवक से लेकर स्वामी तक ऐसा कोई नहीं है, जिसे श्री से संतुष्टि हो गई हो। सरमाया के समुद्र में रहने वाले सेठ भी संतृप्त नहीं हैं। बल्कि वे और भी ज्यादा प्यासे हैं, क्योंकि अर्थ की यह अनल धनघृत से निरंतर उद्दाम होती है। जिनके पास जितनी अधिक संपत्ति है, वे दौलत के उतने ही बड़े दास हैं; संपत्ति के उतने बड़े सेवक हैं। कह सकते हैं कि समकालीन संस्कृति धन संस्कृति हो गई है। जिसमें व्यक्ति के जीवन संस्कार पूरी तरह से मौद्रिक हो गये हैं। तथा उसका व्यक्तित्व गणितीय हो गया है, जिसमें हर समय अंकों का जोड़-घटाव ही चलता रहता है। ग़ज़लकार समाज में अर्थ की बढ़ती अतृप्त लालसा के बारे में लिखते हैं-

“चल पड़ी कैसी हवा जो प्राणघातक हो गयी

आज की दुनिया तो दौलत की उपासक हो गयी।”¹³³ (महेश कटारे सुगम)

“दरिया जैसा बनना चाहे चुल्लू भर पानी
दरिया के सागर बनने की ख्वाहिश देखी है।”¹³⁴ (महेश अग्रवाल)

*** **

“बहुत सा धन कमा कर रख लिया है बेईमानी से
उन्हें दौलत की खातिर आज भी बीमार देखा है।”¹³⁵
(महेश कटारे सुगम)

“सरमाये से आसूदगी हासिल जिसे हुई ।
उस शख्स को जनाब मेरे रूबरू करें।”¹³⁶ (अदम गोंडवी)

*** **

“नये समय के लोगों की तुम फ़ितरत पूछ रहे हो
बीजगणित जैसा चेहरा है, अंकगणित किरदार।”¹³⁷ (ज्ञानप्रकाश विवेक)

वर्तमान दौर में अर्थ की आत्यंतिक होड़ एवं दौड़ का कारण है कि समकालीन मानव समाज संपत्ति के लिए तथा संपत्ति से ही संचालित है। जीवन के हर क्षेत्र में पैसे का बोलबाला है। इस कारण जीवन के मापदंड भी बदल गए हैं। और मूल्यों के स्थान पर मुद्रा समाज में इमेज (इज्जत) का सिंबल बन गई है। वर्तमान समाज में मुद्रा ही महत्त्व, पैसा ही प्रभाव, अर्थ ही अच्छाई, वित्त ही विवेक व पूँजी ही प्रतिभा का माप व आधार है। संपत्ति से ही समाज में सम्मान व स्थान है। पैसे वाले हर तरह से पात्र व प्रतिभावान समझे जाते हैं। डॉ. सुमन सिंह लिखती हैं, “आज की दुनिया में शक्तिशाली वह है जिसके पास धन है। आज की दुनिया में धर्म, ईमान, सत्ता, अधिकार, पद, मर्यादा सब कुछ धन के बल पर खरीदा जा सकता है। पैसे से आदमी को समाज में यश, आदर, स्नेह और प्रतिष्ठा मिलने लगी है।”¹³⁸ नीतिशतक में विवृत सभी गुण धन में निहित होते हैं, यही आज का मानक बन गया है। यही कारण है कि आज सदाचारियों एवं मूल्यजीवियों का उतना सम्मान नहीं है, जितना नैतिक-अनैतिक तरीकों से धन इकट्ठा करने वाले धनिकों का है। जिसके पास जितना धन है, वह उतना ही ज्ञानी, दानी व मानी है। आज पैसे से सब कुछ संभव है। पैसा ही सब पड़ावों (मंजिलों) का पायदान (सीढ़ी) है। इसीलिए हर व्यक्ति दौलत के पीछे अंधा होकर दौड़ रहा है। इस सच के बारे में हिंदी गज़लकार कहते हैं-

“आजकल धन की कसौटी पर सभी नापे गये
है वही अच्छा, कि जिसका खूब कारोबार हो।”¹³⁹ (हरेराम समीप)

“बड़ा आचरण, ज्ञान बड़ा सब पीछे रह जाता
बड़ा वही है जिसके पास में पैसे ज़्यादा हैं।”¹⁴⁰

(डी. एम. मिश्र)

*** *** *** ***

“मालो ज़र दौलत के दम पर ठाठ ए इँसा देखिए
बन गया दानिश मुनासिब और इज्जतदार भी।”¹⁴¹

(महेश कटारे सुगम)

*** *** *** ***

“सैकड़ों मंज़िलों की एक सीढ़ी
और वह सीढ़ी सिर्फ पैसा है।”¹⁴²

(देवेन्द्र आर्य)

आज आदमी ने अर्थ को ही जीवन का अर्थ मान लिया है; संपत्ति को ही जीवन का सार समझ लिया है। और धन को सुख का पर्याय मानकर वह उसके पीछे रेगिस्तान में रेत को पानी समझकर भटके हिरण की तरह दिन-रात दौड़ रहा है। अर्थ की इस अनंत दौड़ में उसका जीवन अर्थहीन व निस्सार होता जा रहा है। अर्थ के पीछे अंधा आज का आदमी यह भूल बैठा है कि जीवन के लिए धन है, न कि धन के लिए जीवन। धन जीवन रथ को चलाने के लिए आवश्यक तो है, लेकिन धन की अंधी दौड़ और धन के अत्यधिक बोझ के कारण भी जीवन रथ को चलाना दुश्वार हो जाता है। दुनिया में पैसा ऐसी चीज है जिसके न होने तथा अधिक होने दोनों में बुराई है। यही कारण है कि पैसे की दृष्टि से पहले की तुलना में समृद्ध होते हुए भी मानव समुदाय मानसिक रूप से जितना आज परेशान है, उतना पहले नहीं रहा। जिसके पास जितना अधिक पैसा है, वह उतना ही परेशान है; जितनी दौलत है, उतने दुख; जितने रुपये हैं, उतने ही रोग; जितना वित्त है, उतनी व्यथा वेदना; जितना अर्थ है, उतना ही अवसाद। परन्तु यह सब देखते, जानते, समझते हुए भी आज हर व्यक्ति द्रव्य पर द्रवित है और मुद्रा के लिए मदारी के बंदर की तरह नाच रहा है। पैसे की इस उछल कूद में वह जीवन की वास्तविक लय तान भूल रहा है; जीवन के माधुर्य पक्ष से वंचित हो रहा है; लक्ष्मी के लालच में उसके जीवन का सौंदर्य बिगड़ता जा रहा है; वित्त की अवांछित वांछा में वह वैभव के बावजूद जीवन की खुशियों व सुखों से वंचित हो रहा है। कल्दर के लिए दिन-रात भागम-भाग और बेचैनी भरी दौड़ में वह क्लांत हो रहा है; उसका सुख-चैन व नींद हराम हो रही है तथा वह चिंता, तनाव व अवसाद से ग्रस्त हो और अनेक बीमारियों का शिकार हो, अपनी अर्थी अपने कंधों पर खुद ढो रहा है। संक्षेप में पैसे के लिए पागल आज का मानव जीवन के सच्चे सुख

और उद्देश्य से भटक कर केवल मुद्रा मुद्रित करने वाली मशीन बन गया है। शायर कहते हैं-

“वो शख्स हर तरह से जो धनवान बहुत था,
सच ये था कि भीतर से परेशान बहुत था।”¹⁴³ (वशिष्ठ अनूप)

*** **

“आवश्यकता से अधिक, धन है केवल रोग,
कितने सारे रोग हैं, धनवानों के साथ।”¹⁴⁴ (जहीर कुरेशी)

*** **

“जो हैं दौलत की दौड़ में शामिल
नींद अपनी हARAM करते हैं।”¹⁴⁵ (महेश कटारे सुगम)

*** **

“खुद अपना विश्वास खो चुके बहुतेरे / जीवन का मधुमास खो चुके बहुतेरे
सुख से ज्यादा दौलत के अभिलाषी बन / जीवन का विन्यास खो चुके बहुतेरे।”¹⁴⁶
(महेश कटारे सुगम)

“ये ज़िन्दगी है इक तमाशबीन की तरह
है आदमी कमाई की मशीन की तरह।”¹⁴⁷ (महेश कटारे सुगम)

भारतीय सनातन संस्कृति में मानव धर्म एवं मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा सर्वोपरि रही है। परंतु अर्थ प्रधान वर्तमान युग में मूल्यों से अधिक महत्व मुद्रा का हो गया है। तथा धर्म से ऊपर धन हो गया है। आज आदमी का मूल्य उसके इंसानी आचरण व जीवन मूल्यों से नहीं बल्कि धन या पैसों से तय होने लगा है। इसलिए मुद्रा ही महत्वशाली मूल्य बन गई है; धन ही सबसे बड़ा धर्म हो गया है। आज आदमी की प्राथमिकता में मुद्रा है, न कि मूल्य या मानवता। और हर व्यक्ति धन के पीछे पागल होकर दौड़ रहा है। दौलत की यह दौड़ मानवीय मूल्यों व मनुष्यता की दुश्मन हो गई है। दौलत ने मूल्यों-सिद्धांतों-उसूलों को दुलती मार दी है। अर्थ की आत्यंतिक आकांक्षा इंसान व इंसानियत का गला घोट रही है। वित्त की चाहत समाज में विकारों को जन्म दे रही है। विपुल वित्त की वांछा में व्यक्ति विवेक खो रहा है। लक्ष्मी के लालच में उसे उचित अनुचित, पाप-पुण्य, ईमान-धर्म कुछ नहीं दिखाई दे रहा है। अर्थ की अभिलाषा आदमी के राम को अरण्य निर्वासन दे रही है और वह रावणी अनर्थ व अपराध कर रहा है। अकूत धन इकट्ठा करने के लिए आज इंसान इंसानी आचरण से गिरकर अनैतिक, अवैध व भ्रष्ट तरीके अपना रहा है। वह धन के

लिए झूठ, पाखंड, छल कपट, बेईमानी जैसे दुर्गुणों का सहारा ले रहा है तथा चोरी, डकैती, अपहरण व हत्या जैसे अपराधों को अंजाम दे रहा है। सार यह है कि मुद्रा की दौड़ में मानव, मानवीय मूल्य एवं मानवता सभी दम तोड़ रहे हैं।

“आप दौलत को धर्म कहते हो

आप से क्या हो वफ़ा की उम्मीद।”¹⁴⁸

(हरेराम समीप)

*** **

“गिरने की होड़ है या गिराने की होड़ है

पैसा किसी तरह भी कमाने की होड़ है।”¹⁴⁹

(जहीर कुरेशी)

*** **

“टांगे गये हैं सारे सिद्धांत खूटियों पर

रक्खे हैं शीश अपने दौलत की जूतियों पर।”¹⁵⁰

(महेश कटारे सुगम)

*** **

“चाहत में बस गयी हैं दौलत की चकाचौंधी

अब क्या हलाल देखे औ क्या हराम देखे।”¹⁵¹

(महेश कटारे सुगम)

*** **

“झूठे सुख का शोर हो गई है भैंये / पूँजी आदमखोर हो गई है भैंये।

मानवता के मूल्य मारने की धुन में / पूँजी अब बरज़ोर हो गई है भैंये।

पूँजी की इस चमक धमक के चक्कर / में मानवता कमज़ोर हो गई है भैंये।”¹⁵²

(महेश कटारे सुगम)

हिंदी शायर मानव समुदाय को धन की नरभक्षी अंधी दौड़ से बचाने के लिए उसे धन के बजाय इंसानियत की दृष्टि से अमीर बनने की नसीहत देते हैं। हरेराम समीप कहते हैं-

“दौलत नहीं बनाती इंसान को मसीहा

उसको बड़ा बनाए इंसान ही की चिंता।”¹⁵³

(हरेराम समीप)

4.2.2 आर्थिक विषमता की गहराती घाटी

आज़ादी के समय देश की आम जनता ने आर्थिक समता का जो स्वप्न देखा था, वह आज़ादी के 75 वर्षों बाद भी पूरा नहीं हुआ। बल्कि इसके विपरीत आर्थिक विषमता की खाई पहले से अधिक चौड़ी और गहरी हुई है और होती जा रही है। 1990 के बाद उदारीकरण व निजीकरण को बढ़ावा मिलने से आर्थिक असमानता तेजी से बढ़ी है। पूँजीवाद और निजीकरण के बढ़ने से देश के संसाधनों पर कुछ पूँजीपतियों

का एकाधिकार होता जा रहा है, जो अपने मुनाफे के लिए उनका अत्यधिक दोहन कर रहे हैं। जिससे अमीर और अमीर तथा गरीब और गरीब हो रहे हैं। तथा आर्थिक विषमता की खाई निरंतर गहरी हो रही है। आर्थिक असमानता में आय, धन और संपत्ति की असमानता शामिल है। आय की असमानता आय का असमान वितरण है। जिसमें काम के बदले प्राप्त मजदूरी, वेतन और निवेश से प्राप्त आय शामिल है। भारत विश्व में सर्वाधिक आय असमानता वाले देशों में एक है। आय की असमानता के चलते धन के वितरण की असमानता में वृद्धि होती है। आर्थिक असमानता में आय असमानता से अधिक घातक धन व संपत्ति की असमानता है, क्योंकि ये आर्थिक शक्ति में वृद्धि के आधारभूत कारक हैं। आर्थिक असमानता की तस्वीर सम्पूर्ण विश्व में भयावह है। विश्व असमानता आक्सफैम रिपोर्ट 2018 के अनुसार विश्व की 45% संपत्ति सर्वाधिक धनी 1% लोगों के पास है, जबकि 3.6 बिलियन लोग अभी भी 6.85 अमेरिकी डॉलर प्रतिदिन (क्रय शक्ति क्षमता) से कम पर जीवन यापन कर रहे हैं। (स्रोत- www.drishtiiias.com) भारत के संदर्भ में आर्थिक विषमता की गहरी व खोफनाक घाटी का अनुमान इंडियन एक्सप्रेस (ऑनलाइन) में प्रकाशित ऑक्सफैम रिपोर्ट के आँकड़ों से लगाया जा सकता है, जिसके अनुसार भारत में कुल आबादी के केवल 5% अमीरों के पास 70% से अधिक संपत्ति है, वही निचली 50% आबादी के पास सिर्फ 3% संपत्ति है। (स्रोत- www.Indianexpress.com) चिंता की बात यह है कि यह आर्थिक विषमता कम होने के बजाय लगातार बढ़ती जा रही है। पूँजीपति अमीरी के एवरेस्ट को छूते जा रहे हैं और गरीब, गरीबी के मेरियाना गर्त में गिरते जा रहे हैं। यह विषमता आज एक बहुत बड़ी चुनौती हो गई है, क्योंकि आर्थिक समानता के बगैर सामाजिक न्याय की स्थापना व लोकतांत्रिक उद्देश्यों की प्राप्ति संभव नहीं है। हिंदी गज़लकार इस आर्थिक विषमता को उजागर करते हुए लिखते हैं -

आय की असमानता -

“इधर इक दिन की आमदनी का औसत है चवन्नी का।

उधर लाखों में सेठों के तिज़ोरी की कमाई है।”¹⁵⁴ (अडम गोंडवी)

धन की असमानता -

“कहीं पर चंद रुपयों को लगाते जान की बाजी

कहीं कुछ लोग दौलत की बने टकसाल बैठे हैं।”¹⁵⁵ (महेश कटारे सुगम)

संपत्ति की असमानता-

“है नहीं हमको मयस्सर फर्श भी

और उनके पास पूरा अर्थ है।”¹⁵⁶

(महेश अग्रवाल)

*** *** *** ***

“किसी की आय पर लगती कोई लगाम नहीं

किसी के पास में रोटी का इंतजाम नहीं।”¹⁵⁷

(महेश कटारे सुगम)

*** *** *** ***

“लगी है होड़-सी देखो अमीरी और गरीबी में।

ये पूँजीवाद के ढाँचे की बुनियादी खराबी है।”¹⁵⁸

(अडम गोंडवी)

अमीरी और गरीबी की निरंतर गहरी होती जा रही यह खाई भारतीय समाज के लिए एक भयंकर समस्या एवं गंभीर चुनौती बन गई है। यह खाई इतनी चौड़ी हो गई है कि इसके दोनों तरफ दो अलग-अलग तरह की एक दूसरे से बिल्कुल विषम जीवन शैलियों वाले समाज विकसित हो रहे हैं; दो अलग-अलग तरह की दुनिया विस्तार पा रही है। एक ओर ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओं की संख्या व ऊँचाई निरंतर बढ़ रही है, तो दूसरी ओर फुटपाथी झोपड़ियों की संख्या भी लगातार बढ़ रही है। एक तरफ के समाज की ज़िंदगी हर तरह की सुख-सुविधाओं से परिपूर्ण है, तो दूसरी तरफ की ज़िंदगी कष्टों, दुखों, पीड़ाओं व यातनाओं से भरी हुई है। एक तरफ का समाज हर तरह से समृद्ध, पैसे को पानी की तरह खर्च करता, खाता-पीता और अघाता है, तो दूसरी तरफ का समाज घोर अभावों और गरीबी के कारण जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं के लिए संघर्ष करता है। एक तरफ बिना श्रम के ऐश्वर्य और विलास की ज़िंदगी है, तो दूसरी ओर हाड़-तोड़ मेहनत के बावजूद भूखमरी के चित्र हैं। एक ओर बहुमंजिला इमारतों में कुत्ते मकखन-मलाई खाते हैं, तो दूसरी ओर फुटपाथ पर बच्चे जूठन चाटते हैं। एक तरफ नाना तरह के व्यंजन हैं, तो दूसरी ओर केवल क्रंदन है। एक तरफ का समाज केवल उपभोगी है, तो दूसरी तरफ का केवल उपयोगी। एक ओर अँधेरा ही अँधेरा पसरा है, तो दूसरी तरफ आँखें चौंधियाने वाली कृत्रिम रोशनी है। एक ओर हर रोज दिवाली जैसा जश्न है, तो दूसरी ओर दीपावली पर भी मातम है। एक ओर स्वर्गिक सुख है, तो दूसरी तरफ नारकीय कष्ट। एक तरफ की ज़िंदगी फूलों की सेज है, तो दूसरी तरफ की काँटों का बिस्तर। एक ओर की ज़िंदगी वरदान है, तो दूसरी ओर की अभिशाप। हिंदी गज़ल के आईने में समाज को दो हिस्सों विभाजित करने वाला आर्थिक विषमता का यह भयंकर चेहरा साफ दिखाई देता है। कुछ शेर उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत है-

“हो गए हैं इस ज़हाँ के जाने कैसे दो ज़हाँ

भुखमरी है इक तरफ तो इक तरफ ऐयाशियाँ।”¹⁵⁹ (हरेराम समीप)

*** **

“आप कहते हैं सरापा गुलमुहर है ज़िन्दगी,
हम गरीबों की नज़र में इक कहर है ज़िन्दगी।”¹⁶⁰ (अदम गोंडवी)

*** **

“यही वो ज़िन्दगी है कुछ को फूलों से है भर देती
इसी परिसर में हैं कुछ लोग जो काँटों में रहते हैं।”¹⁶¹

(विनय मिश्र)

“कहीं इतना अंधेरा कुछ नजर आता नहीं हमको
कहीं आँखें ही चुधिया जायें हैं इतना उजाला है।”¹⁶²

(महेश अग्रवाल)

“उनके कुत्ते भी दूध पी के सो गये होंगे
मगर बच्चा बगल का दो दिनों से भूखा है।”¹⁶³ (डी. एम. मिश्र)

*** **

“तुम्हारे लिए ज़िंदगी होगी नेमत
हमारे लिए तो हवालात है ये।”¹⁶⁴

(महेश कटारे सुगम)

आर्थिक विषमता का एक प्रमुख कारण पूँजीपति शोषक वर्ग के द्वारा मेहनतकश गरीब लोगों का शोषण है। देश के अधिकांश उत्पादक संसाधनों पर पूँजीपतियों का एकाधिकार है, जिनसे होने वाला अधिकाधिक मुनाफा पूँजीपतियों की झोली में जाता है। पूँजीपति श्रमिकों के श्रम का उपभोग व शोषण करके सैकड़ों गुना मुनाफा कमा रहे हैं। और मेहनतकश शोषण की चक्की में पिस रहे हैं। इसलिए जो तरक्की हो रही है, उससे पूँजीपतियों की ही दुनिया रोशन हो रही है। अमीरी की इस चकाचौंध के पीछे जाने कितने गरीबों का जीवन अंधेरा छिपा है। राजनीतिक सत्ताधीश और पूँजीपति समाज जीवन के सौंदर्य को महकाने वाले श्रमजीवी फूलों से उनके दाय का मकरंद चूस रहे हैं। वे इस शोषण के बल पर बिना कुछ किए बैठे-बैठे फल-फूल रहे हैं, जबकि श्रमिकों को उनके कर्म का, उनके श्रम का भी फल नहीं मिल रहा है। मेहनतकश गरीबों की अभावग्रस्त ज़िंदगी इस शोषण की दास्तान कहती रहती है। संक्षेप में कह सकते हैं कि आर्थिक शोषण के कारण आर्थिक असमानता लगातार बढ़ रही है। हिंदी ग़ज़लकार समाज में आर्थिक विषमता की बढ़ती खाई से चिंतित हैं। वे इसे पाटने के

लिए ऐसी संतुलित विकास नीति बनाने का सुझाव देते हैं जिसमें उत्पादन के साधनों पर सभी का अधिकार हो और सभी को सभी का बराबर दाय मिले।

“इस उजाले के दीपक के नीचे

जाने कितने अँधेरों का घर है।”¹⁶⁵

(विनय मिश्र)

*** *** *** ***

“उनके जबड़ों में रोटियाँ हैं सबके हिस्से की

वरना दुनिया में कहीं भुखमरी नहीं होती।”¹⁶⁶ (वशिष्ठ अनूप)

*** *** *** ***

“महलों के ऐशबाग में महके हैं जो भी फूल /उनकी महक अवाम के जीवन पे टिकी है।

ये कोठियाँ जो ब्याह की दुल्हन-सी सजी हैं/इनकी चमक गरीब के आँगन पे टिकी है।”¹⁶⁷

(वशिष्ठ अनूप)

“एक संतुलित नीति बने

अर्थ समन्वित सन्धी हो।”¹⁶⁸

(महेश कटारे सुगम)

4.2.3 दरिद्रता का दर्दनाक सच

तीसरी दुनिया के विकासशील देशों के समाजों की एक आर्थिक सच्चाई गरीबी है। भारतीय समाज आज़ादी के 75 वर्षों बाद भी गरीबी के अभिशाप से पूरी तरह से मुक्त नहीं हुआ है। गरीबी दो प्रकार की होती है- सापेक्ष और निरपेक्ष। निरपेक्ष गरीबी वह स्थिति है, जिसमें व्यक्ति रोटी, कपड़ा और मकान जैसी जीवन की न्यूनतम भौतिक आवश्यकताओं के साथ स्वास्थ्य और शिक्षा जैसी सुविधाओं से वंचित रहता है। जीवन के लिए सबसे जरूरी भौतिक चीज़ भोजन है। इसलिए गरीबी निर्धारण सूचकों में भोजन को सर्वोपरि रखा गया है। आर्थिक मजबूरियों के चलते स्वास्थ्य की दृष्टि से पोषक व भरपेट भोजन का उपलब्ध न होना गरीबी का सबसे बड़ा पैमाना है। यह सच है कि देश के लाखों गरीब लोगों के लिए भूख का सवाल आज भी किसी न किसी रूप में मौजूद है। यद्यपि सरकार ने भुखमरी को दूर करने के लिए खाद्य सुरक्षा जैसी योजनाएँ चला रखी है, लेकिन कई तरह की दिक्कतों के कारण आज भी बहुत से लोगों को हर रोज भरपेट पौष्टिक भोजन नहीं मिलता है। और ऐसे गरीबों की आज भी सबसे बड़ी दौड़-धूप दो जून की रोटी को लेकर ही होती है। हिंदी शायर गरीबी की सूचक भुखमरी की समस्या पर लिखते हैं-

“रोटी कभी तो वस्त्र, कभी घर नहीं मिले

निश्चित हो के जीने के अवसर नहीं मिले।”¹⁶⁹

(जहीर कुरेशी)

*** **

“यह हमारा देश है फुटपाथ पर सोया हुआ
लाज को ढँकने से ज्यादा पेट की चिंता लिए।”¹⁷⁰ (विनय मिश्र)

*** **

“खत्म हो सकती है कैसे दौड़ आटा-नून की
जब मयस्यर ही नहीं हैं रोटियाँ दो जून की।”¹⁷¹ (माधव कौशिक)

*** **

“मुफ़लिस की आँखों में रहती है रोटी
जब देखो तब भूखा-भूखा लगता है।”¹⁷² (महेश कटारे सुगम)

मनुष्य की रोटी के बाद दूसरी मूलभूत ज़रूरत वस्त्रों की होती है। इसलिए कपड़ों को भी गरीबी निर्धारण का मापदंड माना जाता है। समाज में सम्मानजनक जीवन जीने के लिए मौसम के अनुरूप आरामदायक कपड़ों की अनुपलब्धता गरीबी को दर्शाती है। भारत सहित दुनिया के कई देशों में आज भी फुटपाथी बस्तियों व झोपड़ियों में रहने वाले लाखों करोड़ों गरीब लोग फटे पुराने चिथड़ों में लिपटे रहने तथा जाड़े में ठिठुरने-काँपने को मजबूर है। हिंदी गज़लकार गरीबी के कारण वस्त्रहीन समाज का दारुण चित्र खींचते हुए कहते हैं-

“पतलून फट गई है जूते लगे हैं घिसने
ये दौर कैसे मुश्किल हालात ले के आया।”¹⁷³ (ज्ञानप्रकाश विवेक)

**** **

“काँप रहा थर-थर यह घर है।
और बहुत छोटी चादर है।”¹⁷⁴ (वशिष्ठ अनूप)

**** **

“एक अदद हैं वस्त्र हमारे पास सुनो
वही ओढ़ने भी हैं वही बिछाने हैं।”¹⁷⁵ (महेश कटारे सुगम)

व्यक्ति की भोजन और वस्त्र के बाद तीसरी मूल आवश्यकता मकान की होती है। मकान व्यक्ति को न केवल सर्दी, गर्मी व बरसात की विषम परिस्थितियों से सुरक्षा प्रदान करता है, अपितु विभिन्न भौतिक सुविधाओं से युक्त पक्का मकान समाज में प्रतिष्ठा का भी आधार है। ऐसे मकान की अनुपलब्धता गरीबी का सूचक है। गाँव के झोपड़ियोंनुमा कच्चे घरों और शहरों की गंदी बस्तियों के जर्जर हालात उन परिवारों की गरीबी और उसके दर्द को बयाँ करते हैं। गरीबी के कारण कितने ही

लोग आज भी फुटपाथ पर खुले आसमान या किसी पेड़ के साये में सोने को मजबूर है। इन लोगों के लिए खुला आकाश ही छत और धरती ही फर्श होती है। शायर गरीब बेघर लोगों की पीड़ा को यूँ व्यक्त करते हैं-

“कितने बेबस हैं ये फुटपाथ पर सोने वाले।

गो परिन्दों को भी घर की तलाश होती है।”¹⁷⁶

(अदम गोंडवी)

*** *** *** ***

“घर का हसीन ख़्वाब सँजोए निगाह में ।

गुज़री है उम्र बूढ़े शजर की पनाह में।”¹⁷⁷

(अदम गोंडवी)

*** *** *** ***

“हमारी छान पर कोई मकाँ नम्बर नहीं होता

मरें गर हादसों में तो हमें बेनाम लिख लेना।”¹⁷⁸

(डी.एम.मिश्र)

*** *** *** ***

“नहीं जीने देती है इनको गरीबी / अभावों से जीवन की टक्कर तो देखो।

अंबर की छत है ज़मीं का बिछौना/सुगम साथ चलता हुआ घर तो देखो।”¹⁷⁹

(महेश कटारे सुगम)

जीवन का पहला सुख निरोगी काया या स्वस्थ शरीर को माना गया है। परन्तु मनुष्य का कभी ना कभी बीमार होना भी स्वाभाविक बात है। धनाभाव के कारण बीमारी की स्थिति में दवाइयों एवं चिकित्सा सुविधाओं की व्यवस्था करने में असमर्थता गरीबी का द्योतक है। यद्यपि सरकार ने मुफ्त दवाइयों जैसी योजनाएँ चला रखी है, किंतु फिर भी उनकी क्रियान्विति की खामियों एवं अनेक दिक्कतों के चलते बहुत से गरीब लोग आज भी अपने या परिजनों के लिए दवाइयों एवं इलाज़ की व्यवस्था नहीं कर पाते हैं। इसके अलावा गरीबी बच्चों के पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा एवं शादी विवाह जैसी पारिवारिक-सामाजिक दायित्वों के निर्वहन में बाधक बनती है। गज़लकार गरीबों की इन चिंताओं का यूँ चित्रण करते हैं-

“तड़प तड़प बेमौत मर रहे

पैसे बिना, इलाज़ों वाले।”¹⁸⁰

(महेश कटारे सुगम)

*** *** *** ***

“किताबों को पैसे ये लायें कहाँ से

बुझे चूल्हे खाली कनस्तर तो देखो।”¹⁸¹

(महेश कटारे सुगम)

*** *** *** ***

“लड़ रहे हैं जंग वो अपने अभावों से

माँ बहुत बीमार है बिटिया सयानी है।”¹⁸²

(महेश अग्रवाल)

गरीबी की संकल्पना में एक अवधारणा गरीबी रेखा की है। गरीबी रेखा का निर्धारण आय व उपभोग के आधार पर किया जाता है। इनमें भी उपभोग को बेहतर पैमाना माना जाता है। इसके निर्धारण का एक मानक कैलोरी की न्यूनतम खपत से संबंधित है। सामान्यतः ग्रामीण क्षेत्रों में औसतन 2400 किलो कैलोरी और शहरी क्षेत्रों में 2100 किलो कैलोरी प्रति व्यक्ति प्रतिदिन के हिसाब से कम उपभोग करने वाले व्यक्तियों को गरीबी रेखा के नीचे (बीपीएल) माना जाता है। इनकी त्रासद जीवन स्थितियों पर शायर कहते हैं-

“रोटी भी दो वक़्त नहीं मिल पाती है हमको

जीवन-रेखा से नीचे है आय महीने की।”¹⁸³

(महेश अग्रवाल)

*** *** *** ***

“कमा न पाए जो पच्चीस रुपए दिन भर में।

वो पूरे पैर पसारेंगे कैसे चादर में?”¹⁸⁴

(जहीर कुरेशी)

आज़ादी के समय से ही गरीब और गरीबी भारतीय राजनीति के केंद्रीय बिंदु रहे हैं। देश की सबसे बड़ी पंचायत में गरीबों के लिए 75 वर्षों में खूब पंचायत हुई तथा ‘गरीबी उन्मूलन’ के अनेक नारे लगे। पर परिणामी सच्चाई यही रही कि गरीबी तो हटी नहीं, गरीब जरूर हटते गये। गरीब और गरीबी की चर्चा से राजनेताओं की राजनीतिक किस्मत तो बुलंद होती रही, परंतु गरीबों का भाग्योदय नहीं हुआ। राजनेताओं के सपने तो साकार होते रहे, परन्तु गरीबों के सपने कागज़ पर आकार पाकर ही रह गये। गरीबों की बातें तो सभी सियासी लोग करते रहे, लेकिन गरीबों के प्रति किसी को भी सच्ची हमदर्दी नहीं रही। और इस कारण गरीबी उन्मूलन की योजनाओं और गरीबी दूर होने के कागज़ी दावों की ज़मीनी सच्चाई यही है कि अमीरी और गरीबी के बीच की खाई के बढ़ने से सापेक्ष गरीबी और भी बढ़ती जा रही है। आज भी लाखों-करोड़ों लोग भूखे-नंगे चिथड़ों में लिपटकर फुटपाथ पर सोने को विवश है। हिंदी गज़लकार समकालीन समाज में गरीबी की स्थिति, गरीबी के आधारों और गरीबों की दुशवारियों को उजागर करने के साथ ही गरीबी को दूर करने के सरकारी दावों और प्रयासों की पोल खोलते हैं। उनकी दिली तमन्ना है कि गरीबों को भी जीवन की मूलभूत आवश्यकताएँ और सुविधाएँ सुलभता से उपलब्ध हो। वे लिखते हैं-

“उनका दावा मुफ़लिसी का मोर्चा सर हो गया।

पर हकीकत ये है मौसम और बदतर हो गया॥”¹⁸⁵

(अदम गोंडवी)

*** *** *** ***

“वह चाहता था महज मुफ़लिसी से छुटकारा

मगर मिला है उसे ज़िंदगी से छुटकारा।”¹⁸⁶

(हरेराम समीप)

*** *** *** ***

“लोग, गरीबी रेखा से नीचे हैं, लेकिन

भूख, गरीबी रेखा से ऊपर होती है।”¹⁸⁷

(जहीर कुरेशी)

*** *** *** ***

“जिनका लेकर नाम बन गए धनवाले

उस ग़रीब के हाल अभी दलदल में हैं।”¹⁸⁸

(महेश कटारे सुगम)

*** *** *** ***

“खुले आकाश के नीचे बिछी फुटपाथ के बदले

हजारों सोने वालों का भी घर होता तो अच्छा था।”¹⁸⁹ (माधव कौशिक)

4.2.4 बेरोज़गारी का कठोर यथार्थ

बेरोज़गारी हमारे समय व समाज की एक तलख़ सच्चाई व समस्या है। बेरोज़गारी में दर-दर भटकता शिक्षित युवा वर्ग हमारे दौर का चलता फिरता सजीव सच है। “बेरोज़गारी वह दशा है जिसमें शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ और समर्थ व्यक्तियों को कार्य करने की इच्छा रखने एवं अर्थोपार्जन करने हेतु प्रयत्न करने पर भी प्रचलित दर पर रोजगार प्राप्त न हो।”¹⁹⁰ बेरोज़गारी आज हमारे देश की एक बड़ी सामाजिक-आर्थिक समस्या है। गाँव हो या शहर, शिक्षित वर्ग हो या अशिक्षित सभी बेरोज़गारी की समस्या से जूझ रहे हैं। शिक्षा के सार्वभौमीकरण के साथ शिक्षित बेरोज़गारी की समस्या अकुशल श्रमिकों की बेरोज़गारी से अधिक विकराल हो गई है। शिक्षित बेरोज़गारी भी दो प्रकार की होती है-एक दृश्य बेरोज़गारी जिसमें एक शिक्षित युवा पूरी तरह से बेरोज़गार होता है, दूसरी अदृश्य बेरोज़गारी जिसमें एक उच्च योग्यताधारी युवा अपनी योग्यता से कम योग्यता वाला काम करने के लिए मजबूर होता है और अपनी योग्यता के अनुरूप रोजगार पाने के लिए प्रयासरत रहता है। दोनों तरह की शिक्षित बेरोज़गारी और बेरोज़गारों की संख्या लगातार बढ़ रही है। समय-समय पर प्रकाशित होने वाले सरकारी एवं गैर सरकारी आँकड़े इसकी पुष्टि करते रहते हैं। बेरोज़गारी के नागपाश में आज शिक्षित युवा वर्ग ही सर्वाधिक यंत्रणा भोग रहा है। दुनिया की सबसे बड़ी युवा शक्ति पढ़ लिखकर भी

बेकारी के कारण बेचारी हो गई है। उच्च शिक्षित होने पर भी उसे काम नहीं मिल रहा है। हिंदी शायर लिखते हैं-

“पढ़-लिख कर भी देश की, युवा-शक्ति बेकार,
भारत पर बढ़ने लगा, संतानों का बोझ।”¹⁹¹ (जहीर कुरेशी)

*** **

“हाथ में डिग्री मुँह पर जाबा
आँखों में सपनों के जाले।”¹⁹² (देवेन्द्र आर्य)

*** **

“हाथ अभी भी काम ढूँढ़ते फिरते हैं
नौजवान की जेब अभी भी खाली है।”¹⁹³ (महेश कटारे सुगम)

*** **

“कब से भटक रहे हैं, कोई काम तो मिले
बेनाम हम नहीं हैं, कोई नाम तो मिले।”¹⁹⁴ (किशन तिवारी)

देश में बढ़ती बेरोज़गारी के अनेक कारण हैं। विशेषतः शिक्षित बेरोज़गारी का एक मुख्य कारण दोषपूर्ण शिक्षा व्यवस्था है। हमारी शिक्षा पद्धति व्यावहारिक व व्यवसायोन्मुख होने की जगह सैद्धांतिक अधिक है। यह युवाओं में स्वावलंबन एवं स्वरोजगार को बढ़ावा देने की जगह उन्हें नौकर बनना सिखाती है। देश के उच्च शिक्षा संस्थानों से हर साल निकलने वाले लाखों करोड़ों युवाओं के पास कोरी उपाधियाँ होती हैं। उनके पास किसी प्रकार का तकनीकी और व्यावसायिक कौशल नहीं होता है और वे केवल नौकर बनने की काबिलियत रखते हैं। इस कारण हमारे महाविद्यालय और विश्वविद्यालय कुर्सी के लिए क्लर्क पैदा करने वाले कारखाने बनकर रह गए हैं। परंतु बढ़ते शिक्षित श्रमबल के अनुपात में नौकरियों का सृजन नहीं होने से पढ़े लिखे युवा डिग्री लेकर भी खाक छानने को मजबूर हैं। हिंदी ग़ज़लकार रोज़गार देने में अक्षम डिग्रियों की उपयोगिता पर प्रश्न चिह्न लगाकर बेरोज़गारी बढ़ाने वाली शिक्षा व्यवस्था की खामियों के बारे में लिखते हैं-

“हमारी शिक्षा से जन्मी न आत्म निर्भरता
हमारी शिक्षा न जुड़ पाई रोज़गारों से।”¹⁹⁵ (जहीर कुरेशी)

“पेट भर रोटी न दें तो डिग्रियाँ किस काम की
मुँह चिढ़ाती है मुझे बेरोज़गारी आपकी।”¹⁹⁶ (महेश कटारे सुगम)

“उसको 'डिग्री' भी बोझ लगती है,

जिसकी प्रतिभा किसी चयन में नहीं।”¹⁹⁷

(जहीर कुरेशी)

बेरोज़गारी का एक कारण मशीनीकरण व तकनीक का बढ़ता प्रयोग भी है। मशीनीकरण के कारण जहाँ एक ओर परंपरागत लघु व कुटीर उद्योगों पर कुठाराघात हुआ है। जिससे इन व्यवसायों से जीवनयापन करने वाले लोगों के सामने आजीविका की समस्या उत्पन्न हो गई है। वहीं दूसरी ओर मशीनों से कम समय व कम लागत में अधिक श्रमिकों का काम होने लगा है और मशीनें मजदूरों की जगह ले रही हैं। जिसके कारण अकुशल श्रमिकों की बेरोज़गारी बढ़ रही है। वैज्ञानिक तकनीक के बढ़ते प्रयोग ने भी बेरोज़गारी को बढ़ाया है। कंप्यूटर व तकनीक ने पढ़े लिखे युवाओं के हाथ काट दिये हैं। बहुत सी नौकरियाँ पहले ही मशीनों के द्वारा प्रतिस्थापित हो चुकी हैं और अब कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI-आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस) के आने से बहुत सी नौकरियों पर खतरा मंडरा रहा है। शायर लिखते हैं-

“अब न आएगा कभी लौट के इस बस्ती में

कच्ची मिट्टी के खिलौनों को बनाने वाला।”¹⁹⁸

(ज्ञान प्रकाश विवेक)

*** *** *** ***

“काम सौ लोगों का कर देती है छोटी-सी मशीन,

कौड़ियों के मोल मजदूरों का श्रम होने लगा।”¹⁹⁹

(जहीर कुरेशी)

*** *** *** ***

“आदमी को ही जो कर दें बेदखल

उन मशीनों को लगाया जा रहा।”²⁰⁰

(डी. एम. मिश्र)

*** *** *** ***

“बदल देंगे सदी को आज के विज्ञान कम्प्यूटर

मगर ये नौजवाँ अब नौकरी, किस-किस से माँगेंगे।”²⁰¹

(किशन तिवारी)

बेरोज़गारी, बेरोज़गार व्यक्ति के साथ समाज के लिए एक अभिशाप व कलंक है। यह व्यक्ति के जीवन को आर्थिक, मनोवैज्ञानिक, पारिवारिक व सामाजिक हर दृष्टि से प्रभावित करती है। मध्यमवर्गीय परिवार का हर उच्च शिक्षित युवक सरकारी नौकरी प्राप्त करना चाहता है। लेकिन एक निश्चित उम्र तक प्रयास करने के बावजूद भी जब वह इसमें सफल नहीं होता है, तो वह खिन्न, उदास, हताश और निराश हो जाता है। बेरोज़गारी उसे ना केवल मनोवैज्ञानिक रूप से विकलांग बनाती है। अपितु उसके संपूर्ण व्यक्तित्व को कुंठित कर देती है। जिससे उसका जीवन बिखर जाता है।

लाचारी की हालत में वह इतना टूट जाता है कि उसका यौवनोचित उत्साह, उमंग व जोश गायब हो जाता है और वह निस्तेज और शक्तिहीन हो, जवानी में ही मानसिक रूप से बूढ़ा हो जाता है। मानो नौकरी लगने के पहले ही वह नौकरी के साथ युवावस्था से भी रिटायर हो गया हो। एक निश्चित उम्र के बाद भी नौकरी नहीं लगने या लक्ष्य में सफल नहीं होने पर एक शिक्षित युवक समाज के लोगों के उपहास का पात्र बन जाता है। जिससे उसके आत्मसम्मान एवं आत्मविश्वास को चोट पहुँचती है, वह शर्म, संकोच, ग्लानि एवं अपराध बोध से ग्रस्त हो जाता है। और समाज से कटकर अंतर मन की गुफा का वासी बन जाता है। इस आत्मनिर्वासन व अलगाव की पीड़ा को भोगता हुआ वह अवसाद का शिकार हो जाता है। और आत्महत्या के रास्ते समय से पहले मौत को गले लगा लेता है। हिंदी ग़ज़लकार बेरोज़गारी के मनोवैज्ञानिक दुष्प्रभावों को अंकित करते हुए लिखते हैं-

“सहारा था उन्हें बनना, सहारा ढूँढ़ते हैं वो
कहीं का भी नहीं रखती जवाँ बच्चों को बेकारी।”²⁰² (डी. एम. मिश्र)

*** *** *** ***

“जो बदल सकती है इस दुनिया के मौसम का मिज़ाज।
उस युवा पीढ़ी के चेहरे की हताशा देखिए।”²⁰³ (अदम गोंडवी)

*** *** *** ***

“करोड़ों नौजवाँ है और नौकरियाँ हैं थोड़ी-सी
फिर उसके बाद होती जगहँसाई मार देती है।”²⁰⁴ (वशिष्ठ अनूप)

*** *** *** ***

“हमारे देश के बच्चों की आँखों में उदासी है,
बुढ़ापा घेर लेता है, अचानक नौजवानी में।”²⁰⁵ (वशिष्ठ अनूप)

*** *** *** ***

“आजकल मिलती नहीं हैं रोटियाँ और काम तब
ये हमारे नौजवां सल्फास ही तो खायेंगे।”²⁰⁶ (हरेराम समीप)

बेरोज़गारी के कारण समाज में अपराधों को बढ़ावा मिलता है। बेरोज़गारी एक युवा को आर्थिक रूप से जिंदा रहने हेतु अपराध की ओर धकेलती है। बेरोज़गारी में वह खालीपन एवं आर्थिक तंगी के कारण खिन्नता, चिंता व तनाव का शिकार होता है और आसानी से अपराध की ओर मुड़ जाता है, क्योंकि उसके लिए नौकरी या रोजगार का रास्ता अपराध के रास्ते से कहीं ज्यादा कठिन होता है। बेरोज़गार उच्च शिक्षित

युवा वर्ग अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति हेतु अपने ज्ञान का दुरुपयोग कर साइबर फ्राँड व साइबर अपराधों को अंजाम देते हैं। समकालीन दौर में समाज में बढ़ते अपराधों के मूल में बढ़ती बेरोज़गारी भी एक कारण है। हिंदी गज़लकार बेरोज़गारी के अपराधिक दुष्प्रभावों को व्यक्त कर सत्ताधीशों से युवा पीढ़ी को रोज़गार उपलब्ध कराने का शायराना आग्रह करते हैं-

“हत्या डकैती जिस्म के घन्धे में लग रहे
वे लोग जो पढ़-लिख के हैं बेकार इन दिनों।”²⁰⁷ (वशिष्ठ अनूप)

*** *** *** ***

“ये बच्चे करते भी तो क्या, जवाब है कोई?
सरल था रास्ता दंगों का जॉब मंहगा था।”²⁰⁸ (देवेन्द्र आर्य)

*** *** *** ***

“पढ़े-लिखे उन बच्चों को कुछ भी करने को नहीं मिला जब
तो वो मौत के सौदागर के हाथों का औज़ार हो गये।”²⁰⁹ (डी. एम. मिश्र)

*** *** *** ***

“हाथ को हथियार बनने से बचा
हाथ खाली हैं उन्हें तू काम दे।”²¹⁰ (महेश अग्रवाल)

4.2.5 महँगाई की मारक सच्चाई

‘महँगाई बहुत हो गई है या इस महँगाई ने तो मार दिया है’ यह किसी व्यक्ति विशेष का कथन नहीं है। अपितु देश की आम जनता द्वारा रोज़मर्रा की ज़िंदगी में बार-बार दोहराया जाने वाला समकालीन दौर का आर्थिक सच है। महँगाई आज देशव्यापी सामाजिक-आर्थिक समस्या है। महँगाई का अर्थ होता है-वस्तुओं और सेवाओं की कीमतों में समय के साथ वृद्धि। जब वस्तुओं की कीमतें एक सामान्य दर से बढ़ती है या वस्तुओं के कीमतों के साथ आय में भी वृद्धि होती है, तो महँगाई जनता के लिए सहाय होती है। लेकिन जब वस्तुओं की कीमतों में तेजी से वृद्धि होती है, तो महँगाई मारक चुड़ैल बन जाती है। महँगाई आज हर दिन नये रिकॉर्ड बना रही है। दैनिक उपभोग की वस्तुओं और सेवाओं की कीमतें हर रोज नहीं, बल्कि हर घड़ी तेजी से बढ़ रही हैं। जिससे महँगाई सुरसा के मुँह की तरह लगातार बढ़ रही है। तथा यह डायन आज दारुण रूप धारण कर चुकी है। हिंदी गज़लकारों को महँगाई के कारण समकालीन आर्थिक परिदृश्य बड़ा विडंबनापूर्ण और क्रूर लगता है। जिसमें वस्तुओं की

कीमतें इतनी ऊँची हो गई हैं कि उनके सामने मनुष्य और उसकी ज़िंदगी का मूल्य घट गया है। ग़ज़लकार महँगाई के इस भयावह रूप को चित्रित करते हुए लिखते हैं-

“हीरामन बेजार है उफ़ किस कदर महँगाई है।

आपके दिल्ली में उत्तर आधुनिकता आई है।”²¹¹ (अदम गोंडवी)

*** **

“महँगाई की बात मत करो

रोज़ बढ़ रहे दामों वाली।”²¹² (महेश कटारे सुगम)

*** **

“महँगाई अब भी सुरसा के मुँह जैसी

अब भी पसरी घर घर में कंगाली है।”²¹³ (महेश कटारे सुगम)

*** **

“दाम चीज़ों के उछलकर आसमानों पर चढ़े

भाव लेकिन ज़िन्दगी का हर तरफ घटता रहा।”²¹⁴ (विनय मिश्र)

महँगाई समाज के सभी वर्गों के लोगों को प्रभावित करती है, किंतु इसकी सबसे अधिक मार मध्यम व निम्न वर्ग के लोगों विशेष रूप से गरीबों पर पड़ती है। बढ़ती महँगाई ने आम आदमी की कमर तोड़ दी है। और उसके लिए घर गृहस्थी चलाना बड़ा दुश्वार व गृहयुद्ध का सामना करने जैसा हो गया है क्योंकि जिस गति से वस्तुओं की कीमतें और महँगाई बढ़ रही है, उतनी तेजी से उसकी (आम आदमी की) आय नहीं बढ़ रही है। आम जनता महँगाई की चक्की में बुरी तरह पीस रही है। उसके लिए दो जून की रोटी-दाल की व्यवस्था करना भी बड़ा मुश्किल हो गया है। हर रोज बढ़ती महँगाई उसके रसोई के बजट को बिगाड़ देती है। दैनिक मजदूरी पर निर्भर श्रमिकों की हालत बड़ी दयनीय होती है। महँगाई का अजगर उन्हें निरंतर त्रस्त करता रहता है। हिंदी शायर बढ़ती महँगाई के कारण आम आदमी की दुश्वारियों का चित्रण करते हुए लिखते हैं-

“चला लेना गृहस्थी जैसे-तैसे

बहुत भारी समर लगने लगा है।”²¹⁵ (वशिष्ठ अनूप)

*** **

“फीस बढ़ा दी कॉलेजों की / बच्चे कैसे पढ़ पाएंगे

महँगाई का आलम ये है / रोटी भी कैसे खाएंगे।”²¹⁶ (महेश कटारे सुगम)

“सुक्कू छिन गया है परेशान नींदें/ चिढ़ाती सी दिखती हर इक चीज सस्ती
पडे खाली डिब्बे, कनस्तर, सिलेंडर / उजड़ सी गई है सुगम की गृहस्थी।”²¹⁷

(महेश कटारे सुगम)

“त्रस्त पहले से रहे महँगाई से हम तो
आ गये सिर पर कई त्योहार मत पूछो।”²¹⁸

(किशन तिवारी)

*** **

“महँगाई की विकट मार से जीना कैसे संभव है

पूछो जाकर मज़दूरों से कैसे काम चलाते हैं।”²¹⁹

(महेश कटारे सुगम)

महँगाई में वृद्धि के अनेक कारण हैं। जनसंख्या में विस्फोटक वृद्धि, वैश्विक महँगाई दर, पूँजीवादी व उपभोक्तावादी संस्कृति, विज्ञापनबाज़ी, कालाबाज़ारी, जमाखोरी, प्राकृतिक आपदाओं के कारण कृषि उत्पादन में कमी, भ्रष्टाचार व मुद्रास्फीति जैसे अनेक कारणों से महँगाई बढ़ती है। हिंदी ग़ज़लकार महँगाई के पीछे सरकार की टैक्स नीतियों एवं व्यापारी वर्ग की जमाखोरी-मुनाफाखोरी को भी जिम्मेदार मानते हैं। व्यापारी अधिक मुनाफा कमाने के लिए जमाखोरी व कालाबाज़ारी के जरिए चीजों की कृत्रिम कमी दिखाते हैं, जिससे उन चीजों के दाम बहुत बढ़ जाते हैं। कभी-कभी किसी जींस विशेष या वस्तु विशेष के दाम में होने वाली अप्रत्याशित वृद्धि के पीछे व्यापारी वर्ग की यही मुनाफाखोरी नीति होती है। सरकार हर बजट में वस्तुओं पर प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष कर लगाती रहती है या करों में वृद्धि करती रहती है। जिससे चीजों के दाम बढ़ते हैं और महँगाई में वृद्धि होती है। यहाँ तक की खाने-पीने की चीजों पर भी सरकार द्वारा टैक्स वसूला जाता है, जिससे आम जनता की थाली पर महँगाई की मार पड़ती है। हिंदी शायर महँगाई के कारणों पर लिखते हैं-

“सारे गोदाम भर लिए उसने

सेठ जी चढ़ते भाव से खुश हैं।”²²⁰

(हरेराम समीप)

*** **

“गेहूँ पर, आटे पर, चूल्हे पर है ही

रोटी पर भी टैक्स लगेगा, इल्म न था।”²²¹

(देवेन्द्र आर्य)

*** **

“बीस गुना तक बढ़ गए, उन चीजों के दाम,

जो आई बाज़ार में, विज्ञापन के साथ।”²²²

(जहीर कुरेशी)

राजनीतिक नेतृत्व चुनावों में महँगाई पर नियंत्रण की बातें करता है। पर सच यह है कि इसमें सभी सरकारें नाकाम रही हैं, जिसका कारण सरकारों की कॉर्पोरेट हितैषी दोषपूर्ण आर्थिक नीतियाँ हैं। इसलिए हिंदी ग़ज़लकार महँगाई को सरकार द्वारा जनता को दिया हुआ तोहफा मानते हैं। वे थोक मूल्य पर आधारित सरकारी आँकड़ों की कागज़ी महँगाई व खुदरा मूल्य की ज़मीनी महँगाई में अंतर के प्रच्छन्न सच को उजागर करते हैं। तथा महँगाई पर नियंत्रण में सरकारों की विफलता पर व्यंग्य करते हुए उन्हें धिक्कारते हैं।

“धनवानों से प्रेम तुम्हारा जग जाहिर है,

आसमान तक दाम बढ़ाकर मानोगे क्या?”²²³

(वशिष्ठ अनूप)

*** **

“कह रही सरकार जो वह दाम तो कुछ और है

किंतु इस बाज़ार में हैं वस्तुओं के दाम कुछ।”²²⁴ (विनय मिश्र)

*** **

“अब बढ़ती कीमतों पर बढ़ता ही जा रहा है

महँगाई का शिकंजा भगवान की मर्जी है।”²²⁵

(महेश कटारे सुगम)

*** **

“आज महँगाई ‘सुगम’ पहुंचा दी

सातवें आसमान भूतों ने।”²²⁶

(महेश कटारे सुगम)

4.2.6 बाज़ारवाद का भयावह सच

मानव सभ्यता की शुरुआत से ही बाज़ार जीवन के लिए आवश्यक भौतिक वस्तुओं के विनिमय या क्रय-विक्रय के केंद्र के रूप में सामाजिक संरचना का अनिवार्य अंग रहा है। भूमंडलीकरण एवं आर्थिक उदारीकरण की शुरुआत के साथ बाज़ार पर पूँजीवादी और साम्राज्यवादी बहुराष्ट्रीय कंपनियों का वर्चस्व स्थापित होता है, जो अपनी आवारा पूँजी के सहारे बाज़ार को एक नया स्वरूप देती है। जिसमें बाज़ार का चेहरा व चरित्र पूरी तरह से बदल जाता है। जिसे साहित्य में बाज़ारवाद की संज्ञा से अभिहित किया गया है। बाज़ारवाद में बाज़ार का चेहरा आकर्षक पर चरित्र विकृत हो जाता है। बाज़ार समाज की जरूरतों या समस्याओं का सामाधनकर्ता है, जबकि बाज़ारवाद चरित्र से छलिया व लुटेरा है। और वह समस्याओं के सामाधन के नाम पर नई समस्याएँ पैदा करता है। बाज़ार के लिए व्यक्ति ग्राहक रुपी देवता है और उसकी संतुष्टि उसके लिए प्रधान है, जबकि बाज़ारवाद के लिए मनुष्य उपभोक्ता या वस्तु है

तथा अपनी चकाचौंध में उपभोक्ता को फँसाकर लूटना व अधिकाधिक मुनाफा कमाना उसका मूल्य या सिद्धांत है। बाज़ार में व्यक्ति अपनी शर्तों पर सामान खरीदने के लिए स्वतंत्र होता है, जबकि बाज़ारवाद खुद की शर्तों पर उपभोक्ता को ज़रूरी व गैर ज़रूरी चीज़ें खरीदने के लिए सम्मोहित कर उसे मानसिक रूप से गुलाम बनाता है। बाज़ार समाज की आवश्यकताओं के अनुसार चीज़ों का उत्पादनकर्ता या आपूर्तिकर्ता है, जबकि बाज़ारवाद में उत्पाद पहले तैयार होते हैं और उसके बाद विज्ञापनों के माध्यम से उनकी कृत्रिम ज़रूरतें पैदाकर व्यक्ति के मन में उन्हें खरीदने की तीव्र इच्छा जाग्रत की जाती है। इससे भी आगे उसे न केवल खरीदने के लिए मजबूर किया जाता है, अपितु कर्ज़ या किश्तों पर सामान देकर उसका दोहरा शोषण किया जाता है। बाज़ारवाद के अवतार में बाज़ार अपने बाज़ार स्थल से आगे बढ़कर हर घर, यहाँ तक कि मोबाइल जैसे उपकरणों के माध्यम से हर हाथ तक पहुँच गया है। तथा मायावी दानव का रूप धर दुनिया के हर व्यक्ति के ईर्द-गिर्द हर समय चक्कर लगाने लगा है। यही नहीं वह गूगल जैसे गुप्तचरों की मदद से व्यक्ति के मन मस्तिष्क की जासूसी कर उसके दिल-दिमाग पर हावी होता जा रहा है। और उसके अस्तित्व के लिए खतरा बनता जा रहा है। समाज या समाज द्वारा निर्धारित सत्ता के अधीन सामाजिक-आर्थिक इकाई रहा बाज़ार जब समाज और संपूर्ण व्यवस्था का नियंता व संचालक बन जाता है। या मानव समाज के लिए उपभोग की वस्तुएँ उपलब्ध करवाने वाला बाज़ार जब मनुष्य को वस्तु में तब्दील कर स्वयं भोक्ता बन जाता है, तो यह मानव समाज की अस्मिता के लिए खतरा बन जाता है। हिंदी ग़ज़लकार बाज़ार के इस नये संस्करण, बाज़ारवाद के अजगर के आतंक के बारे में लिखते हैं-

“चपल पूँजी बनीं निर्लज्ज पूँजी,
उसी की शक्ति से बाज़ार बदले।”²²⁷

(जहीर कुरेशी)

*** *** *** ***

“बाज़ारवाद आया तो रख कर अनेक रूप
घुसने लगे घरों में भी बाज़ार आजकल।”²²⁸

(जहीर कुरेशी)

*** *** *** ***

“उनकी शर्तों पर ही अपनी कीमत लगती है
सुख तो है पर बाज़ारों के अपने खतरे हैं।”²²⁹

(विनय मिश्र)

“भूख जगाई जाती है इच्छाओं की
फिर लोगों को ज़हर खिलाया जाता है।”²³⁰

(महेश कटारे सुगम)

“विज्ञापन अब बता रहे हैं उपयोगी सामान हमें

जो पहले ही आ पहुँचे हैं बने सजे बाज़ारों में।”²³¹ (महेश कटारे सुगम)

*** *** *** ***

“हैं खरीदारी हमारी सब उधारी पर / बेचनेवाला हमे बिकना सिखाता है।

सामने दिखता नहीं ठगिया हमें यों तो / हाँ कोई भीतर ठहाका-सा लगाता है।

हम नहीं खाते हमें बाज़ार खाता है / आजकल अपना यही चीजों से नाता है।”²³²

(रामकुमार कृषक)

समकालीन दौर में मानव समाज के समक्ष सबसे बड़ा संकट अधिनायकवादी पूँजीवाद की कोख से उपजे बाज़ारवाद के आतंक का है, जो समाज के तमाम सत्ता तंत्रों की शक्तियों, नियमों, सिद्धान्तों एवं मूल्यों को धत्ता बताकर ब्रह्मांड विजेता सृष्टि के सबसे विवेकी प्राणी मानव को भी विवेकविहीन वस्तु बनाने पर तुला है। उसके लिए पूँजी ही परमेश्वर और मुनाफा ही मोक्षीय मूल्य है। जिसके लिए उसने हर चीज को बाज़ार के उत्पाद में तब्दील कर बिकने योग्य बनाने के साथ उसके खरीदार भी पैदा किए हैं। और इसीलिए आज बाज़ार में मूर्त-अमूर्त सब कुछ बिक रहा है। बाज़ार ने आज भाव से लेकर भाषा, आत्मा से लेकर आत्मीयता, जिस्म से लेकर जान, आत्मसम्मान से लेकर अस्मत्, कोख से लेकर किस्मत, आँसू से लेकर आक्रोश, मुस्कान से लेकर मौत, रूप से लेकर रिश्ते, मेहनत से लेकर मूल्य (जीवन-मूल्य), प्यार से लेकर पुरुषत्व, प्रतिभा से लेकर पौरुष, महिला से लेकर मर्द, चेहरे से लेकर चरित्र, विचार से लेकर विज्ञान, संस्कृति से लेकर साहित्य, कला से लेकर कलाकार, पानी से लेकर प्रकाश, प्रेत से लेकर परमेश्वर, भावना से लेकर भगवान तक सबको बिकाऊ बना दिया है। आज बाज़ार हर चीज को बेचकर मुनाफा कमा रहा है। बाज़ारवाद में सामान का ही सम्मान है। उसका एक ही सिद्धांत है कि जो सामान की तरह बिक नहीं सकता है, वह टिक नहीं सकता है। और अपने आप को टिकाऊ बनाए रखने के लिए पुरुष हो या स्त्री जिसके पास जो कुछ है, (चाहे वह रूप हो, विद्या हो या यौवन हो) वह उसे बेच रहा है। बाज़ारवाद स्त्री को इंसान के बजाय केवल ऐसी देह या विलास की वस्तु समझता है, जो बाज़ार के मूल्य पर भोग को खुला आमंत्रण देती है। बाज़ारवाद ने मॉल संस्कृति को बढ़ावा दिया है और बड़े-बड़े मॉल में चमक-धमक के साथ माल (सामान) के बीच उसने सुंदर महिलाओं को भी रिसेप्शन पर आकर्षक वस्तु (माल) बनाकर बिठा दिया है और उनकी कृत्रिम मुस्कान को बेचकर मुनाफा कमा रहा है। बाज़ारवाद इतना ताकतवर हो गया है कि उसके जैसी मानवता

विरोधी ताकतों का प्रतिरोध करने वाला साहित्य भी आज उसकी गिरफ्त आ गया है।
बाज़ार के इस आतंकी चरित्र पर हिंदी ग़ज़लकार लिखते हैं-

“कर रहा है जिन्स में तब्दील सबको

यह घिनौनापन सरे बाज़ार करता है।”²³³

(महेश अग्रवाल)

“बिकने को आए सभी, रूप, कला, हथियार,

है विष को भी बेचना, बाज़ारों का काम।”²³⁴

(जहीर कुरेशी)

“यहाँ मुस्कान और आँसू भी हैं बाज़ार में बिकते

यहाँ पर अब किसी की आँख के पानी का क्या मतलब।”²³⁵ (वशिष्ठ अनूप)

“बिक रहा इन्सान, मज़हब, प्यार, क्या देखें

लग रहा इनका यहाँ बाज़ार क्या देखें।”²³⁶

(महेश अग्रवाल)

“कोख से किस्मत तलक सब कुछ बिकाऊ है

कम से कम बाज़ार का तो है यही दावा।”²³⁷

(देवेन्द्र आर्य)

“सब कुछ तो बेचने पे तुले हैं हुज़ूर आप

पानी, हवा, प्रकाश, रखा है बाज़ार में।”²³⁸

(हरेराम समीप)

“हानि अथवा लाभ का चश्मा चढ़ा लेने के बाद

वो बहुत चिन्ता नहीं करती है 'अस्मत' के लिए।”²³⁹

(जहीर कुरेशी)

“सुस्वागतम् तुम्हें करना था मुस्कुराते हुए

जो तुमने यंत्र की शैली में बार-बार किया।”²⁴⁰

(जहीर कुरेशी)

“जब से कविता में घुसा बाज़ारवाद

माँग के अनुसार ही लेखन हुआ।”²⁴¹

(जहीर कुरेशी)

बाज़ारवाद की फितरत इंसान व इंसानियत की विरोधी है। इसने मनुष्य को बिकाऊ बनाकर उसका पदार्थीकरण कर दिया है, जिससे उसकी मानवीय संवेदना और

भावनाओं का भी पदार्थीकरण हो गया है। तथा उसके लिए सारे पारिवारिक मूल्य, आत्मीय रिश्ते, मानवीय संबंध एवं मानवीय मूल्य जड़ हो गए हैं। बाज़ारवाद ने व्यक्ति का मूल्य लगा कर उसे मूल्यहीन (जीवन मूल्यों से हीन) कर दिया है। बाज़ार में मनुष्य रुपी पदार्थ के भाव जितने बढ़े हैं, जीवन मूल्यों के भाव उतने ही गिरे हैं। बाज़ार के मूल्य मुद्रा व मुनाफा हैं और इनके लिए उसने सत्य, ईमान, नैतिकता जैसे जीवन मूल्यों का भी बाज़ार लगा दिया है। जिसमें मानव अपनी आत्मा और ज़मीर को भी बेच रहा है। षड्यंत्री बाज़ारवाद आध्यात्मिकता प्रधान हमारी सनातन मानवीय संस्कृति को भौतिकता प्रधान आर्थिक संस्कृति बनाने पर तुला हुआ है। बाज़ारवादी सोच से प्रभावित आज के मनुष्य की चेतना अर्थवादी व वस्तुवादी हो गई है तथा उसके लिए धन और भौतिक सुखों के सामने सारे रिश्ते-नाते, मानवीय संबंध, मानवीय मूल्य एवं इंसानियत सब गौण हो गए हैं। बाज़ारवाद की षड्यंत्री हवा ने मनुष्य को ईंधन बनाकर भोग की आग को प्रज्वलित किया है, जिसमें प्रेम, दया, परोपकार, त्याग, सहिष्णुता, सहयोग, सद्भाव, सौहार्द्र व भाईचारा जैसे तमाम मानवीय मूल्य और जीवन की तमाम शुभताएँ होम हो रही हैं। हिंदी गज़लकार बाज़ारवाद के मानवता विरोधी चेहरे को उजागर करते हुए लिखते हैं-

“बहुत मुश्किल में है जीवन लगे हैं दाँव पर रिश्ते
नज़र जाती जिधर भी हर तरफ बाज़ार होता है।”²⁴² (वशिष्ठ अनूप)

*** *** *** ***

“बिक रहे बाज़ार में अब तो ज़मीर भी
हर क़दम ईमान का भी मोल-भाव है।”²⁴³ (महेश अग्रवाल)

*** *** *** ***

“जो आत्मा थी उसे मैंने कब का मार दिया
कि अपने-आपको बाज़ार में उतार दिया।”²⁴⁴ (ज्ञानप्रकाश विवेक)

*** *** *** ***

“बाज़ारु मुस्कानें फिरती हैं अब गली-गली
इस बस्ती में जैसे कोई सुंदर नहीं रहा।”²⁴⁵ (विनय मिश्र)

*** *** *** ***

“निगलती जा रही है जिसकी लपटें आदमीयत को
हमें मालूम है इस आग को किसने हवा दी है।”²⁴⁶ (वशिष्ठ अनूप)

समकालीन हिंदी कविता के साथ सुर साधती 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल बाज़ारवाद के विरुद्ध सशक्त प्रतिरोध का मुखर स्वर बनकर उभरती है। हिंदी ग़ज़लकार जहाँ एक ओर बाज़ारवाद के प्रभावों और खतरों को रेखांकित करते हैं, वहीं दूसरी ओर उसके विरोध में आवाज बुलंद कर मानवता को बचाने की वकालत करते हुए भविष्य के प्रति सुखद उम्मीद जगाते हैं। बाज़ारवाद के मानवता-विरोधी महादानव के सामने, जब समस्त सामाजिक-राजनीतिक संस्थान हथियार डालते प्रतीत होते हैं, तब हिंदी ग़ज़लकार अपनी शायरी को औजार बनाकर बाज़ार के भीतर भी इंसान गढ़ने और इंसानियत को बचाने की कुव्वत रखते हैं। अपनी शायरी की ताकत पर पूरा यकीन रखते हुए वे बाज़ारवाद के खिलाफ़ इस लड़ाई में मनुष्य और मनुष्यता की जीत की घोषणा करते हैं। हिंदी ग़ज़ल के बाज़ारवाद विरोधी स्वर एवं मानवतावादी मंगलगान की पुष्टि करते कुछ शेर प्रस्तुत हैं-

“जाने कब महसूस करोगे गहराई बाज़ारों की
घर आँगन को लील गयी है परछाई बाज़ारों की।”²⁴⁷ (माधव कौशिक)

*** *** *** ***

“हमारा काम है बाज़ार में भी आदमी गढ़ना
तुम्हारा काम घर आँगन को भी बाज़ार करना है।”²⁴⁸ (विनय मिश्र)

*** *** *** ***

“मुझे मालूम है इस दौर में बाज़ार सब कुछ है
मगर मैं आदमी की जीत का ऐलान करता है।”²⁴⁹ (माधव कौशिक)

निष्कर्षतः कहा जा सकता है 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में समकालीन सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य यथार्थ रूप में प्रतिबिंबित हुआ है। भूमंडलीकरण, उदारीकरण, बाज़ारीकरण, सूचना तकनीक व उत्तर आधुनिकता के इस दौर में पारिवारिक जीवन का बिगड़ता सुंदर स्वरूप, वंचित वर्गों की वेदना, महानगरों का विकृत चेहरा, गाँवों का उजड़ता परंपरागत सौंदर्य, अपराधों का बढ़ता कारोबार, समाज में धन की बढ़ती भूख, आर्थिक असमानता की गहरी होती घाटी, गरीबी से संघर्ष करते आम आदमी की पीड़ा, बेकारी में भटकते युवा वर्ग की हताशा व अवसाद, महँगाई का सुरसाई स्वरूप तथा बाज़ारवाद का आदमखोर आतंकी व क्रूर चेहरा आदि समकाल के सब विकृत पहलू हिंदी ग़ज़ल में बखूबी चित्रित हुए हैं। इसके साथ हिंदी ग़ज़ल में सामाजिक जीवन सौंदर्य को बचाए रखने तथा इंसानियत को जिंदा रखने का वकालती स्वर भी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सं. तीर्थेश्वर सिंह, समकालीन हिंदी कविता में यथार्थवादी चेतना, पृ. 17
2. सं. लालचंद गुप्त मंगल, माधव कौशिक सर्जन की समीक्षा, पृ. 68
3. दुर्गेश नंदिनी, हिंदी उपन्यासों में सामाजिक परिप्रेक्ष्य, पृ. 53-54
4. जहीर कुरेशी, निकला न दिग्विजय को सिकंदर, पृ. 38
5. माधव कौशिक, अंगारों पर नंगे पांव किंडले संस्करण, पृ. 16
6. वशिष्ठ अनूप, बारूद के बिस्तर पर पृ. 59
7. हरeram समीप, यह नदी खामोश है, पृ. 30
8. अदम गोंडवी, समय से मुठभेड़, पृ. 86
9. हरeram समीप, हरeram समीप चयनित गज़लें, पृ. 82
10. महेश अग्रवाल, पेड़ फिर हरा होगा, पृ. 93
11. ज्ञानप्रकाश विवेक, घाट हजारों इस दरिया के, पृ. 36
12. सं. मधु खराटे, जहीर कुरेशी चुनिंदा गज़लें, पृ. 85
13. जहीर कुरेशी, रास्तों से रास्ते निकले, पृ. 34
14. माधव कौशिक, नयी उम्मीद की दुनिया किंडले संस्करण, पृ. 67
15. ज्ञानप्रकाश विवेक, गुफ्तगू अवाम से है, पृ. 65
16. जहीर कुरेशी, दोहों से दोहा गज़लों तक, पृ. 115
17. जहीर कुरेशी, जिंदगी से बड़ा जिंदगी का समर, पृ. 26
18. वशिष्ठ अनूप, रोशनी खतरे में है, पृ. 57
19. वशिष्ठ अनूप, बारूद के बिस्तर पर, पृ. 72
20. प्रेम कुमार, एक मस्त फकीर; नीरज, पृ. 128
21. शिव ओम अंबर, विष पीना विस्मय मत करना, पृ. 37,
22. माधव कौशिक, नयी उम्मीद की दुनिया किंडले संस्करण, पृ. 96
23. विनय मिश्र, तेरा होना तलाशूँ, पृ. 35
24. महेश कटारे सुगम, प्यार के साये, पृ. 28
25. वशिष्ठ अनूप, छंद तेरी हंसी का, पृ. 146
26. राम मेश्राम, आग में उड़ान, पृ. 88
27. शिव ओम अंबर, विष पीना विस्मय मत करना, पृ. 52
28. विनय मिश्र, तेरा होना तलाशूँ, पृ. 23,
29. वशिष्ठ अनूप, छंद तेरी हंसी का, पृ. 106

- 30.वही पृ. 17
- 31.अदम गोंडवी, समय से मुठभेड़, पृ. 68
- 32.महेश कटारे सुगम, अभी इम्कान बाकी है, पृ. 24
- 33.वशिष्ठ अनूप, घरों पर गिद्ध मंडराने लगे हैं, पृ. 17
- 34.रामकुमार कृषक, पढ़िए तो आँख पाइए, पृ. 96
- 35.माधव कौशिक, अंगारों पर नंगे पांव किंडले संस्करण, पृ. 42
- 36.देवेंद्र आर्य, मन कबीर, पृ. 97
- 37.महेश कटारे सुगम, कुछ तो है, पृ. 32
- 38.महेश अग्रवाल, अभी शेष है, पृ. 43
- 39.विनय मिश्र, सच और है, पृ. 20
- 40.वशिष्ठ अनूप, छंद तेरी हंसी का, पृ. 137,
- 41.जहीर कुरेशी, बोलता है बीज भी, पृ. 59
- 42.वशिष्ठ अनूप, छंद तेरी हंसी का, पृ. 122
- 43.सं. जहीर कुरेशी, सादगी का सौंदर्य; वशिष्ठ अनूप का सृजन, पृ. 168
- 44.महेश अग्रवाल, अभी शेष है, पृ. 41
- 45.रामकुमार कृषक, पढ़िए तो आँख पाइए, पृ. 113
- 46.महेश कटारे सुगम, ख्वाब मेरे भटकते रहे, पृ.105
- 47.अदम गोंडवी, समय से मुठभेड़, पृ. 39
- 48.महेश कटारे सुगम, आशाओं के नये महल, पृ. 65
- 49.राम मेश्राम, आग में उड़ान, पृ. 38
- 50.हरेराम समीप, हरेराम समीप चयनित गज़लें, पृ. 53
- 51.शिव ओम अंबर, विष पीना विस्मय मत करना, पृ. 7
- 52.देवेंद्र आर्य, मन कबीर, पृ. 70
- 53.वशिष्ठ अनूप, तेरी आँखें बहुत बोलती हैं, पृ. 66
- 54.हरेराम समीप, यह नदी खामोश है, पृ. 53
- 55.जहीर कुरेशी, दोहों से दोहा गज़लों तक, पृ. 99
- 56.ज्ञानप्रकाश विवेक, कागज़ी छतरियाँ बनाता हूँ, पृ. 13
- 57.जहीर कुरेशी, जिंदगी से बड़ा जिंदगी का समर, पृ. 74
- 58.वशिष्ठ अनूप, घरों पर गिद्ध मंडराने लगे हैं, पृ. 53
- 59.किशन तिवारी, धूप का रास्ता, पृ. 70

- 60.देवेंद्र आर्य, मन कबीर, पृ. 47
- 61.जहीर कुरेशी, बोलता है बीज भी, पृ. 89
- 62.डी. एम. मिश्र, रोशनी का कारवां, पृ. 65
- 63.रामकुमार कृष्णक, पढ़िए तो आँख पाइए, पृ. 119
- 64.वशिष्ठ अनूप, छंद तेरी हंसी का, पृ. 72
- 65.जहीर कुरेशी, दोहों से दोहा गज़लों तक, पृ. 99
- 66.वही पृ. 109
- 67.वशिष्ठ अनूप, तेरी आँखें बहुत बोलती हैं, पृ. 87
- 68.सं. मधु खराटे, जहीर कुरेशी चुनिंदा गज़लें, पृ. 100
- 69.वशिष्ठ अनूप, मशालें फिर जलाने का समय हैं, पृ. 91
- 70.वही पृ. 14
- 71.सं. मधु खराटे, जहीर कुरेशी चुनिंदा गज़लें, पृ. 113
- 72.डी. एम. मिश्र, वह पता ढूँढे हमारा, पृ. 67
- 73.वशिष्ठ अनूप, रोशनी की कौपलें, पृ. 56
- 74.महेश अग्रवाल, अभी शेष है, पृ. 89
- 75.शिव ओम अंबर, विष पीना विस्मय मत करना, पृ. 39
- 76.जहीर कुरेशी, निकला न दिग्विजय को सिकंदर, पृ. 93
- 77.ज्ञानप्रकाश विवेक, घाट हजारों इस दरिया के, पृ. 45
- 78.ज्ञानप्रकाश विवेक, कागज़ी छतरियाँ बनाता हूँ, पृ. 39
- 79.किशन तिवारी, धूप का रास्ता, पृ. 85
- 80.हरeram समीप, हरeram समीप चयनित गज़लें, पृ. 49
- 81.डी. एम. मिश्र, रोशनी का कारवां, पृ. 41
- 82.वही पृ. 62
- 83.जहीर कुरेशी, रास्तों से रास्ते निकले, पृ. 105
- 84.महेश कटारे सुगम, प्यार के साये, पृ. 63
- 85.माधव कौशिक, सारे सपने बागी हैं, पृ. 93
- 86.विनय मिश्र, लोग जिंदा हैं, पृ. 22
- 87.ज्ञानप्रकाश विवेक, घाट हजारों इस दरिया के, पृ. 110
- 88.माधव कौशिक, अंगारों पर नंगे पांव किंडले संस्करण, पृ. 36
- 89.ज्ञानप्रकाश विवेक, गुफ्तगू अवाम से हैं, पृ. 76

- 90.सीमा गुप्ता, समकालीन हिंदी उपन्यास; महानगर बोध, पृ. 112
- 91.ज्ञानप्रकाश विवेक, कागज़ी छतरियाँ बनाता हूँ, पृ. 63
- 92.माधव कौशिक, अंगारों पर नंगे पांव किंडले संस्करण, पृ. 14
- 93.वशिष्ठ अनूप, रोशनी की कॉपलें, पृ. 11
- 94.सं. मंजुला राणा, माधव कौशिक की काव्य संवेदना, पृ. 56
- 95.जहीर कुरेशी, निकला न दिग्विजय को सिकंदर, पृ. 35
- 96.माधव कौशिक, सारे सपने बागी हैं, पृ. 55
- 97.सं. कुरेशी जहीर, सादगी का सौंदर्य; वशिष्ठ अनूप का सृजन, पृ. 60
- 98.महेश कटारे सुगम, लाहौल वला कुव्वत, पृ. 94
- 99.डी. एम. मिश्र, वह पता ढूंढे हमारा, पृ. 46
100. वशिष्ठ अनूप, छंद तेरी हंसी का, पृ. 88
101. शिव ओम अंबर, विष पीना विस्मय मत करना, पृ. 26,
102. ज्ञानप्रकाश विवेक, गुफ्तगू अवाम से है, पृ. 62
103. वशिष्ठ अनूप, घरों पर गिद्ध मंडराने लगे हैं, पृ. 93
104. जहीर कुरेशी, निकला न दिग्विजय को सिकंदर, पृ. 93
105. सं. लालचंद गुप्त मंगल, माधव कौशिक सर्जन की समीक्षा, पृ. 110
106. महेश कटारे सुगम, प्रतिरोधों के पर्व, पृ. 55
107. जहीर कुरेशी, बोलता है बीज भी, पृ. 70
108. डी. एम. मिश्र, रोशनी का कारवां, पृ. 12
109. डी. एम. मिश्र, समकाल की आवाज, पृ. 37
110. महेश कटारे सुगम, अभी इम्कान बाकी है, पृ. 10
111. डी. एम. मिश्र, रोशनी का कारवां, पृ. 14
112. डी. एम. मिश्र, समकाल की आवाज़, पृ.73
113. डी. एम. मिश्र, रोशनी का कारवाँ, पृ. 59
114. वशिष्ठ अनूप, रोशनी की कॉपलें, पृ. 101
115. वही पृ. 11
116. महेश कटारे सुगम, प्रतिरोधों के पर्व, पृ. 109
117. महेश कटारे सुगम, कुछ तो है, पृ. 109
118. महेश अग्रवाल, अभी शेष है, पृ. 70
119. जहीर कुरेशी, निकला न दिग्विजय को सिकंदर, पृ. 71

120. वशिष्ठ अनूप, रोशनी की कौपलें, पृ. 37
121. विनय मिश्र, तेरा होना तलाशूँ, पृ. 51
122. जहीर कुरेशी, एक टुकड़ा धूप, पृ. 24
123. महेश अग्रवाल, अभी शेष है, पृ. 66
124. विनय मिश्र, सच और है, पृ. 70
125. महेश अग्रवाल, अभी शेष है, पृ. 22
126. माधव कौशिक, अंगारों पर नंगे पांव किंडले संस्करण, पृ. 47
127. महेश कटारे सुगम, अय हय हय, पृ. 23
128. विनय मिश्र, लोग जिंदा है, पृ. 80
129. वही पृ. 62
130. डी. एम. मिश्र, समकाल की आवाज, पृ. 79
131. वही पृ. 91
132. तीर्थेश्वर सिंह, समकालीन हिंदी कविता में यथार्थवादी चेतना, पृ. 32
133. महेश कटारे सुगम, शुक्रिया, पृ. 34
134. महेश अग्रवाल, पेड़ फिर हरा होगा, पृ. 17
135. महेश कटारे सुगम, अय हय हय, पृ. 51
136. अदम गौडवी, समय से मुठभेड़, पृ. 77
137. ज्ञानप्रकाश विवेक, घाट हजारों इस दरिया के, पृ. 31
138. सुमन सिंह, रांगेय राघव के उपन्यास और युग चेतना, पृ. 78
139. हरeram समीप, हरeram समीप चयनित गज़लें, पृ. 62
140. डी. एम. मिश्र, रोशनी का कारवां, पृ. 62
141. महेश कटारे सुगम, लाहौल वला कुव्वत, पृ. 21
142. देवेंद्र आर्य, जो पीवे नीर नैना का, पृ. 60
143. वशिष्ठ अनूप, घरों पर गिद्ध मंडराने लगे हैं, पृ. 57
144. जहीर कुरेशी, दोहों से दोहा गज़लों तक, पृ. 123
145. महेश कटारे सुगम, शुक्रिया, पृ. 73
146. महेश कटारे सुगम, प्रतिरोधों के पर्व, पृ. 74
147. महेश कटारे सुगम, दुआएँ दो दरख्तों को, पृ. 42
148. हरeram समीप, यह नदी खामोश है, पृ. 110
149. जहीर कुरेशी, रास्तों से रास्ते निकले, पृ. 102

150. महेश कटारे सुगम, प्रतिरोधों के पर्व, पृ. 92
151. महेश कटारे सुगम, दुआएँ दो दरख्तों को, पृ. 19
152. महेश कटारे सुगम, अभी इम्कान बाकी है, पृ. 14
153. हरेराम समीप, हरेराम समीप चयनित गज़लें, पृ. 53
154. अदम गोंडवी, समय से मुठभेड़, पृ. 64
155. महेश कटारे सुगम, शुक्रिया, पृ. 98
156. सं. शैलेंद्र कुमार शैली, राग भोपाली पत्रिका, जुलाई 2016, पृ. 26
157. महेश कटारे सुगम, प्यार के साये, पृ. 60
158. अदम गोंडवी, समय से मुठभेड़, पृ. 59
159. हरेराम समीप, हरेराम समीप चयनित गज़लें, पृ. 52
160. अदम गोंडवी, समय से मुठभेड़, पृ. 84
161. विनय मिश्र, जिंदगी आने को है, पृ. 80
162. महेश अग्रवाल, अभी शेष है, पृ. 78
163. डी. एम. मिश्र, लेकिन सवाल टेढ़ा है, पृ. 17
164. महेश कटारे सुगम, लाहौल वला कुव्वत, पृ. 53
165. विनय मिश्र, लोग जिंदा है, पृ. 11
166. वशिष्ठ अनूप, रोशनी की कॉपलें, पृ. 51
167. वशिष्ठ अनूप, छंद तेरी हंसी का, पृ. 126
168. महेश कटारे सुगम, ख्वाब मेरे भटकते रहे, पृ. 32
169. जहीर कुरेशी, जिंदगी से बड़ा जिंदगी का समर, पृ. 32
170. विनय मिश्र, लोग जिंदा है, पृ. 72
171. माधव कौशिक, नयी सुबह की नयी कहानी, पृ. 108
172. महेश कटारे सुगम, कुछ तो है, पृ. 86
173. ज्ञानप्रकाश विवेक, कागज़ी छतरियाँ बनाता हूँ, पृ. 117
174. वशिष्ठ अनूप, रोशनी खतरे में है, पृ. 51
175. महेश कटारे सुगम, लाहौल वला कुव्वत, पृ. 54
176. अदम गोंडवी, समय से मुठभेड़, पृ. 74
177. वही पृ. 93
178. डी. एम. मिश्र, रोशनी का कारवां, पृ. 23
179. महेश कटारे सुगम, शुक्रिया, पृ. 101

180. वही पृ. 68
181. वही पृ. 101
182. महेश अग्रवाल, अभी शेष है, पृ. 43
183. वही पृ. 81
184. जहीर कुरेशी, निकला न दिग्विजय को सिकंदर, पृ. 58
185. अदम गोंडवी, समय से मुठभेड़, पृ. 51
186. हरeram समीप, यह नदी खामोश है, पृ. 25
187. जहीर कुरेशी, रास्तों से रास्ते निकले, पृ. 32
188. सुगम महेश कटारे, लाहौल वला कुव्वत, पृ. 51
189. सं. मंजुला राणा, माधव कौशिक की काव्य संवेदना, पृ.12
190. एम.एल. गुप्ता एवं डी. डी. शर्मा, समकालीन भारत में सामाजिक समस्याएँ पृ. 330
191. जहीर कुरेशी, दोहों से दोहा गज़लों तक, पृ. 118
192. देवेंद्र आर्य, उमस, पृ. 100
193. महेश कटारे सुगम, कुछ तो है, पृ. 30
194. किशन तिवारी, मैं तुम हो जाऊँ, पृ. 61
195. जहीर कुरेशी, जिंदगी से बड़ा जिंदगी का समर, पृ. 64
196. महेश कटारे सुगम, अय हय हय, पृ. 28
197. जहीर कुरेशी, निकला न दिग्विजय को सिकंदर, पृ. 35
198. ज्ञानप्रकाश विवेक, कागज़ी छतरियाँ बनाता हूँ, पृ. 83
199. जहीर कुरेशी, बोलता है बीज भी, पृ. 16
200. डी. एम. मिश्र, वह पता ढूँढे हमारा, पृ. 57
201. किशन तिवारी, सोचिए तो सही, पृ. 16
202. डी. एम. मिश्र, वह पता ढूँढे हमारा, पृ. 37
203. अदम गोंडवी, समय से मुठभेड़, पृ. 36
204. वशिष्ठ अनूप, मशालें फिर जलाने का समय है, पृ. 19
205. वशिष्ठ अनूप, घरों पर गिद्ध मंडराने लगे हैं, पृ. 22
206. हरeram समीप, यह नदी खामोश है, पृ. 55
207. वशिष्ठ अनूप, रोशनी की कॉपलें, पृ. 101
208. देवेंद्र आर्य, मन कबीर, पृ. 20

209. डी. एम. मिश्र, आईना- दर -आईना, पृ. 34
210. महेश अग्रवाल, पेड़ फिर हरा होगा, पृ. 64
211. अदम गोंडवी, समय से मुठभेड़, पृ. 29
212. महेश कटारे सुगम, कुछ तो है, पृ. 58
213. वही पृ. 30
214. विनय मिश्र, सच और है, पृ. 59
215. वशिष्ठ अनूप, बारूद के बिस्तर पर, पृ. 50
216. महेश कटारे सुगम, अय हय हय, पृ. 25
217. महेश कटारे सुगम, प्यार के साये, पृ. 94
218. किशन तिवारी, धूप का रास्ता, पृ. 66
219. सुगम महेश कटारे, अभी इम्कान बाकी है, पृ. 20
220. हरेराम समीप, यह नदी खामोश है, पृ. 105
221. देवेंद्र आर्य, मन कबीर, पृ. 77
222. जहीर कुरेशी, दोहों से दोहा गज़लों तक, पृ. 104
223. वशिष्ठ अनूप, घरों पर गिद्ध मंडराने लगे हैं, पृ. 101
224. विनय मिश्र, जिंदगी आने को है, पृ. 2
225. महेश कटारे सुगम, अय हय हय, पृ. 112
226. महेश कटारे सुगम, सारी खींचतान में फरेब ही फरेब है, पृ. 13
227. जहीर कुरेशी, निकला न दिग्विजय को सिकंदर, पृ. 45
228. जहीर कुरेशी, रास्तों से रास्ते निकले, पृ. 92
229. विनय मिश्र, तेरा होना तलाशूँ, पृ. 53
230. महेश कटारे सुगम, ऐसी-तैसी, पृ. 79
231. महेश कटारे सुगम, प्रतिरोधों के पर्व, पृ. 84
232. रामकुमार कृषक, पढ़िए तो आँख पाइए, पृ. 74
233. महेश अग्रवाल, पेड़ फिर हरा होगा, पृ. 18
234. जहीर कुरेशी, दोहों से दोहा गज़लों तक, पृ. 100
235. वशिष्ठ अनूप, तेरी आँखें बहुत बोलती हैं, पृ. 39
236. महेश अग्रवाल, पेड़ फिर हरा होगा, पृ. 56
237. देवेंद्र आर्य, जो पीवे नीर नैना का, पृ. 64
238. हरेराम समीप, यह नदी खामोश है, पृ. 20

- 239. जहीर कुरेशी, जिंदगी से बड़ा जिंदगी का समर, पृ. 25
- 240. वही पृ. 59
- 241. जहीर कुरेशी, रास्तों से रास्ते निकले, पृ. 103
- 242. वशिष्ठ अनूप, मशालें फिर जलाने का समय है, पृ. 84
- 243. महेश अग्रवाल, अभी शेष है, पृ. 27
- 244. ज्ञानप्रकाश विवेक, घाट हजारों इस दरिया के, पृ. 95
- 245. विनय मिश्र, सच और है, पृ. 24
- 246. सं. जहीर कुरेशी, सादगी का सौंदर्य; वशिष्ठ अनूप का सृजन, पृ. 60
- 247. माधव कौशिक, सारे सपने बागी है, पृ. 13
- 248. विनय मिश्र, सच और है, पृ. 18
- 249. सं. लालचंद गुप्त मंगल, माधव कौशिक सर्जन की समीक्षा, पृ. 87

पंचम अध्याय
21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल
में धार्मिक, सांस्कृतिक
एवं अन्य यथार्थ

पंचम अध्याय

21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में धार्मिक, सांस्कृतिक एवं अन्य यथार्थ

प्रस्तावना

भूमंडलीकरण, उदारीकरण एवं पूँजीवाद की कोख में पली बाज़ारवाद एवं उपभोक्तावाद जैसी संकल्पनाओं के कारण 21वीं शताब्दी में हमारे पारम्परिक सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक व सांस्कृतिक ढाँचे में आमूलचूल बदलाव आता है। वैश्वीकरण एवं सूचना क्रांति के परिणामस्वरूप विश्व के 'ग्लोबल विलेज' में परिवर्तित हो जाने से पाश्चात्य व पौर्वात्य संस्कृतियों में संक्रमण होता है। इस सांस्कृतिक अंतर्संवाद की प्रक्रिया में हमारे समाज का नया स्वरूप निर्मित हो रहा है, जिसके दिल में उपभोक्तावाद, दृष्टि में बाज़ार और दिमाग में पैसा है। समाज के इस नवीन अवतरण में जीवन के नये प्रतिमान, सत्य और मूल्य निर्मित हो रहे हैं। तथा समाज से संबंधित हर चीज- धर्म, अर्थ, राजनीति व संस्कृति सभी का स्वरूप एवं यथार्थ बदल रहा है।

बाज़ारवादी अपसंस्कृति के इस दौर में अर्थवादी मूल्यों के बढ़ जाने से धर्म का आध्यात्मिक स्वरूप विकृत हो रहा है। धर्म, जो परम्परागत रूप से अर्थ (धन) और राजनीति को नैतिक तौर पर नियंत्रित करता रहा है, अब स्वयं राजनीतिक एवं आर्थिक हितों के लिए दुरुपयोग का शिकार हो गया है। जिससे धर्म का चरित्र पाखंड और सांप्रदायिकता की ओर उन्मुख हो गया है। धर्म आज धर्मगुरुओं और राजनेताओं के लिए संपत्ति और सत्ता अर्जन का साधन बन गया है। फलस्वरूप धर्म का मानवीय और नैतिक स्वरूप विकृत हो गया है।

बाज़ारवाद एवं पश्चिम के भौतिकतावादी जीवन दर्शन के कारण उपभोक्तावादी संस्कृति का तेजी से प्रसार हुआ है। जिसने मुद्रा (अर्थ) को सर्वाधिक प्रभावशाली मूल्य बना दिया है। गोपालदास नीरज का मानना है कि, "आज दो मूल्य मुख्य हैं अर्थ और काम। अर्थ को हमारे यहाँ पिशाच कहा गया है। धीरे-धीरे खून चूसकर मारता है। साहित्य, कला, धर्म, दर्शन, शिक्षा, राजनीति जहाँ भी यह केन्द्र बनेगा, सबको व्यर्थ सिद्ध कर देगा, विकृत कर देगा। अर्थ लक्ष्य नहीं, माध्यम हो सकता है।"¹ लेकिन धन आज केवल साधन न रहकर साध्य हो गया है। या कहे कि धन ही आज मानव धर्म, मानव मूल्य और जीवन मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित होने लगा है। धन की इस सर्वग्रासी सत्ता के सामने सारे मानवीय संबंध, मानवीय मूल्य और जीवन मूल्य गौण

हो गए हैं। परिणामस्वरूप भारतीय सनातन संस्कृति के आधारभूत मूल्यों का पतन हो रहा है। तथा प्रेम, दया, करुणा, शांति, सत्य, अहिंसा, सदाचार, संवेदनशीलता, सहानुभूति, सहनशीलता, सादगी एवं सरलता जैसे गुणों का स्थान छल-कपट, झूठ-पाखंड, असहिष्णुता, असंवेदनशीलता, हिंसा और बेईमानी जैसे दुर्गुण लेते जा रहे हैं। धन की अंधी दौड़ में व्यक्ति की संवेदनशीलता खत्म हो रही है, उसके भीतर की इंसानियत मर रही है और वह अमानवीय होता जा रहा है। अर्थ के प्रभाव में आकर जीवन मूल्यों के संरक्षण की ज़िम्मेदारी निभाने वाली राजनीति, धर्म और साहित्य जैसे संस्थाएँ भी अपनी प्रभावशीलता खोती जा रही है। अपने तीसरे नवगीत संग्रह 'जोखिम भरा समय' के दो शब्द में स्वयं माधव कौशिक लिखते हैं- "आज समूचा विश्व इतिहास के सर्वाधिक कठिन मोड़ पर खड़ा अनिश्चितता के दौर से गुजर रहा है। भूमंडलीकरण-उदारीकरण और बाज़ारीकरण के फलस्वरूप उत्पन्न अपसंस्कृति के सामने मानव मूल्यों को संरक्षित करने वाली सारी शक्तियाँ स्वयं को असहाय-निरूपाय अनुभव कर रही हैं। फलस्वरूप नैसर्गिक एवं शाश्वत जीवन मूल्यों के स्थान पर अराजकता और अमानवीयता का अंधकार यत्र तत्र सर्वत्र फैलता जा रहा है।"²

वैश्वीकरण, सूचना क्रांति एवं आधुनिकीकरण के कारण पाश्चात्य संस्कृति का तीव्र गति से व्यापक आयात और प्रसार हो रहा है। जिससे भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों का तेजी से पतन हुआ है। और हमारा परंपरागत सांस्कृतिक ढाँचा अनेक विसंगतियों एवं विकृतियों से ग्रस्त हो गया है। मूल्यों के इस विचलन से व्यक्ति का प्रकृति के प्रति भी दृष्टिकोण बदल गया है और वैश्विक मानव समुदाय अपने स्वार्थ के लिए प्रकृति का अंधाधुंध दोहन कर रहा है। जिससे पर्यावरणीय संतुलन और प्रकृति का सौंदर्य उजड़ रहा है। यही नहीं प्रकृति सहित समस्त सृष्टि के मंगल की कामना करने वाले और उसके सौंदर्य के संरक्षण-संवर्धन की चेतना जाग्रत करने वाले साहित्य के स्वयं का सुन्दर वातावरण आज बाज़ारवादी ताकतों के प्रभाव में बिगड़ रहा है।

सार रूप में कह सकते हैं कि 21वीं सदी में धर्म, संस्कृति, पर्यावरण एवं साहित्य सभी का स्वरूप व यथार्थ बदल रहा है। हर क्षेत्र में विकृतियों, विसंगतियों एवं विद्रूपताओं का प्रसार हो रहा है। 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल का चेहरा व चरित्र यथार्थवादी है। और अपने यथार्थवादी रूप में उसने बेहतर मानवीय समाज की मंगल कामना के साथ समकालीन धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक विद्रूपताओं एवं विडंबनाओं को पूरी सच्चाई के साथ उजागर किया है। प्रस्तुत अध्याय में 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल की शाब्दिक तूलिका के माध्यम से समकालीन धार्मिक,

सांस्कृतिक, पर्यावरणीय व साहित्यिक यथार्थ को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

5.1 धार्मिक यथार्थ

धर्म मानव सभ्यता की आत्मा रहा है। यह मनुष्य के व्यक्तिगत व सामाजिक जीवन को अनुशासित एवं संचालित करने वाली नैतिक आचार संहिता है; आत्मिक उन्नति के साथ समाज जीवन का पथप्रदर्शन करने वाला सार्वभौमिक सिद्धांत है। भारतीय संस्कृति में धर्म ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्यवहार संहिता के रूप में कार्य किया है। किंतु परिवर्तनशील काल के क्रम में धर्म अपने मूल उद्देश्यों से भटकता गया और उसका उपयोग, स्वरूप व यथार्थ बदलता गया। आज धर्म आध्यात्मिक विचार या निजी आस्था का विषय मात्र नहीं रहा, अपितु यह राजनीतिक रणनीतियों और आर्थिक हितों के साथ अंतर्गथित हो चुका है। राजनीतिक हथियार के रूप में यह लोगों की धार्मिक आस्था के दोहन से सत्ता प्राप्ति का माध्यम तथा सामाजिक वर्चस्व की राजनीति में तब्दील हो गया है। राजनीतिक दलों ने अपनी वोट की राजनीति को चमकाने के लिए धर्म को निजी अनुभूति के स्थान पर सार्वजनिक विवाद का विषय बनाकर लोगों को धार्मिक प्रतीकों के आधार पर विभाजित करने का कुकृत्य किया है। जिससे धर्म का मानवतावादी व आध्यात्मिक चेहरा कट्टर सांप्रदायिक एवं मानवता विरोधी हो गया है। समकाल में बढ़ते मंदिर-मस्जिद के विवाद, धर्मांतरण के आरोप, धार्मिक हिंसा व साम्प्रदायिक दंगे, धर्म के इसी क्रूर चेहरे के यथार्थ को उजागर करते हैं। बाज़ारवाद ने पूजा-अर्चना, आराधना व ईश्वर को बाज़ार की वस्तु बनाकर धर्म का बाजारीकरण कर दिया है। और यह धर्म गुरुओं, मौलवी-पुजारियों एवं साधु संतों के लिए पैसा कमाने का साधन बन गया है। धर्म को शोहरत वाला सुरक्षित धंधा मानकर आपराधिक पृष्ठभूमि वाले लोग भी धर्म में दीक्षित हो रहे हैं। जिससे धर्म का अपराधीकरण हो रहा है। बाज़ारवाद के कारण भावना प्रधान धर्म भौतिकता प्रधान हो गया है, जिससे उसमें ढोंग, पाखंड, आडंबर व बाह्याचारों का बोलबाला हो गया है। इन सभी कारणों से धर्म अपने मूल आध्यात्मिक चरित्र से बहुत दूर एवं विकृत हो गया है। और उसका यथार्थ बहुत बदल गया है। 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल के आइने में धर्म का विकृत होता चेहरा, उसका बदलता यथार्थ सर्वांग रूप में स्पष्ट रूप से प्रतिरूपित होता है। हिंदी ग़ज़लकारों ने धर्म के व्यवसायीकरण व अपराधीकरण, उसके पाखंडी उपादानों और धार्मिक संस्थाओं की सत्ता आकांक्षाओं पर करारा व्यंग्य करते हुए दिखाया है कि किस प्रकार धर्म अब आध्यात्मिक अनुभूति से अधिक

राजनीतिक उपकरण बन गया है। हिंदी ग़ज़लें अब केवल ईश्वरीय संवाद ही प्रस्तुत नहीं करती हैं, अपितु ईश्वर के नाम पर हो रही हिंसा, अन्याय, उत्पीड़न और सांप्रदायिकता पर भी प्रश्न चिन्ह लगाती हैं। और बेहतर मानवीय समाज की स्थापना हेतु मानवतावादी धर्म की वकालत करती हैं। समकालीन धार्मिक यथार्थ को निम्न उप-शीर्षकों के आधार पर उद्घाटित किया जा सकता है।

5.1.1 धर्म का व्यवसायीकरण एवं अपराधीकरण

धर्म का व्यवसायीकरण और अपराधीकरण आज के दौर का एक गंभीर चिंताजनक धार्मिक यथार्थ है। जहाँ धर्म के ठेकेदारों के द्वारा आध्यात्मिक मूल्यों और लोगों की धार्मिक आस्थाओं का दोहन व्यावसायिक और आपराधिक हितों के लिए किया जा रहा है। सब कुछ को बिकाऊ बनाने पर तुला बाज़ार अपना धर्म छोड़कर भक्ति, भावना, भगवान, तीर्थ, मंदिर-मस्जिद, पूजा, अर्चना, आराधना सभी का बाज़ारीकरण कर रहा है। बाज़ारवादी इस समय में, जब सब कुछ बिकाऊ हो चुका है और जिसके पास जो कुछ है, वह उसे बेचने पर उतारू है, तब धर्म के ठेकेदार कैसे पीछे रह सकते हैं! वे भी धर्म और ईश्वर को बाज़ारू वस्तु बना रहे हैं। जिससे धर्म का व्यवसायीकरण बढ़ रहा है। यह ऐसी स्थिति है जिसमें श्रद्धा को उत्पाद और पूजा को सेवा शुल्क में परिवर्तित कर दिया गया है। धार्मिक संस्थानों, पुजारियों और कथित धर्मगुरुओं द्वारा लोगों की आस्था और अज्ञानता का फायदा उठाकर धर्म स्थलों, धार्मिक गतिविधियों और पूजा अनुष्ठानों को धनार्जन के साधन के रूप में बरतते हुए आर्थिक लाभ कमाया जा रहा है। इस कारण आज वस्तुस्थिति यह है कि देव दरबारी दुकानदार बन गए हैं, देवस्थान व्यापारिक प्रतिष्ठानों में बदल गए हैं और देव वंदना बाज़ार में बिकने वाली चीज हो गई है। मानवता और आत्मिक उन्नति की राह दिखाने वाला धर्म एक ऐसा लाभ-केंद्रित व्यवसाय बन गया है, जिसमें बिना निवेश के ससम्मान अकूत दौलत बरसती है। यही वजह है कि जीवन में हर तरह से असफल आपराधिक चरित्र वाले लोग भी धर्म में दीक्षित हो रहे हैं तथा फल फूल रहे हैं। ऐसे तथाकथित संन्यासी ढोंगी बाबा संसार को माया का मिथ्या मृग बताते हुए स्वयं सोने चांदी के सिंहासन पर बैठकर अपार संपत्ति के मालिक बन रहे हैं। धर्म के ठेकेदारों का चोला जितना पवित्र दिखता है, उनकी तिजोरी में उतना ही माल होता है। 'तपसी धनवंत दरिद्र ग्रही' तुलसी की यह उक्ति अपने समय से ज़्यादा आज की सच्चाई बन गई है। हिंदी ग़ज़लकार धर्म के बाज़ारीकरण और व्यवसायीकरण के यथार्थ को उजागर करते हुए कहते हैं-

“बिक रहे पूजन, हवन, दर्शन यहाँ भगवान के
हो रही हैं आर्थिक सब आस्थाएँ क्या करें।”³ (महेश अग्रवाल)

*** **

“तीरथ में मंदिर में बैठा
पूजा अर्चन का सौदागर।”⁴ (किशन तिवारी)

*** **

“जो बाबा बैठता है सोने-चाँदी के सिंहासन पर,
वो इस संसार को माया-हिरन की बात करता है।”⁵ (वशिष्ठ अनूप)

*** **

“बताते हैं ये सबको छूट जाएगी सभी दौलत,
कई मुल्कों में हैं फैले हुए व्यापार बाबा के।”⁶ (वशिष्ठ अनूप)

सामयिक दौर में हम देखते हैं कि अनेक मंदिरों, तीर्थस्थलों और धार्मिक संस्थानों में वीआईपी दर्शन, टिकट व्यवस्था, विशेष पूजा पैकेज, ई-पूजा, लाइव दर्शन व डिजिटल अनुष्ठान की सुविधाएँ दी जा रही हैं। तीर्थयात्रा अब साधना नहीं, बल्कि एक महँगा धार्मिक पर्यटन बन गई है। धार्मिक चैनल, प्रवचन कार्यक्रम, यूट्यूब चैनल और सोशल मीडिया के माध्यम से धर्म अब मार्केटिंग का 'ब्रांड' बन गया है। हिंदी ग़ज़लकार धर्म के नाम पर चल रहे धंधे पर व्यंग्य करते हुए लिखते हैं-

“लिखें हैं रेट सभी मंदिरों के द्वारों पर
बताएँ कितने में प्रभु का दरस खरीदेंगे।”⁷ (हरेराम समीप)

*** **

“धन्य अमिताभ बच्चन, तेरी जय
तूने लाखों में प्रभु ले लिया है।”⁸ (वशिष्ठ अनूप)

धर्म का अपराधीकरण समकाल का एक अन्य भयावह धार्मिक यथार्थ है, जहाँ धार्मिक भावनाओं और संवेदनशीलताओं का उपयोग अवैध गतिविधियों और धार्मिक-सामाजिक विभाजन को बढ़ावा देने के लिए किया जा रहा है। यह वह स्थिति है जिसमें आपराधिक पृष्ठभूमि वाले तथाकथित साधु संन्यासी, कट्टरपंथी समूह, धार्मिक उन्मादी और राजनीतिक स्वार्थी तत्व धर्म के नाम पर आपराधिक कार्यों जैसे- जबरन धर्मांतरण, साम्प्रदायिक दंगे, और आतंकवाद को अंजाम देते हैं। धर्म का चोला धारण करते ही अपराधियों के भी न केवल सारे गुनाह छिप जाते हैं, सारे पाप धुल जाते हैं, अपितु वे शोहरत के स्वर्ग लोक में पहुँच जाते हैं। धर्म की चादर ओढ़ते ही ये दुराचारी

दैत्य सदाचारी देव बन जाते हैं। यही कारण है कि अपराधियों का तेजी से धार्मिकीकरण हो रहा है, जिससे धर्म का अपराधीकरण बढ़ रहा है। और धर्म और आस्था के केंद्र अपराधियों के अड्डे बनते जा रहे हैं। कई स्वयंभू संत, बाबाओं और धर्मगुरुओं पर बलात्कार, हत्या, अपहरण, संपत्ति हथियाने जैसे गंभीर आरोप लगे हुए हैं। धार्मिक कारणों से किसी विशेष धार्मिक समुदाय की भीड़ द्वारा विधर्मियों की हत्या- धार्मिक मॉब लिंगिंग की घटनाओं में भी धर्म को खूनी हथियार के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। हिंदी गज़लकार धर्म के इस आपराधिक चेहरे को उजागर करते हुए लिखते हैं-

“डकैती कत्ल दंगा धर्म की रक्षा में करते हैं।

हमारे कर्म में दरिया ये सरयू की रवानी है।”⁹

(अदम गोंडवी)

*** **

“धर्म नशे में जन गण मन है / हत्यारों का अभिनन्दन है।

नए रूप में निकले दानव / माथे पर रोली चन्दन है।”¹⁰ (वशिष्ठ अनूप)

*** **

“वेशभूषा पहन पुजारी की / है खड़ी शख्सियत शिकारी की।

होंठ पे मंगला ऋचा उनके / हाथ में मूठ है कटारी की।”¹¹ (शिव ओम अम्बर)

*** **

“भाईचारे का अन्त आया है / दंगों वाला महन्त आया है।

सारे गुंडों की फौज साथ लिये / एक खूंखार सन्त आया है।

खून की खेल रहा है होली / कैसा भीषण बसन्त छाया है।”¹² (वशिष्ठ अनूप)

5.1.2 धर्म के नाम पर पाखंड एवं आडम्बर

धर्म के बाज़ारीकरण और अपराधीकरण से धर्म के नाम पर ढोंग, पाखंड व आडम्बरों को बढ़ावा मिलता है। साथ ही धार्मिक संस्थाओं में भ्रष्टाचार और व्यभिचार पनपता है। पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित हमारा समाज तेजी से बाज़ारवादी और भौतिकतावादी संस्कृति की ओर बढ़ रहा है। जिससे आस्था और विश्वास जैसी अमूर्त भावनाओं से संबंधित धर्म में भी भौतिक चीजों का बोलबाला बढ़ता जा रहा है और धर्म के नाम पर कर्मकांडों और बाह्य आडम्बरों का प्रचलन बढ़ रहा है। आज धर्म के नाम पर जो कुछ हो रहा है, वह अधिकांशतः इन दो रूपों में ही दिखाई देता है। धर्म से जुड़े लोगों और संस्थाओं ने अपने स्वार्थ के लिए जनता के अंधविश्वासों का फायदा उठाते हुए उसे कर्मकांडों और आडम्बरों की दिखावटी अंधभक्ति में बाँध दिया

है। धार्मिक स्थलों पर बढ़ती भीड़, महँगे चढ़ावे, विशाल भंडारे और भव्य धार्मिक आयोजन इस बात का प्रमाण हैं कि लोगों ने धर्म का अर्थ बाहरी तामझाम से जोड़ लिया है। समकालीन समाज में धर्म का आचरण आत्मविकास के लिए नहीं, बल्कि सामाजिक प्रतिष्ठा और दिखावे के लिए किये जाने की प्रवृत्ति तेजी से बढ़ रही है। महँगे पूजा-पाठ और विशाल धार्मिक आयोजनों में अपार काला धन खर्च करना और उनको सोशल मीडिया पर प्रचारित करना आम बात हो गई है। पूजा-पाठ, व्रत, यज्ञ, और अन्य धार्मिक अनुष्ठानों का आयोजन अब एक सामाजिक प्रतिस्पर्धा हो गई है, जहाँ उद्देश्य आस्था नहीं, बल्कि प्रदर्शन है। जिससे धार्मिक स्थान आत्मिक शान्ति स्थलों से अधिक ध्वनि प्रदूषण संस्थान बन कर रह गए हैं। "कुछ लोग इससे संतुष्ट हो सकते हैं कि जगह-जगह पूजा-पाठ हो रहा है, कीर्तन हो रहे हैं, कुरान की आयतों के सामूहिक पाठ हो रहे हैं, जपजी का पाठ हो रहा है, धर्म की अभिवृद्धि ही तो हो रही है, पर एक माइक्रोफोन दूसरे माइक्रोफोन को दबाने के लिए और तेज किया जा रहा हो तो मन में, धार्मिक मन में, एक गहरी चिंता स्वाभाविक रूप से उठेगी कि यह प्रतिस्पर्धा कहीं कुछ गड़बड़ जरूर करेगी। इस प्रतिस्पर्धा में मनुष्य की सहज उदारता और श्रद्धा विखंडित जरूर होगी।"¹³ धर्म के ठेकेदारों ने अपने निहित स्वार्थों के चलते धर्म को कर्मकांड एवं बाहरी तामझाम तक ही सीमित कर दिया है। परिणाम यह है कि ईश्वर जो मौन में है, जनता उसे मंदिर-मस्जिद व तीर्थ स्थलों के शोर में ढूँढ़ रही है। और धार्मिक स्थलों पर बढ़ती भीड़ को देखकर लगता है कि धर्म आज आध्यात्मिक खोज से ज्यादा सामाजिक दिखावा या मनोवैज्ञानिक पलायन बन गया है। और अपने मूल रूप से दूर हो पाखंड और आडम्बर से जुड़ गया है। नीरज लिखते हैं कि, "धर्म से मेरा मतलब इस आडम्बरवाद, गुरुद्वारे, मंदिर, मस्जिद, चर्च से नहीं है। इसका अर्थ है दूसरे में भी अपने को देखना। सही मनुष्य का निर्माण तब होता है जब वह मेंटली, स्प्रिचुअली, फिजिकली, इमोशनली शिक्षित हो।"¹⁴ वही धर्म हमारे लिए उपयोगी है। हिंदी गज़लकार धर्म के कर्मकाण्डी और आडंबरी स्वरूप का व्यंग्यात्मक पर्दाफाश करते हुए कहते हैं

"अचानक भक्ति के बाज़ार में आ कर

बदलना चाहती हैं प्रार्थनाएँ भी।"¹⁵

(जहीर कुरेशी)

*** *** *** ***

"धर्म ने दी कर्म-काण्डों की अफीम

भक्त सब आडम्बरों के साथ थे।"¹⁶

(जहीर कुरेशी)

“तुम सहज साधना में नहीं
तुम चमत्कार में फँस गए।”¹⁷

(जहीर कुरेशी)

*** **

“भगवान के घरों में भी है चिल्ल-पों मची
अल्लाह के घरों में बहुत शोर है मियां।”¹⁸

(वशिष्ठ अनूप)

धर्म के आडम्बरी व कर्मकांडी रूप में ढोंग-पाखंड करने वाले अनेक धर्मगुरु और बाबा धार्मिक चोला पहनकर लोगों की आस्था का फायदा उठाते हुए दिखावे के पूजा-पाठ और चमत्कारों के नाटक से भोली-भाली जनता को भ्रमित कर धर्म की आड़ में अपने निजी स्वार्थ, यौन लालसा और सत्ता की भूख को छिपाने का प्रयास करते हैं। धर्म, जो सदाचार और आत्मसंयम की शिक्षा देता है, इन लोगों के लिए वासना का आवरण बन गया है। ऐसे तथाकथित धर्मगुरु भक्ति का मुखौटा चिपकाकर अपने आश्रमों में वासनाओं का नंगा नाच रचाते हैं। जिससे इन ढोंगी बाबाओं के आश्रम मोक्ष के द्वार नहीं, वासना के अड्डे बन गए हैं, जहाँ 'ज्ञान की गंगा बहाने वाले साधु युवतियों के साथ छेड़छाड़ को दिव्य पाप बताते हैं। अखबार कथित बाबाओं के बलात्कार, यौन शोषण, नाबालिगों के साथ दुष्कर्म, हत्या जैसे संगीन आरोपों व अपराधों का खुलासा करते रहते हैं। धर्म जो संयम, सादगी और सदाचार की शिक्षा देता है, इनके लिए भोग-विलास, शक्ति और प्रसिद्धि का साधन बन गया है। हिंदी ग़ज़लकार अपनी ग़ज़लों की स्याही में समकालीन परिदृश्य में धर्म के नाम पर तेजी से बढ़ रहे ढोंग, पाखंड और व्यभिचार के उस स्याह सच को उजागर करते हैं, जहाँ धर्म के नाम पर भोली-भाली आस्थाओं का शोषण होता है, जहाँ मंदिरों के गर्भगृह में पुजारी और भक्ताओं के बीच गंदी सौदेबाजी चलती है, जहाँ भगवान के दूत बने ढोंगी अपने ही अनुयायियों की अस्मिता को तार-तार करते हैं। ग़ज़लकार ऐसे सभी पाखंडी चेहरों को बेनकाब करते हैं, जो राम नाम के जप की आड़ में रावणी आचरण करते हुए भक्तियों की अस्मिता पर आघात करते हैं। जो धर्म की दुकान चलाते हैं, मगर मनुष्यता को शर्मसार करते हैं।

“मत्स्यगन्धा फिर कोई होगी किसी ऋषि का शिकार।

दूर तक फैला हुआ गहरा कुहासा देखिए।”¹⁹

(अदम गोंडवी)

*** **

“आय-हाय गोपन सब, छूते छूते ओपन सब
ब्रह्मचर्य की केंचुल जगत्गुरु त्यागे है।”²⁰

(राम मेश्राम)

“वह उधर बाबा का बाला संग नर्तन देखिए
और माथे पर दमकता लाल चंदन देखिए।”²¹ (वशिष्ठ अनूप)

*** **

“रक्स करती अप्सराएँ पारदर्शी वस्त्र में,
संतजन दिखने लगे हैं काम के अवतार में।”²² (वशिष्ठ अनूप)

प्रख्यात हिंदी गीतकार एवं गज़लकार- “नीरज ईश्वर को किसी मंदिर-मस्जिद की सीमा के भीतर बद्ध नहीं मानते। सृष्टि का हर कण उसकी आभा से ओत-प्रोत है। वह न तो बादलों से ऊपर किसी कल्पित स्वर्ग का निवासी, न मंदिर, मस्जिद, गिरजे या अन्य समाजों का अधिष्ठाता। वह हर गली, हर गाँव में जीवित है। उनका ईश्वर व्यक्ति से ऊपर कोई अपर कल्पना नहीं है वरन वह व्यक्ति ही है जो देवत्व पाकर उस पद पर पहुँच जाता है। इसी से उनका ईश्वर हर घट, हर दर्पण में अपना रूप दिखाता है।”²³ हिंदी गज़लकार धर्म के नाम पर प्रचलित ढोंग, कर्मकांड व बाह्य आडम्बरों पर व्यंग्य करते हैं। वे लोगों के साथ ढोंगी व पाखंडी बाबाओं को कबीर और रैदास के पदचिन्हों पर चलकर सहज साधना करने की नसीहत देते हैं। तथा समस्त प्रकार के पाखंडों का विरोध करते हुए ईश्वर को देवालियों- तीर्थस्थलों में ढूँढ़ने के बजाय आत्मा में ही उसका साक्षात्कार करने की सीख देते हैं।

“करघे पे काम करते हुए भी बने 'कबीर'
जूते को गाँठते हुए 'रैदास' बन गए।”²⁴ (जहीर कुरेशी)

*** **

“आप इन्सां हैं तो फिर इस बात का रक्खें खयाल
जीव जितने हैं यहाँ उन सबमें ईश्वर देखिये
सोचिये मंदिर औ मस्जिद घर से कितनी दूर हैं?
जब खुदा को देखना हो अपने भीतर देखिये।”²⁵ (डी. एम. मिश्र)

5.1.3 धर्म के नाम पर बढ़ती कट्टरता एवं साम्प्रदायिकता

धर्म के नाम पर बढ़ती कट्टरता एवं साम्प्रदायिकता हमारे दौर का अन्य स्याह धार्मिक सच है, जिसे राजनीति के सत्ता स्वार्थी षडयंत्रों ने हवा दी है। हमारे यहाँ राजनीति एवं धर्म की अलग-अलग सत्ता रही है। धर्म राजनीति को अनुशासित करने वाला नैतिक दंड रहा है। लेकिन व्यापक मानवीय हित के दृष्टिकोण वाला धर्म जब राजनीति से जुड़ सत्ता प्राप्ति का साधन बन जाता है, तो उसका उदार चिंतन एवं मानवतावादी भावना संकुचित होती है। और उसमें कट्टरवादी संकीर्ण सोच एवं

सांप्रदायिकता की भावना घर करती है। पाश्चात्य विचारक युवाल नोआ हरारी का मानना है कि धर्म वह वृहद कहानी है, जो लाखों करोड़ों लोगों को आपस में सहयोग करने के लिए सक्षम बनाती है, लेकिन यही कहानी उन्हें दूसरों से नफरत करना और लड़ना भी सिखाती है। नासिरा शर्मा लिखती हैं कि "जीवन में धर्म के इसी गहरे हस्तक्षेप ने उन लोगों को उकसाया, जिनके मन में सत्ता में बने रहने की लालसा थी। उन्होंने धर्म को अपना सत्ता वाहन बनाया।"²⁶ राजनीति सत्ता सुख के लिए धर्म को घृणा के साधन के रूप में काम लेती है। अंग्रेज सरकार द्वारा अपनी सत्ता को बरकरार रखने के लिए शुरू की गई धर्म की राजनीति को आगे बढ़ाते हुए आज़ादी के बाद सभी राजनीतिक दल धर्म के आधार पर जनता को बाँटकर अपनी राजनीतिक रोटियां सेंकते हैं, जिससे धार्मिक कट्टरता एवं साम्प्रदायिकता की भावना निरंतर बलवती होती जाती है। देश की पंथनिरपेक्षात्मक संवैधानिक स्थिति के बावजूद राजनीतिक दलों की अपनी-अपनी सामुदायिक एवं धार्मिक प्रतिबद्धताएँ हैं। इसी तरह धार्मिक समुदायों व मठाधीशों की भी अपनी-अपनी राजनीतिक प्रतिबद्धता है। धर्म व राजनीति का यह गठबंधन धार्मिक कट्टरता व सांप्रदायिकता को बढ़ावा देता है। राजनीतिक दलों द्वारा धार्मिक प्रतीकों और धर्म का दुरुपयोग कर लोगों की भावनाओं को भड़काना, अलगाव पैदा करना तथा सत्ता हथियाना एक आम रणनीति है। इसी तरह धर्मगुरुओं, साधु-संतों को टिकट देने के पीछे भी धर्म के राजनीतिकरण की रणनीति है क्योंकि धर्म जब राजनीति का वाहन बनता है, तो वह ईश्वर के दरबार तक नहीं, बल्कि सीधे सत्ता के सिंहासन तक पहुँचता है। हिंदी ग़ज़लकार अपनी तल्ख शायरी में ऐसे राजनीतिक खिलाड़ियों को निशाना बनाते हैं, जो धर्म को सिर्फ वोटों की दुकान समझकर चुनाव के मौसम में मंदिर-मस्जिद की बिसात बिछाते हैं।

“राजनीति से हुआ धर्म का गठ-बंधन,

मजहब तब सबसे ज्यादा अनुदार हुए।”²⁷

(जहीर कुरेशी)

*** *** *** ***

“खुदा का वास्ता देकर किसी का घर जला देना

ये मज़हब की वफ़ादारी हकीकत में सियासी है॥”²⁸

(अदम गोंडवी)

*** *** *** ***

“जुलूस आपने जब भी कभी निकाले है

डरी हैं मस्जिदें, घबरा गए शिवाले हैं।”²⁹

(ज्ञानप्रकाश विवेक)

“हमारी हर समय रहने लगी है जान खतरे में
 कभी दीवाली खतरे में कभी रमजान खतरे में।
 जरा सी बात पर पड़ते दिखाई देने लगते हैं
 कभी अल्लाह खतरे में कभी भगवान खतरे में।
 घिरे रहते हमेशा ही यहां पर खौफ के बादल
 सियासत की बजह से आ गया इंसान खतरे में।”³⁰ (महेश करारे
 ‘सुगम’)

धर्म के नाम पर जब कट्टरता या साम्प्रदायिकता को बढ़ावा दिया जाता है, तो धर्म की आत्मा संज्ञाशून्य हो जाती है। धार्मिक कट्टरता का अर्थ है- अपने धर्म को एकमात्र सत्य मानते हुए अन्य धर्मों को हीन समझना, उनकी निंदा करना, उन्हें अस्वीकार करना या उनके प्रति असहिष्णु हो जाना। समकालीन दौर में धार्मिक कट्टरता के अनेक रूप व उदाहरण देखे जा सकते हैं- धार्मिक स्थलों को लेकर विवाद, 'लव जिहाद' व 'घर वापसी' जैसे अभियान तथा फिल्मों व पुस्तकों का धार्मिक भावनाएँ आहत होने के नाम पर विरोध आदि धार्मिक असहिष्णुता की निशानियाँ हैं। तकनीकी विकास और सूचना क्रांति ने धार्मिक कट्टरता एवं साम्प्रदायिकता को और अधिक चुनौतीपूर्ण बना दिया है। सोशल मीडिया प्लेटफार्म आज धार्मिक विचारों के प्रसार से कहीं ज्यादा असामाजिक तत्वों के हाथों में पड़कर तेजी से धार्मिक उन्माद, झूठे धार्मिक दावे व फेक न्यूज, ट्रोलिंग, धार्मिक घृणा और अफवाहों के प्रसार से कट्टरता फैलाकर धार्मिक वातावरण को और विषाक्त बनाने में सहायक सिद्ध हुए हैं। कट्टरता का परिणाम असहिष्णुता, सामाजिक विघटन एवं साम्प्रदायिकता के रूप में होता है। साम्प्रदायिकता समाज को धर्म के आधार पर विभाजित कर धार्मिक समुदायों को एक दूसरे के खिलाफ खड़ा करती है। समकालीन दौर में राजनीतिक स्वार्थ, ऐतिहासिक घटनाओं की तोड़ मरोड़ और धार्मिक पूर्वाग्रहों के कारण साम्प्रदायिक हिंसा की घटनाओं में निरंतर बढ़ोतरी हो रही है। धार्मिक उत्सवों पर सांप्रदायिक दंगों की घटनाएँ आम हो गई हैं। धर्मस्थल भय, आतंक और घृणा फैलाने के केन्द्र बनते जा रहे हैं। पुरुषोत्तम अग्रवाल से शब्द उधार लेकर कहे तो कबीर और भक्तिकाल के संतों का ईश्वर प्रेम और संवाद में बसता था, आज का ईश्वर नारों, जुलूसों और दूसरे को नीचा दिखाने की प्रतिस्पर्धा में बसता है। यह भक्ति नहीं, शक्ति का प्रदर्शन है। इस साम्प्रदायिक माहौल में मस्जिदों की मीनारें और मंदिरों के शंख एक-दूसरे के खिलाफ नारे बुलंद करने लगे हैं; मजारों पर चादर चढ़ाने वाले हाथ

ही मंदिरों को तोड़ने के लिए उठने लगे हैं; पूजा की थाली में फूलों की जगह अब घृणा के पत्थर सजाये जाने लगे हैं; होली, ईद और दीवाली में खुशियों के रंगों की जगह अब खून के रंग बरसने लगे हैं। साम्प्रदायिकता की यह आग मानवता विरोधी है। ऐसे में हिंदी गज़लकार सभी धार्मिक समुदायों को भाईचारा और सद्भाव बनाये रखने की सलाह देते हुए हिंदुस्तान की गंगा-जमुनी तहजीब का सम्मान करने की बात कहते हैं।

“वल्लाह किस जुनूँ के सताए हुए हैं लोग
हमसाये के लहू में नहाये हुए हैं लोग।”³¹ (अदम गोंडवी)

*** **

“इधर टूटी हुई हैं मस्जिदें तो
कही टूटे हुए मंदिर भी होंगे।”³² (विनय मिश्र)

*** **

“क्या हुआ क्यों बाग के सारे शजर लड़ने लगे
आँधियाँ कैसी हैं, जो ये घर से घर लड़ने लगे।
एक ही मंजिल है उनकी, एक ही है रास्ता
क्या सबब फिर हमसफ़र से हमसफ़र लड़ने लगे।
थे पड़ौसी और थे वे दोस्त जिगरी आज तक
क्या हुआ अफवाह की सुनकर खबर लड़ने लगे।
मेरा साया तेरे साये से बड़ा होगा, इधर
बाग में इस बात पर दो गुलमुहर लड़ने लगे।”³³ (हरेराम समीप)

*** **

“इस तरफ हिन्दू मरा है उस तरफ मुस्लिम मरा
आदमीयत मर न जाये बस ये डर लगता रहा।”³⁴ (महेश अग्रवाल)

*** **

“मस्जिद उतारे आरती मंदिर अजान दे
कुछ इस तरह का तू मुझे हिंदोस्तान दे।
अब खत्म हो हैवानियत का दौर ऐ खुदा
इंसान को इंसानियत की आन बान दे।”³⁵

(महेश अग्रवाल)

5.1.4 मानवतावादी धर्म की वकालत

धर्म मानव जीवन को नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक दृष्टि से सही दिशा प्रदान करने वाली आचरण संहिता है। किंतु समय के साथ राजनीति और धर्म के ठेकेदारों के द्वारा धर्म को सत्ता और स्वार्थ का साधन बना लिये जाने से धर्म का स्वरूप विकृत हो गया और प्रेम, शांति, करुणा और मानवता का प्रतीक धर्म कट्टरता और साम्प्रदायिक हिंसा का औजार बन समाज में घृणा, विद्वेष, विघटन व आतंक का कारण बन गया है। ऐसे में धर्म को उसके मानवीय स्वरूप में पुनः स्थापित करने तथा इंसानियत को सर्वोच्च तरजीह देने वाले मानवतावादी धर्म को अपनाने की आवश्यकता है। आज जब दुनियाई मानव समाज धार्मिक उन्माद, कट्टरता, आतंकवाद, सांप्रदायिक-जातीय हिंसा के अंधेरे से ग्रस्त है, तो मानवतावादी धर्म ही एक मशाल बन सकता है। वक्त की जरूरत है कि धर्म की आड़ में फैलती कट्टरता, असहिष्णुता और भेदभाव को अस्वीकार कर ऐसे धर्म को अपनाया जाए, जो मनुष्यता की रक्षा करता है, मानवता का मंगलगान करता है, इंसानियत की इबादत करता है। जो ईश्वर से पहले इंसान को महत्व देता है, मूरत से पहले मानव को तरजीह देता है, देववंदन से पहले व्यक्ति की वंदना करता है। जो जाति, धर्म, संप्रदाय, वर्ग आदि तमाम भेदों से ऊपर उठकर वसुधैव कुटुंबकम् और मनुष्य मात्र के कल्याण की बात करता है। जो मनुष्य को मनुष्यता सिखाये, मानवता की सेवा का पाठ पढ़ाये क्योंकि मानव सेवा ही सच्ची ईश्वर सेवा है। मानव धर्म ही सृष्टि का सबसे बड़ा धर्म है, जिसने मानवता व सृष्टि प्रेम का पाठ पढ़ लिया, उसने ईश्वर का साक्षात्कार कर लिया, स्वर्ग को प्राप्त कर लिया। भारत जैसे विविधताओं से भरे देश में मानवतावादी धर्म का विशेष महत्व है क्योंकि धार्मिक एकता तभी संभव है, जब धर्म को मानवता की सेवा का माध्यम बनाया जाए, न कि विभाजन का औजार। इसलिए आज मानवतावादी धर्म की भूमिका महज़ आदर्श की नहीं, बल्कि व्यावहारिक आवश्यकता बन गई है। अतः हिंदी गज़लकार मानव समुदाय को मानवतावादी धर्म को अपनाने के लिए प्रेरित करते हैं-

“मजहबी संकीर्णवादी सोच से बाहर निकल

हमको पहले आदमी की जात होना चाहिए।”³⁶ (महेश कटारे ‘सुगम’)

“इंसानियत से बढ़के धर्म दूसरा नहीं

न सिक्ख, न हिन्दू, न है इस्लाम जिंदगी।”³⁷ (डी.एम. मिश्र)

“आयतें, चौपाइयाँ पढ़ या शब्द का पाठ कर
किन्तु पहले पढ़ जरा इंसानियत की पोथियाँ।”³⁸ (महेश अग्रवाल)

*** *** *** ***

“इंसान का धरा पर परिवार एक है / जो सामने है अपने संसार एक है
दिल एक है हमारा यह प्यार एक है / इस जिन्दगी का यारो आधार एक है।”³⁹
(हरेराम समीप)

हिंदी ग़ज़ल ने धर्म के उस विकृत स्वरूप को उजागर किया है जो पाखंड, कट्टरता और साम्प्रदायिकता के विषैले बवंडर में अपने असली रूप से बहुत दूर हो चुका है। ग़ज़लकारों ने अपनी सर्जनात्मक साधना से जन चेतना जाग्रत कर धर्म को उसकी वास्तविक भूमिका मानवता की सेवा और आत्मिक उन्नति के रूप में पुनः प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है। उन्होंने धर्म के नाम पर हो रही कट्टरता, विघटन और हिंसा के विरुद्ध आवाज़ उठाई है और ऐसी आस्था की हिमायत की है, जो मनुष्यता को सर्वोपरि मानती है। यह वह धर्म है जो मंदिर-मस्जिद की दीवारों से ऊपर उठकर मनुष्य में ही ईश्वरीय दर्शन की बात करता है। जो सर्वधर्म समभाव को प्रोत्साहित करता है, जहाँ राम और रहीम एक ही सत्य के दो नाम हैं। हिंदी ग़ज़लकार धार्मिक घृणा, कट्टरता और सांप्रदायिकता के शोर के बीच मानवतावादी धर्म का स्वर बुलंद कर इस धरती को स्वर्ग बनाने की मंगल कामना करते हैं।

“राम के साथ रहें आप या रहमान के साथ
रहना हर हाल है इंसान को इंसान के साथ।
खोजता है जिसे तू मंदिर औ मस्जिद में 'समीप'
घर तो उस का है यहीं तेरी रंगेजान के साथ।”⁴⁰ (हरेराम समीप)

*** *** *** ***

“बहुत हो चुके नफरत के ये विज्ञापन
अब तो मानवता के चित्र सजाने हैं।”⁴¹ (महेश कटारे 'सुगम')

*** *** *** ***

“जन्नत में तुमको जाना है जाओ तुम
मुझको धरती को ही स्वर्ग बनाने दो।
नफरत को जब गोद लिया तो पालो तुम
मुझे प्यार के गीत सुहाने गाने दो।”⁴² (महेश कटारे 'सुगम')

5.2 सांस्कृतिक यथार्थ

संस्कृति शब्द संस्कार से सम्बंधित है, जिसका अर्थ होता है परिष्कार करना, उत्तम बनाना। इस आधार पर मानव समुदाय का परिष्कार तथा उत्थान करने वाले जातीय संस्कार संस्कृति कहलाते हैं। किसी समाज के लौकिक और पारलौकिक अभ्युदय में सहायक आचार-विचार, आचरण-व्यवहार को ही संस्कृति कहा जाता है। संस्कृति के अंतर्गत मानव जीवन के अंतः एवं बाह्य दोनों पक्षों का निरूपण होता है। आंतरिक पक्ष के अंतर्गत गुणों व विचारों का विश्लेषण किया जाता है, जिनका बाह्य प्रतिरूप व्यक्ति के जीवन व्यवहारों में अभिव्यक्त होता है। जिसे सभ्यता कहा जाता है। इस प्रकार संस्कृति जीवन जीने का तरीका तथा जीवन विषयक विविध विचारों-व्यवहारों का समुच्चय है। इसके अंतर्गत किसी समाज या जाति की जीवन शैली, आचार-विचार, आदर्श-नैतिकता, धर्म-दर्शन, सामाजिक रीति-रिवाज, पर्व-त्यौहार, कला कौशल सब कुछ समाहित हो जाता है। प्रो. वासुदेवशरण अग्रवाल लिखते हैं, "संस्कृति मनुष्य के भूत, वर्तमान और भावी जीवन का महत्त्वपूर्ण प्रकार रही है, हमारे जीवन का ढंग हमारी संस्कृति है, जीवन के नानाविध रूपों का समुदाय संस्कृति है।"⁴³ हेतु भारद्वाज संस्कृति के बारे में लिखते हैं, "संस्कृति तो जनता की होती है तथा जनता ही उसका विकास करती है। लोक संस्कृति के सारे उपकरण (लोकगीत, लोक नृत्य, लोक संगीत, लोक नाट्य आदि) मनुष्य को निरंतर मनुष्य बनाये रखने के लिए ही विकसित हुए थे।"⁴⁴ रामधारी सिंह 'दिनकर' भी संस्कृति को जिंदगी का ऐसा तरीका मानते हैं, जो सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है, जिसमें हम जन्म लेते हैं। उस समाज की संस्कृति ही हमारी संस्कृति होती है। सत्य, अहिंसा, प्रेम, दया, करुणा, त्याग व परोपकार जैसे मानवीय मूल्यों से समृद्ध भारतीय संस्कृति पूरे जगत में मानव जाति के लिए अमूल्य धरोहर है। तथा विश्व की सभी संस्कृतियों में सर्वश्रेष्ठ मानी जाती रही है। किंतु भूमंडलीकरण के साथ प्रसरित पाश्चात्य एवं उपभोक्तावादी संस्कृति ने जैसे हमारी उदात्त सांस्कृतिक चेतना को हाईजैक कर लिया है।

आधुनिक भारतीय समाज पश्चिमी संस्कृति के रंग में रंगकर बदरंग होता जा रहा है और अपने सांस्कृतिक मूल्यों व व्यवहारों को भूलता जा रहा है। पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण से न केवल हमारी जीवन शैली व जीवन व्यवहार बदलता जा रहा है; न केवल हमारी संस्कृति के भौतिक पक्षों- खान-पान, रहन-सहन, रीति-रिवाज, परंपराओं, पर्व त्योहारों पर पाश्चात्य रंग चढ़ता जा रहा है, अपितु उदात्त सांस्कृतिक

मूल्यों का स्वरूप भी विकृत होता जा रहा है। “सांस्कृतिक परिवर्तन की इस प्रक्रिया में जीवन मूल्यों में परिवर्तन आना स्वाभाविक है। सादगी, सरलता, पवित्रता और मर्यादा जैसे मूल्य जो हमारे रहन-सहन, खान-पान, वेशभूषा और व्यवहार से झलकते थे, आज हमारे आचरण के कारण लुप्त होते जा रहे हैं। फिल्मों, सेटेलाइट चैनलों और फैशन की होड़ ने हमारी संस्कृति की अक्षुण्णता के लिए संकट पैदा कर दिया है। आधुनिकता के नाम पर होने वाले बदलाव हमारी मूल संस्कृति को ही निगलते जा रहे हैं।”⁴⁵ उपभोक्तावादी संस्कृति ने जो अनंत भौतिक इच्छाएँ जागृत की हैं, उससे न केवल अपसंस्कृति बढ़ी है। अपितु मानवीय मूल्यों का भी क्षरण हुआ है। समाज में भौतिकता एवं तकनीक केंद्रित बुद्धिवाद का जितना प्रसार हुआ है, मनुष्य के हृदय के तार उतने ही संकुचित होते गए हैं, उसकी अहसास की घाटी जमकर बर्फ में तब्दील हो रही है, उसके रक्त में संवेदना की ऑक्सीजन का प्रवाह कम होता जा रहा है और वह मृत सा दूसरों के दुख-दर्द से शून्य, राग-द्वेष हीन कलपुर्ज में बदलता जा रहा है। तथा उसमें मानवीय संवेदना एवं मूल्यों का अंश घटता जा रहा है। तकनीक, पाश्चात्यवाद, उपभोक्तावाद एवं बाज़ारवाद ने हमारे पारिवारिक, सामाजिक और नैतिक मूल्यों पर हमला किया है। जिससे प्रेम, सद्भाव, सहयोग, सत्य, अहिंसा, त्याग, परोपकार जैसे शाश्वत मूल्य दम तोड़ रहे हैं। और संस्कृति का यथार्थ बदल रहा है।

संस्कृति समाज जीवन का विस्तृत चित्र फलक है, तो साहित्य उसकी समीक्षा है। “संस्कृति के मूल में शिक्षा और ज्ञान की भावनाएँ उद्बुद पायी जाती हैं। उसका प्रतिपाद्य सत्य और शिव होता है। साहित्य उसमें सुन्दर को जोड़कर उसे और महत्त्वपूर्ण बना देता है। संस्कृति संस्कारों का समुच्चय है तो साहित्य उनकी अंतर्व्यञ्जना के मर्म का उद्घाटन।”⁴⁶ इसलिए हिंदी ग़ज़ल में यह बदलता सांस्कृतिक यथार्थ बखूबी व्यक्त किया जा रहा है। हिंदी ग़ज़ल वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप उत्पन्न सांस्कृतिक संक्रमण, मूल्यों के अवसान, सांस्कृतिक विखंडन की हकीकत को अभिव्यक्ति देती है। यह वह सांस्कृतिक त्रासदी है, जहाँ संस्कार, रीति-रिवाज, लोकगीत, लोककथाएँ, सामूहिक उत्सव और जीवन व्यवहार सभी बाजारवाद, उपभोक्तावाद और पाश्चात्य संस्कृति की भेंट चढ़ते जा रहे हैं। कुल मिलाकर कह सकते हैं कि पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव में भारतीय संस्कृति का स्वरूप बदलता जा रहा है। आज का भारतीय समाज कृत्रिम आधुनिकता के फेर में पाश्चात्य संस्कृति का पिछलग्गू बनकर अपनी सांस्कृतिक धरोहर व मूल्यों से दूर होता जा रहा है। तथा भारतीय संस्कृति इतिहास की वस्तु बनती जा रही है। हिंदी ग़ज़ल समकाल के इस

सांस्कृतिक यथार्थ को बखूबी अभिव्यक्त करती है, जिसे निम्न उप-शीर्षकों में विभाजित कर समझा जा सकता है।

5.2.1 संस्कृति के भौतिक स्वरूप में बदलाव

संस्कृति किसी समाज की विकास यात्रा का प्रतिबिंब तथा पहचान का आधार होती है। संस्कृति के दो पक्ष होते हैं- आंतरिक और बाह्य। संस्कृति का आंतरिक पक्ष अदृश्य और अमूर्त होता है, जो समाज के मूल्यों, आदर्शों, नैतिक धरणाओं, धर्म-दर्शन-अध्यात्म संबंधी मान्यताओं तथा जीवन विषयक दृष्टिकोण से संबंधित होता है। इसके विपरीत संस्कृति का बाह्य पक्ष दृश्य और मूर्त होता है, जो संस्कृति की भौतिक अभिव्यक्तियों और व्यवहारों से जुड़ा होता है। जिसे सामान्यतः सभ्यता कहा जाता है। इसमें समाज के खान-पान, रहन-सहन, वस्त्र-आभूषण, कलाएँ, पारिवारिक व वैवाहिक रीति-रिवाज एवं परंपराएँ, उत्सव, पर्व-त्योहार और जीवन शैली सम्मिलित होती है। वर्तमान में पाश्चात्य एवं उपभोक्तावादी संस्कृति, आधुनिकीकरण तथा तकनीक के कारण हमारी सनातन भारतीय संस्कृति का स्वरूप बदलता जा रहा है। हमारे समाज की परंपरागत जीवन शैली पर पाश्चात्य रंग चढ़ता जा रहा है, जिससे खान-पान, वस्त्र-आभूषण, जीवन पद्धति के साथ परिवार-विवाह का ढाँचा आदि सब कुछ बदलता जा रहा है। इस बदलाव को निम्न बिंदुओं से समझा जा सकता है-

खान-पान की शैली में बदलाव- वैश्वीकरण के प्रभाव में आधुनिकतावादी जीवन शैली और उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण समकालीन समाज की खान-पान की शैली में व्यापक बदलाव हो रहे हैं। जहाँ पहले घर पर बने सादा और ताजा खाद्य पदार्थ या व्यंजन जैसे रोटी, दाल, चावल, दूध, दही, छाछ तथा मौसमी सब्जियाँ एवं फल भोजन में शामिल होते थे। वहीं अब घर के सादा भोजन के स्थान पर चटपटे फास्ट फूड, जंक फूड, प्रोसेस्ड फूड एवं पैकेज्ड खाद्य पदार्थों का स्वाद नयी पीढ़ी की जीभ पर तेजी से चढ़ रहा है। पिज़्ज़ा, बर्गर, कोल्ड ड्रिंक जैसे पश्चिमी खाद्य पदार्थ युवा वर्ग की प्राथमिक पसंद बनते जा रहे हैं। होटल व रेस्तराँ संस्कृति के साथ ऑनलाइन फूड डिलीवरी सेवाओं के विकास से घर का बना पारम्परिक भोजन धीरे- धीरे हाशिए पर जा रहा है। मध्यम व उच्च वर्ग में घर के बाहर होटलों में भोजन करना प्रतिष्ठित जीवनशैली बनती जा रही है। इसके साथ शराब और ड्रग्स जैसे मादक पेय पदार्थों का प्रयोग युवा वर्ग में बढ़ता जा रहा है। खान-पान की बदलती शैली को उजागर करते हुए शायर कहते हैं-

“पिज़्जे पे लोग टूट पड़े छोड़कर पुलाव
मेहमाँ जो मेरे साथ था हैरान वो भी था।”⁴⁷ (ज्ञानप्रकाश विवेक)

*** **

“फास्ट-फूड और चमक दमक वाले इस युग में भी
अम्मा के हाथों का खाना अच्छा लगता है।”⁴⁸ (वशिष्ठ अनूप)

*** **

“मैक्डोनल में खाएँगे
रोटी चटनी दाल और साग।”⁴⁹ (देवेन्द्र आर्य)

*** **

“गंगाजल से वोदका तक ये सफरनामा 'अदम' ।

अहले पंजाबी अदब में इक नई तामीर है॥”⁵⁰ (अदम गोंडवी)

परिधान संस्कृति में परिवर्तन- वस्त्र शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ किसी भी समाज की सांस्कृतिक पहचान एवं परंपरा के प्रतीक होते हैं। भारतीय समाज में परंपरागत पोशाक के रूप में पुरुषों के लिए धोती, कमीज, कुर्ता, पायजामा, अंगरखा, पगड़ी तथा स्त्रियों के लिए साड़ी, लहंगा, ओढ़नी और चोली पहनने का रिवाज रहा है। परंतु वर्तमान दौर में परंपरागत परिधानों के स्थान पर पुरुषों में पैंट, शर्ट, जींस, टीशर्ट, ट्राउजर, जैकेट तथा स्त्रियों में कुर्ती-जीन्स, इंडो-वेस्टर्न गाउन, सलवार सूट, लैंगी, स्कर्ट आदि का प्रचलन हर वर्ग में बढ़ता जा रहा है। घर से लेकर ऑफिस तक सभी जगह, पर्व, त्योहार, सामाजिक एवं पारिवारिक आयोजन सभी अवसरों पर आधुनिक वेस्टर्न पहनावा लोगों की पसंद बनता जा रहा है। स्त्री वर्ग में बाज़ारी सौंदर्य प्रसाधनों का प्रयोग पहले से बहुत अधिक बढ़ गया है। वस्त्र संस्कृति में हुए इस बदलाव के कारण जहाँ एक ओर पहनावे पर आधारित सांस्कृतिक पहचान संकट में है, तो दूसरी ओर फैशन के नाम पर फूहड़ता और अंग प्रदर्शन की बढ़ती प्रवृत्ति भी गंभीर सांस्कृतिक खतरा है। हिंदी गज़लकार बदलती परिधान संस्कृति पर कहते हैं-

“है सूट नया अलमारी में
अचकन है पुरानी खूँटी पर।”⁵¹ (ज्ञानप्रकाश विवेक)

*** **

“आज बहुओं को, बदन पर साड़ियां भारी लगे
घर की इज़्ज़त अब मिनी स्कर्ट में दिखने लगी।”⁵² (डी.एम.मिश्र)

“किस तरह बच्चे को आँचल में छिपा सकती हैं ये
जिन्स वाली मम्मियों के पास आँचल है कहाँ
ये महज साधन हैं आँखों को सजाने के लिए
माँ बनाती थी जो घी से अब वो काजल है कहाँ!”⁵³ (वशिष्ठ अनूप)

*** **

“हो गई हर चीज फ़ैशन, बाल क्या, नाखून क्या
हैं अभी भी खनखनाती चूड़ियाँ अपनी जगह।”⁵⁴ (राम मेश्राम)

कलाओं-लोककलाओं का बदलता स्वरूप- वर्तमान समय में आधुनिकता, तकनीक एवं पाश्चात्य प्रभाव के कारण हमारी संस्कृति के कलात्मक चिट्ठों- हस्तकला, चित्रकला, गायन, वादन, नृत्य सभी का स्वरूप बदल रहा है। हमारी परम्परागत कलाएँ- लोककलाएँ विलुप्त हो रही हैं। हमारे यहां शादी-ब्याह व अन्य उत्सवों-पर्वों पर रस्म के हिसाब से लोकगीत गायन की परंपरा रही है, परंतु नयी पीढ़ी इन्हें भूलती जा रही है। लोकगीत अब रिकॉर्डिंग फ़ॉर्म में बजाए जा रहे हैं। परम्परागत लोकगीतों का स्थान यांत्रिक धूमधाम वाले गीत लेते जा रहे हैं। परंपरागत लोकनृत्य और शास्त्रीय नृत्य की जगह युवा पीढ़ी धूमधाम वाले रोबोटिक नृत्य की फैन बनती जा रही है। भारतीय संगीत व नृत्य की जगह पॉप-रैप संगीत तथा वेस्टर्न डांस ले रहा है। बांसुरी, ढोलक, ढप, तबला, मंजीरा जैसे परंपरागत वाद्ययंत्रों की जगह इलेक्ट्रॉनिक वाद्ययंत्रों, डीजे और डिजिटल संगीत ने ले ली है। इस बदलते यथार्थ पर कुछ शेर प्रस्तुत हैं-

“मिट्टी के खिलौने वो हसीं मूज की डलिया!
पहले जो कलाएँ थीं, कलाएँ नहीं रहीं।”⁵⁵ (वशिष्ठ अनूप)

*** **

“हम फाग औ चैता के गीत भूल रहे हैं
कजरी की बात हो जरा झूलों की बात हो।”⁵⁶ (वशिष्ठ अनूप)

*** **

“ये दौर, और दूर तक जारी रखें जनाब
आगे भी काम आएँगी, त्यौहारी गालियाँ
देती थीं शादियों में तबीयत से समधिनें
मिलती नहीं हैं इन दिनों वो प्यारी गालियाँ।”⁵⁷ (राम मेश्राम)

*** **

“जिसे युवा पीढ़ी करे, सबसे अधिक पसंद,

नृत्य आजकल हो गए 'रोबोटिक' व्यायाम।”⁵⁸ (जहीर कुरेशी)

परिवार-विवाह की परम्पराओं में बदलाव- वर्तमान में खान-पान और वस्त्र-आभूषण की शैलियों के साथ परिवार-विवाह की सांस्कृतिक परंपराएँ भी बदल रही हैं। भारतीय संस्कृति में पारंपरिक रूप में संयुक्त परिवार प्रथा का प्रचलन रहा है, जिसमें एक छत के नीचे कई पीढ़ियाँ एक साथ रहती आई हैं। परंतु अब संयुक्त परिवारों के स्थान पर एकल परिवारों का प्रचलन बढ़ रहा है। आज परिवार की परिधि पति-पत्नी व बच्चों तक ही सीमित हो गई है। इससे भी आगे व्यक्तिगत स्वच्छंदता को अत्यधिक महत्व देने के कारण आजकल दो या एक के ही परिवार होने लगे हैं। कुटुम्ब प्रथा के टूटने से बच्चे संयुक्त परिवार में मिलने वाले संस्कारों से वंचित हो रहे हैं। हिंदी गज़लकार कुटुम्ब प्रथा के विघटन व नाभिकीय परिवारों के प्रचलन के प्रति चिंता व्यक्त करते हुए लिखते हैं-

“एक ही घर था साझा चूल्हा, घर में लोग बहुत सारे
मेरे बीराने में आकर खुसुर-फुसुर बतियाते दिन।”⁵⁹ (वशिष्ठ अनूप)

*** *** *** ***

“हैं युग परमाणु-परिवारों का, शायद इसलिए बच्चे,
शहर में दादा-दादी, नाना-नानी तक नहीं पहुँचे।”⁶⁰ (जहीर कुरेशी)

*** *** *** ***

“पैर छूना तो याद क्या रखते
शहरी बच्चे प्रणाम भूल गए।”⁶¹ (जहीर कुरेशी)

भारतीय संस्कृति में विवाह को एक पवित्र संस्कार माना जाता है। लेकिन आधुनिकता, पाश्चात्यकरण, वैश्वीकरण, शिक्षा व तकनीक के प्रसार के कारण विवाह प्रणाली में व्यापक बदलाव हुए हैं। पारंपरिक विवाह व्यवस्था में परिवार की केंद्रीय भूमिका होती थी। विवाह परिवार द्वारा ही तय होता था जिसे अरेंज मैरिज कहा जाता है। लेकिन आज इसके स्थान पर लड़के-लड़की की इच्छा से होने वाले प्रेम विवाहों (लव मैरिज) विवाहों का प्रचलन बढ़ रहा है। वैयक्तिक इच्छा के आगे पारिवारिक बंधनों की बाधा के चलते पारंपरिक तरीके से विवाह के स्थान पर कोर्ट मैरिज का प्रचलन हो रहा है। भोगवादी मानसिकता, वैयक्तिक स्वतंत्रता व सुखों को तरजीह देने वाली आज की युवा पीढ़ी में विवाह की जगह लिव इन रिलेशनशिप की प्रवृत्ति भी बड़ी है। कुल मिलाकर विवाह का परंपरागत ढाँचा विघटित हो रहा है। इस पर हिंदी गज़लकार लिखते हैं-

“स्वयं-वरो” की प्रथाएँ कभी नहीं होंगी,
‘स्वयं-वधू’ के चलन से ही अब विवाह हुए।”⁶² (जहीर कुरेशी)

*** *** *** ***

“वर-वधू कर रहे हैं विवाह
संग कोई बराती नहीं।”⁶³ (जहीर कुरेशी)

*** *** *** ***

“आपके दौर की रीतियाँ अब नहीं
साथ रहते मगर शादियाँ अब नहीं।”⁶⁴ (किशन तिवारी)

*** *** *** ***

“संग प्यारी के करें डेट बिलाशक, लेकिन/ जिस्म के बाहरी फोकस में ही प्यारे रहिए।
कौन बरबाद करे जिन्दगी शादी करके / कौन ‘बुलडॉग’ बने, आप कुँआरे रहिए।”⁶⁵

(राम मेश्राम)

हिंदी ग़ज़लकारों में भारतीय सनातन संस्कृति के श्रेष्ठ आदर्शों, मूल्यों और परम्पराओं के प्रति सम्मान का भाव है। इसलिए वे हमारी संस्कृति के बदलते बिगड़ते स्वरूप को उजागर करने के साथ ही इसके प्रति चिंता व्यक्त करते हैं तथा इसे बचाए रखने के लिए भारतीय सांस्कृतिक परंपराओं, जीवन शैली, पहनावा, खान-पान, शादी-विवाह के तौर तरीकों आदि की खुलकर वकालत करते हैं। पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव शहरी परिवेश पर अधिक हुआ है। ग्रामीण चेतना में आज भी कम अंश में ही सही भारतीय संस्कृति और परंपराएँ मौजूद हैं। इसलिए हिंदी ग़ज़लकारों को महानगरीय परिवेश में चारों ओर फैले पाश्चात्य संस्कृति के चित्रों के बीच ग्रामीण समाज के भारतीय संस्कृति के रंग बहुत अच्छे लगते हैं और वे मुक्तकंठ से उनकी प्रशंसा करते हैं। ग़ज़लकार वशिष्ठ अनूप लिखते हैं-

“खेलते मिट्टी में बच्चों की हँसी अच्छी लगी
गाँव की गली, हवा की ताज़गी अच्छी लगी।
मोटी रोटी, साग बथुए का व चटनी की महक
और ऊपर से वो अम्मा की खुशी अच्छी लगी।
अप्सराओं की सभा में, चहकती परियों के बीच
एक ऋषिकन्या-सी तेरी सादगी अच्छी लगी।
सभ्यता के इस पतन में, नग्नता की होड़ में
एक दुल्हन-सी तेरी पोशीदगी अच्छी लगी।”⁶⁶

5.2.2 पाश्चात्य संस्कृति का बढ़ता प्रभाव

भारत में पाश्चात्य संस्कृति की शुरुआत ब्रिटिश शासन के साथ हुई। अंग्रेजों ने अपने सत्तागत हितों के मध्यनजर भारतीयों को मानसिक रूप से अंग्रेज बनाने के लिए अंग्रेजी शिक्षा की शुरुआत की। अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त भारतीय शिक्षित वर्ग पश्चिमी ज्ञान विज्ञान और संस्कृति से परिचित हुआ। तथा अंग्रेजीयत की संभ्रांत मानसिकता के चलते उसमें अपनी संस्कृति के प्रति हीनता और पाश्चात्य संस्कृति के प्रति श्रेष्ठता का बोध विकसित हुआ। अंग्रेजी पढ़ा लिखा यह वर्ग भारतीय संस्कृति की जगह अंग्रेजी संस्कृति और जीवन शैली को अपनाने लगा। जिससे भारतीय संस्कृति का पाश्चात्यकरण शुरू हुआ। आज़ादी के बाद भी अंग्रेजी मानसिकता से भारतीय समाज आजाद नहीं हुआ, बल्कि अपनी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत और चिंतन को भुलाकर पाश्चात्य संस्कृति के पीछे और तेजी से दौड़ने लगा। भूमंडलीकरण के साथ दुनिया के 'ग्लोबल विलेज' में बदल जाने से सांस्कृतिक आदान प्रदान की प्रक्रिया में यूरोपीय एवं अमेरिकी संस्कृति का भारतीय समाज में तेजी से प्रसार हुआ। हिंदी गज़लकार पाश्चात्य संस्कृति के बढ़ते प्रभाव को प्रतीकात्मक शैली में व्यक्त करते हुए कहते हैं-

“दे गया तहजीब पश्चिम की हमें

हाथ से मेरे वो पुरब ले गया।”⁶⁷

(महेश अग्रवाल)

*** *** *** ***

“यही वो भारत है, जिस पे 'इण्डिया' हावी

हम भी थूका गोरों का शान से निगलते हैं।”⁶⁸

(राम मेश्राम)

*** *** *** ***

“हमारे देश में मौजूद थी तहजीब 'पूरब' की

मगर में देखता हूँ इन दिनों 'पछुआ' हवाएँ हैं।”⁶⁹

(महेश अग्रवाल)

पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव हमारी संस्कृति के अंतः और बाह्य दोनों पक्षों में परिलक्षित होता है। अंतः पक्ष के अन्तर्गत इसने हमारे सांस्कृतिक चिंतन, सोच और आचार-विचार को प्रभावित किया है। हमारी सनातन संस्कृति में आत्मिक सौंदर्य एवं आत्मिक सुखों को प्रमुखता दी जाती है। जबकि पाश्चात्य संस्कृति में दैहिक सौंदर्य और भौतिक सुखों को तवज्जो दी जाती है। समकालीन दौर में हमारे समाज में मानसिक सौंदर्य के स्थान पर शारीरिक सौंदर्य तथा भौतिक एवं दैहिक सुखों का बढ़ता महत्व पश्चिमी संस्कृति की ही अभिव्यक्ति है। पश्चिमी संस्कृति की नकल में आज

का हमारा समाज मन की परवाह किए बगैर तन को सजाने में लगा है, संयम के रास्ते को छोड़कर भोग में डुबा हुआ है। हिंदी ग़ज़लकार जहीर कुरेशी लिखते हैं-

“पश्चिम के बीज बोते ही माटी में पूर्व की,
लोगों ने अपने खेतों को बंजर बना लिया।”⁷⁰ (जहीर कुरेशी)

*** **

“तन के उत्सव चले रात-दिन
मन बियाबान होने लगा।”⁷¹ (जहीर कुरेशी)

*** **

“सुंदर कोई बनाता नहीं मन को आजकल
फैशन से नग्न तन को सजाने की होड़ है।”⁷² (जहीर कुरेशी)

पाश्चात्य संस्कृति से प्रेम के चलते आज भारतीयों को विदेशी संस्कृति पसंद आने लगी है। तथाकथित आधुनिकता की ओर बढ़ रही युवा पीढ़ी पाश्चात्य खान-पान, रहन-सहन व पहनावे की फैशन होती जा रही है। परंपरागत देसी खानपान के स्थान पर पैकेज्ड फूड और पिज्जा बर्गर जैसे चरपटे पश्चिमी खाद्य नयी पीढ़ी की पहली पसंद बन गये हैं। परंपरागत पेय पदार्थों के स्थान पर पाश्चात्य कोल्ड ड्रिंक और महंगे मद्य पदार्थ व शराब आज की युवापीढ़ी की रसना के पसंदीदा रस बनते जा रहे हैं। वेस्टर्न वस्त्र नयी पीढ़ी की शान बनते जा रहे हैं। फैशन के नाम पर हर दिन परिधान बदल रहे हैं। हिंदी ग़ज़लकार लिखते हैं-

“खास मेहमाँ है पेप्सी-कोला
खास हम भी हैं मेजबानों में।”⁷³ (रामकुमार कृष्ण)

*** **

“पी पी के रोज जहर भी बेस्वाद बेमजा
नैरंगिये जहाँ की सनम कॉकटेल ले।”⁷⁴ (राम मेश्राम)

*** **

“चार महीने बाद ही, बदल दिए परिधान,
फैशन यूँ करती रही, नए-नए की बात।”⁷⁵ (जहीर कुरेशी)

भारतीय समाज पर तेज़ी से पश्चिमी संस्कृति का रंग चढ़ता जा रहा है। विशेष रूप से महानगरीय परिवेश में पश्चिमी जीवनशैली का गहरा प्रभाव दिखाई देने लगा है। इन प्रभावों में से एक है- नाइट क्लब, डांस पार्टी और बियर बार की संस्कृति। यह

अपसंस्कृति युवाओं में विशेष रूप से लोकप्रिय हो रही है। इन नाइट पार्टियों में संगीत, नृत्य और पेय पदार्थों के सहारे युवा रातभर फूहड़ मनोरंजन करते हैं। बियर बार, जहाँ मुख्य रूप से शराब और मादक पेय परोसे जाते हैं, अब केवल पुरुषों तक सीमित नहीं रहे। युवतियाँ भी इनमें भाग ले रही हैं। पश्चिम के प्रभाव में बियर बार और क्लब संस्कृति को ग्लैमराइज किया जा रहा है। इसे 'स्टाइलिश' एवं स्वतंत्र जीवनशैली के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। हिंदी गज़लकार इस पर कहते हैं-

“रात भर जश्न चलता रहा

भोर तक नाच-गाने मिले।”⁷⁶

(जहीर कुरेशी)

*** **

“मंहगे होते गये टिकट हर कीमत आसमान पहुँची,

बार और प्लेनों में दारू की सप्लाई मुफ्त हुई।”⁷⁷ (वशिष्ठ अनूप)

*** **

“सीता हैं डांस बार में दर्शक हैं रामजी

किसकी ये नज़र लग गयी भारत के गाँव पर।”⁷⁸ (वशिष्ठ अनूप)

21वीं सदी में स्त्रियों की बदलती दुनिया में पाश्चात्य संस्कृति स्पष्टतः प्रतिबिंबित होने लगी है। भारतीय संस्कृति में लज्जा, मर्यादा को स्त्री के आभूषण माना जाता रहा है। किंतु पाश्चात्य जीवनशैली के अंधानुकरण के चलते आज पहनावे में असंयम और अंग प्रदर्शन को फैशन, समानता व स्वतंत्रता का प्रतीक माना जाने लगा है। आधुनिक फैशन में शरीर का खुला प्रदर्शन ग्लैमर माना जाने लगा है। लिव-इन रिलेशनशिप, बार-बार संबंधों का बदलना, विवाह को अस्वीकार करना आदि पश्चिम के प्रत्यय भारतीय संस्कृति में आत्मसात होते जा रहे हैं। आधुनिकता के नाम पर नई पीढ़ी इस विचार को अपनाने लगी है कि संबंध केवल इच्छा एवं आत्मसुख की चीज़ हैं। इसके लिए विवाह कोई आवश्यक संस्था नहीं। महानगरों में युवा पीढ़ी की वासना खुले आम नाचने लगी है। इस संबंध में पश्चिमी संस्कृति एवं आधुनिकता के अन्तर को समझने की आवश्यकता पर जोर देते हुए डॉ. शंकरदयाल शर्मा कहते हैं, “वास्तव में हमें पाश्चात्य संस्कृति और आधुनिकता के अन्तर को समझना होगा। हमारी आधुनिकता की जड़े हमारी परम्परा के समृद्ध तत्वों में हैं, तभी हमारा वर्तमान रसयुक्त हो सकता है। अन्यथा ऊपर से लादी गई यह आधुनिकता पारस्परिक एवं सामाजिक संबंधों के बिखराव का कारण बन जाएगी।”⁷⁹ गज़लगो इस नवीन संस्कृति के बारे में लिखते हैं-

“कहाँ दुपट्टा, कैसी लज्जा, कैसा शील कहाँ संकोच,
सरेआम अब जिस्म-प्रदर्शन औ अंगड़ाई मुफ्त हुई।”⁸⁰ (वशिष्ठ अनूप)

*** **

“मर्यादा के नंगे शव पर आयोजित हमने
अधनंगे जिस्मों की रोज नुमाइश देखी है।”⁸¹ (महेश अग्रवाल)

*** **

“कारों में, पार्क में या सहेली के 'रूम' पर
शहरों में होता रहता है अभिसार आजकल।”⁸² (जहीर कुरेशी)

*** **

“उनसे अपना 'लिव इन' तक का रिश्ता था,
उस जीवन में हम छह साल शरीक रहे।”⁸³ (जहीर कुरेशी)

भारत एक प्राचीन और समृद्ध सांस्कृतिक विरासत वाला देश है। दुनिया में सर्वश्रेष्ठ माने जाने वाली हमारी सनातन संस्कृति ही हमारे देश की आत्मा है। लेकिन वैश्वीकरण, तकनीकी विकास, फिल्म उद्योग और सोशल मीडिया के प्रभाव से बीते कुछ दशकों से इस आत्मा पर पश्चिमी संस्कृति की छाया पड़ती जा रही है। तथा भारतीय समाज में पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव निरंतर बढ़ता जा रहा है। आज यह प्रभाव सीमित प्रेरणा से आगे बढ़कर अंधानुकरण का रूप ले चुका है। 21वीं सदी का भारतीय समाज विशेष रूप से युवा वर्ग अपनी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत एवं चिंतन परंपरा को भूलकर पाश्चात्य संस्कृति, मूल्यों, व्यवहारों और जीवनशैली का गुलाम बनता जा रहा है। तथा अपनी सांस्कृतिक जड़ों से कटता जा रहा है। पश्चिम संस्कृति के आतप से भारतीय संस्कृति के विचारों, मूल्यों और परम्पराओं के पौधे मुरझा रहे हैं। और हमारा मनोरम सांस्कृतिक उद्यान उजड़ रहा है। पश्चिमी आँधी से हमारी सांस्कृतिक चादर की बुनावट उधड़ती जा रही है और वह बेपर्दा होती जा रही है। हिंदी ग़ज़लकारों को यह स्थिति चिंतित करती है। और वे अपनी कलम की सूई से इस चादर को सिलने का रचनात्मक कर्म करते हैं। उनका मानना है कि पश्चिमी संस्कृति से सीखना बुरी बात नहीं है, लेकिन अपनी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत को त्यागकर पश्चिम की छाया बन जाना खतरनाक है। यह अपनी सांस्कृतिक पहचान को खो देने जैसा है। हमारे देश की पहचान उसकी सांस्कृतिक समृद्धि व गहन जीवन दृष्टि में है और यदि वह खो गई, तो भारत केवल एक 'भौगोलिक इकाई' रह जाएगा, 'सांस्कृतिक राष्ट्र' नहीं। हिंदी ग़ज़लकार गोपालदास नीरज कहते हैं कि "बाज़ारवाद और

ग्लोबलाइजेशन से दुनिया बहुत छोटी हो गई है। भिन्न-भिन्न प्रकार से सभ्यताओं और आर्थिक व्यवस्थाओं में परिवर्तन हो रहे हैं। भिन्न-भिन्न विचारों से अवगत होना अच्छी बात है, पर अति सर्वत्र वर्जयेत। दूसरों पर आश्रित रहेंगे या दूसरों से प्रभावित होते रहेंगे और अपनी संस्कृति व जीवन मूल्यों से पूरी तरह कट जायेंगे। तो फिर भारत कहीं नहीं दिखाई देगा।”⁸⁴ इसलिए ज़रूरत है कि हम पाश्चात्य प्रभावों को तार्किक रूप से स्वीकारें। अच्छी चीजों का अनुकरण करें, पर अंधानुकरण नहीं। पश्चिम से प्रकाश भले लें, लेकिन अपने दीपक की लौ को न बुझने दें। आधुनिक बनें, पर अपनी संस्कृति के साथ। उन्नति के आकाश में उड़ान भरे पर अपनी सांस्कृतिक विरासत के रनवे से। हिंदी गज़लकार भारतीय समाज में यह सांस्कृतिक दायित्व बोध जागृत करना चाहते हैं कि पश्चिम के अनुकरण से चाहे कितनी उन्नति कर ले, परंतु अपनी सांस्कृतिक जमीन के बगैर कोई अस्तित्व, आधार या पहचान नहीं है। अतः अपनी सांस्कृतिक जड़ों की ओर लौटने तथा सांस्कृतिक ज़मीन को बचाये रखने की ज़रूरत है। “संस्कृति की सतत निरंतरता का मतलब यही है कि अतीत में जो कुछ सकारात्मक है, शुभ है। नेक है तथा मानव हितकारी है, उसे हमें न केवल जीवित रखना है बल्कि उसे आगे भी प्रवाहित करना है।”⁸⁵ इसकी वकालत करते हुए हिंदी गज़लकार कहते हैं-

“जोर ज़्यादा बढ़ गया पछुआ हवाओं का
देश की तहजीब में पुरवाइयाँ कम हैं।”⁸⁶

(महेश अग्रवाल)

*** *** *** ***

“एक पछुए की हवा के ताप का देखा असर
बिरवे पूरब के पनपकर हो विकल मुरझा गए।”⁸⁷

(विनय मिश्र)

*** *** *** ***

“बरहना हो न जाए ये अदम पछुवा के झोंके से ।
हमारी इस तमदुन का गरारा कितना ढीला है।”⁸⁸

(अदम गोंडवी)

*** *** *** ***

“उचड़ती है अचानक जब कभी तहज़ीब की सीवन
तो हमने भी क़लम की नोंक से उसकी सिलाई की।”⁸⁹

(महेश अग्रवाल)

*** *** *** ***

“इंडिया’ बनकर प्रगति का हर शिखर छू लो मगर
सभ्यता की दौड़ में यह देश ‘भारत’ भी रहे।”⁹⁰

(महेश अग्रवाल)

*** **

“बचाना है अगर इस मुल्क की उजली विरासत को
हमें अपनी जड़ों की ओर फिर से लौटना होगा।”⁹¹ (जहीर कुरेशी)

“आज बदली है कैसी हवा सोचिए/ इस नए दौर का फलसफा सोचिए।
आसमानों के सपने भले हों मगर/ आप धरती से खुद को जुड़ा सोचिए।”⁹²
(किशन तिवारी)

5.2.3 उपभोक्तावादी अपसंस्कृति का प्रसार

भूमंडलीकरण एवं उदारीकरण के साथ हमारे देश में पाश्चात्य संस्कृति और बाज़ारवाद का आगमन हुआ। पाश्चात्य संस्कृति के भौतिकतावादी दर्शन एवं बाज़ारवाद के कारण समाज में उपभोक्तावाद को बढ़ावा मिला। जिसके कारण एक नई उपभोक्तावादी अपसंस्कृति प्रचलन में आई। यह एक ऐसी सांस्कृतिक प्रवृत्ति या जीवनशैली है जिसमें उपभोग को ही जीवन का लक्ष्य तथा सुख व सफलता का मापदंड माना जाता है। जिसमें व्यक्ति की पहचान व प्रतिष्ठा, उसके जीवन की सार्थकता और सफलता, उसकी ब्रांडेड महँगी वस्तुओं की क्रय क्षमता एवं उपभोग की मात्रा से आँकी जाती है। यह संस्कृति व्यक्ति की इच्छाओं को जबरदस्ती जगाकर उसे असीमित उपभोग और अधिकाधिक वस्तुओं के संग्रह के लिए प्रेरित करती है। यही कारण है कि उपभोक्तावादी संस्कृति के वर्तमान दौर में हर व्यक्ति की ख्वाहिशें आकाश की तरह असीम हो गयी हैं। एक इच्छा पूरी नहीं होती उससे पहले ही रक्तबीज की बूँदों की तरह अनेक नई इच्छाएँ सर उठा लेती हैं। उन अनन्त इच्छाओं के पीछे दौड़ते-दौड़ते व्यक्ति का जीवन पूरा हो जाता है, वह मर जाता है, लेकिन उसकी कामनाएँ न पूरी होती और न ही मरती हैं। उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण बढ़ती इच्छाओं पर कुछ शेर पेश है-

“इस वक्त लालसाओं की धूम हर जगह है
इस वक्त लालसाएँ भगवान हो गई हैं।”⁹³ (विनय मिश्र)

*** **

“ख्वाहिशें, फिर ख्वाहिशें, फिर ख्वाहिशें
आप गिर जाएंगे इतने भार से।”⁹⁴ (हरेराम समीप)

*** **

“मौत आती है हमेशा आदमी के जिस्म को
मर नहीं पाई कभी भी आदमी की ख्वाहिशें।

सोच से आगे बहुत आगे गई है यह सदी

किन्तु इससे और आगे हैं सदी की ख्वाहिशें।⁹⁵ (महेश अग्रवाल)

हमारी प्राचीन संस्कृति आध्यात्मिकता प्रधान संस्कृति रही है। षड्दर्शनों में केवल चार्वाक ही भौतिकवादी दर्शन था, परन्तु उसे उस समय खास महत्व नहीं मिला। उपभोक्तावादी पश्चिमी संस्कृति के वर्तमान दौर में यह चार्वाक दर्शन ही एकमात्र जीवन दर्शन बन गया है। इसका सूत्र वाक्य 'उधार लेकर घी पियो' ही आज की उपभोक्तावादी संस्कृति में जीवन का ध्येय वाक्य एवं जीवन सिद्धांत बन गया है। उपभोक्तावाद के कारण आज हर व्यक्ति अनंत इच्छाओं एवं महत्वाकांक्षाओं के बोझ के तले दबा है, जबकि उसकी आय के साधन सीमित हैं। जिससे वह विशेषतः मध्यमवर्गीय व्यक्ति चार्वाक दर्शन को चरितार्थ करते हुए उधारी पर या कर्ज लेकर भी सामान खरीदता है। बाज़ारवाद ऑनलाइन शॉपिंग के साथ किशतों पर सामान की खरीद के विकल्प प्रदान कर रहा है जिससे क्रेडिट आधारित जीवनशैली को बढ़ावा मिल रहा है। शायर कहते हैं-

“राग विराग ऋणम् कृत्वा और घृतम् पिवेत

हमने तो तहजीब में पाई फिसलन है।⁹⁶ (देवेन्द्र आर्य)

*** **

“इच्छाओं के पैर बहुत लम्बे-लम्बे

लेकिन चादर छोटी है संसाधन की।⁹⁷ (हरेराम समीप)

*** **

“कोई बुरा समझता नहीं अब उधार को

लाखों खरीदते मिले किशतों में कार को।⁹⁸ (जहीर कुरेशी)

उपभोक्तावादी संस्कृति का आदर्श संपूर्ण भोग है। भारतीय संस्कृति के सीमित व संयमित खान-पान, सीमित भोग, सीमित संचय के स्थान पर आज की उपभोक्तावादी संस्कृति असीमित एवं अमर्यादित उपभोग को बढ़ावा देती है। यह अपसंस्कृति व्यक्ति की इच्छाओं को जबरदस्ती जगाती है। तथा उसकी सारी इंद्रियों को खुले, असीमित व अमर्यादित उपभोग के लिए विचरण करने की स्वतंत्रता प्रदान करती है। यह नैतिक-अनैतिक जैसी तमाम धारणाओं को दरकिनार कर सब कुछ को भोगने तथा 'खाओ, पियो और मौज करो' की जीवन शैली को अपनाने के लिए प्रेरित करती है। इसी कारण आज हर ओर भोगवाद का शोर है जिससे माल व मॉल संस्कृति को बढ़ावा मिला है। हिंदी गज़लगो इस अपसंस्कृति पर लिखते हैं-

“अंतहीन टक्कर है यौन और संयम की
आप तय करेंगे कि कौन किससे आगे है।”⁹⁹ (राम मेश्राम)

“ऐशगाहों में अमीरों की जिन्हें सजना पड़ा
आप उन निर्धन कुँवारी लड़कियों का सोचते।”¹⁰⁰ (विनय मिश्र)

*** **

“कंज्यूर कल्चर में सब चलता है यारो!
मन्दिर की सीढ़ी पर रख लो मयखानों को।”¹⁰¹ (ज्ञानप्रकाश विवेक)

*** **

“ये पंचतारा चकाचौंध 'मॉल कल्चर' की
यहीं तो होश ठिकाने लगाए जाते हैं।”¹⁰² (राम मेश्राम)

भारतीय सांस्कृतिक चेतना व्यक्ति को ‘मैं क्या हूँ?’ के दृष्टिकोण से अपने अंतर जगत की ओर देखने की दृष्टि प्रदान करती है, जबकि उपभोक्तावादी संस्कृति इसके विपरीत ‘मेरे पास क्या है’ की दृष्टि से भौतिक जगत की ओर देखने तथा भौतिक वस्तुओं के दिखावे पर केंद्रित होती है। जैसे-जैसे यह अपसंस्कृति बढ़ती है, व्यक्ति अपनी आंतरिक पहचान से कटकर एक बाज़ार केंद्रित उपभोक्ता बन जाता है। जहाँ वह सिर्फ वस्तुएँ खरीदने, उनका प्रदर्शन करने और दूसरों से आगे निकलने की प्रवृत्ति में जीता है। इस संस्कृति में व्यक्ति की पहचान और प्रतिष्ठा उसके पास उपलब्ध भौतिक वस्तुओं यथा बंगला, गाड़ी, गैजेट्स और फैशन ब्रांडों के संग्रह और उनके दिखावे से जुड़ी होती है। यही कारण है कि दिखावटी जीवन शैली आज के उपभोक्तावादी दौर की सांस्कृतिक प्रवृत्ति या पहचान बन गई है। जीवन के हर क्षेत्र में हर वक्त चाहे त्योहार हो, शादी सीजन हो या जीवन की सामान्य दिनचर्या दिखावे का बोलबाला बढ़ा है। हिंदी गज़लकार इस बारे में लिखते हैं-

“रोज मिलता है वो मिलने के बहाने ढूँढ कर
कार, बंगले, सम्पदा चर्चा इसी का आजकल।”¹⁰³ (किशन तिवारी)

*** **

“सुविधा से बढ़ गई है अनायास शान भी
छत पर खड़ा हुआ है निजी वायुयान भी।”¹⁰⁴ (जहीर कुरेशी)

*** **

“पाँच-तारा होटलों से घर मिले
जिनमें सुविधाओं के आडम्बर मिले।”¹⁰⁵ (जहीर कुरेशी)

आध्यात्मिकता प्रधान भारतीय संस्कृति में आत्मिक या आंतरिक सुखों को महत्व दिया गया है, जबकि उपभोक्तावादी संस्कृति बाह्य खुशियों को तरजीह देती है। उपभोक्तावाद ने व्यक्ति को भौतिक या बाहरी खुशी तो दी है, पर इसके साथ आंतरिक बेचैनी भी उसे तोहफे में मिली है। भौतिक संसाधन जीवन को सुखमय बनाने में सहायक है, लेकिन आज भौतिकता ने व्यक्ति के दिल-दिमाग व जीवन में इतना अधिक स्थान घेर लिया है कि उसके पास आंतरिक या आत्मिक सुखों के लिए कोई जगह नहीं बची है। यही वजह है कि अकूत भौतिक वस्तुओं के संग्रह के बावजूद आज व्यक्ति आत्मिक सुखों के अभाव में दुखी व परेशान है। उपभोक्तावादी दर्शन की यह बहुत बड़ी कमी है कि सुविधाएँ जितनी बड़ी हैं, समस्याओं ने उससे ज्यादा पैर पसारे हैं। आज व्यक्ति भौतिक सुखों की मृगतृष्णा में दिन रात दौड़ धूप कर रहा है, अनंत महत्वाकांक्षाओं के बोझ को ढोता वह स्वयं पर ही जुल्म ढा रहा है। तथा भौतिक वस्तुओं के संचय की प्रतिस्पर्धा में वह असंतोष, तनाव, कुंठा और अवसाद का शिकार हो रहा है। हिंदी गज़लकार इस विडंबनापूर्ण स्थिति के बारे में लिखते हैं कि आज असीमित चाहतों के बोझ में मुस्कुराना भी एक कभी न पूरी होने वाली चाहत बन गई है।

“घरों में तो सामान सारे भरे हैं

मगर क्यों खुशी सूखती जा रही है।”¹⁰⁶

(वशिष्ठ अनूप)

*** **

“बढ़े साधन समस्याएँ बढ़ी हैं

कमी यह भोग के दर्शन में देखी।”¹⁰⁷

(विनय मिश्र)

*** **

“दुख-सुख, चिंता और तनावों के ये रेखाचित्र

सब लोगों के मुख पृष्ठों पर अंकित होते हैं

हर ख्वाहिश पूरी होना तो मुश्किल है, लेकिन

लोग कई ऐसे दुख में भी कुंठित होते हैं।”¹⁰⁸

(महेश अग्रवाल)

*** **

“अपनी दुर्लभ इच्छाओं में एक ये है मैं मुसकाऊँ

पर इसमें भी क्या बतलाऊँ अब कैसी लाचारी है।”¹⁰⁹

(विनय मिश्र)

उपभोक्तावादी संस्कृति ने आधुनिक समाज को सुविधाएँ तो दी हैं, लेकिन इसने मनुष्य को बाहरी चकाचौंध का बंदी बना दिया है। तथा इससे पैदा हुई असमीति

उपभोग की प्रवृत्ति ने जीवन के आंतरिक सौंदर्य व सुख, व्यक्ति के भीतर की संतोषवृत्ति व संवेदना, जीवन मूल्यों की रोशनी, रिश्तों की आत्मीयता एवं प्राकृतिक संतुलन को बिगाड़ दिया है। हिंदी ग़ज़लकार इस सांस्कृतिक क्षरण पर चिंता व्यक्त करते हुए उपभोग की अपसंस्कृति के विरुद्ध चेतना को साहित्य का नैतिक दायित्व मानते हुए ऐसे समाज की स्थापना पर बल देते हैं जो उपभोग को जीवन साध्य के बजाय जीवन का साधन समझते हुए असंयमित उपभोग की अंधी दौड़ में शामिल होने के बजाय संयमित व संतुलित उपयोग को अपनाए। जो भौतिक सुखों के बजाय आत्मिक मूल्यों तथा वस्तुओं के ब्रांड की जगह इंसानियत की कद्र करने वाला हो। इसके लिए वे गाँधी जी के सादा जीवन, उच्च विचार की भावना को नए संदर्भों में पुनर्स्थापित करने की जरूरत पर जोर देते हैं। वे समाज को नश्वर भौतिकता की अंधी दौड़ में जीवन को कठिन बनाने के बजाय इच्छाओं के बोझ को कम कर जीवन यात्रा को सहज बनाने की सीख देते हैं। शायर कहते हैं-

“ऐ 'समीप भागो मत, प्यास के इशारों पर

धूप में चमकता ये, सिर्फ़ इक मरुस्थल है।”¹¹⁰

(हरेराम समीप)

*** *** *** ***

“और ज़्यादा की क्यों जरूरत हो / बेवजह की थकान क्या करना।

सिर्फ़ दो गज ज़मीन हो मेरी / यह समूचा जहान क्या करना।”¹¹¹

(महेश अग्रवाल)

“जीवन को आसान बना

मत इतना सामान बना।”¹¹²

(माधव कौशिक)

5.2.4 भारतीय संस्कृति के जीवन मूल्यों का पतन

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम और सर्वाधिक समृद्ध संस्कृतियों में सबसे महान संस्कृति है। इसे सनातन संस्कृति कहा जाता है, क्योंकि इसके मूल में प्रेम, दया, करुणा, परोपकार, सत्य, अहिंसा, त्याग, सेवा, संयम, सादगी, संवेदनशीलता, सहिष्णुता, नैतिकता व सदाचार जैसे मानवतावाद के पोषक शाश्वत मूल्य हैं, जो समय और स्थान की सीमाओं से परे हर युग में मानव समाज के मार्गदर्शक एवं प्रासंगिक बने रहे हैं। भारतीय संस्कृति के उदात्त जीवन मानकों की बात करते हुए डॉ. हेतु भारद्वाज कहते हैं, “इन मानदण्डों में सत्य, अस्तेय, अहिंसा, सदाचरण, परदुःखकातरता, त्याग, मन की पवित्रता और विशालता, दूसरों के प्रति सहानुभूति, सहनशीलता, सहिष्णुता, ममता जैसे तत्त्व थे जिन्होंने भारतीय संस्कृति को इतना

महान और जीवंत बनाया।”¹¹³ लेकिन समकालीन दौर में बाज़ारवाद, उपभोक्तावाद, तकनीक एवं पाश्चात्य जीवन दर्शन ने इन सनातन मूल्यों को चुनौती दी है। बाज़ारवाद और उपभोक्तावाद ने व्यक्ति के जीवन को भौतिक रूप से सुविधा संपन्न बनाने के साथ उसमें अर्थ की अनर्थकारी भूख पैदा की है, जिसकी दौड़ में वह सारे मानवीय संबंधों एवं मूल्यों को पीछे छोड़ रहा है और इंसानियत से दूर होता जा रहा है। “एक समय ऐसा था जिसमें मानवीय मूल्यों को जीवन का उदात्त आदर्श माना जाता था। पारस्परिक प्रेम, दया, सहानुभूति, संवेदना, त्याग, सत्य, सहयोग जैसे मूल्य सामाजिक सौहार्द के लिए आवश्यक माने जाते थे। 'स्व' से 'पर' भावना का महत्व ज्यादा था। मानवता, परोपकार, विश्वसनीयता व समाज में इन्सानियत खत्म हो चुकी है। समाज में एक ऐसी सभ्यता का विकास हो रहा है, जिसमें आदमी कहीं दिखाई नहीं दे रहा है।”¹¹⁴ इंसानी सभ्यता ने आज तक जो कुछ भी शुभ और सुंदर अर्जित किया था, वह सब कुछ दाँव पर लगा हुआ है। मूल्यों का मूल्य छीज रहा है और दुर्गुण या अ-मूल्य आज अमूल्य होते जा रहे हैं। सत्य, ईमानदारी, नैतिकता, सदाचार, संयम, सादगी, त्याग, निश्चलता, सहयोग, सहानुभूति, अपनापन, प्रेम जैसे मूल्यों का प्रतिस्थापन आज झूठ, बेईमानी, छल-कपट, पाखंड, स्वार्थ, संवेदनहीनता, ईर्ष्या-द्वेष जैसे दोषों से हो रहा है। सारे आदर्शों, मूल्यों, सिद्धांतों व उसूलों का जनाज़ा निकल रहा है और सारे दोष आज के आराधन मंत्र बनते जा रहे हैं। मूल्यों के इस बदलते यथार्थ को संकेतित कर ग़ज़लकार कहते हैं-

“हर क्यारी में है यहाँ क्षुद्र स्वार्थ की बेल,

मूल्य सर्वथा हो गये उपवन से निर्मूल।”¹¹⁵

(शिव ओम अंबर)

*** *** *** ***

“लूटपाट, अपराध, झूठ का / होता है अभ्यास यहाँ पर

सच्चाई, ईमान, प्यार को / दे डाला वनवास यहाँ पर।”¹¹⁶ (महेश कटारे ‘सुगम’)

*** *** *** ***

“आते हुए बदलाव के कुछ ऐसे असर हैं

कल ऐब थे वे आज बड़े ऊँचे हुनर हैं।”¹¹⁷

(हरेराम समीप)

*** *** *** ***

“रात दिन मरने खटने से राहत मिली / फ़ाड जीता, उसूलों को लानत मिली।

आदमीयत का आखिर जनाजा उठा / मुल्क को वहशियाना अदावत मिली।”¹¹⁸

(राम मेश्राम)

भारतीय सनातन संस्कृति में सत्य को ही शिव कहकर उसे परम मूल्य माना गया है। किंतु आज सत्य का स्वरूप अनेक चुनौतियों से घिरा हुआ है। राजनीति, मीडिया और बाज़ार ने अपने स्वार्थ के लिए सत्य और असत्य के बीच की रेखा को न केवल धुँधलाया है, अपितु इससे भी आगे झूठ को ही सच की तरह प्रचारित किया है। चारों तरफ झूठ का बोलबाला बढ़ता जा रहा है। और सच अकेला पड़ता जा रहा है। सत्य के राही बेहद परेशान है। वे हर तरह से पिछड़ रहे हैं, जबकि झूठ के राही सफलताओं के नए कीर्तिमान गढ़ रहे हैं। हिंदी गज़लकार सत्य के इस सच के बारे में लिखते हैं-

“एक सच के नाम पर अपना समय

झूठ कितने रंग के बरसा गया।”¹¹⁹

(विनय मिश्र)

*** **

“झूठ की ऐसी हवा है हर तरफ चलती हुई

साँस लेने में सचाई को परेशानी हुई।”¹²⁰

(विनय मिश्र)

*** **

“वक्त का ये कमाल है यारो

झूठ अब मालामाल है यारो।”¹²¹

(हरeram समीप)

भारतीय संस्कृति में अंतरात्मा और व्यवहार की एकता अथवा मन, वचन, कर्म की एकात्मकता, जिसे सत्यनिष्ठा या आत्मसंगति कहते हैं, को जीवन का आदर्श या मूल्य माना गया है। लेकिन भौतिक प्रतिस्पर्धा के इस दौर में वचनों में सत्यनिष्ठा एवं आदर्शों की बातें करने वाले लोग भी व्यवहार में येन केन प्रकारेण सफलता पाने को उसूल बनाने लगे हैं। इसलिए लोगों की कथनी और करनी में अंतर तथा चरित्र में पाखंडीपन उभर रहा है। राजनीति, व्यापार, पारिवारिक और सामाजिक संबंधों में दोहरेपन, पाखंडीपन और मुखौटावाद की प्रवृत्ति लगातार बढ़ती जा रही है। गज़लकार कहते हैं-

“लोग जो बेहद विनत हैं,

कुटिलता के दस्तखत हैं।”¹²²

(शिव ओम अंबर)

*** **

“वक्त के दोमुखी किरदार से डर लगता है

आज के इस नये आजार से डर लगता है।”¹²³

(हरeram समीप)

*** **

“आजकल कौन सी ये हवा चल पड़ी

रोज चेहरा बदलने लगी जिन्दगी।”¹²⁴

(किशन तिवारी)

भारतीय संस्कृति में नैतिकता, ईमानदारी, सदाचार जैसे मूल्यों को जीवन की धुरी माना गया है। ये मूल्य व्यक्तिगत चरित्र ही नहीं, बल्कि भारतीय समाज और राष्ट्र की आध्यात्मिक-सांस्कृतिक शक्ति रहे हैं। लेकिन अर्थवादी समकालीन दौर में मुद्रा को असाधारण महत्व मिलने के कारण इन परंपरागत मूल्यों पर संकट छाया हुआ है। राजनीतिक और प्रशासनिक क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार, ईमानदारी और नैतिकता के संकट का द्योतक है। बाज़ारवाद ने व्यापार से ईमानदारी के मूल्य को बेदखल कर दिया है। रातोंरात पैसा कमाने की होड़ में लोग अनैतिक एवं बेईमान तरीके अपना रहे हैं। समाज में लगातार बढ़ते अपराध सदाचार के वनवास को प्रदर्शित कर रहे हैं। शायर कहते हैं-

“वेंटीलेटर पर रक्खी है नैतिकता-

कौन भला अब इसकी चिन्ता करता है।”¹²⁵

(ज्ञानप्रकाश विवेक)

*** *** *** ***

“इधर भूखा रखा है आज तक ईमानदारी ने

उधर उस बेईमानी ने सदा अंधी कमाई की।”¹²⁶

(महेश अग्रवाल)

*** *** *** ***

“इक्कीसवीं सदी में वो लगता है जड़-विचार

समझे थे लोग जिसको सदाचार उम्र भर।”¹²⁷

(जहीर कुरेशी)

संवेदनशीलता मानव सभ्यता और संस्कृति की आत्मा है। यह वह मानवीय गुण है जो मनुष्य को दूसरों की भावनाओं, पीड़ाओं और परेशानियों से आत्मीय रूप से जुड़ने के साथ सामाजिक परिवेश के प्रति जागरूक व करुणामय बनाता है। लेकिन समकालीन परिस्थितियों में अर्थ की आकाशी दौड़ और यांत्रिक भाग-दौड़ में व्यक्ति संवेदनहीन मशीन बनता जा रहा है। और उसमें स्नेह-सहृदयता का अंश कम होता जा रहा है। शांतिप्रिय द्वािवेदी लिखते हैं, “हमने एक और बड़ा सत्य खो दिया है मानव का परस्पर स्नेहसंवेग। समाज ने अपनी सहज सहृदयता का स्नेह-सूत्र तोड़ दिया है। यदि पीड़ित मानव सुखी नहीं हो पाता तो समझना होगा कि समाज ही गलत है।¹²⁸ तकनीक ने व्यक्ति को आत्म केंद्रित कर उसकी संवेदनशीलता को सोख लिया है। सोशल मीडिया ने संवेदनशीलता को दिखावटी, औपचारिक, क्षणिक व आभासी बना दिया है। डॉ. हेतु भारद्वाज लिखते हैं कि “इस समय तो ऐसा लगता है कि इस देश

में, पृथ्वी पर केवल व्यक्ति रहता है, समाज नहीं। व्यक्ति केवल अपने दायरे में रहता, सोचता और कर्म करता है। ऐसा लगता है कि जैसे हर व्यक्ति एक-एक द्वीप में अलग-अलग रहता है।”¹²⁹ हिंदी ग़ज़लकार मनुष्य में छीजती संवेदनशीलता एवं इंसानियत पर कहते हैं-

“हर तरफ हैं सिर्फ पत्थर की शिलाएँ क्या करें

हो रही हैं भोथरी संवेदनाएँ क्या करें।”¹³⁰

(महेश अग्रवाल)

*** *** *** ***

“आदमी के खून में पहले सी वह हलचल कहाँ

दूसरों के दर्द से इंसानियत घायल कहाँ।”¹³¹

(माधव कौशिक)

हमारे यहाँ सादगी व सरलता को आदर्श जीवन शैली का आधार माना गया है। ये ऐसे गुण हैं जो व्यक्ति के आचरण, विचार और जीवन शैली को सहज और स्वाभाविक बनाते हैं। लेकिन आधुनिकता और उपभोक्तावादी संस्कृति के वर्तमान दौर में फैशन व दिखावे ने सादगी को पुरातन बना दिया है। स्वार्थ और पैसे की भूख ने व्यक्ति से सहजता-सरलता छीनकर उसे रंगीनी का प्रदर्शक और कुटिलता-जटिलता का प्रबंधक बना दिया है। हर कोई चालकी, छल कपट से सफल होना चाहता है। ग़ज़लकार लिखते हैं-

“दिन ब दिन रंगीन होता जा रहा संसार यूँ

इन दिनों सदियों सराही सादगी खतरे में है।”¹³²

(वशिष्ठ अनूप)

*** *** *** ***

“सादगी अब तो पुरानी हो गई

अब नई पीढ़ी सयानी हो गई।”¹³³

(किशन तिवारी)

*** *** *** ***

“कुटिलता का प्रबंधन है चतुर्दिक

सरलता का कोई पूजक नहीं है।”¹³⁴

(विनय मिश्र)

*** *** *** ***

“नहीं व्यवहार में दिखती सहजता

प्रदर्शन तक अराजक हो गया है।”¹³⁵

(महेश कटारे ‘सुगम’)

यहाँ भारतीय संस्कृति के कुछ जीवन मूल्यों के यथार्थ पर ही चर्चा की गयी है, अन्य जीवन मूल्यों का भी इसी तरह पतन हो रहा है। जिनके बारे में डॉ. गुलाबचन्द कोटड़िया लिखते हैं-“नैतिक मूल्य, आदर्श, संवेदनशीलता, शांति, करुणा, समग्रता,

शौर्य, धैर्य, त्याग, तपस्या, प्रेम, भाईचारा, धार्मिक सहिष्णुता ये हमारी संस्कृति के आधार व संवाहक हैं।¹³⁶ लेकिन उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हमारी सनातन संस्कृति के इन शाश्वत जीवन मूल्यों का निरंतर पतन हो रहा है। इस मूल्यपतन के कारण समाज का स्वास्थ्य बिगड़ रहा है। और मानवता आहत हो रही है। इससे चिंतित हिंदी ग़ज़लकार हर हाल में इंसान व इंसानियत को बचाने रखने के लिए शाश्वत जीवन मूल्यों को आचरण में ढालने का संदेश देते हैं। हिंदी ग़ज़लकार आशावादी हैं। वे हालात बदलने के स्वप्न देखने वाले ग़ज़लकार हैं। इसी दृष्टि से वे मूल्य के पतन के दौर में इस सच को भी देखते हैं कि इंसानियत और मूल्य अभी पूरी तरह से मरे नहीं हैं। वे इंसानियत के इस अधमरे पौधे को वटवृक्ष का आकार देने के लिए समाज को मूल्यों आधारित जीवनशैली को आचरण में आत्मसात करने की नसीहत देते हैं। उन्हें विश्वास है कि इस तमस के बाद फिर से दुनिया में मूल्यों और इंसानियत की रोशनी होगी।

“इंसानियत बचेगी तो ही दुनिया बच पायेगी

लोगों का दुख-दर्द हमेशा सबसे ऊपर रखना।”¹³⁷

(डी०एम०मिश्र)

*** *** *** ***

“मिले आसमाँ की बुलन्दियाँ तो जमी से पाँव जुड़े रहे

हर हाल में इंसा रहूँ, मुझे आदमी का खिताब दे।”¹³⁸

(वशिष्ठ अनूप)

*** *** *** ***

“है अभी इन्सानियत यह सरजमीं बंजर नहीं

फूल भी हैं, हर किसी के हाथ में पत्थर नहीं।”¹³⁹

(महेश अग्रवाल)

*** *** *** ***

“हमें मालूम है दुनिया में फिर ऐसी सहर होगी

हर एक इन्सा के दिल में प्यार की केवल लहर होगी।”¹⁴⁰

(किशन तिवारी)

5.3 पर्यावरणीय यथार्थ

मानव का प्रकृति के साथ संबंध शाश्वत और अविभाज्य है, क्योंकि मानव जीवन का उद्गम और पोषण प्रकृति द्वारा ही संभव है। इसी कारण प्रकृति को जीवनदायिनी कहा गया है। प्रकृति के बिना मानव अस्तित्व की कल्पना भी संभव नहीं है, क्योंकि मानव शरीर की रचना में प्रयुक्त पंचभूतों के साथ जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं- हवा, पानी और भोजन की पूर्ति प्रकृति के ही जैविक एवं अजैविक घटकों से होती है। प्रकृति के भौतिक तत्व- जंगल, ज़मीन, जल, नदी, पर्वत

आदि मानव जीवन के भरण-पोषण लिए जरूरी चीजें उपलब्ध करवाकर मानव जीवन का संरचनात्मक एवं विकासात्मक व्याकरण रचते हैं। प्रकृति मनुष्य के जीवन से लेकर मृत्यु तक की सहचरी है। इस सत्य को अभिव्यक्त करते हुए हिंदी ग़ज़लकार लिखते हैं-

“रक्त का संचार है पर्यावरण / साँस की रफ़्तार है पर्यावरण

जन्म से लेकर मरण तक साथ दे / जिंदगी का सार है पर्यावरण।”¹⁴¹ (डी०एम०मिश्र)

*** **

“जमीं, मौसम, नदी, पर्वत, ये जंगल

यही तय करते हैं जीवन का ग्रामर।”¹⁴²

(देवेन्द्र आर्य)

अतः मनुष्य का जीवनदात्री प्रकृति के प्रति प्रेम व लगाव स्वाभाविक है। साहित्य, मानवीय चेतना का प्रतिबिंब होने के कारण, आदिकालीन संस्कृत काव्य से लेकर समकालीन हिंदी ग़ज़ल तक इस प्रकृति-प्रेम को निरंतर अभिव्यक्त करता रहा है। यह प्रकृति-प्रेम दो रूपों में प्रकट होता है- एक ओर कवि प्रकृति के मनोहारी सौंदर्य पर मुग्ध होकर उसे अपनी रचनाओं में स्थान देता है, तो दूसरी ओर वह प्रकृति के सौंदर्य के विनाश से चिंतित होकर अपनी कविता के माध्यम से समाज में पर्यावरण संरक्षण की चेतना जगाने का प्रयास करता है। आदिकालीन व मध्यकालीन हिंदी कवियों का कवि मन प्रकृति के अनुपम व अलौकिक सौंदर्य के चित्रण में ही अधिक रमा है। इन कवियों ने प्रकृति सौंदर्य का चित्रण मुख्य रूप से आलंबनात्मक एवं उद्दीपनात्मक रूप में किया है। इसके अतिरिक्त आलंकारिक व मानवीकरण शैलियों का भी प्रयोग किया है। हिंदी ग़ज़लकारों ने भी प्रकृति चित्रण की सभी शैलियों का प्रयोग करते हुए प्रकृति सौंदर्य के विविध रंगों से अपनी शायरी के कथ्य कैनवास को रंगायित किया है। उदाहरणार्थ -

प्रकृति का उद्दीपनप्रधान चित्रण -

“अपने मन-अनुकूल सदा ही शायद मैंने तुझको जाना

सुख में अट्टहास लगता है दुख में हाहाकार समंदर।”¹⁴³

(रामकुमार कृष्ण)

प्रकृति का आलम्बनात्मक चित्रण-

“लग रही कैसी प्यारी-सुहानी धरा / इक दुलहन-सी सजी धानी-धानी घरा।

जेठ में एक कमसिन किशोरी-सी थी / आज सावन में लगती सयानी धरा।”¹⁴⁴

(महेश कटारे ‘सुगम’)

कविता की धारा प्रकृति सौंदर्य पर रीझने के साथ इस सौंदर्य के बिगड़ने से उपजी पीड़ा से भी प्रस्फुटित होती है। जैसा कि आदि काव्य छंद 'मा निषाद...' की रचना प्रकृति के ही जैविक घटक एक क्रॉच पक्षी के व्याध द्वारा वध के कारण उसके वियोग में क्रॉची के विलाप से उपजी पीड़ा व करुणा से हुई है। आधुनिक काल में भौतिकवादी जीवन-दर्शन से प्रेरित विकास की अंधी दौड़ में मानव समाज के व्यावसायिक क्रियाकलापों ने प्रकृति के सौंदर्य को भारी नुकसान पहुँचाया है, उसे हर तरह से घायल किया है। इस क्षत-विक्षत प्रकृति की करुण दशा और कुपित प्रकृति के विनाशकारी क्रोध की आशंका ने कवियों में प्रकृति या पर्यावरण के प्रति केवल सौंदर्यवादी दृष्टि के स्थान यथार्थवादी दृष्टि एवं चेतना को जन्म दिया है। पर्यावरण का सौंदर्य और स्वास्थ्य बिगड़ रहा है। और उसके दुष्परिणाम भी सामने आने लगे हैं। यही आज का पर्यावरणीय यथार्थ है। जिसकी अभिव्यक्ति हिंदी गज़ल में प्रबल रूप से हुई है।

भूमंडलीकरण के वर्तमान दौर में पूँजीवादी और उपभोक्तावादी संस्कृति ने मनुष्य को प्रकृति से विमुख कर विकास का ऐसा मॉडल तैयार किया है, जिसमें प्रकृति का विनाश ही तथाकथित विकास का पर्याय बन गया है। इस कथित विकास की अंधी दौड़ में मानव समुदाय विज्ञान व तकनीक के सहारे पर्यावरणीय घटकों का निर्ममता से दोहन कर रहा है। जिसके प्रकृति के अंग- ज़मीन, जंगल, नदियाँ और पहाड़ क्षत-विक्षत हो रहे हैं, जिससे प्रकृति लहलुहान हो रही है और उसका स्वास्थ्य, सौंदर्य और संतुलन निरंतर बिगड़ रहा है। प्रकृति के इस अप्राकृतिक दोहन से धरती का पहाड़ रूपी हृदय विदीर्ण हो रहा है, उसके फेफड़े रूपी जंगल क्षयग्रस्त हो गए हैं और उसकी धमनियाँ रूपी नदियाँ सूख रही हैं। इस चिंताजनक स्थिति की अभिव्यक्ति आज की हिंदी गज़ल में प्रमुखता से हो रही है।

“आधा हिस्सा है आसमानों में,

आधा हिस्सा धँसा खदानों में।”¹⁴⁵

(वशिष्ठ अनूप)

*** *** *** ***

“नदियां पी गये पर्वत जंगल चबा गये

धरती मय्या के रखवइया, क्या बोलूँ।”¹⁴⁶

(देवेन्द्र आर्य)

*** *** *** ***

“शजरहीन जंगल, खतम होते पर्वत

नदी जल की प्यासी, हवा में जहर है।”¹⁴⁷

(वशिष्ठ अनूप)

पर्यावरण जल, मिट्टी, वायु जैसे अनेक अजैविक घटकों तथा पेड़-पौधों, जीव-जंतुओं जैसे जैविक घटकों के जटिल संयोजन से बनता है। मानव सहित समस्त जीव जगत के समुचित विकास के लिए इन तत्वों में संतुलन अनिवार्य है। लेकिन वर्तमान में मानवीय गतिविधियों के कारण पर्यावरण के अजैविक घटकों का अत्यधिक और अनुचित दोहन हो रहा है, जिससे इनका संतुलन बिगड़ रहा है। और पर्यावरण में प्रदूषण भयावह रूप से बढ़ रहा है। बढ़ते प्रदूषण के कारण संपूर्ण जीव जगत का अस्तित्व संकट में है। हिंदी ग़ज़लकार विनय मिश्र बढ़ते पर्यावरण प्रदूषण के बारे में कहते हैं-

“हवा में भी जहर है और पानी भी है जहरीला

कहाँ तक ज़िन्दगी मरने से अब देखें बचाती है।”¹⁴⁸ (विनय मिश्र)

पर्यावरण के तीन मुख्य अजैविक घटकों- मिट्टी, हवा, पानी के आधार पर प्रदूषण के भी मुख्यतः तीन रूप हैं- वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण और मृदा प्रदूषण। वर्तमान दौर में शहरीकरण व औद्योगीकरण के नाम पर वनों की अत्यधिक कटाई तथा कारखानों, वाहनों एवं अन्य स्रोतों से निकलने वाली जहरीली गैसों के कारण वायु प्रदूषण निरंतर बढ़ रहा है। तथा महानगरों में इसके कारण साँस लेना भी दूभर होता जा रहा है। शहरों एवं कल कारखानों के अपशिष्ट पदार्थों, रासायनिक कचरे और कीटनाशकों के जल स्रोतों में मिलने से जल प्रदूषण का स्तर लगातार बढ़ रहा है। नदियाँ, झीलें और तालाब बुरी तरह प्रदूषित हो चुके हैं, जिससे नदियों का जल पीने योग्य भी नहीं रह गया है। इसी तरह कीटनाशकों, रासायनिक खादों, खनन गतिविधियों और प्लास्टिक कचरे के कारण मिट्टी भी प्रदूषित, बंजर और अनुपजाऊ होती जा रही है। हिंदी ग़ज़लकार बढ़ते प्रदूषण के विविध रूपों के बारे में लिखते हैं-

“दूभर सा हो गया सभी का / अब तो लेना साँस यहाँ पर

फूल रहा हर ओर प्रदूषण/ मौसम हुआ उदास यहां पर।”¹⁴⁹(महेश कटारे ‘सुगम’)

*** *** *** ***

“कहाँ पर भागकर आओगे आखिर साँस लेने को,

ये ऐसा शहर है जो जहर का धुआँ उगलता है।”¹⁵⁰

(माधव कौशिक)

*** *** *** ***

“पानी-पानी को तरसती सोच में डूबी नदी,

हो रही हर रोज दूषित जिन्दगी खतरे में है।”¹⁵¹

(वशिष्ठ अनूप)

*** *** *** ***

“अब तो मौसम की जहरीली हवा नदी को चाट गयी
पानी को भी याद नहीं है रंग पुराना पानी का।”¹⁵² (माधव कौशिक)

“जिँएँ तो प्लास्टिक, मरें तो प्लास्टिक
जमीँ को कूड़े की खान करना।”¹⁵³ (राम मेश्राम)

पर्यावरण प्रदूषण के अनेक खतरे हैं, जिनमें से एक सबसे भयंकर दुष्प्रभाव वैश्विक तापन (ग्लोबल वार्मिंग) है। बढ़ते प्रदूषण के कारण वायुमंडल में ग्रीनहाउस गैसों की सघनता बढ़ रही है। ये गैसें सूर्य की ऊष्मा को धरती पर रोक लेती हैं, जिससे पृथ्वी का तापमान निरंतर बढ़ रहा है। इस ग्लोबल वार्मिंग के कारण पृथ्वी पर पेयजल के सबसे बड़े स्रोत ग्लेशियर तेजी से पिघल रहे हैं। जिससे समुद्री जलस्तर में भी लगातार वृद्धि हो रही है और तटीय क्षेत्रों के डूबने का खतरा निरंतर बढ़ता जा रहा है। प्रदूषण एवं तापमान में वृद्धि का एक व्यापक प्रभाव जलवायु परिवर्तन के रूप में हो रहा है, जिसने प्रकृति के सदियों पुराने ऋतु-चक्र को गंभीर रूप से असंतुलित कर दिया है। इसके परिणामस्वरूप अतिवृष्टि, अनावृष्टि, विनाशकारी बाढ़, भीषण सूखा, और शक्तिशाली समुद्री तूफानों जैसी चरम मौसमी घटनाओं की आवृत्ति और तीव्रता में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। ऋतुओं का व्यवहार अप्रत्याशित रूप में बदल रहा है। ग़ज़लकार मौसम के इस बदलते मिज़ाज को प्रकृति के क्रोध और उसकी नाराज़गी के रूप में देखते हैं और अपनी रचनाओं में इन आपदाओं से उत्पन्न त्रासदी और मानवीय विवशता का मार्मिक चित्रण करते हैं।

“आग की बरसात सूरज कर रहा
घास का हर एक घर है क्या करूँ।”¹⁵⁴ (महेश कटारे सुराम)

*** *** *** ***

“पिघल रहा है हिमालय के बर्फ का संयम
प्रयत्न रोज ही सूरज का ताप करता है।”¹⁵⁵ (जहीर कुरेशी)

*** *** *** ***

“एक सूरज बरस रहा है अब
कैसी बरसात का ये मौसम है।”¹⁵⁶ (विनय मिश्र)

*** *** *** ***

“प्रलय कभी नहीं देखा था हमने जीवन में
सुनामी लहरे ही लगने लगी प्रलय की तरह।”¹⁵⁷ (जहीर कुरेशी)

*** **

“उस जलजले के बाद यहाँ कुछ नहीं बचा
यादें ही रह गयी है निशाँ कुछ नहीं बचा।
थी खिलखिलाती जिन्दगी हर ओर जश्न था

तुफ़ाँ के बाद देखा वहाँ कुछ नहीं बचा।”¹⁵⁸ (हरेराम समीप)

पर्यावरण प्रदूषण के दुष्प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगे हैं, फिर भी वैश्विक मानव समुदाय प्रकृति की क्षति एवं पीड़ा से बेखबर एवं संवेदनहीन होकर उसके अंधाधुंध दोहन में लगा हुआ है। और उसके अंगों—जंगल, जमीन, पहाड़, नदियों—को नष्ट कर रहा है। मानवीय कार्य व्यापारों एवं पर्यावरण प्रदूषणजन्य आपदाओं के कारण पृथ्वी के प्राकृतिक जलस्रोत निरंतर सिकुड़ रहे हैं, तालाब-झीलें और नदियाँ सूखने की कगार पर हैं तथा भूजल का स्तर लगातार नीचे खिसकता जा रहा है। वनस्पतियाँ सूख रही हैं। और हरे भरे क्षेत्र रेगिस्तान में बदलते जा रहे हैं। इससे मानव जाति के सामने शुद्ध हवा, खाद्यान्न एवं पेयजल का आसन्न संकट मंडरा रहा है। इस भयावह संकट के बारे में आगाह करते हुए हिंदी गज़लकार लिखते हैं कि यदि प्रकृति का क्षरण इसी प्रकार जारी रहा, तो एक दिन ऐसा भी आयेगा जब मनुष्य की आने वाली संततियों को जीवन के लिए आवश्यक हवा और पानी भी उपलब्ध नहीं होगा। ऐसी स्थिति में तमाम भौतिक उन्नति के बावजूद मानव जीवन का धरती पर अस्तित्व संभव नहीं हो पाएगा।

“बुझाई प्यास नदी ने असंख्य लोगों की,
बुझाए कौन भला, जब नदी को प्यास लगे?”¹⁵⁹ (जहीर कुरेशी)

*** **

“नदी सूखी है, जलती रेत, जंगल कट गये सारे
है मृगतृष्णा कहाँ से लायें जल, अच्छा नहीं लगता।”¹⁶⁰ (किशन तिवारी)

*** **

“नदी के प्यार के बदले अगर हम विष पिलायेंगे।
तो एकेक बूंद पानी के लिए हम तरस जायेंगे।
हवाओं में जहर घुलता रहा गर दिन ब दिन यूँ ही
तो एक दिन साँस लेने के लिए हम छटपटायेंगे।”¹⁶¹ (वशिष्ठ अनूप)

*** **

“अगली नस्लों को, बिन हवा-पानी

जिंदा रहने का कोई फन देना।”¹⁶²

(माधव कौशिक)

प्रकृति के बिगड़ते स्वास्थ्य, पर्यावरण प्रदूषण एवं उसके कारण मानव के अस्तित्वहीन भविष्य की कल्पना से चिंतित हिंदी ग़ज़लकार वैश्विक मानव समुदाय को यह नसीहत देते हैं कि सतत विकास के लिए भौतिक उन्नति के साथ पर्यावरण संरक्षण और प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व व सहजीविता की सोच और व्यवहार अत्यंत आवश्यक है। वे वैश्विक मानव समुदाय में यह दायित्वबोध जाग्रत करने का प्रयास करते हैं कि इस पृथ्वी ग्रह की रक्षा हम सबकी सामूहिक जिम्मेदारी है। क्योंकि जब तक धरती और पर्यावरण सुरक्षित हैं, तभी तक मानव जाति का भविष्य सुरक्षित है। वे वैश्विक मानव समुदाय को पर्यावरण संरक्षण के प्रति सावधान करते हुए उसे पेड़ों से प्रेम करने तथा पेड़ लगाकर धरती का शृंगार करने के लिए प्रेरित करते हैं। उनकी एकमात्र कामना जीव-जगत के हितार्थ पर्यावरण संरक्षण की है। वे लिखते हैं-

“धरती की रक्षा करना

सबकी जिम्मेदारी है।”¹⁶³

(माधव कौशिक)

*** *** *** ***

“नदों का खजाना है सबके लिए पर/ पहाड़ों की करुणा नदी के लिए है।

ये सूरज ये चन्द्रा ये पर्वत ये नदियाँ / ये जंगल सभी की खुशी के लिए है।

बचाकर बचोगे मिटाकर मिटोगे / ये सन्देश अपनी सदी के लिए है।”¹⁶⁴

(वशिष्ठ अनूप)

“दिनों-दिन जहर फैलता जा रहा है,

हवा फूल, खुशबू बचाने की जिद है।”¹⁶⁵

(वशिष्ठ अनूप)

*** *** *** ***

“पेड़-पौधे ये धरती के सिंगार हैं

जितना सम्भव हो इनको सजाया करो।”¹⁶⁶

(वशिष्ठ अनूप)

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि हिंदी ग़ज़लकार प्रकृति के उजड़ते सौंदर्य और बढ़ते पर्यावरण प्रदूषण तथा उसके कारण पैदा हो रहे दुष्प्रभावों के यथार्थ को उजागर करने के साथ ही मानव समुदाय में पर्यावरण संरक्षण की चेतना जाग्रत करने का रचनात्मक साहित्यिक प्रयास करते हैं।

5.4 साहित्यिक यथार्थ

साहित्य की पारंपरिक भूमिका समाज को दर्पण दिखाने की रही है, किंतु जब स्वयं दर्पण पर ही धूल जमने लगे या उस पर किसी विशेष कोण में झुकने का दबाव

हो, तब उस दर्पण को साफ़ करना और उसके कोणों को दुरुस्त करना भी साहित्यकार का दायित्व बन जाता है। समकालीन हिंदी शायर आज इसी दोहरी भूमिका का निर्वहन कर रहे हैं। आज की हिंदी ग़ज़ल सामाजिक-राजनीतिक क्षेत्र की बाह्य दुनिया के यथार्थ को उद्घाटित करने के साथ अपने आंतरिक जगत- साहित्यिक क्षेत्र का भी यथार्थ चित्र प्रस्तुत करती है। जहाँ ग़ज़लकार स्वयं अपने परिवेश, यानी साहित्य-जगत की विसंगतियों, मूल्यों के क्षरण, व्यावसायिकता और पाखंड पर निर्मम प्रहार करते हैं। समकालीन साहित्यिक पारिस्थितिकी तंत्र में सत्ता और साहित्य का गठजोड़, पुरस्कारों की राजनीति, बाज़ारवाद का प्रभाव, आलोचना का संकट और साहित्यिक गुटबाज़ी जैसे अनेक अँधेरे कोने व्याप्त है। डॉ. विश्वम्भर दयाल लिखते हैं, "आज साहित्य स्वयं व्यावसायिकता और राजनीतिक हथकण्डों का शिकार बना हुआ है। आज ठोस साहित्य का सृजन नाम-मात्र हो रहा है और जो भी हो रहा है वह भौंपू साहित्य के सामने टिक नहीं पाता उस भौंपू के सामने जो व्यवसाय और राजनीति का प्राण है।"¹⁶⁷ यहाँ हिंदी ग़ज़लकारों की नज़र से साहित्यिक सच्चाइयों के इन्हीं स्याह कोणों को आलोकित करने का प्रयास किया गया है। ग़ज़लगो वशिष्ठ अनूप कहते हैं-

"खुदारी के दीवाने जा बैठे हैं बाजारों में,

अग्निऋचा लिखने वाले नतमस्तक है दरबारों में।"¹⁶⁸ (वशिष्ठ अनूप)

सत्ता और साहित्य का गठजोड़ : दरबारी संस्कृति का पुनरुत्थान-

साहित्य का सत्ता के साथ संबंध हमेशा से ही जटिल व तनावपूर्ण रहा है। एक ओर जहाँ साहित्य सत्ता की आलोचना कर उसे आईना दिखाना है, उसके विरुद्ध प्रतिरोधी चेतना तैयार करता है, वहीं दूसरी ओर सत्ता साहित्य को स्वीकृति, संरक्षण, पुरस्कार और प्रतिष्ठा के माध्यम से अपने वैचारिक उपकरण में बदलने का प्रयास करती है। यद्यपि साहित्यिक क्षेत्र स्वायत्त क्षेत्र होता है, लेकिन उसमें भी साहित्यकारों के बीच प्रतिष्ठा और मान्यता (प्रतीकात्मक पूँजी) के लिए संघर्ष होता है। इसी संघर्ष का फायदा उठाकर राजनीतिक सत्ता इस क्षेत्र में सीधे हस्तक्षेप कर प्रतीकात्मक पूँजी के वितरण को नियंत्रित करने लगती है, जिससे इस क्षेत्र की स्वायत्तता भंग होती है और 'दरबारी संस्कृति' का उदय होता है। सत्ता का प्रतिरोधी स्वरों को हाशिये पर धकेलने और अनुगामी स्वरों को अनुगृहीत करने का अलिखित नियम साहित्यिक क्षेत्र में भी लागू होता है, जहाँ विरोध को 'अशिष्टता' और सत्ता-समर्थन को 'अदब' का पर्याय माना जाता है। जहाँ सरकारी सीढ़ी से साहित्यिक शिखर

पर पहुँचने का मार्ग साहित्यिक प्रतिभा से नहीं, बल्कि सत्ता की चाटुकारिता से होकर जाता है। इस सच पर शायर लिखते हैं-

“कलम को थपथपाती है हुकूमत / कलम से थरथराती है हुकूमत

कलम को कुंद करने के हजारों / तरीके आजमाती है हुकूमत।”¹⁶⁹

(वशिष्ठ अनूप)

“साहित्य में भी गोया शिखर पर हैं चाटुकार

विद्रोह को इनाम नहीं दे सके कभी।”¹⁷⁰

(जहीर कुरेशी)

पुरानी दरबारी संस्कृति आज फिर से एक नए रूप में लौट रही है, जहाँ सरकारी पुरस्कार, पद और प्रतिष्ठा के बदले रचनाकार से सत्ता के प्रति मौन या मुखर समर्थन की अपेक्षा की जा रही है। जहाँ साहित्यिक पदानुक्रम के शिखर पर पहुँचने और सत्ता सुविधा पाने के लिए साहित्यकार सत्ता का चारणी गान कर रहे हैं। जो सत्ता की विरुदावली गा रहे हैं, वे ही आज श्रेष्ठ साहित्यकार के रूप में प्रतिष्ठित हो रहे हैं। परंतु इसके कारण लेखक की पहचान एक स्वतंत्र चिंतक से घटकर राजनीतिक दास- दासियों तक सीमित हो जाती है। इस संस्कृति का चित्र खींचते हुए कुछ शेर प्रस्तुत हैं-

“पा खिताबों को ढली शाही कसीदों में,

विप्लवी हुंकार-सी फनकार की भाषा।”¹⁷¹

(शिव ओम अंबर)

*** **

“सत्ता-सुविधा पाने को

हम लिखाइ एक तरफ।”¹⁷²

(राम मेश्राम)

*** **

“गा रहे विरुदावली जो मंच पर अब

आज के कवि राजनीतिक दास-दासी।”¹⁷³

(हरेराम समीप)

यह दरबारी संस्कृति सत्ता के प्रति वफ़ादारी पर आधारित होती है। इसमें साहित्यकार एवं साहित्यिक कृतियों की उत्कृष्टता उनकी सृजनात्मक गुणवत्ता से नहीं, बल्कि सत्ता-केंद्रों से उनकी नजदीकी से तय होती है। इसलिए इसका विकृत चेहरा पुरस्कारों की राजनीति में दृष्टिगत होता है। पुरस्कार, जो कभी रचनात्मक उत्कृष्टता का प्रतीक माने जाते थे, अब सत्ता के प्रति निष्ठा का प्रतिफल बन गए हैं। इसकी कलाई खोलता शेर है

“छप के आने ही वाली है उनकी किताब,

भूमिका बन रही है पुरस्कार की।”¹⁷⁴

(जहीर कुरेशी)

यह शेर साहित्यिक सफलता के उस 'प्री-प्रोडक्शन' का पर्दाफाश करता है, जहाँ कृति के मूल्यांकन से पूर्व ही पुरस्कार सुनिश्चित करने की 'भूमिका' तैयार हो रही है। यह दर्शाता है कि आज पुरस्कार के लिए रचनात्मक उत्कृष्टता से अधिक महत्त्वपूर्ण सत्ता-समीकरण व लॉबिंग हो गई है। यह साहित्यिक पूँजी का नहीं बल्कि राजनीतिक पूँजी का खेल है।

बाज़ार का अतिक्रमण और साहित्य का वस्तुकरण

भूमंडलीकरण के वर्तमान दौर में जबकि बाज़ारवादी शक्तियाँ ने जीवन के हर क्षेत्र को प्रभावित किया है तथा सब कुछ को वस्तु बनाकर बिकाऊ बना दिया है। तो साहित्य इससे कैसे बचा रह सकता है। बाज़ारवाद ने साहित्य को भी 'कला' से अधिक 'उत्पाद' बना दिया है। जिसका उत्पादन माँग और आपूर्ति के बाज़ारी नियम से तय होने लगा है। बाज़ार का दबाव लेखक की स्वायत्तता को समाप्त कर उसे 'माँग के अनुसार' लिखने पर विवश कर रहा है। जहीर कुरेशी इस सच को उजागर करते हुए लिखते हैं-

“जब से कविता में घुसा बाज़ारवाद

माँग के अनुसार ही लेखन हुआ।”¹⁷⁵

(जहीर कुरेशी)

बाजारवादी संस्कृति में रचनाकार और रचना की सफलता का पैमाना कलात्मक उत्कृष्टता से नहीं, बल्कि बिक्री के आँकड़ों से तय होता है। इस दबाव में लेखक अपनी रचनाओं की अधिकाधिक बिक्री के लिए तरह-तरह के हथकंडों के साथ बाज़ार में उतरता है। लेकिन बाज़ार उसकी रचनाओं के साथ उसका भी मोल लगा देता है। जिससे उसकी सृजनात्मक स्वतंत्रता और नैतिक स्थिति बाज़ार की शक्तियों के अधीन हो जाती है। बाज़ार के दबाव में रचनाकर्म उत्पादन प्रक्रम, रचना उत्पाद तथा रचनाकार उत्पादक हो जाता है। इस सच को उद्घाटित करते शेर प्रस्तुत है-

“दुखी लगती न थी शब्दों की दुनिया

सभी कविता के धन्धे में लगे थे।”¹⁷⁶

(देवेन्द्र आर्य)

*** *** *** ***

“जो कला को बेचने आए थे, खुद बिकने लगे,

जब कलाकर्मी खुले बाज़ार में शामिल हुए।”¹⁷⁷ **(जहीर कुरेशी)**

बाज़ारवादी संस्कृति का दुष्परिणाम यह हो रहा है कि कविता अपने उद्देश्यों से भटक रही है। कविता का मूल उद्देश्य मानवीय संवेदनाओं का संस्पर्श करना और

उनसे संवाद स्थापित करना है। लेकिन जब उस पर बाज़ार की मांग-पूर्ति की प्रणाली हावी होती है, तो उसका लक्ष्य पाठक का सूक्ष्म भाव जगत नहीं, बल्कि स्थूल बाज़ार होता है। यह विस्थापन कविता के उद्देश्य को भटकाता है तथा रचना अंतर्मन की गहराइयों तक पहुँचने के बजाय बाज़ार में बिक्री की एक वस्तु मात्र बनकर रह जाती है। उसका उद्देश्य लोकहित एवं सामाजिक चेतना का विस्तार करने के बजाय केवल मनोरंजन या व्यावसायिक सफलता तक सीमित हो जाता है। कविता की भटकन पर शेर पेश है-

“मंचों का पाठ पढ़ते ही, भाषा भटक गई
बाज़ार के दबाव में कविता भटक गई।”¹⁷⁸ (जहीर कुरेशी)

*** *** *** ***

“क्या मतलब है गीत, ग़ज़ल या कविता और कहानी का
जिसको दिल तक जाना था वो जा पहुँची बाज़ारों तक।”¹⁷⁹

(महेश अग्रवाल)

साहित्यिक पारिस्थितिकी का आंतरिक संकट: प्रकाशक, आलोचक और लेखक का त्रिकोण

साहित्यिक क्षेत्र की सेहत केवल बाहरी दबावों (सत्ता और बाज़ार) से ही नहीं बिगड़ रही है, बल्कि यह इसके आंतरिक पारिस्थितिक तंत्र में लेखक, प्रकाशक और आलोचक के बीच विकृत होते संबंधों से भी प्रभावित हो रही है। समकालीन ग़ज़लें इस पारिस्थितिकी के भीतर व्याप्त गहरे संकट, पूर्वाग्रह, शोषण और अविश्वास को उजागर करती हैं।

आलोचक और लेखक

आलोचना का कार्य रचना का वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन कर पाठक का मार्गदर्शन करना एवं साहित्यिक विमर्श को समृद्ध करना है। लेकिन आज आलोचना भी अपने पथ से भटकी हुई नज़र आती है। राजनीतिक विचारधाराओं के समानांतर साहित्य जगत में विचारधाराओं या व्यक्तिगत निष्ठा की खेमेबंदी देखने को मिलती है। इसके कारण आलोचना में भी वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन के स्थान पर व्यक्तिगत पसंद-नापसंद एवं गुट के प्रति निष्ठा हावी होती जा रही है। आलोचक कबीले के पूर्वाग्रह से ग्रसित होकर अपने खेमे या पसंद के साहित्यकार की रचनाओं को महिमामंडित करते हैं, जबकि कबीलाई सांचे में फिट नहीं होने के कारण विरोधी गुट के रचनाकारों की

रचनाओं में रचे हुए सच को भी झूठलाते हैं। आलोचना के इस सच को व्यक्त करते शेर पेश है-

“किसी का रंग धानी है किसी का रंग पीला है।

जमातों में बँटा अपने अदीबों का कबीला है।”¹⁸⁰

(अदम गोंडवी)

“लिए असाँचे साँचे अपने रचनाएँ तालाश करो

रचनाओं में रचा हुआ सच झूठलाओ आलोचक जी।”¹⁸¹ (रामकुमार कृष्क)

ये शेर समकालीन आलोचना के उस संकट की ओर गहरा इशारा है, जहाँ आलोचना पाठ-केंद्रित न रहकर गुटों और विचारधाराओं के हितों का पोषण करने लगी है। कबीला शब्द का प्रयोग आलोचना के आदिम, असहिष्णु और विवेकहीन हो जाने का प्रतीक है। साहित्यिक क्षेत्र में व्याप्त जमातबंदी के कारण आज आलोचक और लेखक का संबंध जटिल एवं तनावपूर्ण हो गया है। जिसे गज़लकार रामकुमार कृष्क सास-बहू के घरेलू रूपक एवं बिंब से व्यक्त करते हैं, जो इस रिश्ते की कटुता, पूर्वाग्रह, अविश्वास, संवादहीनता और शक्ति-संघर्ष को प्रकट करता है।

“हम दोनों के बीच सदा से सास-बहू जैसा रिश्ता

हम पीहर की याद करें तुम गरियाओ आलोचक जी।”¹⁸²

(रामकुमार कृष्क)

लेखक और प्रकाशक

आदर्श रूप में प्रकाशक लेखक की कृति को पाठक तक पहुँचाने का माध्यम बनकर उसके सहयोगी की भूमिका अदा करता है। लेकिन यथार्थ में यह संबंध शोषणकारी होता जा रहा है। जहाँ आलोचक लेखक के मानस को प्रभावित करता है, वहीं प्रकाशक उसके आर्थिक शोषण का प्रतीक बनकर उभरता है। महेश कटारे ‘सुगम’ प्रकाशक को एक शोषक व्यवसायी के रूप में देखते हैं, जो लेखक के श्रम पर मुनाफा कमाता है, लेकिन उसे उसका उचित प्रतिफल नहीं देता। उनकी एक गज़ल के कुछ शेर प्रस्तुत हैं-

“लेखक का संत्रास प्रकाशक / क्या समझे बदमाश प्रकाशक

लेखक की मेहनत से उगी / खा जाते हैं घास प्रकाशक

सदा समझता है लेखक को / दो कौड़ी का दास प्रकाशक

लेखक का जीवन पतझर सा / मना रहा मधुमास प्रकाशक।”¹⁸³

(महेश कटारे ‘सुगम’)

'संत्रास', 'बदमाश', 'घास खा जाना' एवं दो कौड़ी का दास' जैसे शब्द इस रिश्ते के क्रूर व शोषणकारी चेहरे के साथ लेखक के मन में व्याप्त आक्रोश और पीड़ा को दर्शाते हैं। यह केवल रॉयल्टी का ही मामला नहीं है, बल्कि लेखक के श्रम और सृजन के अपमान का भी प्रश्न है। इस तरह साहित्यिक जगत का आंतरिक यथार्थ भी संघर्षों से भरा है।

साहित्यिक अवमूल्यन : क्षरण के विविध आयाम

सत्ता और बाज़ार के दबावों में साहित्यिक मूल्यों के पतन के कारण समकालीन हिंदी साहित्य अपनी गौरवशाली विरासत के संरक्षण-संवर्धन में अक्षम हो रहा है। ग़ज़लकार वर्तमान साहित्य को गौरवशाली अतीत के मानकों पर कसते हैं, जिससे उन्हें वर्तमान की रिक्तता और बौनापन साफ नज़र आता है। यह अतीतमोह नहीं है, बल्कि साहित्यिक मूल्यों में आई गिरावट के यथार्थ की ओर गंभीर संकेत है। अम्बर कहते हैं-

“लेखनी के पास हस्ताक्षर नहीं हैं, /यक्ष-प्रश्नों के लिये उत्तर नहीं हैं।

अग्निगर्भा कोख बंध्या लग रही है, /अक्षरों के वंश में दिनकर नहीं हैं।”¹⁸⁴

साहित्यिक अवमूल्यन का एक चिंताजनक पहलू मौलिक सृजन का हास तथा नकल व साहित्यिक चोरी का संस्थागत रूप लेना है। मौलिक चिंतन और अनुभूति की जगह जुगाड़ और दूसरों की रचनाओं को अपने नाम से प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति बढ़ी है। साहित्यिक चोरी के दौर में तकनीक ने कविता के मौलिक पहचान का संकट खड़ा कर दिया है। ग़ज़लकार सर्जन पर प्रबंधन के हावी होने के सच को बयाँ करते हुए कहते हैं-

“कला के क्षेत्र में सर्जन से ज्यादा

कलाओं का प्रबंधन हो रहा है।”¹⁸⁵

(जहीर कुरेशी)

*** *** *** ***

“छपवा ले अपने नाम कि, चोरी नहीं है ये,

कविता किसी की अब कोई पहिचानता नहीं।”¹⁸⁶

(राम मेश्राम)

समकालीन दौर में संवेदनात्मक अनुभूति की उपज के स्थान पर नकल या जुगाड़ से लिखी रचनाओं और रचनाकारों के आचरण के बीच एक गहरी खाई दिखाई देती है। यह साहित्यिक यथार्थ उन रचनाकारों के बौद्धिक पाखंड और नैतिक खोखलेपन को भी बेनकाब करता है, जो स्वयं को प्रगतिशील और जनवादी सम्बोधित

करते हैं, परंतु जिनका जीवन आचरण पूँजीवादी है। ग़ज़लकार वशिष्ठ अनूप इस पाखंड पर कहते हैं-

"रिक्शेवाला मार खाकर है सड़क पर रो रहा

क्रांति का करके रिहर्सल हँस रहे जनकवि महान।

बड़ा रचनाकार होने की ये पहली शर्त हैं

मेज पर हो भरी बोतल, साथ में लड़की जवान।"¹⁸⁷

(वशिष्ठ अनूप)

समकालीन साहित्यिक परिवेश का एक सच यह भी है कि तमाम साहित्यिक विकृतियों और पतनशीलता के बीच सच्चे लेखकों का कलम के प्रति प्रतिबद्धता का स्वर आज भी बुलंद है। सच्चा लेखक सत्ता और बाज़ार के प्रलोभनों को ठुकराकर अपनी कलम की स्वायत्तता को सर्वोपरि मानता है। वह अपने रचनात्मक सिद्धांतों पर दृढ़ रहता है। तमाम तरह के खतरे उठाकर भी सच कहने वाले ऐसे अनेक सच्चे लेखक आज भी रचनारत हैं। ग़ज़लकार महेश अग्रवाल कहते हैं-

"यह कलम है हम कलम बेचा नहीं करते

हम कभी जज़्बात का सौदा नहीं करते।

हम बहुत बेखौफ होकर बात करते हैं

हम कहीं भी खौफ में सिजदा नहीं करते।"¹⁸⁸

(महेश अग्रवाल)

ये शेर समकालीन साहित्यिक यथार्थ के स्याह पक्ष के समानांतर एक उज्ज्वल पक्ष भी प्रस्तुत करते हैं। ये इस बात के प्रमाण हैं कि तमाम विकृतियों के बावजूद साहित्य की विद्रोही और मानवीय चेतना आज भी जीवित है। 'जज़्बात का सौदा न करना' एक सच्चे लेखक का रचना दर्शन, 'कलम न बेचना' बाज़ार के विरुद्ध और खौफ में सिजदा न करना' सत्ता के विरुद्ध एक स्पष्ट नैतिक प्रतिज्ञा एवं रचनात्मक प्रतिबद्धता है। संक्षेप में कह सकते हैं कि समकालीन हिंदी ग़ज़ल साहित्यिक यथार्थ का एक बहुआयामी और प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत करती है। आज का साहित्यिक परिदृश्य गहरे अंतर्विरोधों से ग्रस्त है। एक ओर पुरस्कार, पद और पैसे के लिए समझौते करने वाले 'दरबारी' और 'व्यापारी' लेखक हैं, तो दूसरी ओर वे लेखक भी हैं जो हर तरह के दबाव और प्रलोभन के विरुद्ध अपनी कलम की स्वायत्तता के लिए संघर्ष कर रहे हैं।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल समकालीन धार्मिक, सांस्कृतिक, पर्यावरणीय, और साहित्यिक परिदृश्य को यथार्थ रूप में चित्रित करती है। भूमंडलीकरण, बाज़ारवाद और उपभोक्तावाद के कारण धर्म, संस्कृति व

साहित्य में अनेक विकृतियाँ और विसंगतियाँ आ गयी हैं। धर्म आज सबसे सुरक्षित धंधा बन गया है और उसके व्यवसायीकरण के कारण उसमें पाखंड और आडंबर को बढ़ावा मिल रहा है। राजनीतिक सत्ता प्राप्ति के हथियार के रूप में धर्म का चेहरा सांप्रदायिक व कट्टर हो गया है। ग़ज़लकार इन विकृतियों को उजागर करने के साथ मानवतावादी धर्म की वकालत करते हैं। पाश्चात्य संस्कृति और उपभोक्तावादी अपसंस्कृति के प्रसार के कारण भारतीय संस्कृति पर पाश्चात्य रंग चढ़ता जा रहा है। और परंपरागत खानपान, वस्त्र आभूषण, रीति रिवाज परंपराओं के साथ परिवार और विवाह का ढाँचा भी बिगड़ रहा है। शाश्वत जीवन मूल्यों का पतन हो रहा है। उपभोक्तावादी संस्कृति और विकास की अंधी दौड़ ने पर्यावरण का निर्ममता से दोहन कर पर्यावरणीय संकट को जन्म दिया है, जिससे मानव जाति के अस्तित्व पर संकट खड़ा हो गया है। बाज़ारवाद ने साहित्य को भी एक उत्पाद में बदलकर मशाल के रूप में समाज को को राह दिखाने वाली उसकी रोशनी को मद्धम किया है। हिंदी ग़ज़ल ने एक यथार्थवादी विधा के रूप में इन सभी क्षेत्रों के स्याह यथार्थ को पूरी सच्चाई और साहस के साथ उजागर किया है। वह न केवल समाज के बहुआयामी पतन का प्रामाणिक चित्रण करती है, बल्कि धर्म, संस्कृति, पर्यावरण व साहित्य के मानव व समाज हितैषी मूल स्वरूप को बचाने की पैरवी कर मानवता को पुनर्स्थापित करने का साहित्यिक दायित्व भी निभाती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. प्रेम कुमार, एक मस्त फकीर ; नीरज, पृ० 21
2. सं. लालचंद गुप्त मंगल, माधव कौशिक सर्जन की समीक्षा, पृ० 159.
3. महेश अग्रवाल, पेड़ फिर हरा होगा, पृ० 93
4. किशन तिवारी, धूप का रास्ता, पृ० 85
5. वशिष्ठ अनूप, छंद तेरी हंसी का, पृ० 15
6. वशिष्ठ अनूप, घरों पर गिद्ध मंडराने लगे हैं, पृ० 41
7. हरeram समीप, यह नदी खामोश है, पृ० 40
8. सं. जहीर कुरेशी, सादगी का सौंदर्य; वशिष्ठ अनूप का सृजन, पृ० 36
9. अदम गोंडवी, समय से मुठभेड़, पृ० 42
10. वशिष्ठ अनूप, रोशनी खतरे में है, पृ० 53
11. शिव ओम अंबर, विष पीना विस्मय मत करना, पृ० 79
12. वशिष्ठ अनूप, रोशनी खतरे में है, पृ० 65
13. प्रेम कुमार, एक मस्त फकीर; नीरज, पृ० 73
14. गिरीश्वर मिश्र, भारतीय संस्कृति के आधार-विद्यानिवास मिश्र, पृ० 66
15. जहीर कुरेशी, रास्तों से रास्ते निकले, पृ० 79
16. वही पृ० 58
17. जहीर कुरेशी, बोलता है बीज भी, पृ० 29
18. वशिष्ठ अनूप, तेरी आँखें बहुत बोलती हैं, पृ० 40,
19. अदम गोंडवी, समय से मुठभेड़, पृ० 36
20. राम मेश्राम, आग में उड़ान, पृ० 25
21. वशिष्ठ अनूप, मशालें फिर जलाने का समय है, पृ० 26
22. वशिष्ठ अनूप, घरों पर गिद्ध मंडराने लगे हैं, पृ० 15
23. डॉ० सुधा सक्सेना, नीरज व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० 52
24. जहीर कुरेशी, जिंदगी से बड़ा जिंदगी का समर, पृ० 23
25. डी. एम. मिश्र, लेकिन सवाल टेढ़ा है, पृ० 68
26. नासिरा शर्मा, राष्ट्र और मुसलमान, पृ० 57
27. जहीर कुरेशी, बोलता है बीज भी, पृ० 71
28. अदम गोंडवी, समय से मुठभेड़, पृ० 55
29. ज्ञानप्रकाश विवेक, गुप्तगू अवाम से है, पृ० 67

- 30.महेश कटारे 'सुगम', लाहौल वला कुव्वत, पृ० 65
- 31.अदम गौडवी, समय से मुठभेड़, पृ० 58
- 32.विनय मिश्र, जिंदगी आने को है, पृ० 4
- 33.हरेराम समीप, हरेराम समीप चयनित गज़लें, पृ० 43
- 34.महेश अग्रवाल, पेड़ फिर हर होगा, पृ० 19
- 35.वही पृ० 23
- 36.महेश कटारे 'सुगम', लाहौल वला कुव्वत, पृ० 22
- 37.डी. एम. मिश्र, रोशनी का कारवां, पृ० 44
- 38.महेश अग्रवाल, अभी शेष है, पृ० 90
- 39.हरेराम समीप, यह नदी खामोश है, पृ० 80
- 40.हरेराम समीप, हरेराम समीप चयनित गज़लें, पृ० 45
- 41.महेश कटारे 'सुगम', लाहौल वला कुव्वत, पृ० 54
- 42.महेश कटारे 'सुगम', ऐसी तैसी, पृ० 74
- 43.डॉ. शिवशंकर त्रिवेदी, हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में सांस्कृतिक चेतना, पृ० 19
- 44.हेतु भारद्वाज, संस्कृति और साहित्य, पृ० 28
- 45.डॉ सीमा गुप्ता, समकालीन उपन्यास; महानगर बोध, पृ० 256
- 46.डॉ. सुमन सिंह, रांगेय राघव के उपन्यास और युग चेतना, पृ० 128
- 47.ज्ञानप्रकाश विवेक, घाट हजारों इस दरिया के, पृ० 107
- 48.अनूप वशिष्ठ, छंद तेरी हंसी का, पृ० 35
- 49.देवेंद्र आर्य, उमस, पृ० 20
- 50.अदम गौडवी, समय से मुठभेड़, पृ० 81
- 51.ज्ञानप्रकाश विवेक, कागज़ी छतरियाँ बनाता हूँ, पृ० 93
- 52.डी. एम. मिश्र, रोशनी का कारवां, पृ० 42
- 53.वशिष्ठ अनूप, छंद तेरी हंसी का, पृ० 85
- 54.राम मेश्राम, आग में उड़ान, पृ० 115
- 55.वशिष्ठ अनूप, रोशनी की कोपलें, पृ० 111
- 56.वशिष्ठ अनूप, घरों पर गिद्ध मंडराने लगे हैं, पृ० 65
- 57.राम मेश्राम, आग में उड़ान, पृ० 108
- 58.जहीर कुरेशी, दोहों से दोहा गज़लों तक, पृ० 101

- 59.वशिष्ठ अनूप, रोशनी की कोपलें, पृ० 21
- 60.जहीर कुरेशी, निकला न दिग्विजय को सिकंदर, पृ० 23
- 61.जहीर कुरेशी, रास्तों से रास्ते निकले, पृ० 17
- 62.जहीर कुरेशी, बोलता है बीज भी, पृ० 103
- 63.जहीर कुरेशी, रास्तों से रास्ते निकले, पृ० 83
- 64.किशन तिवारी, धूप का रास्ता, पृ० 70
- 65.राम मेश्राम, आग में उड़ान, पृ० 73
- 66.जहीर कुरेशी, सादगी का सौंदर्य : वशिष्ठ अनूप का सृजन, पृ० 197
- 67.महेश अग्रवाल, पेड़ फिर हरा होगा, पृ० 65
- 68.राम मेश्राम, आग में उड़ान, पृ० 92
- 69.महेश अग्रवाल, अभी शेष है, पृ० 16
- 70.जहीर कुरेशी, निकला न दिग्विजय को सिकंदर, पृ० 54
- 71.जहीर कुरेशी, बोलता है बीज भी, पृ० 14
- 72.जहीर कुरेशी, रास्तों से रास्ते निकले, पृ० 102
- 73.रामकुमार कृषक, पढ़िए तो आंख पाइए, पृ० 79
- 74.राम मेश्राम, आग में उड़ान, पृ० 48
- 75.जहीर कुरेशी, रास्तों से रास्ते निकले, पृ० 122
- 76.जहीर कुरेशी, जिंदगी से बड़ा जिंदगी का समर, पृ० 31
- 77.वशिष्ठ अनूप, घरों पर गिद्ध मंडराने लगे हैं, पृ० 71
- 78.वशिष्ठ अनूप, रोशनी की कोपलें, पृ० 103
- 79.डॉ शंकर दयाल शर्मा, हमारे चिंतन की मूलधारा, पृ० 10
- 80.वशिष्ठ अनूप, घरों पर गिद्ध मंडराने लगे हैं, पृ० 71
- 81.महेश अग्रवाल, पेड़ फिर हरा होगा, पृ० 17
- 82.जहीर कुरेशी, रास्तों से रास्ते निकले, पृ० 92
- 83.जहीर कुरेशी, निकला न दिग्विजय को सिकंदर, पृ० 32
- 84.प्रेम कुमार, एक मस्त फकीर: नीरज, पृ० 71
- 85.हेतु भारद्वाज, साहित्य और संस्कृति, पृ० 28
- 86.महेश अग्रवाल, अभी शेष है, पृ० 95
- 87.विनय मिश्र, जिंदगी आने को है, पृ० 100
- 88.अदम गोंडवी, समय से मुठभेड़, पृ० 60

- 89.महेश अग्रवाल, अभी शेष है, पृ० 88
- 90.वही पृ० 23
- 91.सं. मधु खराटे, जहीर कुरेशी चुनिंदा गज़लें, पृ० 82
- 92.किशन तिवारी, धूप का रास्ता, पृ० 67
- 93.विनय मिश्र, सच और है, पृ० 102
- 94.हरेराम समीप, यह नदी खामोश है, पृ० 17
- 95.महेश अग्रवाल, पेड़ फिर हरा होगा, पृ० 55
- 96.देवेंद्र आर्य, मन कबीर, पृ० 17
- 97.हरेराम समीप, यह नदी खामोश है, पृ० 31
- 98.जहीर कुरेशी,रास्तों से रास्ते निकले, पृ० 41
- 99.राम मेश्राम, आग में उड़ान, पृ० 25
100. विनय मिश्र, तेरा होना तलाशूँ, पृ० 51
101. ज्ञानप्रकाश विवेक, घाट हजारों इस दरिया के, पृ० 86
102. राम मेश्राम, आग में उड़ान, पृ० 29
103. किशन तिवारी, धूप का रास्ता, पृ० 53
104. जहीर कुरेशी, निकला न दिग्विजय को सिकंदर, पृ० 112
105. जहीर कुरेशी, रास्तों से रास्ते निकले, पृ० 28
106. वशिष्ठ अनूप, बारूद के बिस्तर पर, पृ० 57
107. विनय मिश्र, लोग ज़िंदा है, पृ० 52
108. महेश अग्रवाल, अभी शेष है, पृ० 104
109. विनय मिश्र, सच और है, पृ० 49
110. हरेराम समीप, हरेराम समीप चयनित गज़लें, पृ० 12
111. महेश अग्रवाल, अभी शेष है, पृ० 38
112. सं. लालचंद गुप्त मंगल, माधव कौशिक सर्जन की समीक्षा, पृ० 95
113. हेतु भारद्वाज, संस्कृति और साहित्य, पृ० 38
114. फरहत परवीन, आजकल पत्रिका, अंक अक्टूबर 2015, पृ० 39
115. शिव ओम अंबर, विष पीना विस्मय मत करना, पृ० 30
116. महेश कटारे 'सुगम', अय हय हय, पृ० 74
117. हरेराम समीप, यह नदी खामोश है, पृ० 74
118. राम मेश्राम, आग में उड़ान, पृ० 112

119. विनय मिश्र, जिंदगी आने को है, पृ० 34
120. वही पृ० 74
121. हरेराम समीप, हरेराम समीप चयनित गज़लें, पृ० 87
122. शिव ओम अंबर, विष पीना विस्मय मत करना, पृ० 47
123. हरेराम समीप, यह नदी खामोश है, पृ० 52
124. किशन तिवारी, धूप का रास्ता, पृ० 46
125. ज्ञानप्रकाश विवेक, कागज़ी छतरियाँ बनाता हूँ, पृ० 7
126. महेश अग्रवाल, पेड़ फिर हरा होगा, पृ० 88
127. जहीर कुरेशी, जिंदगी से बड़ा जिंदगी का समर, पृ० 37
128. शांतिप्रिय द्विवेदी, युग और साहित्य, पृ० 25
129. हेतु भारद्वाज, संस्कृति और साहित्य, पृ० 52
130. महेश अग्रवाल, पेड़ फिर हरा होगा, पृ० 93
131. माधव कौशिक, अंगारों पर नंगे पांव किंडले संस्करण, पृ० 36
132. जहीर कुरेशी, सादगी का सौंदर्य : वशिष्ठ अनूप का सृजन, पृ० 47
133. किशन तिवारी, धूप का रास्ता, पृ० 102
134. विनय मिश्र, तेरा होना तलाशूँ, पृ० 18
135. महेश कटारे 'सुगम', प्रतिरोधों के पर्व, पृ० 109
136. कोटडिया गुलाबचंद, साहित्य और संस्कृति, पृ० 21
137. डी. एम. मिश्र, समकाल की आवाज, पृ० 54
138. वशिष्ठ अनूप, रोशनी की कोपलें, पृ० 33
139. महेश अग्रवाल, पेड़ फिर हरा होगा, पृ० 89
140. किशन तिवारी, धूप का रास्ता, पृ० 31
141. डी. एम. मिश्र, वो पता ढूँढ़ें हमारा, पृ० 30
142. देवेंद्र आर्य, मन कबीर, पृ० 62
143. रामकुमार कृषक, पढ़िए तो आंख पाइए, पृ० 59
144. महेश कटारे 'सुगम', शुक्रिया, पृ० 54
145. वशिष्ठ अनूप, छंद तेरी हँसी का, पृ० 102
146. देवेंद्र आर्य, मन कबीर, पृ० 67
147. वशिष्ठ अनूप, छंद तेरी हँसी का, पृ० 148
148. विनय मिश्र, जिंदगी आने को है, पृ० 22

149. महेश कटारे 'सुगम', आशाओं के नये महल, पृ० 75
150. सं. लालचंद गुप्त मंगल, माधव कौशिक सर्जन की समीक्षा, पृ० 114
151. वशिष्ठ अनूप, रोशनी खतरे में है, पृ० 26
152. सं. मंजुला राणा, माधव कौशिक की काव्य संवेदना, पृ० 99
153. राम मेश्राम, आग में उड़ान, पृ० 58
154. महेश कटारे 'सुगम', अय हय हय, पृ० 59
155. जहीर कुरेशी, रास्तों से रास्ते निकले, पृ० 93
156. विनय मिश्र, जिंदगी आने को है, पृ० 106
157. जहीर कुरेशी, रास्तों से रास्ते निकले, पृ० 48
158. हरeram समीप, यह नदी खामोश है, पृ० 30
159. जहीर कुरेशी, निकला न दिग्विजय को सिकंदर, पृ० 15
160. किशन तिवारी, सोचिए तो सही, पृ० 19
161. वशिष्ठ अनूप, रोशनी खतरे में है, पृ० 27
162. माधव कौशिक, अंगारों पर नंगे पांव किंडले संस्करण, पृ० 37
163. माधव कौशिक, नयी उम्मीद की दुनिया किंडले संस्करण, पृ० 28
164. अनूप वशिष्ठ, छंद तेरी हंसी का, पृ० 118
165. सं. जहीर कुरेशी, सादगी का सौंदर्य; वशिष्ठ अनूप का सृजन पृ० 145
166. वही पृ० 145
167. विश्वंभर दयाल गुप्ता, साहित्य; समाजशास्त्रीय संदर्भ, पृ० 147
168. वशिष्ठ अनूप, घरों पर गिद्ध मंडराने लगे हैं, पृ० 18
169. वशिष्ठ अनूप, मशालें फिर जलाने का समय है, पृ० 20
170. जहीर कुरेशी, जिंदगी से बड़ा जिंदगी का समर, पृ० 67
171. शिव ओम अंबर, विष पीना विस्मय मत करना, पृ० 37
172. राम मेश्राम, आग में उड़ान, पृ० 64
173. हरeram समीप, यह नदी खामोश है, पृ० 38
174. जहीर कुरेशी, निकला न दिग्विजय को सिकंदर, पृ० 94
175. जहीर कुरेशी, रास्तों से रास्ते निकले, पृ० 103
176. देवेंद्र आर्य, जो पीवे नीर नैना का, पृ० 20
177. जहीर कुरेशी, निकला न दिग्विजय को सिकंदर, पृ० 60
178. जहीर कुरेशी, रास्तों से रास्ते निकले, पृ० 94

179. महेश अग्रवाल, पेड़ फिर हरा होगा, पृ० 51
180. अदम गौडवी, समय से मुठभेड़, पृ० 60
181. रामकुमार कृषक, पढ़िए तो आंख पाइए, पृ० 63
182. वही पृ० 63
183. महेश कटारे 'सुगम', प्रतिरोधों के पर्व, पृ० 42
184. शिव ओम अंबर, विष पीना विस्मय मत करना, पृ० 46
185. जहीर कुरेशी, रास्तों से रास्ते निकले, पृ० 98
186. राम मेश्राम, आग में उड़ान, पृ० 59
187. वशिष्ठ अनूप, रोशनी खतरे में है, पृ० 77
188. महेश अग्रवाल, अभी शेष है, पृ० 118

षष्ठ अध्याय
21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल
का शिल्प विधान

षष्ठ अध्याय

21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल का शिल्प विधान

प्रस्तावना

काव्य के दो पक्ष होते हैं- भाव और कला। भारतीय काव्यशास्त्र में काव्य को पुरुष का रूपक देते हुए भाव या संवेदना को काव्य की आत्मा तथा शिल्प को काव्य के शरीर के रूप में कल्पित किया गया है। जिस प्रकार बिना आत्मा के शरीर का और बिना शरीर के आत्मा का कोई वजूद या व्यक्त सौंदर्य नहीं होता है, दोनों एक दूसरे के पूरक बनकर ही सौंदर्यदीप्त होते हैं, उसी प्रकार कथ्य और शिल्प का सामंजस्य ही काव्य को अर्थवता और कलात्मक सौंदर्य प्रदान करता है। जिस प्रकार एक मूर्तिकार अपने मन-मस्तिष्क की अमूर्त छवियों को अपने कलात्मक कौशल के बल पर विभिन्न औजारों की मदद से पत्थर पर मूर्त रूप देता है, उसी प्रकार एक कवि अपनी भावनाओं, विचारों या संवेदनाओं को विभिन्न काव्य उपकरणों से कागज पर शब्दाकार देकर पाठक तक पहुँचाता है। कवि की अनुभूति को काव्यरूप में पाठक के लिए संप्रेषणीय एवं बोधगम्य बनाने में सहायक इन तत्वों को काव्य के शैल्पिक अंग कहा जाता है। काव्यशास्त्र में शिल्प अवयवों के अन्तर्गत भाषा, रस, अलंकार, छंद, शब्द शक्ति, काव्य गुण, काव्य दोष, प्रतीक, बिंब आदि तत्वों को शामिल किया गया है। किसी काव्य रचना के शिल्प सौन्दर्य में इन सभी तत्वों की विवेचना की जाती है।

ग़ज़ल का अपना काव्य रूप तथा शिल्प स्वरूप है। समकालीन हिंदी ग़ज़ल का स्वरूप उर्दू ग़ज़ल और समकालीन हिंदी कविता के संयोग से हुआ है। इसलिए हिंदी ग़ज़ल अपने शिल्प विधान में एक ओर ग़ज़ल संरचना से संबंधित अवयवों जैसे बह आदि में उर्दू ग़ज़ल का अनुसरण करती हैं, तो दूसरी ओर हिंदी कविता की भाषा, बिंब, प्रतीक, रस व अलंकार योजना से अपना रूप सँवारती है। प्रस्तुत अध्याय में 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल के शिल्प विधान का विवेचन निम्न शैल्पिक तत्वों की कसौटी पर किया जाएगा।

1. हिंदी ग़ज़ल की भाषिक संरचना
2. हिंदी ग़ज़ल का छंद (बह) विधान
3. हिंदी ग़ज़ल में अलंकार योजना
4. हिंदी ग़ज़ल में रस सौंदर्य
5. हिंदी ग़ज़ल में प्रतीक योजना

6. हिंदी ग़ज़ल में बिंब विधान
7. हिंदी ग़ज़ल में मिथकीय सौंदर्य
8. हिंदी ग़ज़ल में मुहावरों और लोकोक्तियों का लालित्य
9. हिंदी ग़ज़ल में शब्द शक्ति
10. हिंदी ग़ज़ल में व्यंग्य
11. हिंदी ग़ज़ल में शैल्पिक दोष

6.1 हिंदी ग़ज़ल की भाषिक संरचना

भारतीय काव्यशास्त्र में काव्य के शिल्प सौंदर्य में भाषा विवेचना को प्रमुख तत्व माना जाता है। क्योंकि भाषा ही कवि के भावों और विचारों की वाहक तथा काव्य संवेदना की अभिव्यक्ति का माध्यम होती है। कवि की संवेदना को पाठक के हृदय में स्पंदित करने में सहायक रसयुक्त लयात्मक भाषा काव्य भाषा कहलाती है। ग़ज़ल सरस व संक्षिप्त काव्य विधा है। इसलिए उसकी भाषा अन्य काव्य विधाओं की अपेक्षा अधिक मधुर, सरस तथा संश्लिष्ट होती है तथा उसमें उक्ति वैचित्र्य एवं लय का भावों के प्रवाह में विशेष महत्व होता है। हालाँकि हिंदी ग़ज़लकारों ने भाषा में चमत्कारिता की जगह सरलता को अपना आदर्श बनाया है। तथा हिंदी ग़ज़ल का एक नया भाषिक स्वरूप गढ़ा है। जिसमें मुहावरा हिंदी का है, परन्तु भावों की अभिव्यक्ति के लिए हिंदी के साथ अन्य भाषा रूपों का भी प्रयोग हुआ है। हिंदी ग़ज़लकारों के भाषागत आदर्श को इस शेर में देखा जा सकता है-

“बड़ी ग़ज़ल तो कहो, पर सरल जबान रहे

सर उठाओ तो हथेली पे आसमान रहे।”¹ (डी.एम.मिश्र)

हिंदी ग़ज़ल में भाषा के मुख्यतः तीन रूप लक्षित होते हैं-(I) उर्दू से प्रभावित भाषा (II) साहित्यिक हिंदी से प्रभावित भाषा (III) सामान्य बोलचाल की भाषा।

(I) उर्दू से प्रभावित भाषा- हिंदी में ग़ज़लों का व्यापक एवं तीव्र विकास उर्दू ग़ज़ल की समृद्ध प्रभावशाली परंपरा के प्रेरणा स्वरूप हुआ है। यही कारण है कि हिंदी ग़ज़ल भाषिक स्तर पर उर्दू से प्रभावित है तथा उसमें उर्दू भाषा रूपों तथा उर्दू शब्दावली का खूब प्रयोग हुआ है। हिंदी ग़ज़लकार उर्दू ग़ज़लों की लोकप्रियता से प्रभावित हो उर्दू भाषा रूपों को अपनाते हैं। उर्दू से हिंदी की ओर प्रवृत्त हुए ग़ज़लकारों में उर्दू से प्रभावित यह भाषा रूप खूब मिलता है। प्रस्तुत शोध प्रबंध के आलोच्य ग़ज़लकारों में अदम गोंडवी, राम मेश्राम व ज्ञान प्रकाश विवेक के यहाँ यह भाषिक रूप मिलता है।

हिंदी ग़ज़लकारों ने अरबी-फारसी-उर्दू के बहुप्रचलित शब्दों का ही प्रयोग किया है, लेकिन कहीं-कहीं कम प्रचलित शब्दों का प्रयोग भी मिलता है। उदाहरण निम्नवत है

“यूँ ही राहे-ज़ीस्त’ में दरपेश दुश्वारी रहे
ताक़यामत प्यास को ये सिलसिला जारी रहे।
फ़र्द’ हो जाते हैं उस माहौल में रजअतपसन्द
ख़ौफ़ का साया अगर एहसास पर तारी रहे।”² (अदम गोंडवी)

*** *** *** ***

“सुखरू होकर अदब के साथ मर जाएँगे लोग
बे-मेहर के सामने क्यूँ हाथ फैलाएँगे लोग।
इस शहर की ज़हनियत का क्या करूँ मैं दोस्तो
तुम अगर सेहरा पढ़ोगे, मर्सिया गाएँगे लोग।”³ (ज्ञानप्रकाश विवेक)

पहले उदाहरण में कम प्रचलित शब्दों का प्रयोग होने से हिंदी पाठकों के लिए यह दुर्बोध है जबकि दूसरे में बहु प्रचलित शब्दों का प्रयोग होने से यह सहजग्राह्य है। उर्दू शब्दावली से हिंदी ग़ज़ल की भाषा को विशेष गति मिलती है। किंतु यह हिंदी ग़ज़ल का असली भाषा रूप नहीं है।

(II) **संस्कृतनिष्ठ साहित्यिक हिंदी से प्रभावित भाषा-** हिंदी ग़ज़ल की भाषा का एक रूप संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दावली से युक्त साहित्यिक हिंदी का है। ग़ज़ल जब हिंदी कविता की साहित्यिक परंपरा से जुड़ती है, तो भाषा का यह रूप उभरता है। हिंदी ग़ज़लकारों के पास हिंदी भाषा व साहित्य का समृद्ध शब्द भंडार एवं व्यापक ज्ञान कोश है। अतः उनकी ग़ज़लों में साहित्यिक हिंदी का संस्कृतनिष्ठ रूप उभरा है। ग़ज़लकारों का एक वर्ग उर्दू से हिंदी ग़ज़ल को अलगाने के लिए इस भाषा में ग़ज़लें कहने को प्राथमिकता देता है। आलोच्य ग़ज़लकारों में शिव ओम अंबर की ग़ज़लों में यह भाषा रूप प्रमुखता से मिलता है। उदाहरण निम्नवत है

“पूज्य हैं पठनीय हैं पर आज प्रासंगिक नहीं
सोरठे सिद्धान्त के आदर्श की अर्धालियाँ।”⁴ (शिवओम अंबर)

इस भाषिक संरचना में अच्छी ग़ज़लें कहना दुष्कर कार्य है, परंतु भाषा के इस रूप की पूर्णतया उपेक्षा भी नहीं की जा सकती है। ऐसा किये जाने पर हिंदी ग़ज़ल अपनी परंपरागत शब्द व भाव संपदा से दूर हो जाएगी। ग़ज़लकारों को इस दिशा में विशेष ध्यान देने की जरूरत है।

(III) सामान्य बोलचाल वाली भाषा- 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल की भाषिक संरचना का वास्तविक रूप जन सामान्य में प्रचलित आम बोलचाल की भाषा का है। भाषा का यह रूप उर्दू, हिंदी और हिंदी की बोलियों के बहुप्रचलित शब्दों से बना है। यह जन सामान्य के दैनिक जीवन की सहज-सरल भाषा है। इसलिए इसमें संप्रेषणीयता की कठिनाई नहीं होती है। लेकिन इसे साधने में सावधानी बरतने की जरूरत है। क्योंकि ग़ज़लकार को जनभाषा को बोलचाल के स्तर से ऊपर उठाकर उसमें प्रयुक्त दैनिक शब्दों, प्रतीकों और बिंबों में विशेष कलात्मक अर्थवत्ता भरनी होती है। आलोच्य ग़ज़लकारों में जहीर कुरेशी, विनय मिश्र, वशिष्ठ अनूप की ग़ज़लों में भाषा का यही रूप ज्यादा देखने को मिलता है। सामान्य बोलचाल की भाषा ही हिंदी ग़ज़ल की भाषा का आदर्श रूप है। उदाहरण निम्नवत है-

“किताबी भद्र कविता से निकल कर

कहेंगे शेर जन-भाषा में ढल कर।”⁵

(जहीर कुरेशी)

“भीड़ में है खोया खोया क्या करे/ वो जो है विल्कुल अकेला क्या करे।

मन से मैला हो गया है आदमी / तन को धोनेवाली गंगा क्या करे।”⁶

(विनय मिश्र)

21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल उक्त तीनों भाषा रूपों से समृद्ध हो रही है। यद्यपि हिंदी ग़ज़लकारों को आम बोलचाल की भाषा का मिला-जुला रूप ही अधिक प्रिय है। जिसमें न उर्दू शब्दों से परहेज़ है, न आम व्यवहार के तत्सम, तद्भव, देशज व अंग्रेजी शब्दों से। डी.एम. मिश्र कहते हैं

“उसको हिंदी से न उर्दू से गिला

आँसुओं के वो हर्फ़ पढ़ता है।”⁷

(डी. एम. मिश्र)

भाषा शब्दों से बनती है और भाव शब्दों पर सवार होकर ही अपनी मंजिल तक पहुँचते हैं। अतः हिंदी ग़ज़ल के भाषिक सौंदर्य के विवेचन के अंतर्गत उसके भाषा रूपों के साथ उसके शब्द भंडार पर भी चर्चा अनिवार्य है। हिंदी ग़ज़ल के शब्द भंडार में चार तरह के शब्द मिलते हैं-(I) अरबी-फ़ारसी से गृहीत शब्द (II) हिंदी के तत्सम-तद्भव शब्द (III) देशज शब्द (IV) अंग्रेजी व अन्य विदेशी भाषाओं के शब्द।

(I) अरबी-फ़ारसी से गृहीत शब्द भंडार- ग़ज़ल फ़ारसी से उर्दू, उर्दू से हिंदी तक के सफ़र में अपनी शब्द सम्पदा को साथ लेकर चलती है। अतः हिंदी ग़ज़ल में अरबी-फ़ारसी के शब्दों का बहुतायत से प्रयोग हुआ है। उदाहरणस्वरूप शेर पेश है-

“निस्फ़’ आबादी अगर भूख के शोलों में जले
गज़ल फिर कैसे सुखनवर के तसव्वुर में पले।
सरबुलन्द मुल्क की रौनक ये तेरे रंगमहल

जल के रह जायँ बगावत के अगर फूल खिले।”⁸ (अदम गोंडवी)

हिंदी गजलों में प्रयुक्त अरबी फ़ारसी के कुछ शब्द इस प्रकार हैं- दिलकश, जज़ब, हसरत, कलम, अदब, जम्हूरियत, मज़हब, वफ़ादारी, हक़ीक़त, सियासी, गुज़ारिश, मोहतरम, आदाब, मुफ़लिसी, अंजुमन, मुहब्बत, दफ़न, हालात, नग्मात, बगावत, इश्तिहार, तल्ख़तर, ज़िंदगी, फ़ैसला-कुन, फ़सील, मज़लूम, क़िरदार, मुद्दत, हादसा, तिजारत, सौदागर, तन्हाई, ख़्वाब, ज़िंदादिल, ख़ामियाजा, आसमाँ, क़त्ल, ज़मीर, फ़साद, दफ़तर, मस्जिद, अजनबी, दास्तान, तर्जुमा, अफ़सोस, हुक्मरान, हमदर्दी, तरफ़दारी, मुज़रिम, फ़रियाद, रहबर, गुलशन, इबादत, दहशतज़दा, मनहूस, बेख़बर, इबादत, इज़हार, मुनासिब, आफ़ताब, सफीना, अशक, इश्क, हुश्न, गुफ़्तगू, तकदीर, ज़ख़मी, अलफ़ाज़, तहज़ीब, फ़क़त, बेरहम, खैरियत, अखबार, मुताबिक़, रहमान, ख़ुशफ़हमी, दहशत, क़वायद, ज़दीद, इज़ारेदार, कुदरत, रिवायत, राहगीर, फ़रिश्ते, आवारगी, बेज़ार, मर्तबा, इदारा, तख़य्युल, शीराज़ा, कायनात, अक़ीदत, शख़्स, निज़ाम, जिस्म, मिज़ाज, फ़िज़ा, नाशाद, आबाद, जुल्फ़, शबाब, तबस्सुम, ज़रखैज़, ज़ीस्त, दुश्वारी, ख़्वाहिश, मुख़्तारी, मुतमइन, तन्कीद, वल्लाह, हमसाये, रकाबी, तमद्दुन, मुनासिब, अज़मत, दस्तरख़्वान, मुक़म्मल, वाबस्ता, जहन्नुम आदि।

(II) हिंदी के तत्सम-तद्भव शब्द- हिंदी गज़ल नाम से ही हिंदी शब्दों की बहुलता का संकेत मिलता है। हिंदी का मूल शब्द भंडार संस्कृत के तत्सम व तद्भव शब्दों से बना है। संस्कृत के जो शब्द बिना किसी परिवर्तन के ज्यों के त्यों हिंदी में प्रयुक्त होते हैं, तत्सम शब्द कहलाते हैं। तथा जो शब्द संस्कृत से प्राकृत अपभ्रंश की यात्रा में परिवर्तित होकर बदले हुए रूप में हिंदी में प्रयोग में आए, तद्भव शब्द कहलाते हैं। हिंदी गज़ल में तत्सम व तद्भव शब्दों का खूब प्रयोग हुआ है। उदाहरण निम्नवत है तत्सम शब्द - “मानस का स्वाध्याय रही माँ / श्रद्धा का पर्याय रही माँ।

संध्या तुलसी पे सँझवाती / प्रातः नमः शिवाय रही माँ।”⁹

(शिवओम अंबर)

तद्भव शब्द -

“चाँद-सा रूप यह सलोना है / दमका-दमका-सा जैसे सोना है।

जबसे देखा है खुद को भूल गया / तेरी आँखों में जादू-टोना है।”¹⁰

हिंदी ग़ज़लों में प्रयुक्त कुछ तत्सम तद्भव शब्द निम्न हैं-

तत्सम शब्द- घृणित, स्वर्णिम, प्रतिरोध, संत्रास, प्राक्कथन, पारलौकिक, स्तब्ध मुद्राएँ, व्यर्थ, सारथी, निःसंतान, गंभीरता, प्रतिष्ठा, वक्तव्य, आस्था, मरीचिका, महत्वाकांक्षा, सम्मोहक, पृष्ठ, सत्यमेव, तिरस्कृत, अचम्भित, व्यभिचार, भ्रष्टाचार, उपदेशक, अर्धसत्य, नैवेद्य, सामर्थ्य, अभ्यर्थना, अंत्यज, अचेतन, प्रज्ञा, नैराश्य, निराधार, शाश्वत, पिष्ट-पेषण, ऋक्मंत्र, प्रासंगिक, पूजनीय, सौंदर्य, स्वाध्याय, आशीष, संस्मरण, कीर्ति मंडप, चरणामृत, दुर्व्याख्या, अंतस, प्रतिमान, संस्कृति, प्रतिकृतियाँ, अभिमत, श्रद्धा, व्यंग्य, विद्रूप, अभिषेक, प्रज्वलित, चिरंतन, उपनिषद्, अभ्यागत, पात्रताएँ, उद्घोषधर्मी, सन्निकट, मृत्तिका, परिशिष्ट, अंतरध्वनि, सम्यक, अपेक्षित, निषिद्ध, अभिव्यक्त, मंत्रोच्चार, कुरुक्षेत्र, धृष्टता, शृंखलाएँ, संहिताएँ, विद्वज्जन, वर्तिका, कंपन, आक्षितिज, दिग्भ्रमित, उल्कापात, वज्रपात, झंझावात, तिमिरधर्मा, ऋचा इत्यादि।

तद्भव शब्द - माँ, माथा, गरमी, माटी, पीठ, मीठी, सावन, मुट्ठी, ऊँचा, सुभाव, ओठ, कंगन, कंधा, ब्याह, कोख, कोयल, चाम, सुनार, रात, हास, आँखें, आँसू, बाती, आग, राख, चाँद, सपना, सच, पहला, आखर, शक्कर, फूल, मोल, परछाई, पीला, धुआँ, जीभ, अमोल, जुगत, रतन, हाथ, सूरज, कान, धीरज, बाँझ, बच्चा, खेत, किसान, अंगुरी, अनाज, आसरा, चाँदनी, चैत, दिवाली, दूजा, नया, अंगूठा, ईंट, काम, गाँव, गेहूँ, घी, चोरी, दुबला, फागुन, बाँस, बूढ़ा, मजूर आदि।

(III) **देशज शब्द** -हिंदी ग़ज़ल में प्रयुक्त शब्दों की तीसरी कोटि देशज शब्दों की है। देशज शब्द वे अज्ञात व्युत्पत्तिपरक शब्द हैं जो लोक भाषाओं या बोलियों से हिंदी भाषा में घुल कर प्रयुक्त होने लगे हैं। हिंदी ग़ज़ल की भाषा का सर्वाधिक लोकप्रिय रूप सामान्य बोलचाल की भाषा का है, जिसमें देशज शब्दों या लोक बोलियों के शब्दों का खूब प्रयोग हुआ है। उदाहरण प्रस्तुत है-

“बूढ़ा बरगद साक्षी है किस तरह से खो गई

रम सुधी की झोंपड़ी सरपंच की चौपाल में ॥

खेत जो सीलिंग के थे सब चक में शामिल हो गए

हमको पट्टे की सनद मिलती भी है तो ताल में।”¹¹ (अदम गोंडवी)

देशज शब्द- झुगगी, तोर मोर, फोकट, खरोंच, चोखा, बर्राटा, खाटा, बट्टे, पेरा, भेजा, पाटौर, भुरभुरा, डगर, उच्चके, भंडास, कुटिया, ढिबरी, पटोला, बासी, ऊँघती, पुआल, साग, बथुए, चटनी, बिरहा, बरियाई, पगड़ी, खुसुर-फुसुर, गुल्ली डंडा, धमाचौकड़ी,

डोहिया, छप्पर, बहेलिया, खेला, गुड़ाई, भोंथरी, खूँटा, भट्ठी, लोटा, खटाखट, गुदड़ी, चप्पल, चुनरी, झंझट, रेवड़ी, कुंटल, कांड़याँ, कुलांचें, पन्ने, चाटा आदि।

(IV) अंग्रेजी व अन्य विदेशी भाषाओं के शब्द- हिंदी ग़ज़ल में प्रयुक्त शब्दों की चौथी श्रेणी अंग्रेजी शब्दों की है। अन्य विदेशी भाषाओं के भी कुछ शब्द हिंदी ग़ज़ल में प्रयुक्त हुए हैं। अंग्रेजों के आने के बाद बहुत से अंग्रेजी शब्द हिंदी में प्रयुक्त होने लगे। हिंदी ग़ज़लकार अंग्रेजी शब्दों से परहेज़ करते रहे हैं, लेकिन विज्ञान व तकनीक के इस दौर में दैनिक जीवन में प्रचलित अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करने लगे हैं।

उदाहरणार्थ -

“एक पन्नीदार ‘रैपर’ देखती हैं

आज आँखें सिर्फ ‘बैनर’ देखती हैं।”¹²

(जहीर कुरेशी)

अंग्रेजी शब्द - डाइवोर्स, लीडर, स्लम, इलेक्शन, शोकेस, फेलियर, पॉश कॉलोनी, लैजर, विजिटिंग कार्ड, कंज्यूमर कल्चर, स्विच ऑफ, होटल, प्लेट, फास्ट फूड, इन्टरनेट, मोबाइल, चैनल, इंडियट, पार्क, कार, रिकॉर्ड, स्टीमर, एसएमएस, लिव-इन रिलेशन, जैडप्लस, प्लास्टिक, डस्टबिन, लॉकडाउन, अल्टरनेट, व्हाट्सएप्प, ईमेल, ड्रामा प्राइवेटाइजेशन, सब्सिडी, बिल्डर, सेलफोन, वाई-फाई, ब्रेकफास्ट, डिनर, डाउनलोड, चारमिंग, जीडीपी, नैरेटिव, सीबीआई, इन्कम टैक्स, कालबैक, वायरल, गूगल, पैन, आधार, रेडीमेड, कोर्ट, मेट्रो, डिजिटल, एटीएम, लॉलीपॉप, फुटपाथ, फाइल, कैलेंडर, चैनल, सेमिनार, कॉलोनियाँ, लॉटरी, डिग्री, एटम, मॉडर्न, कंप्यूटर, नेट, अकेडमी, ग्राफ, पोस्ट, फाइबर, माइक, जजमेंट, सिंबल, पॉलिथीन, रेप, रैपर, ट्रैफिक, कफ़र्यू, गेंग, सर्विस, टैबलेट, कॉपी, जीरो, कॉलगर्ल, फाइव स्टार, गैलरी, नाइट क्लब, एक्स-रे, फैशन, मिसाइल, मिशन, फोटोग्राफ, पेड न्यूज, वोट, वेंटिलेटर, मैराथन, क्लिक, साइबर, लॉबिस्ट, रोबोट, सर्जरी, मार्केटिंग, एल्बम, सोशल साइट आदि।

अन्य विदेशी शब्द- पुर्तगाली- बाल्टी, आलपिन, गमला, चाबी, मेज, साबुन, कमीज़, काजू। **तुर्की शब्द-** बारूद, तोप, लाश, चाकू, बहादुर, बन्दूक, बीवी। **फ्रेंच शब्द** -पिस्तौल, अंग्रेज़, पिकनिक। **डच शब्द-** बम। **जापानी शब्द-** बोनसाई, रिकशा। **चीनी शब्द-** चाय

21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में प्रयुक्त उक्त चारों प्रकार के शब्दों की सूची बहुत लंबी है। अतः कह सकते हैं कि हिंदी ग़ज़ल का शब्द भंडार अत्यंत समृद्ध है।

6.2 छंद विधान

काव्य की प्राण शक्ति उसकी सरसता में निहित होती है। और काव्य की सरसता का आधार उसका भाव सौंदर्य और छंद विधान होता है। छंद ही कविता को लयात्मकता, संगीतात्मकता, भावात्मकता के गुणों से पूरित कर उसे चारुता एवं

रमणीयता प्रदान करता है। जिससे उसमें आसानी से स्मृत होने एवं दीर्घकाल तक स्मृति में सुरक्षित रहने की क्षमता आती है। छंद की महत्ता के बारे में डॉ. रामकुमार वर्मा कहते हैं, "छन्द-विधान से चार उद्देश्यों की पूर्ति हो जाती है- विशेष मनोभावों की अभिव्यक्ति में उसके अनुरूप नाद की व्यवस्था, हमारी रागात्मक वृत्तियों का अनुरंजन, साहित्य और संगीत का पारस्परिक सम्बन्ध, स्मृति में काव्य की सुरक्षा।"¹³

छंद शब्द छद् धातु में असुन प्रत्यय के योग से बना है- जिसके अर्थ होते हैं- आच्छादित करना, बांधना, प्रसन्न करना, अक्षर संख्या का परिमाण करना आदि। इन अर्थों के आधार छंद अक्षरों के विशेष क्रम के बंधन में भावों का आच्छादन है। वर्णों एवं मात्रा की संख्या व क्रम तथा यति-गति, लय के नियमों से विन्यस्त पद्य-रचना को छन्द कहते हैं। हडसन के मत में "छन्द का तात्पर्य व्यवस्थित लय से है जो विभिन्न मूल्यों के वर्णों के निश्चित क्रम का परिणाम होती है।"¹⁴

गज़ल छांदस विधा है। छांदसिक लयात्मकता की एकरूपता के सूत्र के जरिए गज़ल का प्रत्येक शेर स्वतंत्र होने के बावजूद संपूर्ण गज़ल से ग्रंथित रहता है। हिंदी गज़ल ने छंदों के मामले में एक ओर गज़ल के मूल छंद फ़ारसी-उर्दू की बहरों का अनुकरण किया, तो दूसरी ओर अपने भाषिक कलेवर के अनुरूप संस्कृत-हिंदी के बहुत से छंदों को भी ग्रहण किया। इस प्रकार हिंदी गज़ल उर्दू की बहरों और हिंदी के छंदों दोनों प्रसाधनों से अपने रूप को सँवार रही है। अतः गज़ल के छंद विधान का विवेचन दोनों आधारों पर किया जाना आवश्यक है।

हिंदी गज़ल में उर्दू बहर (बह)

गज़ल में बहर (बह) का अर्थ होता है छंद। बहर की आधारभूत इकाई रुकन होती है। रुकन का अर्थ होता है- वर्णों का समूह। जिस प्रकार हिंदी में यमाताराजभानसलगा सूत्र से लघु गुरु वर्णों के नियत क्रम से गण बनते हैं और उनके निश्चित संख्या व क्रम में प्रयोग से वर्णिक छंद बनते हैं। उसी प्रकार रुकन के नियत क्रम व निश्चित संख्या से बहर बनती है। रुकन की निश्चित आवृत्ति से अरकान सूत्र बनता है जिससे गज़ल की बहर का निर्धारण होता है। गज़ल के अरकान को रुकन के टुकड़ों में खंडित करने पर एक विशेष लय उत्पन्न होती है, प्रत्येक टुकड़े को एक लयखंड कहा जाता है। गज़ल में प्रयुक्त शब्दों के वर्ण मात्रा भार के क्रम को वज़न (वज़न) कहा जाता है। बहर वर्ण-मात्रा के नियत क्रम का संयोजन है। गज़ल जिस लय, या वज़न (वज़न) अथवा अरकान में कही जाती है, उसे ही बहर कहते हैं। बहर

की आधारभूत इकाई रुकन है। रुकन की अवस्था के आधार पर बहरों के दो भेद होते हैं-(I) मुफरद बहरें (II) मुरक्कब बहरें।

(अ) **मुफरद बहरें (सालिम बहरें)**- मुफरद शब्द फ़र्द से बना है जिसका अर्थ होता है एक व्यक्ति। जो बहरें एक ही मूल रुकन की आवृत्ति से बनती हैं, उन्हें सालिम या मुफरद बहरें कहा जाता है। इनकी संख्या 7 है। डॉ. कुँअर बेचैन ने इन बहरों के रुकन के साथ इनके हिंदी नामों और इनके रुकन के गणों का उल्लेख निम्नानुसार किया है-

उर्दू बहर	हिन्दी नाम	उर्दू रुकन	हिन्दी पद (गण)
(1) बहरे मुतकारिब	(मिलन छंद)	फ़ऊलुन (फ़ऊ+लुन) 12 2	यमाता (यमा+ता) 1 2 2
(2) बहरे मुतदारिक	(पुनर्मिलन छंद)	फ़ाइलुन (फ़ा+इलुन) 2 12	राजभा (रा+जभा) 2 12
(3) बहरे रमल	(बिन्दुअंकन छंद)	फ़ाइलातुन (फ़ा+इला+तुन) 2 12 2	राजभा गा (रा+जभा+गा) 2 12 2
(4) बहरे हज़ज	(कोकिल छंद)	मुफ़ाईलुन (मफ़ा+ई+लुन) 12 2 2	यमाता गा (यमा+ता+गा) 12 2 2
(5) बहरे रजज़	(वंश-गौरव छंद)	मुस्तफ़इलुन (मुस्+तफ़+इलुन) 2 2 12	ताराज गा (ता+रा+जगा) 2 2 12
(6) बहरे वाफ़िर	(प्रचुरिका)	मुफ़ाइलतुन (मफ़ा+इ+लतुन) 12 1 12	जभान लगा (जभा+न+लगा) 12 1 12
(7) बहरे कामिल	(निपुणिका छंद)	मुतफ़ाइलुन (मु+तफ़ा+इलुन) 1 1 2 12	सलगा लगा (स+लगा+लगा) 1 1 2 1 2

बहर का निर्धारण रुकन और रुकन की संख्या के आधार पर होता है। बहर के नाम में रुकन की संख्या का उल्लेख होता है। जब शेर के दोनों मिसरों में कुल दो

रुक्न होते हैं, तो उसकी बहर को संख्या की दृष्टि से मुसना बहर कहते हैं। इसी तरह चार रुक्न वाली बहर को मुरब्बा, छह रुक्न वाली बहर को मुसद्दस तथा आठ रुक्न वाली बहर को मुसम्मन कहते हैं।

हिंदी ग़ज़ल में सालिम या मुफ़रद बहरें

(I) **बहरे-मुतदारिक-** यह बहर फ़ाइलुन (212) रुक्न (राजभा गण) की आवृत्ति से बनती है। हिंदी ग़ज़ल में इस बहर का खूब प्रयोग हुआ है। उदाहरण प्रस्तुत है-

“आँसुओं में बहे नीर की

2 1 2 / 2 1 2 / 2 1 2

जाति होती नहीं पीर की।”¹⁵

2 1 2 / 2 1 2 / 2 1 2

शेर के दोनों मिसरों में फ़ाइलुन रुक्न छह बार आने से बहरे मुतदारिक मुसद्दस सालिम बहर है।

(II) **बहरे मुतकारिब-** यह बहर फ़ऊलुन रुक्न (यमाता गण) की आवृत्ति से बनती है। यह बहर भी हिंदी में काफी प्रचलित है। उदाहरण पेश है

“अभी गुलमुहर थी अभी है चमेली

1 2 2 / 1 2 2 / 1 2 2 / 1 2 2

ये मन की उदासी गजब रंग में है।”¹⁶

1 2 2 / 1 2 2 / 1 2 2 / 1 2 2

शेर के दूसरे मिसरे में ‘ये’ की एक मात्रा गिरेगी। यहाँ फ़ऊलुन रुक्न आठ बार आने से बहरे मुतकारिब मुसम्मन सालिम बहर है।

(III) **बहरे रमल-**यह बहर फ़ाइलातुन रुक्न (राजभा गा पद) की आवृत्ति से बनती है। संस्कृत के धारा छंद के समतुल्य यह बहर हिंदी में भी बहुत अधिक लोकप्रिय है।

“यह जो अक्सर बोलती है-

2 1 2 2 / 2 1 2 2

मेरे मन की खामुशी है।”¹⁷

2 1 2 2 / 2 1 2 2

यहाँ शेर के पहले मिसरे में ‘जो’ तथा दूसरे मिसरे में ‘रे’ की एक-एक मात्रा गिरेगी। यहाँ फ़ाइलातुन रुक्न चार बार आने से बहरे रमल मुरब्बा सालिम बहर है।

(IV) **बहरे हज़ज-** यह बहर मुफ़ाईलुन रुक्न (यमाता गा पद) की आवृत्ति से बनती है। इस बहर में कही गयी ग़ज़ल अत्यंत कर्णप्रिय होती है। उदाहरण प्रस्तुत है-

“तुम्हें देखा तो आँखों ने कहा बस मिल गयी मंजिल,

1 2 2 2 / 1 2 2 2 / 1 2 2 2 / 1 2 2 2

तुम्हारे दर से उठने का कोई रस्ता नहीं मिलता।”¹⁸

1 2 2 2 / 1 2 2 2 / 1 2 2 2 / 1 2 2 2

शेर में तुम्हें और तुम्हारे का उच्चारण क्रमशः तुमे और तुमारे रूप में होगा। पहले मिसरे में ‘तो’ तथा दूसरे मिसरे में ‘से’ व ‘को’ की एक-एक मात्रा गिराई जाएगी। दोनों पंक्तियों में मुफ़ाईलुन रुकन की आठ बार आवृत्ति होने से बहरे हज़ज मुसम्मन सालिम बहर है।

(V) बहरे रजज़- यह बहर मुस्तफ़इलुन रुकन (ताराज गा पद) की आवृत्ति से बनती है। हिंदी ग़ज़ल में यह बहर अपने सालिम रूप में कम प्रचलित है। शेर पेश है-

“कुछ भी यहाँ अच्छा नहीं

2 2 1 2 / 2 2 1 2

ऐसे में मन लगता नहीं।”¹⁹

2 2 1 2 / 2 2 1 2

शेर के दूसरे मिसरे में रेखांकित वर्ण की एक मात्रा गिरेगी। यहाँ शेर की दोनों पंक्तियों में मुस्तफ़इलुन रुकन की चार बार आवृत्ति से रजज़ मुरब्बा सालिम बहर है।

(VI) बहरे कामिल- यह बहर मुतफ़ाइलुन रुकन (स लगा लगा पद) की आवृत्ति से बनती है। यह एक लंबी बहर है। हिंदी में इसका प्रचलन कम देखने को मिलता है।

उदाहरणस्वरूप-

“अरे बेअदब अरे नासमझ मेरी अज़मतों का लिहाज़ कर

1 1 2 1 2 / 1 1 2 1 2 / 1 1 2 1 2 / 1 1 2 1 2

में उसी कदम का निशान हूँ, वो जो मंजिलों पे पहुँच गया।”²⁰

1 1 2 1 2 / 1 1 2 1 2 / 1 1 2 1 2 / 1 1 2 1 2

शेर में रेखांकित वर्णों की मात्रा एक गिनी जाएगी। यहाँ मुतफ़ाइलुन रुकन की आठ बार आवृत्ति होने से बहरे कामिल मुसम्मन सालिम बहर है।

(VII) बहरे वाफ़िर- यह बहर मुफ़ाइलुन रुकन (जभा न लगा पद) की आवृत्ति से बनती है। यह बहर हिंदी में अपने सालिम रूप में अप्रचलित सी है। शेर प्रस्तुत है-

“कहाँ थी धरा कहाँ था गगन किसे था पता

1 2 1 1 2 / 1 2 1 1 2 / 1 2 1 1 2

कहाँ था ये तन कहाँ था ये मन, थी ऐसी दशा।”²¹

1 2 1 1 2 / 1 2 1 1 2 / 1 2 1 1 2

इस शेर में रेखांकित वर्णों की मात्रा एक-एक गिनी जाएगी। यहाँ मुफ़ाइलतुन रुकन की छह बार आवृत्ति होने से बहरे वाफ़िर मुसद्दस सालिम बहर है।

(ब) **मुक्कब बहरें**- मुक्कब शब्द का अर्थ होता है यौगिक। अर्थात् ऐसी बहरें जो एक से अधिक रुकन के योग से बनती हैं, मुक्कब बहरें कहलाती हैं। डॉ. कुँअर बेचैन के अनुसार ये 12 बहरें, इनके रुकन, इनके हिंदी नाम और उनके गण इस प्रकार हैं-

उर्दू बहर	नये हिन्दी नाम	उर्दू रुकन	हिन्दी पद
(1) बहरे-तवील	प्रलम्ब छंद	फ़ऊलन/मुफ़ाईलुन/ फ़ऊलन/मुफ़ाईलुन	यमाता/यमाता गा/ यमाता/यमाता गा
(2) बहरे मदीद	विलम्बित छंद	फ़ाइलातुन/फ़ाइलुन/ फ़ाइलातुन/फ़ाइलुन	राजभा गा/राजभा/ राजभा गा/राजभा
(3) बहरे-बसीत	विशाल छंद	मुस्तफ़इलुन/फ़ाइलुन/ मुस्तफ़इलुन/फ़ाइलुन	ताराज गा/ राजभा/ ताराज गा/ राजभा
(4) बहरे- मुनसरिह	सहज छंद	मुस्तफ़इलुन/मफ़ऊलात/ मुस्तफ़इलुन/मफ़ऊलात	ताराज गा/ मातारा ल/ ताराज गा/ मातारा ल
(5) बहरे- मुक्तज़िब	विच्छेदन छंद	मफ़ऊलात/मुस्तफ़इलुन/ मफ़ऊलात/मुस्तफ़इलुन	मातारा ल/ ताराज गा/ मातारा ल/ ताराज गा/
(6) बहरे मुज़ारिअ	समरूप छंद	मुफ़ाईलुन/फ़ाइलातुन/ मुफ़ाईलुन/ फ़ाइलातुन	यमाता गा/राजभा गा/ यमाता गा/राजभा गा
(7) बहरे-ख़फ़ीफ़	लघुता छंद	फ़ाइलातुन/ मुस्तफ़इलुन/ फ़ाइलातुन	राजभा गा/ताराज गा/ राजभा गा
(8) बहरे मुजतस	उन्मूलित छंद	मुस्तफ़इलुन/ फ़ाइलातुन/ मुस्तफ़इलुन/ फ़ाइलातुन	ताराज गा/ राजभा गा/ ताराज गा/ राजभा गा
(9) बहरे सरीअ	सरिता छंद	मुस्तफ़इलुन/ मुस्तफ़इलुन/मफ़ऊलात	ताराज गा/ ताराज गा/ मातारा ल
(10) बहरे जदीद	नूतन छंद	फ़ाइलातुन फ़ाइलातुन+मुस्तफ़इलुन	राजभा गा/ राजभा गा/ ताराज गा
(11) बहरे करीब	समीपा छंद	मुफ़ाईलुन/मुफ़ाईलुन/ फ़ाइलातुन	यमाता गा/ यमाता गा /राजभा गा

(12) बहरे मुशाकिल	प्रतिरूपा छंद	फ़ाइलातुन/ मुफ़ाईलुन/मुफ़ाईलुन	राजभा गा/यमाता गा /यमाता गा

यहाँ इन सभी का सोदाहरण विवेचन संभव नहीं है। ग़ज़ल में 7 सालिम और 12 मुक्कब बहरों के अतिरिक्त अन्य बहरों का भी प्रयोग होता है। ये बहरें 19 प्रमुख बहरों के मूल रुकन तथा उनकी आवृत्ति में परिवर्तन करके बनाई जाती हैं। मूल रुकन में बदलाव करने की प्रक्रिया या आधार को ज़िहाफ़ कहते हैं और ज़िहाफ़ के कारण परिवर्तित रुकन से बनी बहरों को मुज़ाहिफ़ या मुजाइफ़ बहरें कहते हैं। जिनमें से हिंदी में अत्यधिक प्रचलित कुछ बहरें सोदाहरण प्रस्तुत हैं-

(अ) बहरे रमल मुसम्मन महजूफ़

अरकान- फ़ाइलातुन फ़ाइलातुन फ़ाइलातुन फ़ाइला / फ़ाइलुन

उदाहरण- “भूख के अहसास को शेरों सुखन तक ले चलो।

या अदब को मुफ़लिसों की अन्जुमन तक ले चलो।”²²

(ब) बहरे हज़ज मुसद्दस महजूफ़

अरकान - मुफ़ाईलुन मुफ़ाईलुन फ़ऊलुन

उदाहरण - “हमारा दौर भी कितना बुरा है

लहू को लाल पानी कह रहा है।”²³

(स) बहरे ख़फीफ़ मुसद्दस मखबून

अरकान - फ़ाइलातुन मुफ़ाईलुन फ़ेलुन / फ़इलुन

उदाहरण - “ठीक रहबर न मिल सका हमको

एक के बाद दूसरा देखा।”²⁴

(द) बहरे मुजतस मुसम्मन मखबून महजूफ़

अरकान - मुफ़ाईलुन फ़ाइलातुन मुफ़ाईलुन फ़ेलुन

उदाहरण - “बिके हैं पेड़, मगर आम, नीम, कटहल के,

हमें मिले नहीं बरगद खरीदने वाले।”²⁵

उक्त शेर में रेखांकित वर्णों की एक-एक मात्रा गिरेगी।

हिंदी ग़ज़लकारों ने सभी बहरों में ग़ज़लें कहने की अपेक्षा बहुप्रचलित व लोकप्रिय बहरों में ही ग़ज़लें रची हैं। हिंदी में रमल तथा हज़ज बहरों के सालिम तथा मुज़ाहिफ़ रूप की ग़ज़लें अधिक देखने को मिलती हैं।

हिंदी ग़ज़ल में हिंदी छंद

हिंदी ग़ज़लकारों ने अपनी ग़ज़लों के छंद विधान में फ़ारसी-उर्दू की बहरों के छंदानुशासन को आत्मसात करने के साथ हिंदी की भाषिक संरचना और काव्यात्मक मुहावरे के अनुरूप संस्कृत-हिंदी के छंदों में भी ग़ज़लें कहीं हैं। हिंदी में छंदों के दो प्रकार माने हैं-

(अ) **वार्णिक छंद-** जिन छंदों के चरणों में वर्णों की संख्या तथा उनके लघु गुरु का क्रम नियत होता है, उन्हें वार्णिक छंद कहा जाता है। इन छंदों में बहर के रूकन की तरह गणों में लघु गुरु का क्रम निश्चित होने से ग़ज़ल में बहरों की तरह एक प्रवाह और लय बनी रहती है।

(ब) **मात्रिक छंद-** जिन छंदों के चरणों में मात्राओं की संख्या निश्चित रहती है, उन्हें मात्रिक छंद कहा जाता है। इनमें लघु गुरु का क्रम नियत नहीं होने से ग़ज़ल की लय भंग होने की संभावना रहती है। हिंदी ग़ज़ल में प्रयुक्त प्रमुख छंद निम्न हैं-

(I) **दोहा छंद-** यह अर्द्धसम मात्रिक छंद है। इसके विषम चरणों में 13- 13 तथा सम चरणों में 11-11 मात्राएँ होती हैं। विषम चरणों के प्रारंभ में जगण (121) का प्रयोग वर्जित है तथा सम चरणों के अंत में गुरु लघु आने चाहिए। दोहे की मुक्तकता तथा अर्थ गांभीर्य की विशेषता उसे शेर के बहुत नजदीक खड़ा करती है। हिंदी में दोहा छंद में खूब ग़ज़लें कही जा रही हैं। उदाहरण पेश है-

“धरती पर अच्छी नहीं, आसमान की बात

वर्तमान में कीजिए, वर्तमान की बात।”²⁶

(II) **ताटंक छंद-** यह सममात्रिक छंद है। इसके प्रत्येक चरण में 16-14 की यति से कुल 30 मात्राएँ होती हैं। चरणों के अंत में मगण (222) या भगण (211) का प्रयोग होता है। डॉ. नरेश ने इसे बहरे मुतदारिक मकतूब महजूफ़ के समान बताया है जिसका अरकान 7फ़ेलुन+ 1फ़े से बनता है।

“सहमी-सी पायल की रुनझुन सिमट गयी तनहाई तक

पहुँच न पाते कितने सपने डोली तक शहनाई तक।”²⁷

(III) **मधुमालती छंद** - यह सम मात्रिक छंद है। इसके प्रत्येक चरण में 7-7 की यति से 14 मात्राएँ होती हैं। चरणों के अंत में रगण का प्रयोग होता है। जगन्नाथ ने अपनी पुस्तक ‘हिंदी उर्दू भोजपुरी के समरूप छंद’ में इसे बहरे रजज़ मुरब्बा सालिम के समतुल्य माना है। उदाहरण निम्नवत है

“मौजूद वह पर्दे में है / क्यों सामने आता नहीं

उड़ कर कहाँ पंछी गए / ये पेड़ कुछ कहता नहीं।”²⁸

यहाँ पहली पंक्ति में ‘मैं’ की मात्रा एक मानी जाएगी।

(IV) गीतिका छंद- यह सम मात्रिक छंद है। इसके प्रत्येक चरण में 14-12 की यति से 26 मात्राएँ होती हैं। चरण के अंत में लघु गुरु आते हैं। हिंदी ग़ज़ल में इसका खूब प्रयोग मिलता है। इसके लालित्य से प्रभावित हो ग़ज़लकार गोपाल दास नीरज ने ग़ज़ल को गीतिका नाम दिया था। श्री जगन्नाथ ने इसे उर्दू की बहरे रमल मुसम्मन महजूफ़ के समान बताया है। उदाहरण निम्नवत है

“ज़िन्दगी बेकार है अब क्या करे कोई बता

हर जगह बाज़ार है अब क्या करे कोई बता।”²⁹

(V) रोला छंद- यह सम मात्रिक छंद है। इसके प्रत्येक चरण में 11- 13 पर यति से कुल 24 मात्राएँ होती हैं। बानगी के तौर पर यह शेर पेश है-

“अंगारों का खेलन ही वो खेला करता

घर में जिसने दावत दी हो तूफ़ानों को।”³⁰

(VI) पीयूषवर्ष छंद- यह सम मात्रिक छंद है। इसके प्रत्येक चरण में 10-9 की यति से 19 मात्राएँ होती हैं। चरण के अंत में लघु गुरु आते हैं। डॉ. नरेश ने इसे उर्दू की बहरे रमल मुसद्दस महजूफ़ के तुल्य बताया है, जिसका अरकान 2 फ़ाइलातुन+ 1फ़ाइलुन से बनता है। उदाहरणार्थ शेर प्रस्तुत है-

“दिन हमारे और दूभर हो गए

आप जो अपने मुक्कद्दर हो गए।”³¹

(VII) सरसी छंद- यह सम मात्रिक छंद है। इसमें 16-11 की यति से प्रत्येक चरण में 27 मात्राएँ होती हैं। चरण के अंत में गुरु लघु आता है। उदाहरण के लिए शेर पेश है-

“रखने को तुम रख लो चाहे जिसके सिर पर ताज

मगर उसी का हुक्म चलेगा वही करेगा राज।”³²

(VIII) सुमेरू छंद- यह सम मात्रिक छंद है। इसके प्रत्येक चरण में 19 मात्राएँ होती हैं। चरण के अंत में दो गुरु आते हैं। इसकी पहली, आठवीं और पन्द्रहवीं मात्रा लघु होती हैं। डॉ. नरेश ने इसे बहरे हज़ज मुसद्दस मकफ़ूफ़ के समान माना है जिसका अरकान 2 मुफ़ाईलुन+ 1फ़ऊलुन से बनता है। उदाहरण के लिए शेर पेश है-

“समन्दर के बदन पर है अँधेरा

नदी के हाथ पे जलता दिया है।”³³

(IX) **भुजंग प्रयात छंद**- यह वर्णिक छंद है जिसके प्रत्येक चरण में चार यगण के योग से कल 12 वर्ण होते हैं। डॉ. नरेश ने इसे बहरे मुतकारिब मुसम्मन सालिम के समान माना है।

“अभी बात पूरी कहाँ हो गयी है

अभी बात आधी गज़ब रंग में है।”³⁴

शेर के दूसरे मिसरे में गज़ब शब्द के ‘ज ब’ लघु वर्णों को एक गुरुवर्ण के रूप में गिना जाएगा।

(X) **वीर (आल्हा) छंद** - यह सम मात्रिक छंद है। प्रत्येक चरण में 16-15 की यति से 31 मात्राएँ होती हैं। चरण के अंत में गुरु लघु वर्ण होते हैं। उदाहरणार्थ शेर पेश है-

“मंदिर की दीवार तोड़कर उग आया पीपल का पेड़

सभी आस्थाहीन पुजारी घबराया पीपल का पेड़।”³⁵

(XI) **विधाता छंद**- यह सम मात्रिक छंद है। इसके प्रत्येक छंद में 28 मात्राएँ होती हैं। इसमें 1, 8, 15, 22वीं मात्रा लघु होती हैं। डॉ. नरेश ने इसे बहरे हज़ज मुसम्मन सालिम के समतुल्य माना है। उदाहरण निम्नवत है-

“किसी दिन यक-ब-यक सबको बसेरा छोड़ना होगा

क़ज़ा करती नहीं है फ़र्क़ राजा-रंक ज़ानी में।”³⁶

(XII) **सवैया छंद**- यह वार्णिक छंद है जिसके प्रत्येक चरण में 22 से लेकर 26 तक वर्ण होते हैं। इसके अनेक भेद होते हैं। जिनमें से एक दुर्मिल सवैया है जिसके प्रत्येक चरण में 8 सगण होते हैं। उदाहरण प्रस्तुत है-

“तुम ही विधि की अनुपम रचना, विधि की रुत रीति निभाया करो।

चुपके से जो चित्त चुरा लिया तो, अब ऐसे न आँख चुराया करो।”³⁷

रेखांकित वर्णों की एक-एक मात्रा गिरेगी। ‘अनुपम’ में ‘प म’ वर्णों को एक गुरु वर्ण माना है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि समकालीन हिंदी ग़ज़लकारों ने उर्दू व हिंदी छंदों की समानता को दृष्टिगत कर परम्परागत बहरों के साथ उनके समतुल्य हिंदी छंदों में भी ग़ज़लें कहकर हिंदी ग़ज़ल को छंदों की दृष्टि से संपन्न बनाया है। तथा हिंदी ग़ज़ल में छंदों के नवीन आयाम खोले हैं।

6.3 अलंकार योजना

काव्य में अलंकारों का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। ये काव्य के सौंदर्य में वृद्धि करने वाले सहायक गुण धर्म हैं। कविता कामिनी के आभूषण हैं, जिनसे उसके बाह्य सौंदर्य

के साथ आंतरिक सौंदर्य में भी निखार आता है। आचार्य दंडी काव्य की शोभा करने वाले धर्मों को अलंकार कहते हैं। अलंकार चमत्कारपूर्ण उक्ति है। काव्य में चमत्कार की सृष्टि शब्द विशेष के प्रयोग या अर्थ की विशेष भंगिमा से होती है और इस आधार पर अलंकारों के दो भेद होते हैं- शब्दालंकार और अर्थालंकार। ग़ज़ल की एक विशेषता उक्ति वैचित्र्य होने से उसमें अलंकारों का खूब प्रयोग होता है। 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में प्रयुक्त प्रमुख अलंकार निम्न प्रकार है -

शब्दालंकार- जिन अलंकारों में शब्द विशेष के प्रयोग से चमत्कार की सृष्टि होती है, उन्हें शब्दालंकार कहते हैं। हिंदी ग़ज़ल में प्रयुक्त शब्दालंकार निम्न हैं -

अनुप्रास- जिस अलंकार में वर्णों या व्यंजनों की आवृत्ति होती है, वह अनुप्रास अलंकार कहलाता है। अनुप्रास के पाँच भेद होते हैं। छेकानुप्रास व वृत्यनुप्रास के उदाहरण प्रस्तुत हैं

छेकानुप्रास- (वर्णों की एक बार आवृत्ति)- यहाँ नीचे दिए गये शेर के पहले मिसरे में 'स' तथा दूसरे मिसरे में 'छ' वर्ण की एक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास है।

“सोन महलों में सूच नहीं मिलता

सोच की छलनी लगा छान लिया।”³⁸ (रामकुमार कृष्क)

वृत्यनुप्रास- (वर्णों की एकाधिक आवृत्ति)- यहाँ नीचे दिए गये शेर के पहले मिसरे में 'ख' तथा दूसरे में 'द' वर्ण की दो बार आवृत्ति होने से वृत्यनुप्रास है।

“कुछ तो हैं खुद खराब कुछ संगत खराब है।

बेदिल को दिल दिया है मगर गत खराब है।”³⁹ (रामकुमार कृष्क)

यमक :- जहाँ पर शब्द की एक या अनेक बार भिन्न अर्थों में आवृत्ति होती है, वहाँ यमक अलंकार होता है। इसके दो भेद होते हैं-अभंग यमक और सभंग यमक। अभंग यमक में पूरे शब्द की आवृत्ति होती है। तथा सभंग यमक में पूरे शब्द की जगह शब्दांश की आवृत्ति होती है।

अभंग यमक- “सर उड़ाने का शौक है उसको

वो कलम का न सर कलम कर दें।”⁴⁰ (माधव कौशिक)

1. कलम- लेखनी 2. कलम- काटना

सभंग यमक- “बेअदब संगत अगर हो तो असर जाता नहीं

थे नहीं बदनाम या बद फिर भी हम बदतर हुए।”⁴¹ (रामकुमार कृष्क)

1. बदनाम - कुख्यात 2. बद - बुरा 3.- बदतर- बुरे से भी बुरा

श्लेष :- जहाँ पर एक शब्द के प्रसंगवश एकाधिक अर्थ निकलते हैं, वहाँ श्लेष अलंकार होता है

“क्या नदी क्या निगाह क्या ईमान

अब तो जल ही नहीं जलद में भी।”⁴² (जहीर कुरेशी)

शेर में जल का अर्थ नदी के प्रसंग में पानी, निगाह के प्रसंग में शर्म, ईमान के प्रसंग में नैतिकता या धर्म तथा जलद के प्रसंग में पानी या जल है।

पुनरुक्तिप्रकाश- जहाँ शब्द के अर्थ पर जोर देने या उसके भाव को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए बिना अर्थ परिवर्तन के शब्द की आवृत्ति होती है, वहाँ पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार होता है

“रफ़्तार तार-तार है राहें धुआँ-धुआँ

बाएँ के बाईपास की हालत खराब है।”⁴³ (रामकुमार कृष्ण)

अर्थालंकार - जिन अलंकारों में चमत्कार शब्द विशेष के बजाय उसके अर्थ पर आश्रित होता है, उन्हें अर्थालंकार कहते हैं। हिंदी ग़ज़ल में प्रयुक्त प्रमुख अर्थालंकार निम्नानुसार है-

उपमा- जब एक वस्तु की रूप गुण के सादृश्य के आधार पर दूसरी वस्तु से तुलना की जाती है या दोनों में समानता बताई जाती है। वहाँ उपमा अलंकार होता है।

“गत औरत की पेड़ों सी

दुर्गत नदी सरीखी है।”⁴⁴ (देवेन्द्र आर्य)

*** *** *** ***

“हमारा दुख है ये जेठ की तपती दुपहरी-सा

चढ़ेगा और कितना आज पारा कह नहीं सकता।”⁴⁵ (हरेराम समीप)

रूपक:- जहाँ उपमेय या प्रस्तुत पर उपमान या अप्रस्तुत का आरोप होता है, या एक वस्तु को दूसरी वस्तु का रूप दिया जाता है, वहाँ रूपक अलंकार होता है।

“बुरे दिनों ने जिसे मुफ़्त में बेच दिया तक्रदीरों को

अपनी बीती हुई ज़िंदगी रद्दी का अखबार हुई।”⁴⁶ (माधव कौशिक)

परम्परित रूपक- इसमें दो रूपक होते हैं तथा दूसरा पहले की परम्परा में आता है। प्रस्तुत शेर में पहले मन के दर्द को अमरकंटक का रूप देकर उसके बाद में आँसुओं को नर्मदा के जल का रूप देने से परम्परित रूपक है।

“मनदर्द का उद्गम बना है जब अमरकंटक कोई

हम भी अपने आँसुओं में नर्मदा का जल हुए।”⁴⁷ (विनय मिश्र)

उत्प्रेक्षा:- जहाँ उपमेय या प्रस्तुत की उपमान या अप्रस्तुत के रूप में संभावना या कल्पना की जाए, वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार होता है।

“उजला-उजला लिबास और दमकता चेहरा

है लगता जैसे लग गई हो आग पानी में।”⁴⁸ (वशिष्ठ अनूप)

विभावना- जहाँ बिना कारण के कार्य के संपन्न होने का वर्णन किया जाए, वहाँ विभावना अलंकार होता है। इसकी छह स्थितियाँ हो सकती हैं। कुछ इस प्रकार हैं-

बिना कारण के कार्य होना- “बिना बादल हुई बरसात ऐसी

अचानक रुत सुहानी हो रही है।”⁴⁹

(जहीर कुरेशी)

*** **

विरोधी कारण से कार्य होना- “बर्फ अंगार भी है कहीं

बर्फ से हाथ जलते रहे।”⁵⁰

(जहीर कुरेशी)

विशेषोक्ति- विशेषोक्ति में कारण के विद्यमान होने पर भी कार्य का ना होना वर्णित होता है। नीचे शेर में कई धाराओं के बावजूद बदबू दूर न होने का वर्णन होने से विशेषोक्ति अलंकार है।

“धारा-पर-धारा है फिर भी है बदबू भारी

कानूनी सागर की जद में कही जलहरी है।”⁵¹

(रामकुमार कृष्ण)

व्यतिरेक- जहाँ उपमेय को उपमान से किसी बात में बढ़ाकर वर्णित किया जाता है, वहाँ व्यतिरेक अलंकार होता है।

“चांद है खूबसूरत बहुत पर

तेरे जैसा वह हँसता नहीं है।”⁵²

(वशिष्ठ अनूप)

*** **

“दुखों का वजन है पहाड़ों से ज़्यादा

उठाने का अपने को अभ्यास भी है।”⁵³

(विनय मिश्र)

प्रतीप :- जहाँ उपमान को उपमेय से हीन बताकर उपमेय की उत्कृष्टता वर्णित की जाती है, वहाँ प्रतीप अलंकार होता है।

“फूल भी अच्छा लगता है

लेकिन तेरे बाद लगे।”⁵⁴

(वशिष्ठ अनूप)

भ्रांतिमान- जहाँ रूप-गुण के सादृश्य के कारण एक वस्तु में दूसरी वस्तु का भ्रम होना वर्णित हो, वहाँ भ्रांतिमान अलंकार होता है।

“इन्कलाब के कारण हमने जमकर जिंदाबाद किया

पड़ी भाँजनी तलवारों के भ्रम में म्यानें दुनिया की।”⁵⁵(रामकुमार कृष्क)

संदेह:- जहाँ रूप-गुण या अन्य सादृश्य के कारण किसी वस्तु, स्थिति में अन्य वस्तु, स्थिति का संदेह हो और अंत तक निश्चय नहीं हो पाए, वहाँ संदेह अलंकार होता है।

“संकोच है या शर्म है, डर है या और कुछ

हम पारदर्शिता से परस्पर नहीं मिले।”⁵⁶ (जहीर कुरेशी)

*** **

“संदल की महक कि है लोभान का एहसास

उगता है अलस्सुबह तेरे ध्यान का एहसास।”⁵⁷ (राम मेश्राम)

मानवीकरण :- जहाँ प्रकृति के जड़ पदार्थों पर मानवीय क्रियाकलापों का आरोपण कर उन्हें चेतनवत वर्णित किया जाता है, वहाँ मानवीकरण अलंकार होता है।

“कई पत्थर नदी में डूबे-डूबे

पिया करते हैं बस चुपचाप पानी।”⁵⁸ (विनय मिश्र)

*** **

“क्रतल कर आई हैं चरागों का

आके बैठी हैं आँधियाँ गुमसुम।”⁵⁹ (ज्ञान प्रकाश विवेक)

विरोधाभास :- जहाँ किसी वस्तु, गुण या क्रिया में वास्तविक विरोध न होने पर भी विरोध की प्रतीति होती है, वहाँ विरोधाभास अलंकार होता है। उदाहरण निम्नवत है-

“इस मुल्क की हालत प' मेरे दोस्त जरा सोच

जब से हुआ स्वतंत्र तभी से गुलाम है।”⁶⁰ (रामकुमार कृष्क)

*** **

“अजीब-सी है, मुझे बात सच नहीं लगती-

वो पीठ पीछे से, सीने पे वार करते थे।”⁶¹ (जहीर कुरेशी)

असंगति :- जहाँ एक ही समय में कारण एक स्थान पर तथा कार्य किसी दूसरे स्थान पर घटित होना वर्णित किया जाता है, वहाँ असंगति अलंकार होता है। इसमें कारण और कार्य में असंगति वर्णित होती है।

“चुभा तो पाँव में लेकिन हुआ जिगर छलनी

तुम्हारे बाग़ का काँटा गुलाब जैसा था।”⁶² (माधव कौशिक)

*** **

“उठी गाँवों से परिवर्तन की लहरें

औ दिल्ली में सुनामी आ रही है।⁶³

(वशिष्ठ अनूप)

उदाहरण अलंकार- जब एक बात कहकर उसके स्पष्टीकरण के लिए कोई प्रसिद्ध उदाहरण दिया जाता है, वहाँ उदाहरण अलंकार होता है। इसमें ज्यों, जैसे वाचक शब्दों का प्रयोग होता है।

“आदम के साथ हव्वा के रिश्ते की तर्ज पर,

दोनों ने मीठा रिश्ता परस्पर बना लिया।”⁶⁴

(माधव कौशिक)

यहाँ शोध प्रबंध की सीमाओं को देखते हुए अलंकारों के सीमित उदाहरण ही दिये गये हैं। पर यह स्पष्ट है कि हिंदी ग़ज़ल में अलंकारों का भावों की लय में स्वाभाविक रूप में बखूबी खूब प्रयोग हुआ है।

6.4 हिंदी ग़ज़ल में रस परिपाक

भारतीय काव्यशास्त्र में रस को काव्य की आत्मा माना गया है। जिस प्रकार आत्मा के बिना शरीर का कोई अस्तित्व नहीं होता है, उसी प्रकार रस से रहित काव्य की भी कल्पना नहीं की जा सकती है। आचार्य विश्वनाथ रसयुक्त वाक्य को ही काव्य मानते हैं। रस के अभाव में काव्य नीरस और बेजान हो जाता है और उसमें पाठक या श्रोता को प्रभावित करने की क्षमता नहीं रहती है। ग़ज़ल पाठक या श्रोता के दिल-दिमाग में उतरकर उसे भाव विभोर कर देती है। इसके पीछे ग़ज़ल की रसानुभूति की शक्ति ही काम करती है। मूलतः प्रेमिल विधा होने के कारण फ़ारसी और उर्दू ग़ज़ल शृंगार रस से आप्लावित रही है। इधर हिंदी ग़ज़ल का स्वरूप जनवादी एवं यथार्थवादी होने से उसमें शृंगार का निरूपण उर्दू ग़ज़ल की अपेक्षा कम हुआ है। पर उसमें शृंगार के अतिरिक्त अन्य रसों का भी समावेश हुआ है। जो इस प्रकार है।

शृंगार रस- शृंगार को रसराज कहा जाता है। सामाजिक के हृदय का रति स्थायी भाव ही विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के संयोग से परिपक्व अवस्था में पहुँचने पर शृंगार रस कहलाता है। इसमें पति-पत्नी या प्रेमी-प्रेमिका के प्रेम का वर्णन होता है। स्त्री-पुरुष की मानसिक एवं भावात्मक दशाएं संयोग और वियोग में बदलती हैं। इस आधार पर शृंगार के दो भेद होते हैं- संयोग शृंगार और वियोग शृंगार। संयोग में नायक-नायिका के मिलन काल की प्रेमिल दशाओं का तथा वियोग में बिछोहकालीन विरह दशाओं का चित्रण होता है। उदाहरण निम्नवत है-

संयोग शृंगार -

“रूप कंचन तपाकर निकाला हुआ / जिस्म ऐसा कि साँचें में ढाला हुआ।

चाँद निकला तो रौशन हुआ यह जहाँ / तुम को देखा तो मन में उजाला हुआ।

ये नज़र, ये हँसी, ये हया, ये अदा/ तेरा अन्दाज़ सबसे निराला हुआ।”⁶⁵(वशिष्ठ अनूप)
वियोग शृंगार-

रिझाना-रीझना, हँसना-हँसाना, छेड़ना-छिपना

मधुर तकरार, वो अनबन व ठनगन याद आता है।⁶⁶ (वशिष्ठ अनूप)

शांत रस- संसार की नश्वरता व क्षणभंगुरता तथा परमपिता के स्वरूप का बोध होने से हृदय में जो लौकिक विरक्ति का भाव उत्पन्न होता है, उसे निर्वेद कहा जाता है। निर्वेद स्थायी भाव ही विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के संयोग से परिपुष्ट हो शांत रस में परिणत होता है। हिंदी ग़ज़ल में आध्यात्मिक व दार्शनिक सत्य की अभिव्यक्ति में शांत रस का सुंदर परिपाक हुआ है।

“किसी दिन यक-ब-यक सबको बसेरा छोड़ना होगा

क़ज़ा करती नहीं है फ़र्क़ राजा-रंक ज़ानी में।”⁶⁷ (वशिष्ठ अनूप)

*** *** *** ***

“ये प्यार के पल दो पल, जीवन की कमाई हैं

ये महल अटारी सब, बेकार की बातें हैं।”⁶⁸ (वशिष्ठ अनूप)

वात्सल्य रस- शिशुओं की मधुर बाल छवि, उनकी तोतली बोली, बाल सुलभ चेष्टाओं, निश्छल वार्तालाप और क्रियाकलापों को देखकर हृदय में उनके प्रति जाग्रत स्नेह से वात्सल्य रस की उत्पत्ति होती है। हिंदी ग़ज़ल में बालमनोविज्ञान के चित्रण में वात्सल्य रस अभिव्यक्त हुआ है।

“अजनबी को अगर देखें तो अक्सर मुँह छुपाते हैं

झिझकते, झाँकते हैं, ताकते हैं औ लजाते हैं।

कभी नज़दीक जाओ तो ये तुमसे दूर भागेंगे

अगर जाने लगे तो फिर पलटकर ये बुलाते हैं।

न जाने कौन दुलराता है इनको ख़्वाब में आकर

ये अक्सर नींद में भी मुस्कराते खिलखिलाते हैं

यशोदा ने कहा कान्हा से क्यों माखन चुराते हो?

कहा कान्हा ने हँसकर हम तो सबका दिल चुराते हैं।”⁶⁹ (वशिष्ठ अनूप)

हास्य रस- इसका स्थायी भाव हास है। किसी वस्तु, व्यक्ति, स्थिति की विचित्रता के बारे में पढ़ने या सुनने से उत्पन्न काव्य विनोद ही हास्य रस कहलाता है। हास्य का व्यंग्य से नजदीकी रिश्ता होने के कारण उन व्यंग्यात्मक उक्तियों में भी हास्य मिलता है, जो समाज, राजनीति या धर्म की किसी विकृति, विसंगति का उद्घाटन

कर उसका उपहास उड़ाने में समर्थ होती हैं। हिंदी ग़ज़ल में समकालीन समय की विडंबनाओं-विकृतियों के उपहास में हास्य रस का परिपाक हुआ है।

“हैं बहुत ही ख़ास कुल-दीपक हमारे / क्लास दसवीं पास कुल-दीपक हमारे।

शर्म शरमाती है उनके सामने / बेतरह बिंदास कुल-दीपक हमारे।

हैं अँधेरे में भले ही जनम से / फेंकते परकास कुल-दीपक हमारे।”⁷⁰ (रामकुमार कृष्णक)

*** *** *** ***

“लाइन में जाम हो जा यह रोजगार दफ़्तर

रोज़ी के नाम रोज़ा यह रोजगार दफ़्तर।

पाँवों से शुरू होकर कब तक घिसेगा यों ही

हार्थों से शुरू हो जा यह रोजगार दफ़्तर।”⁷¹ (रामकुमार कृष्णक)

करुण रस - प्रिय व्यक्ति के पीड़ित होने या अभीष्ट वस्तु, वैभव के नष्ट होने अथवा दुःखी, पीड़ित या शोकाकुल व्यक्ति को देखने या उसके बारे में पढ़ने, सुनने से हृदय का शोक स्थायी भाव ही परिपक्व होकर करुण रस में व्यक्त होता है। हिंदी ग़ज़ल में वंचित समुदायों की हृदयद्रावक अत्यंत दीन हीन स्थितियों के चित्रण में करुण रस की अभिव्यक्ति हुई है।

“वो भीख मांगता ही नहीं था... इसीलिए,

उस फूल जैसे बच्चे को अंधा किया गया।”⁷² (जहीर कुरेशी)

*** *** *** ***

“होटलों की प्लेट में तकदीर अपनी खोजता

बेवजह पिटता हुआ मनहूस सा बचपन मिला।”⁷³ (जहीर कुरेशी)

रौद्र रस- रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध है। रौद्र रस से तात्पर्य शत्रु द्वारा अपमानित होने अथवा देश या धर्म के अपमान, दुर्गति से उत्पन्न क्रोध है। यद्यपि ग़ज़ल का मृदुल व नाज़ुक मिज़ाज रौद्र रस से मेल नहीं खाता है, पर हिंदी ग़ज़ल का मुख्य स्वर व्यवस्था विरोध का होने से उसमें देश व आमजन की दुर्दशा के लिए जिम्मेवार सत्ता तंत्र के प्रति आक्रोश में रौद्र रस अभिव्यक्त हुआ है।

“देश को लूट कर कानून सिखाती सब को

दोगली कलमुँही सरकार की ऐसी-तैसी।”⁷⁴ (महेश कटारे सुगम)

*** *** *** ***

“क्यों उठ रही हैं लपटें, क्यों हुआ है लाल जंगल

देना पड़ेगा उत्तर, करता सवाल जंगल।

क्यों घास-फूस-फल सब बारूद बन गये हैं

कैसी है आग जिससे लेता उबाल जंगल।”⁷⁵

(वशिष्ठ अनूप)

अद्भुत रस- इसका स्थायी भाव विस्मय है। किसी विस्मयकारी वस्तु, व्यक्ति या स्थिति को देखने या सुनने से सहृदय में जो आश्चर्य का भाव जाग्रत होता है, उसी का वर्णन अद्भुत रस कहलाता है। हिंदी ग़ज़ल में समकाल की विसंगतिपूर्ण स्थितियों के चित्रण में अद्भुत रस व्यक्त हुआ है।

“अचम्भित कर रहे हैं ये नजारे,

बया को बाज दुलराने लगे हैं।”⁷⁶

(वशिष्ठ अनूप)

वीभत्स रस - इसका स्थायी भाव जुगुप्सा है। गंदी और अरुचिपूर्ण वस्तुओं या दृश्यों के वर्णन से हृदय में उत्पन्न ग्लानि से वीभत्स रस की उत्पत्ति होती है। हिंदी ग़ज़ल में सांप्रदायिक घृणा-विद्वेष, आमजन की जुगुप्साजनक दीन-हीन स्थितियों के चित्रण में वीभत्स रस की अभिव्यक्ति हुई है।

“आपसी विद्वेष की मत आग भड़काएं हुजूर

वक्त के चूल्हे पे वरना खूँ उबाला जाएगा।”⁷⁷

(हरेराम समीप)

*** *** *** ***

“देह पर रोज़ आँकी गई सुखियाँ

चीथड़े खून से तर-ब-तर ले चले।”⁷⁸

(रामकुमार कृष्णक)

हिंदी ग़ज़ल में वीर व भयानक रसों की निष्पत्ति नहीं हुई है क्योंकि ये ग़ज़ल की मूल प्रकृति व विषय वस्तु से परे हैं।

6.5 हिंदी ग़ज़ल में प्रतीक योजना

प्रतीक शब्द का सामान्य अर्थ होता है- संकेत, निशान या चिह्न। काव्य में वर्णित कोई वस्तु जब अपने रूप-गुण के सादृश्य के कारण किसी अन्य अप्रस्तुत वस्तु, भाव, विचार का संकेत कर उसका बोध कराए, तो उसे प्रतीक कहा जाता है। हिंदी साहित्यकोश के अनुसार, “प्रतीक का प्रयोग उस दृश्य (अथवा गोचर) वस्तु के लिए किया जाता है, जो किसी अदृश्य (अगोचर वा अप्रस्तुत) विषय का प्रतिविधान उसके साथ अपने साहचर्य के कारण करती है।”⁷⁹ प्रतीक काव्याभिव्यक्ति का एक प्रमुख साधन है। अच्छी कविता संकेतों में बात करती है। काव्य भाषा में यह सांकेतिक शक्ति प्रतीकों से आती है। प्रतीकों से काव्य में साधारण अनुभूति या संवेदना को भी असाधारण रूप में कम शब्दों में आसानी से व्यक्त कर पाठक में भाव

जाग्रत करने की क्षमता आती है। तथा काव्य की रसात्मकता तथा प्रभावशीलता में अभिवृद्धि होती है।

ग़ज़ल सभी काव्यरूपों में अपनी संक्षिप्तता व सांकेतिकता के चलते प्रतीकात्मक काव्यविधा है। ग़ज़ल की एक प्रमुख विशेषता बहुअर्थवता व व्यंजनात्मकता है और प्रतीक मुख्यतः व्यंजना शब्द शक्ति पर आधारित कार्य व्यापार है। इसलिए उसमें प्रतीकों का भरपूर प्रयोग हुआ है। हिंदी ग़ज़ल में प्रारंभिक दौर में उर्दू-फ़ारसी के परंपरागत प्रतीकों का ही ज्यादा प्रयोग हुआ है, किन्तु समकालीन हिंदी ग़ज़लकारों ने हिंदी कविता के प्रतीकों को आत्मसात कर भारतीय समाज और परिवेश से गृहीत प्रतीकों का नवीन अर्थों में प्रयोग किया है। 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में प्रयुक्त प्रतीकों को निम्न वर्गों में विभक्त कर देखा जा सकता है।

प्राकृतिक प्रतीक- प्रकृति के पदार्थ या प्राणी जब किसी भावना, विचार या किसी अन्य वस्तु का प्रतिनिधित्व करते हुए वर्णित किए जाते हैं, तो ये प्राकृतिक प्रतीक कहलाते हैं। हिंदी ग़ज़ल में प्राकृतिक प्रतीकों का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। उदाहरण प्रस्तुत है-

“हर तरफ़ सूखा ही सूखा दूर तक सब्जा नहीं

बाग़ सब उजड़े हुए आबाद सारे बाग़बाँ।”⁸⁰

(रामकुमार कृष्णक)

प्रतीकार्थ :- बाग- देश, बाग़बाँ- सताधीश

“जाने क्या सोचती है नदी

अपनी आँखों में पानी लिए।”⁸¹

(विनय मिश्र)

प्रतीकार्थ :- नदी- औरत

“सिर्फ काँटे हाथ आए हैं चमन के, देखिए

गीत फूलों के हवा हरदम भले गाती रही।”⁸²

(विनय मिश्र)

प्रतीकार्थ:- चमन- देश, फूल- खुशहाली, काँटे- कष्टदायी स्थितियाँ, हवा- सत्ता

“रूबरू होंगी पहाड़ों से कभी जब खाड़ियाँ

देखना होगी उसी दिन यह जमी समतल हुजूर।”⁸³ (महेश अग्रवाल)

प्रतीकार्थ:- पहाड़- पूँजीपति या सताधीश, खाड़ियाँ- गरीब आम जनता, समतल जमीन- आर्थिक समानता

धार्मिक-सांस्कृतिक-पौराणिक प्रतीक- इन प्रतीकों में धर्म, संस्कृति से संबंधित वस्तुओं या व्यक्तियों का प्रतीक के रूप में प्रयोग किया जाता है। इनमें किसी जाति-समाज की धर्म-संस्कृति से संबंधित परंपराएँ, मान्यताएँ, रीतियाँ, रूढ़ियाँ, धार्मिक-पौराणिक मिथक तथा लोक चरित्र सभी कुछ शामिल हो जाते हैं। उदाहरण निम्नवत है-

“जरूरी है कि द्रौपदियाँ स्वयं बाँधे कमर क्योंकि

दुःशासन छोड़ दे तो कृष्ण पट ले भाग जायेंगे।”⁸⁴ (वशिष्ठ अनूप)

प्रतीकार्थ :- द्रौपदी- पुरुष के अत्याचारों से पीड़ित स्त्री, दुःशासन- दुराचारी व्यक्ति, कृष्ण- सदाचारी व्यक्ति

“छद्म-छल से इंद्र आसन पर उछलकर जा चढ़े

किंतु भक्तों के लिए वे सिरफिरे फिर भी नहीं।”⁸⁵ (रामकुमार कृष्ण)

यहाँ इंद्रासन षडयंत्रों से अर्जित सत्ता के सिंहासन का या मठाधीश की पदवी का तथा भक्त ऐसे छली सत्ताधीशों या मठाधीशों के अनुयायियों का प्रतीक है।

वैज्ञानिक या शास्त्रीय प्रतीक-

जब विज्ञान द्वारा आविष्कृत वस्तुओं या यंत्रों अथवा शब्दावली को प्रतीक के रूप में प्रयुक्त किया जाता है, तो ये वैज्ञानिक प्रतीक कहलाते हैं। जब रचनाकार राजनीति शास्त्र, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, रसायन शास्त्र, भौतिक शास्त्र, जीव विज्ञान या अन्य शास्त्रों की तकनीकी शब्दावली का प्रतीक के रूप में प्रयोग करता है, तो ये शास्त्रीय प्रतीक की श्रेणी में आते हैं।

वैज्ञानिक प्रतीक- “दम नहीं दमकलों में बुझाएँ, मुझे

आग पर गोलियाँ दागिए साहबों।”⁸⁶ (रामकुमार कृष्ण)

प्रतीकार्थ :- दमकल- दमनकारी सत्ता, आग- जन विद्रोह / क्रांति चेतना

“एक बूढ़ा-सा रेडियो घर में

खरखराती, उछलती आवाजें।”⁸⁷ (ज्ञानप्रकाश विवेक)

प्रतीकार्थ :- रेडियो- परिवार के बुजुर्ग व्यक्ति

भूगोल शास्त्रीय- “वो ज्वार-भाटे की शैली में व्यक्त होती है

समंदरों के दिलों में जो बेकली है कहीं।”⁸⁸ (जहीर कुरेशी)

प्रतीकार्थ :- ज्वार भाटा- प्रेमावेग

गणित शास्त्रीय- “दिखती है बेचैन इकाई

बढ़ती हुई दहाई क्या है।”⁸ (रामकुमार कृष्ण)

प्रतीकार्थ:- इकाई - शोषित मेहनतकश वर्ग दहाई- शोषक पूंजीपति वर्ग।

राजनीतिक प्रतीक- राजनीतिक प्रतीक के अंतर्गत राजनीति के क्रियाकलापों एवं राजनीतिक शब्दावली को प्रतीक के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। हिंदी गज़लकारों ने राजनीतिक विकृतियों को उजागर करने के लिए राजनीतिक प्रतीकों का खूब प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं-

“राजमहलों के हम जो हुए हो चुके

होंगे अब ईंट-गारा नहीं दोस्तो।”⁹⁰

(रामकुमार कृष्णक)

राजमहल - सत्ताधीश या शासक वर्ग, ईंट गारा-मेहनतकश आम अवाम

“मत गुजर ओ टाट के टुकड़े इधर से

यह समूचा राजपथ ही मखमली है।”⁹¹

(महेश अग्रवाल)

व्यापारिक प्रतीक- इनमें व्यापार-व्यवसाय से संबंधित वस्तुओं और शब्दावली का प्रतीक के रूप में प्रयोग किया जाता है। सामयिक यथार्थ एवं जनवादी अभिव्यक्ति में हिंदी गज़ल में व्यापारिक प्रतीकों का भी खूब प्रचलन हो रहा है।

“खेत-खलिहानों में मातम मंडियों में जश्न है

गो कि मेहनत की कभी किस्मत यहाँ सोई न थी।”⁹²

(रामकुमार कृष्णक)

प्रतीकार्थ:- खेत खलिहान- किसान वर्ग, मंडी- व्यापारी वर्ग

“दाम फ़सलों के घटते जाते हैं

आढ़ती का मुनाफा बढ़ता है।”⁹³

(देवेन्द्र आर्य)

यहाँ फसलों का उचित मूल्य न मिलने से किसानों की बिगड़ती स्थितियों तथा पूँजीपति व्यापारियों के निरन्तर समृद्ध होने को संकेतित किया गया है।

समसामयिक प्रतीक- सामयिक जीवन संदर्भों से जुड़े प्रतीक समसामयिक प्रतीक कहलाते हैं। ये प्रतीक गज़ल को अपने समय के सामान्य जीवन से जोड़कर उसे सामयिक बनाते हैं। हिंदी गज़लकार इन प्रतीकों का प्रयोग कर युग के कटु यथार्थ को बखूबी व्यक्त कर रहे हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं-

“लोग कहते हैं कि ये भी एक फैशन है

उस लता की देह पर पत्ता नहीं कोई।”⁹⁴

(जहीर कुरेशी)

यहाँ लता युवतियों और पत्ता कपड़ों का प्रतीक है। इनके माध्यम से समकाल में पाश्चात्य संस्कृति के अनुकरण से फैशन के नाम पर छोटे कपड़ों के प्रचलन से बढ़ती नग्न संस्कृति का संकेत है।

“सुरक्षित बंद ताले पार कर के

कई चींटे शक्कर तक आ गए हैं।”⁹⁵

(जहीर कुरेशी)

यहाँ शक्कर- सरकारी धन तथा चींटे- राजनीतिक प्रशासनिक वर्ग के प्रतीक हैं। इनके प्रयोग से भ्रष्ट राजनीतिक-प्रशासनिक वर्ग द्वारा तमाम कानूनी व नियमगत प्रतिबंधों के बावजूद सरकारी धन को हड़पने के भ्रष्ट आचरण को संकेतित किया गया है।

“घर में नागफनी का जब वर्चस्व हुआ

कैसे पनपे तुलसी मेरे आँगन की।”⁹⁶

(हरeram समीप)

प्रतीकार्थ:- नागफनी- प्रेमिका या पाश्चात्य संस्कृति, तुलसी-पत्नी या भारतीय संस्कृति
साहित्यिक प्रतीक- जब कोई रचनाकर पूर्व में रचित रचनाओं, उनके पात्रों व चरित्रों, साहित्यिक घटनाओं और साहित्यकारों का प्रतीक के रूप में प्रयोग करता है, तो वे साहित्यिक प्रतीक की श्रेणी में आते हैं। ये प्रतीक नयी रचना को नयी भाव चेतना प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिए शेर पेश है-

“हमारे गाँव का ‘गोबर’ तुम्हारे लखनऊ में है

जवाबी खत में लिखना किस मोहल्ले का निवासी है।”⁹⁷ (अदम गोंडवी)

प्रस्तुत शेर में गोंडवी ने गोदान उपन्यास के पात्र ‘गोबर’ को खेती से विरक्त होकर शहर की ओर पलायन करने वाले ग्रामीण युवा वर्ग के प्रतीक के रूप में प्रयुक्त किया है। संक्षेप में कह सकते हैं कि हिंदी ग़ज़ल प्रतीकों की दृष्टि से बहुत समृद्ध है।

6.6 बिम्ब विधान

बिंब अंग्रेजी शब्द इमेज (Image) का हिंदी पर्याय है। जिसका शाब्दिक अर्थ होता है- चित्र, मूर्ति, प्रतिबिम्ब, प्रतिकृति, प्रतिरूप, धारणा, कल्पना, प्रतिच्छवि आदि। बिंब किसी वस्तु का मानसिक चित्र या काल्पनिक रूप है। काव्य बिंब शब्दार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा निर्मित इंद्रियगोचर मानसिक चित्र है, जिसमें भाव जाग्रत करने की क्षमता होती है। किसी वस्तु, भाव, विचार को कल्पना और मानसिक क्रिया के माध्यम से इन्द्रियगम्य बनाने वाला व्यापार बिंब विधान कहलाता है। लीविस के अनुसार ‘काव्य-बिम्ब एक प्रकार का भाव गर्भित शब्दचित्र है।’ बिंब काव्य रचना का प्रभावी व आवश्यक उपकरण है। कथ्य का संमूर्तन बिम्ब के द्वारा ही संभव होता है। काव्य भाषा में चित्रात्मकता की शक्ति बिंब विधान से ही आती है।

ग़ज़ल जैसी भावप्रधान और संकेतात्मक विधा में बिंबों का विशेष महत्त्व है। हिंदी ग़ज़ल अपने समय के जटिल यथार्थ का बिंबों के माध्यम से प्रभावी रूपायन कर रही है। हिंदी ग़ज़ल में प्रयुक्त बिंबों को इंद्रियों और परिवेश के आधार पर निम्न उप-शीर्षकों में विभक्त कर देखा जा सकता है।

ऐन्द्रिय बिंब- ऐन्द्रिय बिंब ज्ञानेन्द्रियों के आधार पर पाँच प्रकार के होते हैं।

दृश्य बिम्ब- दृश्य बिंब का संबंध दशनेन्द्रिय से है। जब किसी दृश्यमान वस्तु के बारे में पढ़कर या सुनकर मन मस्तिष्क में एक छवि उभरती है। तो वे दृश्य बिंब कहलाते हैं। इनमें मूर्तिमत्ता व चित्रात्मकता की शक्ति सबसे अधिक होती है। उदाहरण पेश है-

दृश्य वस्तु बिंब- “बात ईमान की पूछते हो
मेमना भेड़ियों में खड़ा है।”⁹⁸ (ज्ञानप्रकाश विवेक)

*** **

“उँधती ढिबरी की लौ में डबडबाई आँख ले
हाथ रखे पेट पर मजदूर का आँगन मिला।”⁹⁹ (वशिष्ठ अनूप)

दृश्य व्यापार बिंब-

“दुनिया किसी चलती हुई गाड़ी की तरह है
लटका हुआ हर शख्स सवारी की तरह है।”¹⁰⁰ (ज्ञानप्रकाश विवेक)

श्रव्य बिम्ब - श्रव्य बिंब का का संबंध कर्णद्रिय से होता है। जब किसी काव्य को पढ़कर या सुनकर किसी प्रकार का ध्वन्याभास होता है, जिससे मन मस्तिष्क में एक भावना या छवि जाग्रत होती है, तो वे श्रव्य बिंब की श्रेणी में आते हैं। नाद सौंदर्य पैदा करने वाले बिंब इस श्रेणी में आते हैं।

“बोझ धान का लेकर वो जब हौले-हौले चलती है
धान की बाली-कान की बाली दोनों संग-संग बजती है।
पाँवों में कीचड़ की पायल, मेड़ पे घासों की मखमल
छम्म-छम्म की मधुर तान नूपुर की घंटी बजती है।”¹⁰¹(डी. एम. मिश्र)

*** **

“लगा भीगने नेह से माँ का आँचल
बुलाती हैं बछड़ों को गायें रम्हाकर।”¹⁰² (वशिष्ठ अनूप)

घ्राण बिम्ब या गंधात्मक बिंब- गंध या घ्राण से संबंधित अनुभूतियों का संमूर्तन जिन बिंबों से होता है, वे घ्राण या गंधात्मक बिंब कहलाते हैं। उदाहरण निम्नवत हैं-

“मोटी रोटी साग बधुए का व चटनी की महक
और ऊपर से वह अम्मा की खुशी अच्छी लगी।”¹⁰³ (वशिष्ठ अनूप)

*** **

“निष्कलुष प्यार की भीनी भीनी महक, ताजगी जैसे बच्चों के निश्छल हंसी
इसमें शामिल है माटी का कुछ सोंधापन, खूँ पसीने से हमने सँवारी गजल।”¹⁰⁴
(वशिष्ठ अनूप)

स्पर्श या स्पर्शात्मक बिम्ब- स्पर्श विषयक अनुभूतियों को संवेद्य बनाकर वर्ण्य-विषय के तात्त्विक प्रभाव को मूर्तता प्रदान करने वाले बिंब स्पर्शात्मक बिम्ब कहलाते हैं। उदाहरण के लिए शेर प्रस्तुत है-

“मेहमान हैं और भूख से बच्चे बिलख रहे हैं
माँ उनको गुदगुदा कर हँसाने पर लगी है।”¹⁰⁵ (वशिष्ठ अनूप)

*** **

“मां का आँचल, गोद बहन की और भाई के कांधे दिन
याद बहुत आती बचपन की कुछ पूरे कुछ आधे दिन।”¹⁰⁶
(वशिष्ठ अनूप)

आस्वादय या रसात्मक बिंब- पदार्थों की स्वादगत विशेषताओं या अनुभूतियों के प्रत्यक्षीकरण में सहायक बिंब आस्वादय या रसात्मक बिंब कहलाते हैं। उदाहरणार्थ-

“दांत खट्टे कर नहीं पाया कोई
सिर्फ़ इक अमचूर के सिवा यारों।”¹⁰⁷ (रामकुमार कृष्णक)

मानस बिंब- मानस बिंब वे बिंब हैं, जिनमें ऐंद्रियों बिंबों की उपस्थिति के बावजूद उनका प्रभाव इंद्रियों की अपेक्षा मन या चित पर अधिक होता है। इनमें भाव या विचार की प्रधानता होती है। उदाहरण के लिए शेर प्रस्तुत है-

“कछुए की पीठ पर न शेषफन पे टिकी है
धरती श्रमिक के हाथ पे गर्दन पे टिकी है।”¹⁰⁸ (वशिष्ठ अनूप)

परिवेशगत बिंब - जीवन परिवेश के आधार पर इन्हें निम्न श्रेणियों में विभक्त किया जाता है-

प्राकृतिक बिंब- जब रचनाकर प्रकृति के तत्वों के माध्यम से अपनी बहुआयामी संवेदनाओं या अनुभूतियों का बिंबन करता है, तो वे प्राकृतिक बिंब कहलाते हैं। उदाहरण निम्नवत है -

“फिर हुई सोयी झील में हलचल
कंकरी दी उछाल फिर किसने।”¹⁰⁹ (विनय मिश्र)

*** **

“हो गये सुर्ख होंठ तितली के / चूमकर सुर्ख जाम फूलों का
यह पीते हैं रात भर शबनम / लिख लो रिंदों में नाम फूलों का।”¹¹⁰
(किशन तिवारी)

राजनीतिक बिंब- राजनीतिक चरित्रों, घटनाओं एवं राजनीतिक यथार्थ का संमूर्तन करने वाले बिंब राजनीतिक बिंब की श्रेणी में आते हैं। उदाहरण निम्नवत हैं-

“तोंद के गोदाम कर लबरेज पहले / वायदों से पेट खाली भर दिये होंगे
सिल्क, खादी और आज़ादी पहन कर/कुछ बुतों को चीथड़े सी कर दिये होंगे।”¹¹¹

(रामकुमार कृष्णक)

“काजू भुने प्लेट में ह्विस्की गिलास में
उतरा रामराज विधायक निवास में।”¹¹²

(अदम गोंडवी)

*** *** *** ***

“राजनीति के चूहे जो आजादी की

चादर को हर रोज कुतरते उन्हें सलाम।”¹¹³

(महेश कटारे सुगम)

महानगरीय बिंब- महानगरीय बोध का मूर्तिकरण करने वाले बिंब महानगरीय बिंब कहलाते हैं। इनमें महानगरों का परिवेश एवं वहाँ की यांत्रिक जीवन शैली एवं विसंगतियों का चित्रण होता है। उदाहरण के लिए शेर प्रस्तुत है-

“हरेक शख्स यहाँ प्यास के असर में है

कि एक रेत का दरिया मेरे शहर में है।”¹¹⁴

(ज्ञानप्रकाश विवेक)

*** *** *** ***

“गज़ब की बदहवासी भागते हैं लोग सड़कों पर

यहाँ पर दो घड़ी रुकने की मोहलत ही नहीं शायद।”¹¹⁵ (विनय मिश्र)

मनोवैज्ञानिक बिंब-आधुनिक मानव के मानसिक अंतर्द्वंदों एवं जटिल जीवन व्यवहारों को चित्रित करने वाले बिंब मनोवैज्ञानिक बिंब कहलाते हैं। उदाहरण निम्नवत हैं-

“गिल्टी कांशस को खोदकर देखा

उसमें लाखों तरह के डर निकले।”¹¹⁶

(जहीर कुरेशी)

*** *** *** ***

“वो मन के रोगी हैं, उनका इलाज करवाओ

हमारे दुःख में जो खुशियाँ मनाने लगते हैं।”¹¹⁷

(जहीर कुरेशी)

व्यावसायिक बिंब- पूँजी व्यापारों से जुड़े बिंब व्यावसायिक बिंब की श्रेणी में आते हैं।

उदाहरणार्थ - “दर्द मेरा है किसी खोटी चवन्नी जैसा

सुख के बाज़ार में किस तरह चलाऊंगा उसको।”¹¹⁸ (ज्ञानप्रकाश विवेक)

*** *** *** ***

“वो कारोबारी दिमाग था, सागर-तट पर जा बैठा

लहरें गिन-गिनकर भी उसने लाखों का व्यापार किया।”¹¹⁹

(जहीर कुरेशी)

धार्मिक बिंब- धार्मिक चरित्रों, मान्यताओं, विश्वासों एवं क्रियाकलापों की सहायता से अनुभूतियों का बिंबन धार्मिक बिंबों की कोटि में आता है। उदाहरण निम्नवत हैं-

“नफरत की राजनीति से पैदा हुई कटार
सद्भावना की देवी का संहार कर गयी।”¹²⁰

(जहीर कुरेशी)

*** **

“ये दुखड़ा रो रहे थे आज पंडित जी शिवाले में

कि कम्प्यूटर कथा बाँचेगा ढिबरी के उजाले में।”¹²¹ (अदम गोंडवी)

सामाजिक बिंब- जब रचनाकार अपनी संवेदनाओं और अनुभूतियों के चित्रण के लिए सामाजिक परिवेश एवं रोजमर्रा की जिंदगी से बिंब ग्रहण करता है। तो वे सामाजिक बिंब कहलाते हैं। उदाहरण निम्नवत हैं-

“जहाँ गीला है कंगाली में आटा

वही मेहमान भी आते हैं बाबू।”¹²²

(देवेन्द्र आर्य)

*** **

“चीनी नहीं है घर में लो मेहमान आ गये

महँगाई की भट्टी पे शराफत उबाल दो।”¹²³

(अदम गोंडवी)

वैज्ञानिक-यांत्रिक बिंब- जब रचनाकार वैज्ञानिक यंत्रों या शब्दावली से अपनी भावनाओं या संवेदनाओं का बिंबन करता है, तो वे वैज्ञानिक बिंब कहलाते हैं। उदाहरणार्थ-

“अनवरत काम के बाद भी

कोई 'रोबोट' थकता न था।”¹²⁴

(जहीर कुरेशी)

दार्शनिक बिंब - दार्शनिक विचारों, मान्यताओं और शब्दावली के प्रयोग से अनुभूतियों का संमूर्तन दार्शनिक बिंबों की श्रेणी में आता है। उदाहरण के तौर पर शेर पेश है-

“हैं सियासत तांत्रिकों की साधना

सिद्धि की खातिर इसे शव चाहिए।”¹²⁵

(शिव ओम अंबर)

संश्लिष्ट बिंब - जब एक से अधिक बिंब एक साथ आते हैं, तो वे संश्लिष्ट बिंब कहलाते हैं। उदाहरण के लिए शेर प्रस्तुत है-

“लहराती-सी, गाती-सी, मचलती-सी, लहर-सी

इस रूप की नदी को उफनते हुए देखा।”¹²⁶

(वशिष्ठ अनूप)

इस शेर में दृश्य, श्रव्य व कार्य व्यापार बिंब एक साथ आने से संश्लिष्ट बिंब है। संक्षेप में कह सकते हैं कि हिंदी गज़ल बिंबों की दृष्टि से समृद्ध है। तथा उसमें सभी प्रकार के बिंबों का मनोहारी रूपायन हुआ है।

6.7 हिंदी ग़ज़ल में मिथकीय सौंदर्य

मिथक शब्द हिंदी में अंग्रेजी के मिथ (Myth) के प्रतिशब्द के रूप में प्रचलित हुआ है। अंग्रेजी का मिथ शब्द भी मूलतः यूनानी शब्द माइथोस(Mythos) से उत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ होता है- मुँह से निकला हुआ। कालक्रम में यह शब्द किसी आदिम जाति द्वारा कल्पित तार्किक संगति से रहित पौराणिक आख्यानों, धार्मिक विश्वासों-मान्यताओं-धारणाओं एवं आद्यकथाओं के लिए प्रयुक्त होने लगा क्योंकि इनका आदि रूप भी मौखिक (मुँह से उत्पन्न) था। कालांतर में जब ये पुरावृत या ऐतिहासिक कहानियाँ काल की सीमाओं और मूर्त बंधनों से मुक्त होकर भावकोश रूप में जाति या समाज के सामूहिक अवचेतन में आनुवंशिक रूप से प्रवाहित होने लगती हैं तथा समाज की बदली हुई परिस्थितियों व नए संदर्भों की नये अर्थों में व्याख्या हेतु साहित्य में प्रयुक्त होने लगती हैं, तो मिथक बन जाती है। साहित्यकार मिथक के माध्यम से अपने समकालीन समाज को अतीत की परंपराओं और जीवन इतिहास से जोड़कर वर्तमान के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक परिवेश को समझने, उसकी नये सिरे से पुनर्व्याख्या करने, वर्तमान की समस्याओं का हल ढूँढ़ने तथा समाज में शाश्वत जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा का प्रयास कर भविष्य का मार्ग प्रशस्त करता है।

हिंदी ग़ज़ल मिथक की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध है, क्योंकि उसके पास भारतीय पौराणिक व ऐतिहासिक मिथकों का विशाल कोश है। अरबी-ईरानी संस्कृतियों की मिथक परंपरा भी उसे विरासत में मिली है। यद्यपि उनमें से कुछ ही हिंदी ग़ज़ल में प्रचलित हुए हैं। हिंदी ग़ज़लकार अपने मिथकीय परम्परा बोध एवं गहन जीवन बोध के सहारे वर्तमान दौर में जीवन के हर क्षेत्र में व्याप्त मूल्यहीनता तथा उत्तर आधुनिक दौर की सच्चाइयों को अभिव्यक्त कर रहे हैं। हिंदी ग़ज़ल में प्रयुक्त कुछ मिथक उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत हैं-

“दिनोंदिन रावण की शकल कद्दावर हुई जाती

हमारे दौर का राघव बड़ा लाचार लगता है।”¹²⁷ (वशिष्ठ अनूप)

उक्त शेर में अनूप जी ने राम कथा के मिथकीय पात्र -राम और रावण के प्रसंग से वर्तमान दौर में समाज में बढ़ती मर्यादाहीनता एवं मूल्य विरोधी आचरण शैली तथा सतपथ व सदाचार के राहियों की दुश्वारियों की ओर संकेत किया है।

“हमारी ही बगल से बैठ गाड़ी में निकल जाते

खड़े हलकान है हम देख लंबोदर बहुत खुश हैं।”¹²⁸ (रामकुमार कृष्क)

प्रस्तुत शेर में ग़ज़लकार ने पौराणिक पात्र गणेश जी का ज़िक्र कर पूँजीपतियों की एश्वर्यपूर्ण जीवन शैली तथा गरीब मेहनतकश वर्ग की बदहाल जीवन स्थितियों के बीच में भेदक रेखा खींचते हुए समकालीन दौर की एक बड़ी समस्या-आर्थिक असमानता को रेखांकित किया है।

“वो कृष्ण है शायद कि जो बैठा है महल में

जो द्वार के बाहर है सुदामा-सा लगे।”¹²⁹ (ज्ञानप्रकाश विवेक)

उक्त शेर में पौराणिक पात्र सुदामा के द्वारकाधीश की नगरी में प्रवास की मिथकीय कथा के माध्यम से समकालीन राजनीतिक नेतृत्व की सामंती विलासिता, सत्ता के आमजन के प्रति उपेक्षापूर्ण रवैयें तथा गरीब लोगों की दीन-हीन असहाय दशाओं को अभिव्यक्त किया गया है।

“फजा में हर तरफ ही दर्द का इजहार लगता है

समूचा देश ही धृतराष्ट्र का दरबार लगता है।”¹³⁰ (वशिष्ठ अनूप)

शेर में धृतराष्ट्र के मिथ के माध्यम से राजनीतिक नेतृत्व की स्वार्थपूर्ण पारिवारिक राजनीति, सत्ताधीशों की विवेकशून्यता व उससे उपजी त्रासद स्थितियों का चित्रण है।

“कहीं तलाक, कहीं अग्नि परीक्षाएँ है

आज भी इन्द्र है, गौतम है, अहिल्यायें हैं।”¹³¹ (वशिष्ठ अनूप)

प्रस्तुत शेर में 21वीं सदी में भी पुरुषों का स्त्री के प्रति भोगवादी दृष्टिकोण तथा इससे प्रेरित होकर स्त्री के साथ किये जाने वाले छल-कपट, अपहरण, बलात्कार, हत्या जैसे अत्याचारों को दिखाने के लिए इंद्र, गौतम, अहल्या को मिथ के रूप में लिया गया है।

“राम पड़े यूँ माया मृग के चक्कर में

फिर से सीता को रावण ले जायेगा।”¹³² (वशिष्ठ अनूप)

शेर में आज के दौर में व्यक्ति में भौतिकता और धन की बढ़ती भूख को दिखाने के लिए राम के स्वर्णमृग के चक्कर में फंसने के मिथ तथा इसके कारण संबंधों में बढ़ती दूरियों व समस्याओं को उजागर करने के लिए सीताहरण की घटना के मिथ का प्रयोग हुआ है।

“हैं सियासत विराट-नगरी-सी,

पार्थ इसमें वृहन्नला होगा।”¹³³ (शिवओम अंबर)

यहाँ समकालीन राजनीति में योग्य व्यक्तियों की उपेक्षा, उनकी पहचान मिटाकर उन्हें नपुंसक बनाने तथा उनकी बुरी दशा को वर्णित करने के लिए अर्जुन के विराट नगरी में वृहन्नला बनने की कहानी को मिथ के रूप में ग्रहण किया है।

“गीता में यही कृष्ण ने अर्जुन से था कहा

दुश्मन पे कभी जंग में मत खाड़यो तरस।”¹³⁴ (देवेन्द्र आर्य)

शेर में गज़लकार ने कृष्ण और अर्जुन की महाभारत की घटना को मिथ के रूप में लेते हुए सत्ताधीशों को दुश्मन को उसकी भाषा में जवाब देने का संदेश दिया है।

“माँ सीते ने बहुत सहा

अब रघवीर की बारी है।”¹³⁵ (देवेन्द्र आर्य)

प्रस्तुत शेर में राम और सीता के मिथक के माध्यम से 21वीं सदी में परंपरागत पारिवारिक एवं मर्यादागत बंधनों को तोड़कर सशक्त होती स्त्री के द्वारा पुरुष सत्ता को चुनौती दिए जाने का संकेत है।

“असलियत में तो किसी भी दुष्ट का बिगड़ा है क्या

क्रतुल रावण का हुआ तो बस कहानी में हुआ।”¹³⁶ (माधव कौशिक)

प्रस्तुत शेर में रावण के मिथक के माध्यम से समकालीन दौर में अत्याचारी, अन्यायी, अनैतिक व अपराधी लोगों के बेरोकटोक निर्विघ्न फलने-फूलने की स्थिति को उजागर किया गया है।

“सिवा राम के यह सच्चाई किसे समझ में आएगी

जूठे होकर भी सच्चे हैं बेर समय की शबरी के।”¹³⁷ (माधव कौशिक)

शेर में राम और शबरी के झूठे बेर वाली कथा के माध्यम से आज के दौर में सच्चेप्रेम की सात्विकता, निश्छलता, गहराई, दृढ़ता व दीवानगी को महसूसने वाले सच्चे प्रेमियों के अभाव को अभिव्यंजित किया गया है।

“आदम की गंध पाते ही, खुलते हैं अपने आप

ऐसे भी हमने देखे हैं कुछ द्वार आजकल।”¹³⁸ (जहीर कुरेशी)

इस शेर में आदम का मिथक के रूप में प्रयोग हुआ है, जो कि ईसाई, इस्लाम और यहूदी संस्कृतियों से हिंदी गज़ल में प्रयुक्त होने वाला मिथक है। हिंदी गज़ल मिथक की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध है। उसमें भारतीय धार्मिक-पौराणिक मिथकों का खूब स्वाभाविक प्रयोग हुआ है। कुछ अन्य मिथक द्रष्टव्य हैं-

“समय ललकारता है यक्ष बनकर हर किसी को

युधिष्ठिर-सा यहाँ हर शख्स बेचारा हुआ है।”¹³⁹ (ज्ञान प्रकाश विवेक)

*** **

“प्रभु की मर्जी शम्बूकों को कत्ल करें
पानी फेरें सपनों और अरमानों पर।”¹⁴⁰ (महेश कटारे सुगम)

“है खुरदुरे सवाल उठाना अशिष्टता
गौतम, कपिल, कणाद सुनो और चुप रहो।”¹⁴¹ (महेश कटारे सुगम)

स्पष्ट है कि हिंदी ग़ज़ल में भारतीय धार्मिक-पौराणिक प्रतीकों का खूब प्रयोग हुआ है।

6.8 हिंदी ग़ज़ल में मुहावरों और लोकोक्तियों का लालित्य

लोकोक्तियाँ एवं मुहावरे लोकमानस की अनुभव खान से निसृत अनमोल रत्न हैं। समाज द्वारा भुक्त आनुभविक सत्य जब लक्ष्यार्थ में रूढ़ हो जाता है, तो वही मुहावरों एवं लोकोक्तियों के रूप में अभिव्यक्ति का सशक्त व सबल साधन बन जाता है। मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ किसी समाज के विशिष्ट अर्थयुक्त, मित शब्दों में अमित भाव संपदा संजोये, संकेतात्मक एवं सूत्रात्मक भाषारूप होते हैं। इसलिए इनमें भाषा को मितव्ययता के साथ बरतते हुए भावों को विपुल अर्थ विस्तार के साथ सहजता से व्यक्त करने की क्षमता होती है। भाषा की मौखिक परंपरा से संबद्धता, लोक अनुभवों की समावेशिता, महान चरित्रों के वक्तव्यों की सारगृहीता, जातीय वैचारिक संपदा इन्हें अनुभवसंपन्न, जीवननिर्देशक, आलंकारिक एवं विशिष्ट अर्थपूर्ण बनाती हैं।

मुहावरे वे वाक्यांश हैं, जो अपने शाब्दिक या सामान्य अर्थ से भिन्न विशिष्ट या विलक्षण अर्थ को व्यक्त करते हैं। ये पदबंध लोकजीवन के व्यावहारिक ज्ञान से अर्जित लोक के सामूहिक अवचेतन में विद्यमान गहन अनुभवों के संश्लिष्ट एवं सहज भाषिक रूप होते हैं। जिनमें भावों, विचारों, घटनाओं और परिस्थितियों को सरलता, संक्षिप्तता, स्पष्टता एवं चुटीलेपन के साथ प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करने की क्षमता होती है। इसलिए कोई भी साहित्यकार अपनी रचनाओं में इनके प्रयोग के मोह को छोड़ नहीं पाता है। ग़ज़ल और मुहावरे दोनों में कुछ समानताएँ हैं। संक्षिप्तता, शाब्दिक अर्थ के स्थान पर विशिष्ट अर्थाभिव्यक्ति, गागर में सागर भरना आदि विशेषताएँ दोनों में होती हैं। इसलिए मुहावरेदार भाषा ग़ज़ल की एक महत्वपूर्ण भाषिक विशेषता होती है। हिंदी ग़ज़लकारों ने अपनी ग़ज़लों में मुहावरों एवं लोकोक्तियों का खूब प्रयोग किया है। इनके प्रयोग से हिंदी ग़ज़ल के सौंदर्य में पर्याप्त श्री वृद्धि हुई है। हिंदी ग़ज़ल में प्रयुक्त कुछ मुहावरे द्रष्टव्य हैं -

“उधर जम्हूरित की ढोल पीटे जा रहे हैं वो

इधर पर्दे के पीछे बर्बरीयत है नवाबी है।”¹⁴² (अदम गोंडवी)

*** *** *** ***

“भीड़ जुटाना केवल एक तमाशा है
अपना उल्लू सीधा करने दल निकले।”¹⁴³ (विनय मिश्र)

“रसातल से निकाले जा रहे हैं
गड़े मुर्दे उखाड़े जा रहे हैं।”¹⁴⁴ (विनय मिश्र)

*** *** *** ***

“नकल की कविता बला की शोहरत
असल की शेखी बघारना है।”¹⁴⁵ (राम मेश्राम)

*** *** *** ***

“लोग जलती आग में घी डालते रहे,
है उनके पास लोग, जो दे देंगे जान भी।”¹⁴⁶ (जहीर कुरेशी)

*** *** *** ***

“मैं तो उनको भी जादूगर कहता हूँ
वो जो तिल का ताड़ बनाते रहते हैं।”¹⁴⁷ (जहीर कुरेशी)

*** *** *** ***

“सिर मुंडाते ही ओले पड़े
लोग सिर को बचाते रहे।”¹⁴⁸ (जहीर कुरेशी)

*** *** *** ***

“रोज चूक कर चाटना, है उनकी रणनीति
जो 'बयान' दे कर करें, 'फेक' खबर के खेल।”¹⁴⁹ (जहीर कुरेशी)

*** *** *** ***

“अभी हालात काबू में नहीं है
अभी हथियार डाले जा रहे हैं।”¹⁵⁰ (वशिष्ठ अनूप)

*** *** *** ***

“सबके दिल का दुश्मन है
सबकी आंख का तारा भी।”¹⁵¹ (माधव कौशिक)

*** *** *** ***

“कब से हम जान हथेली पे लिए बैठे हैं
आइए सामने छुप करके घात क्या करना।”¹⁵² (माधव कौशिक)

*** *** *** ***

“मत ऐसे ख्वाब दिखाओ,

हम पानी-पानी हो जाते हैं।”¹⁵³

(डी एम मिश्र)

*** *** *** ***

“फर्क उन पर न कुछ भी पड़े

लोग चिकने घड़े हो गये।”¹⁵⁴

(महेश कटारे सुगम)

*** *** *** ***

“किसी के हाथ पीले हो रहे हैं

कहीं पर जिस्म नीले हो रहे हैं।”¹⁵⁵

(महेश कटारे सुगम)

लोकोक्तियाँ- लोकोक्ति शब्द दो शब्दों से मिलकर बनता है- लोक और उक्ति। इस तरह लोकोक्ति का शाब्दिक अर्थ होता है- लोक में प्रचलित उक्ति या कहावत। लोकोक्तियाँ लोक जीवन के अनुभवों, आदर्शों एवं शिक्षाओं पर आधारित वे वाक्य हैं, जो जनसामान्य के बीच परम्परागत रूप में वर्षों से प्रचलित हैं। ये लोक के अनुभव कौशल की सारगर्भित, संक्षिप्त, सटीक, मार्मिक एवं प्रभावी अभिव्यक्ति है। जो भाषा को असरदार व आकर्षक बनाने के साथ उसमें लोकरंग भरती हैं। हिंदी ग़ज़ल में लोकोक्तियों का आकर्षक व मनोरम प्रयोग हुआ है।

“उस जगह आगे कुआँ था और पीछे खाइयाँ

हम जहाँ होते रहे हैं मुद्दतों तक कामयाब।”¹⁵⁶

(विनय मिश्र)

*** *** *** ***

“जिए आक्रोश की मुद्रा में रह कर

‘मगर’ से बैर है दरिया में रह कर।”¹⁵⁷

(जहीर कुरेशी)

*** *** *** ***

“एक कहावत इस युग में भी सच्ची लगती है

ऊँची थी दूकान, मगर फीका पकवान हुआ।”¹⁵⁸

(जहीर कुरेशी)

*** *** *** ***

“कुछ होता तो खो जाने का डर भी साथ लगा रहता

आगे नाथ न पीछे पगहा किससे नज़र चुराना जी।”¹⁵⁹

(देवेन्द्र आर्य)

*** *** *** ***

“सुनी कहावत थी कभी देख लिया साक्षात

होनहार बिरवान के होत चीकने पात।”¹⁶⁰

(डी.एम.मिश्र)

*** *** *** ***

“ढूँढ़ रहा खोया अनुराग घर से बाहर तक
अपनी डफली-अपना राग घर से बाहर तक।”¹⁶¹ (डी.एम.मिश्र)

*** *** *** ***

“छाछ को फूँक फूँक पीते हैं
जो सुगम दूध के जले आये।”¹⁶² (महेश कटारे सुगम)

*** *** *** ***

“शांति के प्रस्ताव हम रखते रहे
छातियों पर मूँग वो दलता रहा।”¹⁶³ (महेश कटारे सुगम)

*** *** *** ***

“आज का दौर ही कल अपना लिख रहा होगा
पूत के पाँव पालने में नज़र आते हैं।”¹⁶⁴ (किशन तिवारी)
हिंदी ग़ज़ल में कुछ उर्दू फ़ारसी के मुहावरे भी प्रयुक्त हुए हैं। कुछ
उदाहरण निम्न हैं-

“एक राजा को बचाने का खेल क्या कहिए
खप गई फ़ौज़ शह बचे कि मात और हुई।”¹⁶⁵ (रामकुमार कृष्णक)

*** *** *** ***

“लोग जैसे जी रहे हैं दाद मिलनी चाहिए
है नहीं खुशियाँ मगर खुशफ़हमियाँ कम क्या करें।”¹⁶⁶ (रामकुमार कृष्णक)

*** *** *** ***

“कई हैं मोर्चे जिनको फतह करना हमीं को है
उतर आए हैं मैदाँ में सियासत छोड़ घेरो की।”¹⁶⁷ (रामकुमार कृष्णक)

कह सकते हैं कि हिंदी ग़ज़ल में मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रचुर व मनोहारी प्रयोग हुआ है। लेकिन मुहावरों व लोकोक्तियों के शब्दों के क्रम में परिवर्तन, मूल शब्दों की जगह पर्यायवाची शब्दों के प्रयोग एवं प्रयोगशीलता के चक्कर में असावधानी व कलाकौशल के अभाव में कहीं-कहीं सौंदर्य में व्याघात भी हुआ है। फिर भी इनसे हिंदी ग़ज़ल के सौंदर्य में पर्याप्त वृद्धि हुई है।

6.9 शब्द शक्ति

पूर्ण अर्थ को प्रकट करने वाली भाषिक इकाई वाक्य हैं। वाक्य की अर्थ प्रकट करने की शक्ति उसमें प्रयुक्त शब्दों में निहित होती है। शब्द की अर्थ शक्ति असीम

होती है। और एक ही शब्द के प्रसंग से अनेक अर्थ निकलते हैं। किसी प्रसंग विशेष में शब्द के निश्चित अर्थ का बोध शब्द शक्ति के द्वारा होता है। शब्द में निहित अर्थ की प्रतीति कराने वाले व्यापार को ही शब्द शक्ति कहते हैं। यह शब्द और अर्थ के संबंध पर आधारित है। इस संबंध से शब्द तीन प्रकार के होते हैं- वाचक, लक्षक व व्यंजक। और उनके तीन प्रकार के अर्थ होते हैं-वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ व व्यंग्यार्थ। इनके आधार पर शब्द शक्तियाँ भी तीन प्रकार की होती हैं- अभिधा, लक्षणा और व्यंजना।

इक्कीसवीं सदी की हिंदी ग़ज़ल आधुनिक जीवन सत्यों तथा समकालीन यथार्थ को बड़े सशक्त शब्दों में अभिव्यक्त कर रही है। इसमें प्रयुक्त शब्द मात्र अर्थ-संप्रेषण का साधन नहीं हैं, बल्कि ये भाव, विचार और संवेदना की गहन अभिव्यक्ति के माध्यम हैं। इस संदर्भ में हिंदी ग़ज़ल में निहित शब्द शक्तियों का विवेचन आवश्यक है, जो इस प्रकार है।

अभिधा- शब्द के शाब्दिक या साक्षात् संकेतित या मुख्य अर्थ का बोध कराने वाली शब्द शक्ति को अभिधा कहते हैं। इसमें शब्द अपने सामान्य प्रचलित या प्राथमिक अर्थ में प्रयुक्त होता है। साहित्यकार किसी वस्तु या स्थिति का यथार्थ चित्रण करने के लिए अभिधा का सहारा लेता है। वैसे तो ग़ज़ल व्यंजना अधिकता है, परन्तु 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल का चरित्र यथार्थवादी होने के कारण उसमें अभिधा की प्रधानता है। कुछ उदाहरण निम्नवत हैं -

“रक्षा, सौदा, विकास या खेती

रुतबा बढ़ता गया दलालों का।”¹⁶⁸

(देवेन्द्र आर्य)

*** *** *** ***

“उनसे अपना 'लिव इन' तक का रिश्ता था

उस जीवन में हम छह साल शरीक रहे।”¹⁶⁹

(जहीर कुरेशी)

*** *** *** ***

“व्हाट्स एप्प, ईमेल चले तो अब बच्चे

माँ-बापू को चिट्ठी लिखना भूल गए।”¹⁷⁰

(हरेराम समीप)

उक्त शेरों में ग़ज़लकारों ने अपने समय के यथार्थ को चित्रित करने के लिए ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जिनमें वस्तु, स्थिति या भाव का स्पष्ट उल्लेख है। अतः ये अभिधा शक्ति के उदाहरण हैं।

लक्षणा- शब्द के मुख्यार्थ में बाधा होने पर रुढ़ि या प्रयोजन के सहारे वाच्यार्थ से संबंधित अन्य अर्थ का बोध कराने वाली शब्द शक्ति को लक्षणा कहते हैं। जब शब्द

का अभिधागत प्राथमिक अर्थ अनुपयुक्त या अप्रासंगिक हो जाता है, तो उससे संबद्ध गौण अर्थ ग्रहण किया जाता है, जिसका आधार रूढ़ि या प्रयोजन होता है। इन आधारों पर लक्षणा के दो भेद होते हैं- रूढ़ि लक्षणा और प्रयोजनवती लक्षणा। हिंदी ग़ज़लकार सामाजिक-राजनीतिक प्रसंगों के सांकेतिक चित्रण के लिए लक्षणा का प्रभावी प्रयोग कर रहे हैं। कुछ उदाहरण निम्नवत हैं-

रूढ़ि लक्षणा- जहाँ मुख्यार्थ में बाधा होने पर रूढ़ि या प्रचलन के कारण अन्य अर्थ ग्रहण किया जाता है, वहाँ रूढ़ि लक्षणा होती है।

“बनकर दिल का शूल रही है बदमाशी

वहीं आज फल फूल रही है बदमाशी।”¹⁷¹ (महेश कटारे सुगम)

यहाँ बदमाशी ‘फल फूल रही है’ के मुख्यार्थ में बाधा है। अतः रूढ़ि के सहारे इसका अर्थ ‘बढ़ रही है’ या ‘उन्नति कर रही है’ लिया जायेगा। यहाँ अपराधों के बढ़ने तथा अपराधियों के उन्नति करने की स्थिति की ओर संकेत है।

“आँख पर पट्टी रहे और अकल पर ताला रहे

अपने शाहे वक्त का यूँ मर्तबा आला रहे।”¹⁷² (अदम गोंडवी)

प्रयोजनवती लक्षणा- जहाँ मुख्यार्थ में बाधा होने पर किसी विशेष प्रयोजन से शब्द का अन्य अर्थ ग्रहण किया जाता है, वहाँ प्रयोजनवती लक्षणा होती है। उदाहरणार्थ-

“घर के पेटों के लिए पीठ अबोला बचपन

ऐसे बचपन कहीं हो तो जवानी कहिए।”¹⁷³ (रामकुमार कृष्क)

यहाँ घर, पेट और पीठ के मुख्यार्थ में बाधा होने से लक्षणा शब्द शक्ति है। प्रयोजन से घर का अर्थ घर के निवासी, पेट का अर्थ भोजनादि ज़रूरतें व पीठ का अर्थ सहारा लिया जाएगा।

प्रयोजनवती लक्षणा के दो भेद होते हैं - गौणी लक्षणा और शुद्ध लक्षणा

गौणी लक्षणा- जहाँ मुख्यार्थ में बाधा होने पर सादृश्य संबंध (रूप गुण, धर्म की समानता) के आधार पर अन्य अर्थ ग्रहण किया जाए, वहाँ गौणी लक्षणा होती है।

“कौन सुनता है यहाँ मजलूम की चीखें

कुर्सियों पर देखें केवल शिलाएँ है।”¹⁷⁴ (महेश अग्रवाल)

उक्त शेर में कुर्सियों पर शिलाएँ होने के मुख्यार्थ में बाधा है। शिलाओं के जड़ता के गुण से सादृश्य के आधार पर इसका अर्थ सत्ता के सिंहासन पर संवेदनहीन राजनेताओं के आरूढ़ होने से हैं।

शुद्धा लक्षणा- मुख्यार्थ में बाधा होने पर सादृश्य के अतिरिक्त अंगांगि, आधाराधेय, कार्य-कारण जैसे अन्य संबंधों के आधार पर अर्थ ग्रहण किया जाए, वहाँ शुद्धा लक्षणा होती है।

“झोंपड़ी की तो खैर फ़ितरत थी

हमने देखीं अटारियाँ गुमसुम।”¹⁷⁵

(ज्ञानप्रकाश विवेक)

उक्त शेर में आधाराधेय संबंध से झोंपड़ी का अर्थ झोंपड़ी में रहने वाले गरीब लोगों एवं अटारी का अर्थ अट्टालिकाओं में रहने वाले अमीरों से हैं।

व्यंजना- अभिधा और लक्षणा के द्वारा अपना अर्थ बोध कराने के बाद अन्य गूढ़ अर्थ को प्रकट करने वाली शब्द शक्ति को व्यंजना कहते हैं। व्यंजना में शब्द अपने मुख्य या गौण अर्थ के साथ कोई अन्य सूक्ष्म अर्थ संप्रेषित करता है, जो प्रत्यक्ष रूप से नहीं कहा गया है। इसमें कथन के संदर्भ के अनुसार शब्दों के अलग-अलग अर्थ निकलते हैं। व्यंजना के दो भेद होते हैं- शाब्दी और आर्थी। गज़ल भावप्रवण व बहुअर्थी विधा है। व्यंजना ही गज़ल को यह भावात्मक सौंदर्य व बहुअर्थवता प्रदान करती है। हिंदी गज़ल में आर्थी व्यंजना का प्रचुर प्रयोग हुआ है।

“कल हरियाली की बातें थी अब रेत यहाँ पर उड़ती है

अब आगे हम जाने कैसे संसार से होकर गुजरेंगे।”¹⁷⁶

(विनय मिश्र)

प्रस्तुत शेर में हरियाली व रेत शब्द के धरती, रिश्तों तथा मूल्यों के संदर्भ में अलग अलग अर्थ निकलने से व्यंजना शब्द शक्ति है। कुछ अन्य उदाहरण इस प्रकार हैं-

“लौटकर जा रहे गुफाओं में

दूर जाने की बात करते हैं।”¹⁷⁷

(पढिए तो आँख पाइए)

*** *** *** ***

“लोग रहते थे जिन मकानों में

खूब बदले हैं वो दुकानों में।”¹⁷⁸

(रामकुमार कृष्णक)

*** *** *** ***

“हमको 'तुलसी के राम' याद रहे

हम 'कबीरा के राम' भूल गए।”¹⁷⁹

(जहीर कुरेशी)

6.10 व्यंग्य

व्यंग्य आजकल अंग्रेजी के आयरनी(Irony) या सेटायर(Satire) के पर्याय के रूप में प्रचलित है। भारतीय काव्यशास्त्र में इसके लिए व्यंग्यार्थ से भिन्न विपरीत लक्षणा तथा संस्कृत में व्यंग शब्द का प्रयोग मिलता है जिसका अर्थ होता है कटाक्ष,

ताना, तिरस्कार पूर्ण आलोचना आदि। व्यंग्य विकृतियों पर तंज कसने तथा हंसाते हुए गहरी बात कहने की कला है। आज व्यंग्य हासपरिहास से आगे एक प्रकार का उपहास बन गया है। यह सुखदायक स्थितियों से उत्पन्न हास नहीं, बल्कि विकृतियों और विद्रूपताओं की बखिया उधेड़ने से पैदा होने वाली हँसी है। यह एक साहित्यिक शैली है, जिसमें साहित्यकार किसी व्यक्ति, परिस्थिति, संस्था या समाज की उसकी दुर्बलताओं के चलते उपहासपूर्ण आलोचना करता है, उस पर कटाक्ष करता है। इसमें किसी व्यक्ति, विषय या संस्था की विद्रूपताओं को उजागर करने के लिए उसकी कुरूपताओं को व्याजनिंदा के साथ इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है कि उसकी विकृतियाँ बिना प्रत्यक्ष उल्लेख के स्वतः स्पष्ट हो जाए। साहित्य में इसका प्रयोग सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक एवं अन्य क्षेत्रों में व्याप्त विसंगतियों, विकृतियों, विद्रूपताओं को उपहासपूर्ण ढंग से उजागर कर उनके उन्मूलन की चेतना जाग्रत करने के उद्देश्य से किया जाता है। यह साहित्यकार के हाथों में वह अस्त्र है, जिसके माध्यम से वह समाज की विकृतियों-विडंबनाओं की ग्रंथियों पर बिना खून खराबा किये तलवार की सी तीक्ष्ण शैली से भिन्न हास्यपूर्ण शैली में मधुर मुस्कान के साथ गहरी चोट करता है। हजारी प्रसाद द्विवेदी व्यंग्य को परिभाषित करते हुए लिखते हैं-, "व्यंग्य वह है, जिसे कहने वाला अधरोष्ठ में हँस रहा हो और सुनने वाला तिलमिला उठा हो और फिर भी कहने वाले को जवाब देना अपने को और भी उपहासास्पद बना लेना हो जाता है।"¹⁸⁰

समकालीन हिंदी ग़ज़ल का स्वरूप जनवादी व यथार्थवादी है। हिंदी ग़ज़लकार जीवन व जगत के सौंदर्य के काल्पनिक वर्णन के स्थान पर वर्तमान में जीवन और जगत के सौंदर्य के बिगड़ने के पीछे कारणभूत व्यवस्थाओं की विकृतियों व विडम्बनाओं का पर्दाफाश कर रहे हैं, विद्रूप व्यवस्था के प्रति आक्रोश व्यक्त कर रहे हैं। इसके लिए वे व्यंग्य के हथियार को उपहास की चादर में लपेटकर प्रस्तुत कर रहे हैं। वे राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक व अन्य क्षेत्रों की विकृतियों की शल्य चिकित्सा के लिए व्यंग्य को उपकरण के रूप में प्रयुक्त कर रहे हैं। अतः समकालीन हिंदी ग़ज़ल में प्रभावी व्यंग्यात्मकता हावी है। सोदाहरण विवेचन प्रस्तुत है

“आप लिखकर कीजिए या मुँहजुबानी कीजिए

देश अब खुशहाल है बातें सुहानी कीजिए

हर तरफ सब्ज़ा ही सब्ज़ा है कहीं बंजर नहीं

अथ समंदर में उतरकर बागबानी कीजिए।

भूख अब मुद्दा नहीं है मुद्दा भूखे हैं जो

उनसे कहिए भूख ही की मेजबानी कीजिए।”¹⁸¹ (रामकुमार कृषक)

उक्त शेरों में गज़लकार ने देश में सब ओर खुशहाली होने की बात कह कर ब्याजनिंदा से आजादी के बाद आम जन की भूखमरी एवं बदहाल जीवन स्थितियों को उजागर करते हुए सत्ता द्वारा प्रचारित विज्ञापनी विकास पर सशक्त व्यंग्य किया है।

“ला रहे हैं वो सभी कुछ ला रहे/ जो नहीं अब तक मिला पाएँगे हम।

आदतन खाएँगे वो सब कुछ अगर / सेहतन कम और गम खाएँगे हम।”¹⁸²

(रामकुमार कृषक)

उक्त शेरों में गज़लकार ने आमजन के लिए सभी सुख-सुविधाओं की सुलभता की बात करने वाले सत्ताधीशों की वादों व आश्वासनों की झूठी एवं स्वार्थपूर्ण राजनीति तथा राजनीतिक भ्रष्टाचार पर व्यंग्य किया है।

“हमें कुछ कम नहीं सौंपा हमारे रहनुमाओं ने

हमारी पीठ अहसानों से उनके ही लदी तो है।”¹⁸³ (रामकुमार कृषक)

प्रस्तुत शेर में रामकुमार कृषक जी ने सत्ताधीशों के प्रति कृतज्ञता के माध्यम से आम जनता की पीड़ादायक स्थितियों के लिए जिम्मेदार सत्ता वर्ग की जन उपेक्षित नीतियों व कार्यप्रणाली पर व्यंग्य किया है।

“ऊसर में अंकुरों की क्या बात रूख फूटे

नोटों के बीज बोजा यह रोजगार दफ़्तर।”¹⁸⁴ (रामकुमार कृषक)

इस शेर में कृषक जी ने सरकार की रोजगार नीतियों, रोजगार कार्यालयों की निकम्मी व भ्रष्ट कार्य प्रणाली पर सशक्त व्यंग्य किया है।

“अगर रोका नहीं खादी में बैठे माफियाओं को

किसी दिन सारे नियमों का ये कत्लेआम कर देंगे

कसम गाँधी की खाकर कर रहे दिन-रात घोटाले

फिरंगी जो न कर पाये वो ये हुक्काम कर देंगे।”¹⁸⁵ (वशिष्ठ अनूप)

उक्त शेरों में गज़लकार वशिष्ठ अनूप जी ने राजनीतिक नेतृत्व के अपराधीकरण, संविधान व नियम विरोधी आचरण शैली, बगुला भगतिआ चरित्र तथा भ्रष्ट व सत्ता की स्वार्थपूर्ण राजनीति को उजागर कर समकालीन राजनीति की इन विकृतियों पर व्यंग्य किया है। यद्यपि यहाँ राजनीति के प्रति आक्रोश की जल्दबाजी में शेरों में सांकेतिकता की जगह सपाटबयानी आ गई है।

“मौसम बहुत मनोहारी है/ नहीं कोई भी लाचारी है
 अधिकारी सब दूध घुले हैं/ हर नेता जन हितकारी है
 नारी भी है पूर्ण सुरक्षित/ पुरुष न कोई व्यभिचारी है
 संविधान के सभी पुजारी/ जन गन मन आज्ञाकारी है
 करता नहीं किसान खुदकुशी/ फसलों पर रंगत तारी है
 जीते सब खुशहाल ज़िन्दगी/ शान, बान, सुख, खुदारी है
 सब हाथों को काम मिला है/ खत्म आज बेरुजगारी है।”¹⁸⁶

(महेश कटारे सुगम)

महेश कटारे सुगम की उक्त ग़ज़ल सत्ताधीशों द्वारा की जाने वाली चहुँमुखी विकास की बयानबाजी या विज्ञापनबाजी की व्यंग्य के हथियार से बखिया उधेड़ती है।

“वह तो पैदाइशी विधायक है

सेवा को जजमानी कहता है”¹⁸⁷

(देवेन्द्र आर्य)

उक्त शेर में ग़ज़लकार देवेन्द्र आर्य जी ने भारतीय राजनीति में परिवारवाद या वंशवाद की विकृति पर व्यंग्य किया है

“मन्दिर की सीढ़ियों पर दीपक जला रहा हूँ

यानी कि ईश्वर को रस्ता दिखा रहा हूँ।”¹⁸⁸

(ज्ञानप्रकाश विवेक)

उक्त शेर में धर्म के नाम पर प्रचलित ढोंग, पाखंड व आडम्बरों, अंधविश्वासों व रूढ़िवादिता पर व्यंग्य किया गया है।

“मुझे अब झूठ से कहना पड़ेगा

अधिकतर लोग सच्चे हो गए हैं।”¹⁸⁹

(जहीर कुरेशी)

प्रस्तुत शेर में जहीर कुरेशी जी ने समकालीन दौर में सत्य जैसे मानवीय मूल्यों के पतन तथा लोगों में बढ़ती झूठ की प्रवृत्ति पर व्यंग्य किया गया है।

“तुमसे कहा ये जाएगा अब इम्तिहान में

हिन्दी का पर्चा कीजिए इंग्लिश जुबान में।”¹⁹⁰

(हरेराम समीप)

उक्त शेर में हरेराम समीप जी ने आज़ादी के 70 वर्षों के बाद भी भारतीयों के अंग्रेजीयत की मानसिकता से मुक्त नहीं होने, इसके विपरीत अंग्रेजी के प्रति बढ़ते मोह तथा शिक्षा के माध्यम के रूप में अंग्रेजी का बोलबाला बढ़ने की स्थिति पर व्यंग्य किया है।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि हिंदी ग़ज़ल में व्यंग्य का खूब प्रयोग हुआ है। हिंदी ग़ज़लकारों ने सामयिक समय में जीवन के हर क्षेत्र में व्याप्त विसंगतियों,

विद्रूपताओं, विकृतियों की पोल खोलने के लिए व्यंग्य का बतौर हथियार सशक्त प्रयोग किया है। हिंदी ग़ज़ल में व्यंग्य प्रयोग में भाव या संवेदना की तो गहरी तीव्रता दिखाई देती है, लेकिन उस अनुपात में शैल्पिक कसावट की कमी खलती है।

6.11 हिंदी ग़ज़ल में शैल्पिक दोष

दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों की लोकप्रियता से प्रभावित हो हिंदी के बहुत से कवि और रचनाकर रातोंरात दुष्यंत कुमार बनने की जल्दबाज़ी में ग़ज़ल के शास्त्रीय ज्ञान के ठीक अध्ययन एवं साधना की ज़हमत उठाये बगैर ग़ज़ल रचना की ओर प्रवृत्त होते हैं। और ग़ज़ल रचना के रिकॉर्ड बनाने की होड़ में बड़ी संख्या में ग़ज़लें लिखते हैं, जिससे हिंदी में ग़ज़लों का पहाड़ तो खड़ा हो जाता है। परन्तु उनमें से बहुत कम ग़ज़लें ही शिल्प की कसौटी पर पूर्णतया खरी उतरती हैं और अधिकांश ग़ज़लों में तरह-तरह के शैल्पिक या काव्यदोष दृष्टिगत होते हैं। ग़ज़ल के शास्त्रीय विद्वानों ने ग़ज़ल में रहने वाले ऐसे बहुत से दोषों का निरूपण किया है। यहाँ 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में लक्षित प्रमुख दोषों का विवेचन किया जा रहा है-

रदीफ़ संबंधी दोष (ऐबे रदीफ़)- जब ग़ज़ल के मतले का रदीफ़ मतले को छोड़कर अन्य किसी शेर की प्रथम पंक्ति (मिसरा-ए-उला) में आता है, तो वहाँ रदीफ़ संबंधी दोष होता है। उदाहरण निम्न प्रकार है-

“जो उलझकर रह गई है फाइलों के जाल में
गाँव तक वह रोशनी आएगी कितने साल में।
जिसकी कीमत कुछ न हो इस भीड़ के माहौल में
ऐसा सिक्का ढालिए मत जिस्म की टकसाल में।”¹⁹¹ (अदम गॉडवी)

यहाँ ग़ज़ल के मतले में प्रयुक्त ‘में’ रदीफ़ ग़ज़ल के आखिरी शेर के मिसरा-ए-उला में आने से रदीफ़ संबंधी दोष (ऐबे रदीफ़) है।

क्राफ़िया संबंधी दोष (ऐबे क्राफ़िया)- जहाँ ग़ज़ल के शेरों में प्रयुक्त क्राफ़िया शब्दों की तुकांतता (ध्वनि साम्यता) किसी भी तरह से भंग होती है, वहाँ क्राफ़िया संबंधी दोष होता है। उदाहरण निम्नवत है-

“हम बहुत स्पष्ट हैं पर आप क्या हो
एक अधूरे पृष्ठ है पर आप क्या हो
मुफ़लिसों की बात ही कम्युनिज्म है गर
हां तो हम कम्युनिस्ट है पर आप क्या हो।”¹⁹² (महेश कटारे सुगम)

यहाँ काफ़िया युक्त शब्दों 'स्पष्ट', 'पृष्ठ' व 'कम्युनिस्ट' में अंतिम वर्ण 'ष्ट', 'ष्ठ' व 'स्ट' में साम्य नहीं होने से काफ़िया दोष है। क्योंकि हिंदी में अन्त्यानुप्रास में 'ट' के साथ 'ठ' तथा 'ष' के 'स' को दोष माना जाता है। यद्यपि उर्दू में यह जायज़ है

“गूंगों को भी कहते सुनते देखा है / रिश्तो को भी तनहा होते देखा है

दुख सुख का देखा सूखापन हरयाली / सबका ही तो वक्त बदलते देखा है।”¹⁹³

यहाँ 'सुनते' 'होते' 'बदलते' काफ़िया शब्दों में स्थाई अक्षर त +ए है तथा चपल अक्षर 'न' 'ह' 'ल' है। परंतु इन अक्षरों में स्वर साम्य नहीं होने के कारण काफ़िया दोष है। क्योंकि ग़ज़ल के काफ़ियों में चपल अक्षर में भी स्वर साम्य ज़रूरी है।

श्रुतिकटुत्व दोष- जब किसी शेर में कर्णकटु शब्दों का प्रयोग होता है, तो वहाँ श्रुतिकटुत्व दोष माना जाता है। यह दोष मुख्यतः 'ट' वर्ग के वर्णों या संयुक्त वर्णों के प्रयोग के कारण होता है। हिंदी ग़ज़ल में समकाल के कटु यथार्थ की अभिव्यक्ति में कई जगह ऐसे कठोर शब्दों का प्रयोग देखने को मिलता है, जो ग़ज़ल के नाज़ुक मिज़ाज पर चोट करते हैं। उदाहरणस्वरूप शेर प्रस्तुत है-

“बेवजह खुसफुस करेंगी दाँत फाड़े जाएँगी

इस कदर पहले कहाँ करती थीं ठट्टा लड़कियाँ।

बाख़ूशी होने लगी हैं खुद कुजातों की सगी

खानदानों की जड़ों में डाल मट्टा लड़कियाँ।”¹⁹⁴ (रामकुमार कृष्क)

ग्राम्यत्व दोष- जहाँ ग़ज़ल के किसी शेर में ग्रामीण बोलचाल के गँवारू शब्दों का प्रयोग होता है, वहाँ ग्राम्यत्व दोष होता है। नीचे शेर में प्रयुक्त भोंडी शब्द गँवारू है।

“और हुई भोंडी, बदरंगी

कैसी नई तस्वीर बनाई।”¹⁹⁵ (महेश कटारे सुगम)

अश्लीलत्व दोष (ऐबे ज़म)- जहाँ ग़ज़ल के किसी शेर में भद्दे, वीभत्स, अश्लील या लज्जाजनक, घृणोत्पादक शब्दों या वाक्यांशों या भावों का प्रयोग होता है, वहाँ अश्लीलत्व दोष (ज़म की खामी) होता है। हिंदी ग़ज़ल में व्यवस्था विरोध की तल्खी में होश खो कुछ ग़ज़लकारों ने अश्लीलता सूचक शब्दों का प्रयोग किया है।

उदाहरणार्थ-

“हर घर सुलग रहा है हर जन उबल रहा है

भँड़वे सुना रहे हैं संसद में लंतरानी।”¹⁹⁶ (वशिष्ठ अनूप)

*** **

“सुनते थे कानून बहुत है ताकतवर

लेकिन वह कुत्ते, बिल्ली का गू निकला।”¹⁹⁷

(महेश कटारे सुगम)

पुनरुक्ति दोष- जहाँ किसी शेर में एक ही अर्थ को प्रकट करने वाले एक से अधिक शब्दों या वाक्यांशों का प्रयोग होता है, वहाँ पुनरुक्ति दोष होता है।

“किसकी ठोंके पीठ किसे शाबाशी दें

किसको सौँपे खुशियाँ किसे उदासी दे।”¹⁹⁸

(रामकुमार कृष्णक)

उक्त शेर में पीठ ठोकना और शाबाशी देना दोनों वाक्यांश एक ही अर्थ के वाची हैं।

अक्रमत्व दोष- जहाँ किसी शेर में शब्दों का क्रम सही नहीं हो, अर्थात् कोई शब्द अपने उचित स्थान पर प्रयुक्त न होकर गलत स्थान पर प्रयुक्त होता है, वहाँ अक्रमत्व दोष होता है। ग़ज़लकार बह के वज़न की बंदिशों के चक्कर में शब्दों का गलत स्थान पर प्रयोग करते हैं। उदाहरण के तौर पर शेर पेश है-

“सिर्फ़ इतनी सी इल्तिज़ा है आँख वालों से

किसी अंधे की नू लाठी का सहारा छीनो।”¹⁹⁹

(डी.एम.मिश्र)

अनावश्यक या अधिक पदत्व दोष (ऐबे हश्व)- जहाँ किसी शेर में बह के मात्राक्रम के मुताबिक मात्राओं को पूरा करने की कोशिश में कोई अनावश्यक या फ़ालतू शब्द भर्ती कर लिया जाता है, वहाँ अधिक/अनावश्यक पदत्व दोष होता है। कभी-कभी ग़ज़ल में बहर के वजन को पूरा करने के लिए के, ये, तो, भी, ही जैसे शब्दों को भर्ती कर लिया जाता है, जिससे शेर में कसाव नहीं रहता है। और उसकी स्वाभाविकता नष्ट होती है। बतौर उदाहरण शेर प्रस्तुत है-

“सदी अठारवीं की ओर ही ले जा रहे हमको

वो रखना चाहते सबको कुरआं, वेदों, पुरानों तक।”²⁰⁰

(महेश कटारे सुगम)

“सपनों के फूल- वूल तजुर्बों की गंध है

अनमोल मुहब्बत है, मुहब्बत ख़राब है।”²⁰¹

(रामकुमार कृष्णक)

यहाँ पहले शेर के पहले मिसरे में ‘ही’ एवं दूसरे शेर में ‘वूल’ का प्रयोग अनावश्यक है।

च्युत संस्कृति दोष (व्याकरणिक दोष)-

जहाँ किसी शेर की रचना में व्याकरण के नियमों के विरुद्ध शब्दों का प्रयोग होता है, वहाँ च्युत संस्कृति दोष होता है। किसी शेर में अशुद्ध शब्द या लिंग, वचन, कारक के ऋटिपूर्ण प्रयोग से यह दोष होता है। इसकी स्थितियाँ निम्नवत हैं-

शब्द संबंधी दोष-

जहाँ किसी शेर में व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध शब्द का प्रयोग होता है, वहाँ चयुत संस्कृति दोष होता है। कभी-कभी ग़ज़लकार बह के अरकान को पूरा करने के लिए शब्दों में तोड़ मरोड़ करते हैं, जिससे यह दोष होता है।

“मिली प्रशंसा हिंसा के हालातों को

दुहराने का चलन बढ़ा अभ्यासों में।”²⁰²

(महेश कटारे सुगम)

यहाँ हालातों शब्द अशुद्ध है। हालत का बहुवचन हालात होता है, हालातों नहीं।

लिंग संबंधी दोष- जहाँ किसी शेर में प्रयुक्त क्रियापदों का लिंग कर्ता के लिंग के अनुरूप नहीं होता है। वहाँ लिंग संबंधी दोष होता है।

“लहलहाती खेतियाँ थे झूमती फसलें भी थे

लौटकर देखा जो खुद को दूर तक बंजर हुए।”²⁰³

(रामकुमार कृष्णक)

शेर में खेतियाँ और फसलें स्त्रीलिंग शब्दों के साथ पुल्लिंग क्रियारूप ‘थे’ का प्रयोग अशुद्ध है।

“पढ़े जब आयतें मस्जिद तो मंदिर को मज़ा आये

पहुँचना चाहिए आवाज घंटी की अज़ानों तक।”²⁰⁴

(महेश कटारे सुगम)

वचन संबंधी दोष- किसी शेर में कर्ता के वचन के अनुरूप क्रिया का वचन नहीं होने से वचन संबंधी दोष होता है। एक वचन कर्ता के साथ बहुवचन क्रियारूप या बहुवचन कर्ता के साथ एक वचन क्रिया रूप का प्रयोग होने से यह दोष होता है।

“एक अदद हैं वस्त्र हमारे पास सुनो

वही ओढ़ने भी हैं वही बिछाने हैं।”²⁰⁵

(महेश कटारे सुगम)

यहाँ वस्त्र की संख्या एक (अदद) है। अतः एक वस्त्र के साथ “ओढ़ने” व “बिछाने” बहुवचन क्रिया का प्रयोग होने से वचन संबंधी दोष है।

“मंदिर की दीवार तोड़कर उग आया पीपल का पेड़

सभी आस्थाहीन पुजारी घबराया पीपल का पेड़।”²⁰⁶

(ज्ञानप्रकाश विवेक)

सभी के प्रयोग से पुजारी बहुवचन है। अतः ‘घबराया’ एकवचन क्रिया का प्रयोग अशुद्ध है।

कारक चिह्न (परसर्ग) संबंधी दोष- जहाँ किसी शेर में कारक चिह्नों का अशुद्ध प्रयोग होता है, वहाँ कारक चिह्न संबंधी दोष होता है।

“आरक्षण की आग लगी है जातिवाद की पोखर में

बड़े-बड़े उतरे कीचड़ में मत चूके चौहान हुए।”²⁰⁷

(रामकुमार कृष्णक)

“वादे करते आसमान के तारों की

पर भूखों को रोटी न दे पाते हैं।”²⁰⁸

(महेश कटोर सुगम)

उक्त शेरों में ‘की’ के स्थान पर ‘के’ परसर्ग का प्रयोग होना चाहिए।

असंगत या अनमेल दोष (ऐबे शतुरगुर्वा)- किसी शेर में दो असंगत शब्दों, विचारों, विषयों, कालों को रखने से उत्पन्न दोष को असंगत या अनमेल दोष कहा जाता है। उर्दू में इसे शतुरगुर्वा कहा जाता है। जिसका आशय शतुर यानी शतुरमुर्ग और गुर्वा यानी बिल्ली की बेमेल जोड़ी जैसी असंगति से होता है। यह असंगति तीन प्रकार की हो सकती है- 1. एक संबंध सूचक या सर्वनाम संबंधी 2. काल संबंधी दोष 3. विषय संबंधी दोष

कालगत दोष (शतुर गुरबा ज़मानी)- जब किसी शेर के मिसरों में कालगत असंगति या अशुद्धि हो, वहाँ काल संबंधी दोष होता है। जब शेर के एक मिसरे में क्रिया का रूप किसी काल का हो तथा दूसरे मिसरे में किसी दूसरे काल का हो, तो वहाँ यह दोष होता है।

“एक बारिश बादलों के साथ थी

एक बारिश आँसुओं के साथ है।”²⁰⁹

(विनय मिश्र)

सर्वनाम संबंधी दोष (शतुर-गुरबा-सीगी)- जब किसी शेर में सर्वनाम शब्दों का गलत प्रयोग होता है, वहाँ सर्वनाम संबंधी दोष (शतुर-गुरबा-सीगी) होता है।

“भरी क्लास में व्याकुल थे भूख से बच्चे

मिला था हुक्म कि मैंने, उन्हें हँसाना था।”²¹⁰

(ज्ञानप्रकाश विवेक)

21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल के शिल्प विधान के विवेचन के पश्चात निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि हिंदी ग़ज़ल का शब्द भंडार अत्यंत समृद्ध है और उसमें भाषा रूपों की विविधता है। छंद विधान की दृष्टि से भी हिंदी ग़ज़ल सम्पन्न है। यद्यपि बहर संबंधी अशुद्धियाँ भी मिलती हैं। इसके साथ आलंकारिकता, व्यंग्यात्मकता, प्रतीकात्मकता व बिंबात्मकता के प्रभावी प्रयोग से हिंदी ग़ज़ल की प्रभावशीलता में पर्याप्त वृद्धि हुई है। इन खूबियों के साथ हिंदी ग़ज़ल में कुछ खामियाँ भी दृष्टिगत होती हैं। उसमें सत्ता के प्रतिरोध में भाषा का संयम भंग हुआ है, तो कटु यथार्थ की अभिव्यक्ति में ग़ज़ल की नाजुक मिज़ाजी पर आघात हुआ है। तथा बहरों का अनुशासन टूटा है। अभिधा की प्रधानता होने से उसमें सपाटबयानी आई है। तथा अनेक तरह के शैल्यिक दोष दृष्टिगत होते हैं। इस कारण कहीं-कहीं हिंदी ग़ज़लों

में उर्दू ग़ज़ल जैसी ग़ज़लियत का अभाव दिखाई देता है। यदि इन दोषों को ठीक से समझ लिया जाए और ग़ज़ल के शास्त्रीय नियमों के समुचित ज्ञान के बाद ग़ज़ल रचना की ओर प्रवृत्त हुआ जाए, तो इन दोषों से बचा जा सकता है और अच्छी शायरी की जा सकती है। अच्छी बात यह है की हिंदी ग़ज़ल के शिल्प विधान में उत्तरोत्तर निखार आ रहा है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डी.एम. मिश्र, समकाल की आवाज, पृ. 94
2. अदम गोंडवी, समय से मुठभेड़ पृ. 52
3. ज्ञानप्रकाश विवेक, गुप्तगू अवाम से है, पृ. 31
4. शिव ओम अंबर, विष पीना विस्मय मत करना, पृ.13
5. जहीर कुरेशी, बोलता है बीज भी, पृ. 94
6. विनय मिश्र, जिंदगी आने को है, पृ. 23
7. डी.एम.मिश्र, वह पता ढूँढे हमारा, पृ. 102
8. अदम गोंडवी, समय से मुठभेड़, पृ. 52
9. शिव ओम अंबर, विष पीना विस्मय मत करना, पृ.13
- 10.वशिष्ठ अनूप, छंद तेरी हँसी का, पृ. 61
- 11.अदम गोंडवी, समय से मुठभेड़, पृ. 52
- 12.रामप्रकाश पथिक, हिंदी गज़ल का सौंदर्यशास्त्र, पृ. 151
- 13.वहीं पृ. 195
14. वहीं पृ. 196
- 15.जहीर कुरेशी, बोलता है बीज भी, पृ. 22
- 16.विनय मिश्र, जिंदगी आने को है, पृ. 8
- 17.विनय मिश्र, लोग जिंदा है, पृ. 47
- 18.वशिष्ठ अनूप, छंद तेरी हंसी का, पृ. 65
- 19.विनय मिश्र, लोग जिंदा है पृ. 46
- 20.ज्ञानप्रकाश विवेक, हिंदी गज़ल की विकासयात्रा, पृ. 91
- 21.बानो साएमा, समकालीन हिंदी गज़ल पहचान और परख, पृ. 224
- 22.अदम गोंडवी, समय से मुठभेड़, पृ. 47
- 23.ज्ञान प्रकाश विवेक, घाट हजारों इस दरिया के, पृ. 65
- 24.माधव कौशिक, सारे सपने बागी है, पृ. 33
- 25.जहीर कुरेशी, बोलता है बीज भी, पृ. 31
- 26.जहीर कुरेशी, दोहों से दोहा गज़लों तक, पृ. 98
- 27.वशिष्ठ अनूप, छंद तेरी हंसी का, पृ. 39
- 28.विनय मिश्र, लोग जिंदा है, पृ. 46
- 29.कौशिक माधव, सारे सपने बागी है, पृ. 56

- 30.ज्ञानप्रकाश विवेक, हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा, पृ. 92
- 31.विनय मिश्र, तेरा होना तलाशूं, पृ. 82
- 32.ज्ञानप्रकाश विवेक, हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा, पृ. 92
- 33.ज्ञानप्रकाश विवेक, घाट हजारों इस दरिया के, पृ. 65
- 34.विनय मिश्र, जिंदगी आने को है, पृ. 8
- 35.ज्ञानप्रकाश विवेक, हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा, पृ. 93
- 36.वशिष्ठ अनूप, छंद तेरी हंसी का, पृ. 62
- 37.वशिष्ठ अनूप, घरों पर गिद्ध मंडराने लगे हैं, पृ. 68
- 38.रामकुमार कृषक, पढ़िए तो आँख पाइए, पृ. 38
39. वही पृ. 97
- 40.माधव कौशिक, अंगारों पर नंगे पांव किंडले संस्करण, पृ. 59
- 41.रामकुमार कृषक, पढ़िए तो आँख पाइए, पृ. 113
- 42.जहीर कुरेशी, रास्तों से रास्ते निकले, पृ. 74
- 43.रामकुमार कृषक, पढ़िए तो आँख पाइए, पृ. 97
- 44.देवेंद्र आर्य, मन कबीर, पृ. 83
- 45.हरeram समीप, यह नदी खामोश है, पृ. 56
- 46.माधव कौशिक, अंगारों पर नंगे पांव किंडले संस्करण, पृ. 25
- 47.विनय मिश्र, लोग जिंदा हैं, पृ. 110
- 48.वशिष्ठ अनूप, मशालें फिर जलाने का समय है, पृ. 49
- 49.जहीर कुरेशी, रास्तों से रास्ते निकले, पृ. 27
- 50.जहीर कुरेशी, जिंदगी से बड़ा जिंदगी का समर, पृ. 105
- 51.रामकुमार कृषक, पढ़िए तो आँख पाइए, पृ. 49
- 52.वशिष्ठ अनूप, छंद तेरी हंसी का, पृ. 99
- 53.विनय मिश्र, सच और है, पृ. 28
- 54.वशिष्ठ अनूप, रोशनी की कोपलें, पृ. 87
- 55.रामकुमार कृषक, पढ़िए तो आँख पाइए, पृ. 27
- 56.जहीर कुरेशी, जिंदगी से बड़ा जिंदगी का समर, पृ. 32
- 57.राम मेश्राम, आग में उड़ान, पृ.119
- 58.विनय मिश्र, लोग जिंदा है, पृ. 15
- 59.ज्ञान प्रकाश विवेक, गुफ्तगू अवाम से है, पृ. 51

- 60.रामकुमार कृषक, पढ़िए तो आँख पाइए, पृ. 31
- 61.जहीर कुरेशी, बोलता है बीज भी, पृ. 66
- 62.माधव कौशिक, अंगारों पर नंगे पांव किंडले संस्करण, पृ. 23
- 63.वशिष्ठ अनूप, मशालें फिर जलाने का समय है, पृ. 74
- 64.कौशिक माधव, अंगारों पर नंगे पांव किंडले संस्करण, पृ. 54
- 65.वशिष्ठ अनूप, छंद तेरी हँसी का, पृ. 60
- 66.वही पृ. 59
- 67.वही पृ. 62
- 68.वहीं पृ. 116
- 69.वही पृ. 105
- 70.रामकुमार कृषक, पढ़िएतो आँख पाइए, पृ. 147
- 71.वही पृ. 45
72. सं. मधु खराटे, जहीर कुरेशी चुनिंदा गज़लें, पृ. 114
- 73.सं. जहीर कुरेशी, सादगी का सौंदर्य; वशिष्ठ अनूप का सृजन, पृ. 59
- 74.महेश कटारे सुगम, अभी इम्कान बाकी है, पृ. 110
- 75.वशिष्ठ अनूप, छंद तेरी हँसी का, पृ. 71
- 76.वही पृ. 78
- 77.हरeram समीप, हरeram समीप चयनित गज़लें, पृ. 33
- 78.रामकुमार कृषक, पढ़िए तो आँख पाइए, पृ. 44
- 79.रामप्रकाश पथिक, हिंदी गज़ल का सौंदर्यशास्त्र, पृ. 178
- 80.रामकुमार कृषक, पढ़िए तो आँख पाइए, पृ. 141
- 81.विनय मिश्र, लोग जिंदा है, पृ. 115
- 82.विनय मिश्र, तेरा होना तलाशूं, पृ. 95
- 83.सं. शैलेंद्र कुमार शैली, राग भोपाली पत्रिका, जुलाई 2016, पृ. 24
- 84.सं. जहीर कुरेशी, सादगी का सौंदर्य; वशिष्ठ अनूप का सृजन, पृ. 121
- 85.रामकुमार कृषक, पढ़िए तो आँख पाइए, पृ. 164
- 86.वही पृ. 33
- 87.ज्ञानप्रकाश विवेक, कागजी छतरियां बनाता हूँ, पृ. 63
- 88.जहीर कुरेशी, बोलता है बीज भी, पृ. 45
- 89.रामकुमार कृषक, पढ़िए तो आँख पाइए, पृ. 168

- 90.वही पृ. 41
- 91.सं. शैलेंद्र कुमार शैली, राग भोपाली पत्रिका, जुलाई 2016, पृ. 10
- 92.रामकुमार कृषक, पढ़िए तो आँख पाइए, पृ. 98
- 93.साएमा बानो, समकालीन हिंदी ग़ज़ल पहचान और परख, पृ. 197
- 94.जहीर कुरेशी, बोलता है बीज भी, पृ.112
- 95.जहीर कुरेशी, रास्तों से रास्ते निकले, पृ. 71
- 96.हरेराम समीप, यह नदी खामोश है, पृ. 31
- 97.अदम गोंडवी, समय से मुठभेड़, पृ. 55
- 98.ज्ञानप्रकाश विवेक, घाट हजारों इस दरिया के, पृ. 35
- 99.सं. जहीर कुरेशी, सादगी का सौंदर्य; वशिष्ठ अनूप का सृजन, पृ. 120
100. ज्ञानप्रकाश विवेक, कागजी छतरियां बनाता हूँ, पृ. 116
101. डी.एम.मिश्र, रोशनी का कारवां, पृ. 63
102. वशिष्ठ अनूप, छंद तेरी हंसी का, पृ. 71
103. वही पृ. 32
104. वही पृ. 45
105. सं. जहीर कुरेशी, सादगी का सौंदर्य; वशिष्ठ अनूप का सृजन, पृ. 121
106. वही पृ. 121
107. साएमा बानो, समकालीन हिंदी ग़ज़ल पहचान और परख, पृ.189
108. सं. जहीर कुरेशी, सादगी का सौंदर्य; वशिष्ठ अनूप का सृजन, पृ. 120
109. विनय मिश्र, सच और है, पृ. 61
110. किशन तिवारी, भूख से घबरा कर, पृ. 61
111. रामकुमार कृषक, पढ़िए तो आँख पाइए, पृ. 28
112. अदम गोंडवी, समय से मुठभेड़, पृ. 70
113. महेश कटारे सुगम, आशाओं के नए महल, पृ. 102
114. ज्ञानप्रकाश विवेक, कागजी छतरियां बनाता हूँ, पृ. 63
115. विनय मिश्र, जिंदगी आने को है, पृ. 93
116. साएमा बानो, समकालीन हिंदी ग़ज़ल पहचान और परख, पृ.185
117. जहीर कुरेशी, बोलता है बीज भी, पृ. 99
118. ज्ञानप्रकाश विवेक, आँखों में आसमां, पृ. 31
119. सं. मधु खराटे, जहीर कुरेशी चुनिंदा ग़ज़लें, पृ. 73

120. जहीर कुरेशी, पेड़ तनकर भी नहीं टूटा, पृ. 19
121. सं. ओम निश्चल, धरती की सतह पर, पृ. 25
122. देवेंद्र आर्य, किताब के बाहर, पृ. 56
123. अदम गोंडवी, समय से मुठभेड़, पृ. 56
124. जहीर कुरेशी, रास्तों से रास्ते निकले, पृ. 63
125. शिव ओम अम्बर, विष पीना विस्मय मत करना, पृ. 39
126. वशिष्ठ अनूप, छंद तेरी हँसी का, पृ. 52
127. सं. जहीर कुरेशी, सादगी का सौंदर्य; वशिष्ठ अनूप का सृजन, पृ. 45
128. रामकुमार कृषक, पढ़िए तो आँख पाइए, पृ.148
129. ज्ञानप्रकाश विवेक, गुफ्तगू अवाम से है, पृ. 66
130. सं. जहीर कुरेशी, सादगी का सौंदर्य; वशिष्ठ अनूप का सृजन, पृ. 45
131. वशिष्ठ अनूप, छंद तेरी हँसी का, पृ. 158
132. वशिष्ठ अनूप, रोशनी खतरे में है, पृ. 29
133. शिव ओम अंबर, विष पीना विस्मय मतकरना पृ. 8
134. देवेंद्र आर्य, उमस, पृ. 103
135. देवेंद्र आर्य, मन कबीर, पृ. 38
136. माधव कौशिक, नयी उम्मीद की नयी दुनिया, पृ. 39
137. माधव कौशिक, अंगारों पर नंगे पांव किंडले संस्करण, पृ. 46
138. जहीर कुरेशी, रास्तों से रास्ते निकले, पृ. 92
139. ज्ञानप्रकाश विवेक, घाट हजारों इस दरिया के, पृ.103
140. महेश कटारे सुगम, दुआएँ दो दरख्तों को, पृ. 90
141. वही पृ. 61
142. अदम गोंडवी, समय से मुठभेड़, पृ. 59
143. विनय मिश्र, लोग जिंदा हैं, पृ. 79
144. विनय मिश्र, सच और है, पृ. 51
145. राम मेश्राम, आग में उड़ान, पृ. 71
146. जहीर कुरेशी, निकला न दिग्विजय को सिकंदर, पृ.112
147. जहीर कुरेशी, रास्तों से रास्ते निकले, पृ. 59
148. वही पृ. 97
149. जहीर कुरेशी, दोहों से दोहा गज़लों तक, पृ.103

150. सं. जहीर कुरेशी, सादगी का सौंदर्य; वशिष्ठ अनूप का सृजन, पृ.190
151. माधव कौशिक, अंगारों पर नंगे पांव किंडले संस्करण, पृ. 53
152. सं. लालचंद गुप्त मंगल, माधव कौशिक सर्जन की समीक्षा पृ. 50
153. डी.एम.मिश्र, लेकिन सवाल टेढ़ा है, पृ. 34
154. महेश कटारे सुगम, प्रतिरोधों के पर्व, पृ. 33
155. महेश कटारे सुगम, प्यार के साये, पृ. 28
156. विनय मिश्र, लोग जिंदा हैं, पृ. 29
157. जहीर कुरेशी, बोलता है बीज भी, पृ. 88
158. जहीर कुरेशी, रास्तों से रास्ते निकले, पृ. 82
159. देवेंद्र आर्य, उमस, पृ. 42
160. डी.एम.मिश्र, वह पता ढूँढे हमारा, पृ. 20
161. डी.एम.मिश्र, रोशनी का कारवां, पृ. 10
162. महेश कटारे सुगम, प्रतिरोधों के पर्व, पृ. 50
163. महेश कटारे सुगम, सारी खींचतान में फरेब ही फरेब है, पृ.16
164. किशन तिवारी, मैं तुम हो जाऊँ, पृ. 53
165. रामकुमार कृषक, पढ़िए तो आँख पाइए, पृ.37
166. वही पृ. 60
167. वही पृ. 176
168. देवेंद्र आर्य, जो पीवे नीर नैना का, पृ. 50
169. जहीर कुरेशी, निकला न दिग्विजय को सिकंदर, पृ. 32
170. हरेराम समीप, हरेराम समीप चयनित गज़लें, पृ. 60
171. महेश कटारे सुगम, कुछ तो है, पृ. 103
172. अदम गोंडवी, समय से मुठभेड़, पृ. 43
173. रामकुमार कृषक, पढ़िए तो आँख पाइए, पृ. 56
174. सं. शैलेंद्र कुमार शैली, राग भोपाली पत्रिका, जुलाई 2016, पृ. 15
175. ज्ञानप्रकाश विवेक, गुफ्तगू अवाम से है, पृ. 51
176. विनय मिश्र, लोग जिंदा हैं, पृ. 14
177. रामकुमार कृषक, पढ़िए तो आँख पाइए, पृ. 65
178. वही पृ. 79
179. जहीर कुरेशी, रास्तों से रास्ते निकले, पृ. 17

180. साएमा बानो, समकालीन हिंदी ग़ज़ल पहचान और परख, पृ. 203
181. रामकुमार कृषक, पढ़िए तो आँख पाइए, पृ. 81
182. वही पृ. 88
183. वही पृ. 101
184. वही पृ. 45
185. सं. जहीर कुरेशी, सादगी का सौंदर्य; वशिष्ठ अनूप का सृजन, पृ.190
186. महेश कटारे सुगम, अय हय हय, पृ. 101
187. देवेंद्र आर्य, उमस, पृ. 12
188. ज्ञानप्रकाश विवेक, घाट हजारों इस दरिया के, पृ. 54
189. जहीर कुरेशी, रास्तों से रास्ते निकले, पृ. 38
190. हरeram समीप, यह नदी खामोश है, पृ. 81
191. अदम गोंडवी, समय से मुठभेड़, पृ. 50
192. महेश कटारे सुगम, ऐसी तैसी, पृ. 40
193. वही पृ. 37
194. रामकुमार कृषक, पढ़िए तो आँख पाइए, पृ. 90
195. महेश कटारे सुगम, कुछ तो है, पृ. 45
196. सं. जहीर कुरेशी, सादगी का सौंदर्य; वशिष्ठ अनूप का सृजन, पृ. 77
197. महेश कटारे सुगम, अभी इम्कान बाकी है, पृ. 30
198. रामकुमार कृषक, पढ़िए तो आँख पाइए, पृ.163
199. डी.एम.मिश्र, लेकिन सवाल टेढ़ा है, पृ. 55
200. महेश कटारे सुगम, दुआएँ दो दरख्तों को, पृ. 88
201. रामकुमार कृषक, पढ़िए तो आँख पाइए, पृ. 97
202. महेश कटारे सुगम, शुक्रिया, पृ. 13
203. रामकुमार कृषक, पढ़िए तो आँख पाइए, पृ.113
204. महेश कटारे सुगम, दुआएँ दो दरख्तों को, पृ. 88
205. महेश कटारे सुगम, लाहौल वला कुव्वत, पृ. 54
206. ज्ञानप्रकाश विवेक, हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा, पृ. 93
207. रामकुमार कृषक, पढ़िए तो आँख पाइए, पृ.130
208. महेश कटारे सुगम, लाहौल वला कुव्वत, पृ. 38
209. विनय मिश्र, जिंदगी आने को हैं, पृ. 75
210. ज्ञानप्रकाश विवेक, घाट हजारों इस दरिया के, पृ.106

उपसंहार

उपसंहार

ग़ज़ल का उद्भव अरबी ज़बान की ज़मीन पर हुआ। जन्म से प्रेमी स्वभाव की ग़ज़ल जब अपनी जननी ज़बान से अन्य ज़बानों की यात्रा करती है, तो वह अपने प्रेम के मूल संस्कार को सँजोये रखते हुए अन्य भाषाओं के भाषिक एवं काव्यात्मक संस्कारों से अपने काव्य व्यक्तित्व को सँवारती और समृद्ध करती है। यह अरबी, फ़ारसी से हिंदी में आती है। हिंदी में अपनी शैशवास्था में प्रेम भावों के साथ लड़खड़ाते हुए कदम बढ़ाने वाली ग़ज़ल आधुनिक काल तक आते-आते सयानी हो जाती है। और हिंदी कविता के काव्य संस्कारों से अपने व्यक्तित्व को विस्तृत व परिष्कृत करती है। दुष्यंत कुमार जैसे कुशल शिल्पी का संग-सानिध्य पाकर अपने में खोई रहने वाली तथा प्रेम व शृंगार के मधुर गीत गाने वाली ग़ज़ल दरबारों से निकलकर आम आदमी की घरबारी दुनिया के अभावों से रूबरू हो, उसके लिए जिम्मेदार सत्ता दरबारों के विरुद्ध प्रतिरोध का स्वर बुलंद करती है। वह राजनीतिक चेतना, मानवतावाद और समकालीन यथार्थ से अपने व्यक्तित्व को समृद्ध करती है, जिससे उसके व्यक्तित्व में निखार आता है।

इस तरह अरबी में बादशाहों का प्रशस्ति गान व प्रेमालाप रही ग़ज़ल, फ़ारसी में खुदा की बंदगी का गान बनी, उर्दू में प्रणयगीत व सौंदर्य का प्रशंसागान बनी तथा हिंदी में आकर मानवता का मंगलगान बन गई। हिंदी ग़ज़ल में राजनीतिक प्रतिरोध का स्वर मानवतावाद से प्रेरित है। वह अपने समय की राजनीति को केवल सतही तौर पर ही नहीं देखती है, बल्कि राजनीति के द्वारा प्रचारित बाहरी झूठे सच के पीछे छिपे हुए गोपन सच को उजागर कर उसके चेहरे को बेनकाब करती है। दुष्यंत के पथ पर आगे बढ़ते हुए और उत्तरोत्तर समझदार होते हुए वह राजनीति व समाज के साथ इनको नियंत्रित करने वाले सत्तातंत्र धर्म से भी रूबरू होती है और धर्म में आई विकृतियों, विसंगतियों व विडंबनाओं को उजागर करती है। साथ ही वर्तमान के सबसे शक्तिशाली सत्ता केंद्र अर्थतंत्र और बाज़ारवाद के सर्वभक्षी दानवी चरित्र को बेनकाब करती है। राजनीति और धर्म के विकृत होने, बाजारवाद, उपभोक्तावाद, सांस्कृतिक संकमण एवं तकनीक के कारण समाज और संस्कृति में जो विचलन होता है, उसे विवेचित करती है। भौतिक विकास और उपभोक्तावादी संस्कृति की अंधी दौड़ के कारण पैदा हो रहे पर्यावरणीय संकट के खतरों के प्रति मानव समुदाय को सचेत

करती है। कुल मिलाकर कह सकते हैं कि 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल समकालीन दौर की तमाम सच्चाइयों का पर्दापाश करती है। समकालीन जीवन का कोई भी क्षेत्र एवं कोई भी सत्य उसकी अभिव्यक्ति से बाहर नहीं हैं। उसमें अपने समय व समाज के विविध रूपों का बहुआयामी चित्रण है और साम्प्रतिक जीवन का यथार्थ चित्रण उसकी सबसे बड़ी शक्ति एवं विशेषता है। यथार्थ चेतना से अनुप्राणित आज की हिंदी ग़ज़ल समकालीन यथार्थ को समग्र रूप में अभिव्यक्त करने वाली सबसे लोकप्रिय व सशक्त विधा है।

ये ग़ज़ल ग़ज़ालचश्मों से गुफ़्तगू नहीं है

यह है मेरे अहद के ज़ख्मों की तर्जुमानी।

(सादगी का सौंदर्य वशिष्ठ अनूप का सृजन पृ. 11)

ग़ज़ल दीर्घकाल तक प्रेमाख्यान के रूप में पहचानी जाती रही है, किंतु आज की हिंदी ग़ज़ल आज इससे आगे अपने समय व समाज का सत्याख्यान बन गई। अपने युग का यथार्थाख्यान बन गई है। यह अपने युग की शक्ति को आकार देने वाला आईना है, जिसमें अपने दौर का पूरा अक्स हूबहू दिखाई देता है। यह केवल बाहरी सत्य या रूप को आकृति देने वाले दर्पण से आगे बढ़कर कवि की अंतर्दृष्टि की एक्सरे किरणों से खींची गई, अपने दौर के समाज की वह एक्स-रे फिल्म है, जिसमें प्रच्छन्न सच भी बखूबी दिखाई देता है। इससे भी आगे यह आज का वह अल्ट्रासोनिक चित्र है जिसमें समाज, राजनीति, धर्म, संस्कृति व अर्थ जगत की तमाम आंतरिक विकृतियाँ और विसंगतियाँ स्पष्ट रूप में दिखाई देती हैं। अपने समय की विद्रूपताओं को उजागर करने के साथ यह उन विद्रूपताओं को सुरुपता में बदलने के लिए भूमिका तैयार करती है। यह समाज की सच्ची तस्वीर प्रस्तुत करने के साथ समाज की तकदीर बदलने की चेतना भी जागृत करती है। प्रस्तुत शोध में 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल के इसी यथार्थवादी स्वरूप को उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध '21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में यथार्थ चेतना' को छह अध्यायों में विभक्त किया गया है। यहाँ उपसंहार में अध्यायों के मूल स्वर को संक्षेप में प्रस्तुत किया जा रहा है। पूर्ववर्ती अध्यायों में किए गए विस्तृत विवेचन के निष्कर्षों को एक संश्लिष्ट एवं संक्षिप्त परिणति प्रदान करना इस उपसंहार का लक्ष्य है। इसके अलावा शोध के दौरान उभरे प्रमुख निष्कर्षों, स्थापनाओं, हिंदी ग़ज़ल साहित्य में इस अध्ययन के मौलिक योगदान, शोध की सीमाओं तथा भविष्य में शोध

की नवीन संभावनाओं के साथ हिंदी ग़ज़ल की सीमाओं और संभावनाओं को भी प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्रस्तुत शोध का केंद्रीय उद्देश्य 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में व्याप्त यथार्थ चेतना के विविध आयामों का विश्लेषणात्मक अनुशीलन करना रहा है। यह अध्ययन इस मूल स्थापना पर केंद्रित है कि हिंदी ग़ज़ल अपनी पारंपरिक रूमानियत की परिधि का अतिक्रमण कर, समकालीन यथार्थ से सीधा संवाद स्थापित करते हुए, जन-सरोकारों की अभिव्यक्ति का एक अत्यंत सशक्त, लोकप्रिय एवं प्रामाणिक माध्यम बन चुकी है। दुष्यंत कुमार द्वारा प्रवर्तित यथार्थवादी ग़ज़ल की परंपरा को आत्मसात कर समकालीन ग़ज़लकारों ने इसे यथार्थ चेतना से अनुप्राणित ऐसी लोकप्रिय काव्य विधा बना दिया है, जो अपने समय की सच्चाइयों से न केवल मुठभेड़ करती है, बल्कि एक बेहतर भविष्य के निर्माण हेतु वैचारिक भूमि भी तैयार करती है। यह शोध-प्रबंध हिंदी ग़ज़ल की इस बदली हुई ऊर्जावान भूमिका को विस्तार एवं गहराई से समझने का प्रयास है।

प्रथम अध्याय 'हिंदी ग़ज़ल: अवधारणा और विकास यात्रा' में ग़ज़ल, हिंदी ग़ज़ल की सैद्धांतिक एवं ऐतिहासिक आधारभूमि का विवेचन किया गया है। इस अध्याय में ग़ज़ल की उत्पत्ति, अर्थ एवं परिभाषा, ग़ज़ल के संरचनात्मक तत्वों जैसे रदीफ़, काफ़िया, बहर, मतला, मक़ता का विवेचन करते हुए हिंदी ग़ज़ल की अवधारणा और तत्पश्चात हिंदी ग़ज़ल की विकास-यात्रा को रेखांकित किया गया। शिल्प की दृष्टि से, ग़ज़ल एक ही बहर, काफ़िया और रदीफ़ के अनुशासित ढाँचे में लिखे गए शेरों का एक समूह है। ग़ज़ल का प्रत्येक शेर कथ्य की दृष्टि से स्वतंत्र और अपने-आप में पूर्ण होता है। गहन भाव-प्रवणता, सांकेतिकता, संक्षिप्तता, लयात्मकता और कथन की मौलिक भंगिमा ('अंदाज़-ए-बयाँ') इसके प्राण-तत्व हैं। हिंदी ग़ज़ल अवधारणा में यह स्थापित किया गया कि हिंदी ग़ज़ल ने उर्दू ग़ज़ल के शैल्पिक ढाँचे को हिंदी की भाषिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक चेतना से अनुप्राणित कर अपनी एक नवीन एवं विशिष्ट स्वतंत्र छवि निर्मित की है। हिंदी ग़ज़ल की विशिष्ट छवि यथार्थवादी है, जो अपने समय व समाज की तमाम विद्रूप सच्चाइयों को उजागर कर बेहतर समाज की स्थापना का वैचारिक पथ प्रशस्त करती है। हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा अमीर खुसरो से शुरू होती है, पर इसे वास्तविक गति व दिशा आधुनिक काल में मिलती है। इस विकास-यात्रा का सबसे महत्वपूर्ण मोड़ दुष्यंत कुमार के आगमन के साथ आता है। उन्होंने आपातकाल की राजनीतिक घुटन के विरुद्ध ग़ज़ल को प्रतिरोध का एक

धारदार हथियार बनाकर उसे रुमान की अलंकृत सीमित दुनिया से निकालकर आम आदमी के संघर्षों, राजनीतिक विद्रूपताओं और सामाजिक विसंगतियों के यथार्थवादी धरातल पर लाकर खड़ा कर दिया। यही वह क्रांतिकारी मोड़ था, जिसने इक्कीसवीं सदी की हिंदी ग़ज़ल की दिशा और दशा तय की और उसके यथार्थवादी चरित्र की सुदृढ़ आधारशिला रखी। जिसकी कथ्य परिधि परवर्ती ग़ज़लकारों की कलम से संपूर्ण ब्रह्मांड के यथार्थ तक विस्तृत हो गई।

द्वितीय अध्याय '21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में यथार्थ चेतना के प्रतिनिधि ग़ज़लकार: व्यक्तित्व व कृतित्व' में उन प्रतिनिधि हिंदी ग़ज़लकारों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विवेचन किया गया। जिन्होंने इक्कीसवीं सदी में यथार्थवादी ग़ज़ल की मशाल को प्रज्वलित रखा है। इसमें दुष्यंत की परम्परा के तीन पीढ़ियों के ग़ज़लकारों को सम्मिलित किया गया है। शोध में शामिल प्रथम पीढ़ी के ग़ज़लकारों-अदम गोंडवी, जहीर कुरेशी, रामकुमार कृषक ने दुष्यंत की विरासत को न केवल सँजोया, बल्कि उसे और अधिक प्रखर एवं जनोन्मुख बनाया। जहाँ दुष्यंत की ग़ज़ल मुख्यतः राजनीति व शहरी मध्यवर्ग की चेतना से जुड़ी थी, वहीं अदम गोंडवी व रामकुमार कृषक ने ग़ज़ल को राजनीतिक प्रतिरोध के साथ गाँव, खेत-खलिहान और सर्वहारा के संघर्ष से जोड़ा। जहीर कुरेशी ने उसे समकालीन जीवन की सूक्ष्म और जटिल संवेदनाओं से लैस किया। शोध में शामिल-दूसरी एवं तीसरी पीढ़ी के ग़ज़लकारों- वशिष्ठ अनूप, माधव कौशिक, महेश कटारे सुगम, डी. एम. मिश्र, विनय मिश्र, देवेंद्र आर्य, शिव ओम अंबर, किशन तिवारी, हरeram समीप, राम मेश्राम, महेश अग्रवाल ने इस परंपरा को आगे बढ़ाते हुए भूमंडलीकरण, बाज़ारवाद, डिजिटल युग और उत्तर-आधुनिक विमर्शों से उत्पन्न नवीन चुनौतियों को अपनी ग़ज़लों का विषय बनाया। इन ग़ज़लकारों के कृतित्व के विश्लेषण से यह सिद्ध होता है कि हिंदी ग़ज़ल एक जीवंत और निरंतर विकासमान विधा है, जो अपने समय के हर स्पंदन को आत्मसात करने में पूर्णतः सक्षम है।

तृतीय, चतुर्थ व पंचम अध्याय शोध प्रबंध के वैचारिक केंद्र हैं, जिनमें 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में अभिव्यक्त यथार्थ के विविध रूपों का गहन अनुशीलन किया गया।

तृतीय अध्याय '21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में राजनीतिक यथार्थ' में 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल के माध्यम से समकालीन लोकतांत्रिक व्यवस्था और राजनीति की प्रच्छन्न सच्चाइयों को उजागर किया गया है। जिससे हिंदी ग़ज़ल की राजनीति के

दर्पण के साथ एक सजग और निर्भीक राजनीतिक प्रहरी की भूमिका स्पष्ट नज़र आती है। इसने लोकतंत्र के पावन संकल्प और उसकी कलुषित परिणति के बीच की खाई को उजागर किया है। लोकतांत्रिक संस्थाओं का क्षरण, राजनीति का अपराधीकरण, संस्थागत भ्रष्टाचार, अवसरवादी दलबदल, चुनावी कदाचार, राजनीति का पूँजी व धर्म से गठजोड़, नौकरशाही की अकर्मण्यता, लोकतंत्र के रक्षक स्तंभों-न्यायपालिका, मीडिया संस्थानों के क्षरण आदि राजनीतिक-लोकतांत्रिक विकृतियों पर हिंदी ग़ज़ल ने अत्यंत धारदार प्रहार किए हैं। यह केवल व्यवस्था की आलोचना तक सीमित नहीं है, बल्कि आम आदमी में राजनीतिक चेतना का संचार कर उसे अपने अधिकारों के प्रति सचेत करती है। और एक बेहतर एवं जवाबदेह लोकतांत्रिक व्यवस्था की स्थापना का आह्वान करती है। यह सत्ता के विरुद्ध आम आदमी के प्रतिरोध का सबसे मुखर काव्य-स्वर बनकर उभरी है।

चतुर्थ अध्याय '21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में सामाजिक आर्थिक यथार्थ' में हिंदी ग़ज़ल में अभिव्यक्त समकाल की सामाजिक-आर्थिक सच्चाइयों एवं समस्याओं के उद्घाटन से यह प्रतिपादित किया गया है कि 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल अपने युग के सामाजिक-आर्थिक यथार्थ का एक संवेदनशील, मुखर और प्रामाणिक दस्तावेज है। अध्याय में दर्शाया गया है कि भूमंडलीकरण, उदारीकरण और सूचना तकनीक के विस्तार से जन्मी उपभोक्तावादी और बाज़ारवादी संस्कृति ने हमारे पारम्परिक सामाजिक-आर्थिक ढाँचे में अनेक विसंगतियों, समस्याओं और नये सत्यों व मूल्यों को जन्म दिया है। जिन्हें समकालीन हिंदी ग़ज़ल प्रामाणिक ढंग से व्यक्त करती है। एक ओर हिंदी ग़ज़ल में संयुक्त परिवारों व पारिवारिक संबंधों के विघटन, रिश्तों के बाज़ारीकरण और पारिवारिक मूल्यों के क्षरण का मार्मिक चित्रण है, तो दूसरी ओर समाज के हाशिये पर स्थित वंचितों और शोषितों की वेदना और संघर्ष का मुखर स्वर है। किसानों के माथे पर खिंची चिंता की लकीरों से लेकर मज़दूरों के पसीने की गंध तक, स्त्रियों के अनकहे संघर्ष से लेकर दलितों के पीढ़ी-दर-पीढ़ी के संताप तक, वृद्धों की अपेक्षित उदास दुनिया से लेकर सुबकते-सिसकते बचपन तक हर वर्ग की वेदना को इन ग़ज़लों ने अपनी आवाज़ दी है। इसके साथ ही महानगरीय जीवन के अजनबीपन, खोखलेपन और ग्रामीण सौंदर्य के क्षरण के मध्य पसरी विसंगतियों तथा समाज में बढ़ती अपराधवृत्ति और अराजकता का भयावह चित्र भी इन ग़ज़लों में सजीव हो उठता है। इसी प्रकार ये ग़ज़लें अर्थ की अंधी दौड़ और उससे उपजी मूल्यहीनता के साथ आर्थिक विषमता की उस भयावह घाटी को रेखांकित करती है,

जहाँ एक तरफ अमीरी के एवरेस्ट हैं तो दूसरी ओर गरीबी की अतल गहराइयाँ। इन ग़ज़लों ने गरीबी के दंश झेलते आम आदमी, बेरोज़गारी की हताशा में भटकते युवा और महँगाई की मार से पिसते आम आदमी की पीड़ा व समस्याओं को अत्यंत यथार्थपरक ढंग से प्रस्तुत किया है। अंत में बाज़ारवाद के सर्वग्रासी आतंक को चित्रित किया गया है, जो मनुष्य से लेकर उसकी भावनाओं तक, हर चीज़ को बिकाऊ वस्तु में तब्दील करने पर आमादा है। हिंदी ग़ज़ल केवल इन समकालीन विसंगतियों और विद्रूपताओं का दर्पण मात्र नहीं है, अपितु यह उन अमानवीय शक्तियों के विरुद्ध प्रतिरोध का एक साहित्यिक हथियार भी है। यह अपने समय के कटु सत्यों से आँख मिलाते हुए, मानवीय मूल्यों के संरक्षण की वकालत करती है और इस चुनौतीपूर्ण दौर में भी मनुष्यता की जीत के प्रति एक सार्थक उम्मीद जगाती है।

पंचम अध्याय '21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में धार्मिक सांस्कृतिक व अन्य यथार्थ' के अन्तर्गत 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में दर्ज धार्मिक, सांस्कृतिक, पर्यावरणीय व साहित्यिक यथार्थ के विवेचन से यह स्पष्ट किया गया है कि समकालीन हिंदी ग़ज़ल ने पूँजीवादी, बाज़ारवादी और उपभोक्तावादी संस्कृति के वर्तमान संक्रमणकालीन दौर में धर्म, संस्कृति, पर्यावरण व साहित्य जगत में उत्पन्न विसंगतियों, जटिलताओं, विद्रूपताओं और चुनौतियों को अत्यंत सूक्ष्मता एवं मार्मिकता से अंकित किया है। 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल ने जहाँ एक ओर धर्म के बाज़ारीकरण, राजनीतिकरण और पाखंडपूर्ण स्वरूप पर निर्मम प्रहार किया है, तो वहीं दूसरी ओर मानवतावादी धर्म की स्थापना का आह्वान भी किया है। इसने पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण से उत्पन्न सांस्कृतिक क्षरण, उपभोक्तावादी अपसंस्कृति के प्रसार और शाश्वत मानवीय मूल्यों के पतन पर गहरी चिंता व्यक्त करते हुए अपनी सांस्कृतिक जड़ों की ओर लौटने की आवश्यकता पर बल दिया है। इसी प्रकार हिंदी ग़ज़ल में प्रकृति के अंधाधुंध दोहन से उत्पन्न पर्यावरणीय संकट और उसके विनाशकारी परिणामों को उजागर करने के साथ पर्यावरण संरक्षण का मुखर स्वर भी है। इक्कीसवीं सदी की हिंदी ग़ज़ल केवल बाह्य जगत के यथार्थ का ही चित्रण नहीं करती, बल्कि यह साहित्य जगत के आंतरिक संकटों—जैसे सत्ता और बाज़ार के दबाव में साहित्यिक मूल्यों का क्षरण, पुरस्कारों की राजनीति और आलोचना के संकट को उजागर करती है, तो दूसरी ओर एक सच्चे लेखक की रचनात्मक प्रतिबद्धता और लेखकीय धर्म को भी अभिव्यक्ति देती है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल अपने समय का एक ऐसा दर्पण है, जिसमें समाज की हर

अच्छी-बुरी छवि स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित होती है। यह अपने समय व समाज के सच से सीधे संवाद स्थापित करते हुए बेहतर समाज व बेहतर भविष्य के लिए वैचारिक जमीन तैयार करती है।

षष्ठ अध्याय में '21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल के शिल्प विधान' का विवेचन किया गया है। अध्याय में हिंदी ग़ज़ल के शिल्प को विभिन्न काव्यशास्त्रीय तत्वों के आधार पर विश्लेषित करते हुए स्पष्ट किया गया है कि हिंदी ग़ज़ल का सौंदर्यशास्त्र कथ्य और शिल्प के सामंजस्य पर आधारित है। भाषा: हिंदी ग़ज़ल ने संस्कृतनिष्ठ हिंदी और फ़ारसी-बहुल उर्दू की दो अतियों से बचते हुए उस सहज, जीवंत और प्रवाहमयी 'हिंदुस्तानी' भाषा को अपना माध्यम बनाया है, जो सीधे जनमानस से संवाद स्थापित करती है। इसमें लोकभाषाओं, आंचलिक मुहावरों और यहाँ तक कि अंग्रेज़ी के शब्दों का भी सार्थक एवं स्वाभाविक प्रयोग हुआ है, जो इसकी भाषिक समृद्धि का परिचायक है। छंद (बहर): ग़ज़लकारों ने उर्दू की पारंपरिक बहरों के अनुशासन का सफलतापूर्वक निर्वाह किया है, वहीं दोहा, रोला, गीतिका जैसे हिंदी के मात्रिक छंदों में भी सफल और लयात्मक ग़ज़लें कहकर विधागत विस्तार का परिचय दिया है। प्रतीक एवं बिंब: हिंदी ग़ज़ल की सबसे बड़ी शैल्पिक उपलब्धि उसके प्रतीक और बिंब विधान में है। इसने 'शमा-परवाना' और 'गुल-बुलबुल' जैसे पारंपरिक प्रतीकों का अतिक्रमण कर समकालीन जीवन से जुड़े नवीन, सार्थक और सजीव प्रतीकों-बिंबों का एक विशाल संसार रचा है। 'सड़क', 'संसद', 'भूख', 'रोटी', 'अखबार', 'नदी', और 'जंगल' जैसे बिंब उसकी यथार्थवादी चेतना को और भी पुष्टकरते हैं। अन्य काव्य-तत्त्व- व्यंग्य, मुहावरों और लोकोक्तियों के सटीक एवं रचनात्मक प्रयोग ने हिंदी ग़ज़ल की अभिव्यक्ति को और भी धारदार एवं प्रभावशाली बनाया है। यद्यपि सपाटबयानी और कुछ शैल्पिक त्रुटियाँ भी दृष्टिगत होती हैं, तथापि शिल्प के प्रति सजगता और नवाचार का अद्भुत संतुलन हिंदी ग़ज़ल की ताकत है।

'21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में यथार्थ चेतना' विषय पर छह अध्यायों में शोध कार्य पूर्ण करने के उपरान्त निष्कर्षतः यह प्रामाणिक तौर से कहा जा सकता है कि इक्कीसवीं सदी की हिंदी ग़ज़ल अपने युग की प्रतिकृति और समकालीन जीवन का यथार्थ दस्तावेज है। इसने अपने स्वरूप और विषय-वस्तु में एक युगांतकारी परिवर्तन को आत्मसात करते हुए हुस्र और इश्क की परंपरागत रूमनियत की परिधि को तोड़कर यथार्थ की ठोस जमीन पर अपनी नई और जनधर्मी पहचान बनाई है। प्रेम और सौंदर्य के सीमित दायरे से निकलकर इसने अपने समय के सामाजिक,

राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और पर्यावरणीय यथार्थ को पूरी प्रामाणिकता, ईमानदारी और कलात्मकता के साथ अभिव्यक्त किया है। निष्कर्षतः 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल एक साहित्यिक विधा के साथ एक सामाजिक दस्तावेज़ है, एक सामयिक प्रतिलेख है जो अपने समय व समाज के यथार्थ को समग्र रूप में अपनी शायरी में कैद करती है। युगीन यथार्थ की अभिव्यक्ति में हिंदी ग़ज़लकारों का जोर समकाल की विकृतियों, विसंगतियों और विद्रूपताओं के उद्घाटन पर ही अधिक रहा है। इसका कारण यह है कि हिंदी ग़ज़लकार इन विकृतियों के अनावरण से जीवन के बिगड़ते सौंदर्य के प्रति समाज को सचेत कर अपनी प्रजापति की भूमिका का निर्वहन करते हुए एक सुंदर जगत का सर्जन करना चाहते हैं। इस कारण आज की हिंदी ग़ज़ल जिंदगी की तर्जुमानी के साथ मानव जीवन की बेहतरी के लिए समर्पित है। यह अपने युग का केवल यथार्थवादी दस्तावेज़ ही नहीं, बल्कि भविष्य के लिए एक बेहतर, न्यायपूर्ण और मानवीय समाज का स्वप्न भी है। आधुनिक और उत्तर आधुनिक दौर में भूमंडलीकरण, उदारीकरण और निजीकरण से प्रसारित उपभोक्तावादी और बाज़ारवादी संस्कृति के दुष्प्रभावों, विकृतियों, विद्रूपताओं और खतरों से रूबरू कराते हुए उनसे मानव व मानवता को बचाने की चेतना एवं रचना शैली है। जीवन के हर क्षेत्र में पसरी विकृतियों, विसंगतियों, विडंबनाओं और विद्रूपताओं के बावजूद यह निराशा और हताशा की जगह भारतीय संस्कृति की उद्दाम जिजीविषा और आशावादिता से अनुप्राणित है। और विश्व शांति, विश्व कल्याण, प्रेम और मानवता का अमर संदेश लेकर साहित्य पथ पर गतिमान है। यह मानवता का मंगल गान है। इस संबंध में ज्ञानप्रकाश विवेक जी का कहना है- “गौरतलब है, ग़ज़ल में ‘वाद’ नहीं होता। ग़ज़ल में बोध होता है। ग़ज़ल में अगर वाद होता है तो वह सिर्फ मानवतावाद होता है” (हिंदी ग़ज़ल की शक्ति और संचेतना पृ. 92)। इस तरह 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल समकाल की आवाज के साथ सुनहरे भविष्य का सुनहरा मानचित्र है। इसने अपनी शिल्प की पारंपरिक जड़ों को दृढ़ता से थामे रखते हुए आधुनिकता के नए आयामों को छुआ है। यदि हिन्दी ग़ज़ल पर जरा संवेदनशील नजरों से दृष्टिपात किया जाए, तो समझ में आएगा कि यह हमारे समय की सबसे सशक्त काव्य विधा है, जिसमें लय है, रवानी है, मिथकथन है और एक शेर में एक पूरी बात कहने की हुनरमंदी है। अपनी छंदबद्धता, संक्षिप्तता, गेयता, संप्रेषणीयता और यथार्थपरकता के अद्भुत संतुलन के कारण यह समकालीन हिंदी कविता के एक अंग या उसके समानांतर एक लोकप्रिय काव्य रूप के रूप में प्रतिष्ठित हो रही है। इसकी यह

विकास यात्रा अनवरत जारी है और यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि आने वाले समय में यह हिंदी काव्य गगन में और भी अधिक दीप्ति के साथ प्रकाशित होगी, क्योंकि यह उस आम आदमी की आवाज़ है, जिसकी आवाज़ में समय स्वयं बोलता है। और इसलिए इसका भविष्य निःसंदेह उज्ज्वल है।

शोध के प्रमुख निष्कर्षों का सार:

प्रस्तुत शोध प्रबंध '21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में यथार्थ चेतना' एक गहन साहित्यिक अध्ययन-अन्वेषण का परिणाम है, जिसका उद्देश्य समकालीन हिंदी ग़ज़ल में यथार्थ चेतना के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, पर्यावरणीय व साहित्यिक आदि विविध आयामों की अभिव्यक्तियों का विश्लेषण करना है। बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में जहाँ हिंदी ग़ज़ल ने राजनीतिक और जनवादी तौर पर अपनी जड़ों को गहरा किया। वहीं इक्कीसवीं सदी में वैश्वीकरण, उदारवाद और तकनीकी क्रांति से प्रसारित पूँजीवादी, बाज़ारवादी एवं उपभोक्तावादी संस्कृति ने सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक विचलनों-विकृतियों के साथ कई तरह की नई संवेदनशीलताओं को जन्म दिया। यह शोध इन विकृतियों और संवेदनशीलताओं के ग़ज़ल विधा में प्रतिफलन और उसके कलात्मक स्वरूप का विश्लेषण करता है। मुख्य निष्कर्षों का सार इस प्रकार है-

1. **सामाजिक यथार्थ की व्यापक अभिव्यक्ति** - 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल ने अपने समय की तमाम सामाजिक सच्चाइयों और समस्याओं जैसे सामाजिक-आर्थिक असमानता, गरीबी, भ्रष्टाचार, सांप्रदायिकता और हाशिए पर पड़े वर्गों की पीड़ाओं को मुखर आवाज दी है। भूमंडलीकरण के प्रभावों, शहरीकरण की चुनौतियों और ग्रामीण जीवन सौंदर्य के विघटन को भी ग़ज़लकारों ने अपनी रचनाओं में प्रमुखता से उठाया है। हिंदी ग़ज़ल अब केवल व्यक्तिगत पीड़ा तक सीमित न रहकर सामूहिक वेदना व संवेदना की सजग संवाहक है।
2. **राजनीतिक विकृतियों का प्रवर्तन एवं प्रतिरोध**-समकालीन हिंदी ग़ज़ल ने लोकतंत्र की खामियों, राजनीति की विसंगतियों तथा पर्दे के पीछे की सत्ता व स्वार्थ की अवसरवादी राजनीति का बेपर्दा चित्रण किया है। इसने नेताओं के खोखले चुनावी वादों, जनहित विरोधी भ्रष्टाचार के कीचड़ और सत्ता के विकासी शोर को अपनी शेरों में बेबाकी से उजागर किया है। इसमें राजनीतिक विसंगतियों के प्रवर्तन के साथ विकृत व्यवस्था और सत्ता के प्रतिरोध का स्वर भी मुखर हुआ है।

3. **बाज़ारवादी और उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रभावों का चित्रण-** 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल ने बाज़ारवादी, उपभोक्तावादी और पूँजीवादी संस्कृति के पारिवारिक, सामाजिक व मानवीय संबंधों तथा धर्म, अर्थ, संस्कृति व पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों-दुष्प्रभावों को बड़ी कुशलता से रेखांकित किया है। इसने वर्तमान में धन के पीछे भागती दुनिया, मानवीय मूल्यों के क्षरण तथा भौतिक सुखों की अंधी दौड़ में आत्मिक सौंदर्य से रिक्तता के वैयक्तिक एवं सामाजिक यथार्थ को उजागर किया है।
4. **मनोवैज्ञानिक एवं भावनात्मक यथार्थ की पड़ताल-** हिंदी ग़ज़ल ने आधुनिक जीवन की भागदौड़, अकेलापन, संबंधों का बिखराव, पहचान का संकट, तनाव और अवसाद जैसी मनोवैज्ञानिक सच्चाइयों को संवेदनशील ढंग से प्रस्तुत किया है।
5. **पर्यावरणीय चेतना-** 21वीं सदी के हिंदी ग़ज़ल आधुनिक तथाकथित विकास एवं उपभोक्तावादी संस्कृति के पर्यावरण पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों को भी व्यक्त करती है। प्रकृति के साथ मनुष्य के बिगड़ते संबंधों, प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन, वन विनाश, प्रदूषण और ग्लोबल वार्मिंग जैसे पर्यावरणीय संकटों को ग़ज़लकारों ने अपनी रचनाओं का हिस्सा बनाया है। यह बताता है कि ग़ज़ल की परिधि अब केवल मानवीय संबंधों तक सीमित न रहकर वृहत्तर पारिस्थितिकीय सरोकारों तक विस्तृत हुई है।
6. **भाषा और शिल्प में नवोन्मेष-** हिंदी ग़ज़लकारों ने यथार्थ चेतना की अभिव्यक्ति के लिए भाषा और शिल्प में भी प्रयोग किए हैं। उन्होंने बोलचाल की भाषा के साथ अंग्रेजी शब्दों तथा लोक जीवन से चुने हुए नवीन बिंबों, प्रतीकों और मुहावरों का प्रयोग किया है, जिससे ग़ज़ल आम जनमानस के लिए अधिक सुलभ और ग्राह्य हो सके। ग़ज़ल के शास्त्रीय सौंदर्य को बनाए रखते हुए उसमें समकालीन विषयों को समाहित किया है।

स्पष्ट है कि इक्कीसवीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में व्यक्त यथार्थ बहुआयामी एवं जीवन के सभी आयामों तक विस्तृत है। इसकी सबसे बड़ी खूबी यह है कि यथार्थ चेतना को अपनाते हुए भी हिंदी ग़ज़ल ने कथ्य व शिल्प की अपनी पारंपरिक जड़ों से नाता नहीं तोड़ा है। यह आधुनिक विषयों को पारंपरिक शिल्प में ढालकर एक नया सौंदर्यशास्त्र रचती है। और यह इसकी बहुत बड़ी शक्ति है।

शोध की उपलब्धियाँ एवं साहित्यिक अवदान-

प्रस्तुत शोध का मौलिक योगदान इस तथ्य में निहित है कि यह ग़ज़ल की सदियों से प्रचलित प्रेम और सौंदर्य की रंगारंग अभिव्यक्ति वाली पहचान से अलग हिंदी ग़ज़ल की यथार्थवादी और जनवादी छवि का प्रकाशक बनकर उभरता है। यह हिंदी ग़ज़ल को एक स्वतंत्र एवं गंभीर अकादमिक विमर्श के केंद्र में स्थापित करने का एक प्रभावी प्रयास है। तथा यह हिंदी ग़ज़ल को समकालीन हिंदी कविता की मुख्यधारा के एक अनिवार्य अंग या उसके समानान्तर एक स्वतंत्र एवं सशक्त काव्य विधा के रूप में स्थापित करने में सहायक सिद्ध होगा। प्रस्तुत शोध 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल के माध्यम से समकालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, पर्यावरणीय, एवं साहित्यिक परिदृश्य को गहराई से जानने-समझने में सहायक है। यह पाठक वर्ग को आधुनिक और उत्तर आधुनिक दौर के नए जीवन सत्यों एवं जीवन मूल्यों, विचलनों, विकृतियों तथा बाहरी दृश्यमान सच के पीछे के गोपन सच से रूबरू कराने में मददगार है। यह शोध ग़ज़ल के स्वरूप, हिंदी ग़ज़ल की अवधारणा, हिंदी में यथार्थ चेतना के प्रतिनिधि ग़ज़लकारों के व्यक्तित्व व कृतित्व, हिंदी ग़ज़ल के शिल्प विधान तथा हिंदी ग़ज़ल की यथार्थपरक विषय वस्तु के बारे में गहन एवं व्यापक जानकारी प्रदान करता है। प्रस्तुत शोध का अकादमिक और साहित्यिक परिदृश्य में महत्वपूर्ण योगदान है, जो संक्षिप्त में निम्नानुसार है-

1. हिंदी ग़ज़ल की छवि का नवीनीकरण और उसके यथार्थवादी स्वरूप की प्रतिष्ठा-

यह शोध ग़ज़ल की परम्परा से प्रचलित प्रेमात्मक और सौंदर्यवादी छवि से भिन्न हिंदी ग़ज़ल की यथार्थवादी छवि की प्रतिष्ठापना करते हुए सिद्ध करता है कि 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल परिवेशीय यथार्थ की जमीन से उपजी उसकी हू-ब-हू अनुकृति है, जो अपने समय और समाज के बहुआयामी यथार्थ को कलात्मक ढंग से अभिव्यक्त करने में सक्षम है। यह हिंदी ग़ज़ल की यथार्थवादी चेतना को साहित्यिक विमर्श के केंद्र में लाने का सार्थक प्रयास है। इससे स्पष्ट होता है कि हिंदी ग़ज़ल केवल प्रेमिल भावुकता की नहीं, बल्कि राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, पर्यावरणीय आदि बहुआयामी यथार्थ चेतना की सशक्त संवाहक है।

2. हिंदी ग़ज़ल के जनवादी स्वरूप का परिचायक-

शोध से स्पष्ट होता है कि ग़ज़ल अब ग़मे जानाँ (व्यक्तिगत पीड़ा) के साथ ग़मे दौराँ (समष्टिगत पीड़ा) की मुखर गायिका है। यह शोध हिंदी ग़ज़ल में मुखरित वंचित वर्गों—किसान, मजदूर, स्त्री,

दलित, बालक और वृद्ध आदि की मूक पीड़ाओं के उद्घाटन से उसके जनवादी स्वरूप का परिचय करवाता है।

3. **हिंदी ग़ज़ल की लोकतंत्र के प्रहरी की साहित्यिक भूमिका का उद्घाटक-** प्रस्तुत शोध यह रेखांकित करता है कि हिंदी ग़ज़ल लोकतंत्रात्मक मूल्यों के पतन एवं राजनीतिक व्यवस्था की विसंगतियों को उद्घाटित करने के साथ वर्तमान की विद्रूप व्यवस्था के प्रति प्रतिरोध व परिवर्तन का स्वर बुलंद कर लोकतंत्र के प्रहरी की साहित्यिक भूमिका का निर्वहन करती है।
4. **हिंदी ग़ज़ल के मानवतावादी चेहरे का प्रकाशक-** यह शोध बाज़ारवाद के आदमखोर आतंक, उपभोक्तावादी अपसंस्कृति और पाश्चात्य संस्कृति के बढ़ते प्रसार के बीच, हिंदी ग़ज़ल में दर्ज भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों और मानवीय मूल्यों के बचाव की पैरवी को अभिलिखित कर हिंदी ग़ज़ल की सांस्कृतिक संरक्षिका एवं मानवता की मंगल गायिका की छवि को सामने लाता है। उसके मानवतावादी चेहरे को प्रकाशित करता है।
5. **ग़ज़लकारों के योगदान को मान्यता-** प्रस्तुत शोध उन ग़ज़लकारों के योगदान को रेखांकित करता है, जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से यथार्थ चेतना को मुखरित किया है। यह उन ग़ज़लकारों पर केंद्रित शोध के द्वार खोलता है।
6. **समकालीन हिंदी कविता को व्यापक रूप से समझने में सहायक-** यह शोध समकालीन हिंदी कविता को व्यापक रूप से समझने के लिए आवश्यक व्यापक दृष्टि प्रदान करता है। क्योंकि यह दर्शाता है कि हिंदी ग़ज़ल समकालीन हिंदी कविता के संस्कारों से प्रभावित हो, कोरी भावुकता की जगह वैचारिकता एवं भावुकता के संतुलन के साथ समकालीन सत्यों, समस्याओं, विकृतियों और चिंताओं को अभिव्यक्ति देकर हिंदी कविता की छंदमुक्तता के पूरक रूप में उसकी मुख्यधारा के एक अनिवार्य काव्यरूप या उसके समानांतर एक स्वतंत्र काव्य विधा के रूप में प्रतिष्ठित हो रही है।
7. **ग़ज़ल के बदलते स्वरूप एवं प्रकृति का प्रकाशक -** यह ग़ज़ल के स्वरूप, उसकी भाषा और उसके शिल्प में आ रहे परिवर्तनों को प्रकाशित करता है। जिससे हिंदी ग़ज़ल के भविष्य की दिशाओं का आकलन किया जा सकता है।

प्रस्तुत शोध हिंदी ग़ज़ल की खूबियों के अतिरिक्त उसकी लोकप्रियता में वृद्धि के साथ रचना प्रक्रिया में आई त्रुटियों एवं दोषों को भी उजागर करता है। हिंदी ग़ज़ल में युग की यथार्थपरक अभिव्यक्ति के संबंध में सबसे बड़ी सीमा यह है कि उसमें यथार्थ

की अभिव्यक्ति में सांकेतिकता और संक्षिप्तता के स्थान पर सपाटबयानी और वर्णनात्मकता हावी है। यथार्थवादिता के अत्यधिक आग्रह के कारण उसमें कलात्मकता का क्षरण हुआ है और कई गज़लें अखबारीपन का शिकार हुई हैं। गज़ल में यथार्थ का मतलब फ़ोटोग्राफी नहीं होता है, लेकिन हिन्दी में बहुत सारी गज़लें फ़ोटोग्राफी बनकर रह गई हैं। जबकि अच्छी गज़लें यथार्थ का सतही चित्रण करने के बजाय उसे संश्लेषित और विश्लेषित रूप में व्यक्त करती हैं। इस संबंध में अनिल राय का कहना है- “यथार्थ अपनी आन्तरिक संरचना में अत्यन्त संश्लिष्ट होता है, एकायामी नहीं होता। इसलिए यथार्थ को रचना का विषय बनाना एक गम्भीर और वैचारिक सृजन कर्म है। यदि यह एक ओर रचना का विषय बन सकता है तो दूसरी ओर इसमें थोड़ी-सी भी असावधानी रचना के तर्कशास्त्र और सौन्दर्य के लिए आत्मघाती भी हो सकती है। प्रेम, विरह, मिलन, बिछोह सुख-दुःख की आत्मगत अनुभूतियों की अभिव्यक्ति में किसी रचनाकार को जो स्वायत्ता होती है, यथार्थ की अभिव्यक्ति में नहीं।” (अनिल राय हिन्दी गज़ल और आलोचना शीर्षक लेख दस्तावेज 67 अप्रैल जून 1995 पृष्ठ 37)

हिन्दी गज़लकारों को इस संबंध में सचेत होने की आवश्यकता है। अतः गज़लकारों को अखबार के समाचारों को रदीफ़-काफ़ियों में प्रस्तुत करने के बजाय अपने दौर की हलचलों या विचलनों और यथार्थ घटनाओं को अपनी सूक्ष्म अंतर दृष्टि से विवेचित विश्लेषित करना होगा। जब तक यथार्थ स्थूल और बाह्य से सूक्ष्म और आभ्यन्तरिक होकर गज़ल के मिजाज और शैली के अनुरूप घुल मिल नहीं जाता है, तब तक वह सांकेतिक और संश्लेषित होने के बजाय वर्णनात्मक और सपाट बना रहता है। गज़ल की खूबी इस यथार्थ को कलात्मकता के साथ सूक्ष्म और सांकेतिक रूप में व्यापकता के साथ प्रस्तुत करने में है। जब यथार्थवादी हिन्दी गज़लों का विश्लेषण करते हैं, तो शब्द सौंदर्य और रवानी दोनों तत्व संकट में नज़र आते हैं। हिन्दी गज़लकारों को सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति की चिंताएँ ज़्यादा मानीखेज़ प्रतीत होती हैं। 'रवानी' यानी अशआर में बहाव, लोच, लचक, संगीतात्मकता की चिंता होती ज़रूर है, लेकिन दबाव यथार्थ का ज़्यादा रहता है। युगीन यथार्थ के नाम पर गज़ल की कथावस्तु को बौद्धिकता से बोझिल किया गया, तो इसमें नयी कविता की-सी शुष्कता आ जाएगी। यद्यपि गज़ल की संगीतात्मकता- रवानी, कोमलता और नाजुकी उसकी विषय वस्तु पर भी निर्भर करती है। लेकिन विषय वस्तु को भी कुशल शायर साध लेता है। सख्त से सख्त बात में भी वो तगज्जुल और संगीतात्मकता पैदा कर देता है। हिन्दी गज़ल को ऐसे कुशल साधकों व साधना की जरूरत है। इसके साथ ही कथ्य पर ही अधिक

जोर होने के कारण हिंदी ग़ज़लकारों का बहरों के अनुशासन के प्रति दृष्टिकोण शिथिल हुआ है। जिसके चलते हिंदी ग़ज़ल में उर्दू जैसी बारीकी और अपेक्षित नाद सौंदर्य का अभाव भी देखने को मिलता है। हालाँकि छंद अराजकता पर अंकुश के प्रयास भी जारी हैं। फिर भी ग़ज़ल-रचना की मुख्य चुनौती चुस्त बह में यथार्थ के विभिन्न आयामों को उनकी सम्पूर्ण जटिलता के साथ समग्रता में अभिव्यक्त करने की है। कुल मिलाकर यह शोध 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल के कथ्य और शिल्प का समालोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है, जो हिंदी ग़ज़ल में आलोचना के खाली अंतरिक्ष को भरने की ओर बढ़ाया गया एक सशक्त व प्रभावी कदम है।

शोध की सीमाएँ-

जैसा कि प्रत्येक शोध की अपनी सीमाएँ होती हैं। इस शोध प्रबंध की भी कुछ सीमाएँ हैं, जिन्हें स्वीकार करना आवश्यक है। यद्यपि शोध में 21वीं सदी में यथार्थ चेतना के प्रतिनिधि पन्द्रह प्रमुख ग़ज़लकारों की रचनाओं का विश्लेषण किया है। तथापि ग़ज़लकारों की यह सूची बहुत लंबी हो सकती है। परन्तु शोध की सीमाओं के कारण सभी महत्त्वपूर्ण ग़ज़लकारों को शामिल कर पाना संभव नहीं था। यह शोध मुख्य रूप से हिंदी ग़ज़ल पर केंद्रित रहा है। उर्दू ग़ज़ल या अन्य भारतीय भाषाओं की ग़ज़लों के साथ एक विस्तृत तुलनात्मक अध्ययन इसके दायरे से बाहर रहा। ऐसा अध्ययन ग़ज़ल में यथार्थ चेतना के अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य को समझने में सहायक हो सकता है।

भविष्य की शोध दिशाएँ:

प्रस्तुत शोध भविष्य में शोधार्थियों के लिए कई शोध दिशाएँ खोलता है। इस शोध प्रबंध से हिंदी ग़ज़ल में युगीन यथार्थ या युगीनबोध या समकालीन परिवेश या समकालीनता आधारित शोध प्रबंधों के नए द्वार खुलेंगे। कुछ संकेत बिंदु इस प्रकार हैं-

1. **यथार्थ चेतना के किसी विशिष्ट आयाम पर केंद्रित अध्ययन-** इस शोध में 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल के माध्यम से समकाल के बहुआयामी यथार्थ का विश्लेषण किया गया है। भविष्य में किसी एक विशिष्ट आयाम यथा राजनीतिक यथार्थ, सामाजिक यथार्थ पर केंद्रित अध्ययन से उस आयाम को समग्र एवं व्यापक दृष्टि के साथ स्पष्ट किया जा सकता है।
2. **विशिष्ट विषयों या विमर्शों पर गहन शोध-** प्रस्तुत शोध में वंचित समुदायों के यथार्थ के अंतर्गत स्त्री, दलित, किसान-मजदूर, वृद्ध और बाल विमर्श पर बहुत

संक्षिप्त में चर्चा की गई है। भविष्य में इन विमर्शों या पर्यावरण जैसे विशिष्ट विषयों पर केंद्रित गहन अध्ययन किये जा सकते हैं।

3. **ग़ज़लकारों पर केंद्रित व्यक्तिगत अध्ययन-** यह शोध 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में यथार्थ चेतना के प्रतिनिधि पन्द्रह ग़ज़लकारों के उपलब्ध ग़ज़ल साहित्य पर आधारित है। यद्यपि शोध में इन 15 ग़ज़लकारों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विवेचन किया गया है। फिर भी भविष्य में इन ग़ज़लकारों और हिंदी ग़ज़ल में यथार्थ चेतना के स्वर को मुखरित करने वाले अन्य ग़ज़लकारों विशेषतः युवा ग़ज़लकारों पर केंद्रित व्यक्तिगत अध्ययन किये जा सकते हैं जिनमें किसी एक विशिष्ट ग़ज़लकार के संपूर्ण ग़ज़ल साहित्य के विश्लेषणात्मक अध्ययन से उसकी विशिष्ट ग़ज़ल शैली और हिंदी ग़ज़ल में उसके योगदान को स्पष्ट और समग्र रूप में रेखांकित किया जा सकता है।
4. **तुलनात्मक अध्ययन-** हिंदी ग़ज़ल में यथार्थ चेतना का उर्दू ग़ज़ल, या समकालीन भारतीय भाषाओं की ग़ज़लों (जैसे गुजराती, पंजाबी आदि) के साथ तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। यह ग़ज़ल विधा के अखिल भारतीय स्वरूप और उसकी समानताओं व भिन्नताओं को समझने में सहायक होगा।
5. **शिल्पगत प्रयोगों का विश्लेषणात्मक अध्ययन-** 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में भाषा, बिंब, प्रतीक और शिल्प के स्तर पर हो रहे नए प्रयोगों का एक विस्तृत और तकनीकी रूप से विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जा सकता है।
6. **हिंदी ग़ज़ल और अन्य समकालीन साहित्यिक विधाएँ-** 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल का समकालीन कविता, कहानी या उपन्यास जैसी अन्य विधाओं में व्यक्त यथार्थ चेतना के साथ तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है, जो साहित्य में यथार्थ की समग्र अभिव्यक्ति को समझने में मददगार हो सकता है।

21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल- सीमाएँ और संभावनाएँ

हिंदी ग़ज़ल की सीमाएँ- दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों की लोकप्रियता से प्रभावित हो हिंदी में रचनाकारों का एक बड़ा वर्ग ग़ज़ल लेखन की ओर प्रवृत्त होता है और रातोंरात दुष्यंत कुमार बनने के चक्कर में ग़ज़लकारों में अधिकाधिक ग़ज़लें लिखने की होड़ मच जाती है। जिससे हिंदी में ग़ज़लों का पहाड़ खड़ा हो जाता है। लेकिन ग़ज़लों का यह विशालकाय हिमालय भी आलोचकों का ध्यान आकृष्ट नहीं कर पाता है और आलोचना के अभाव में हिंदी ग़ज़ल पाँच दशक की दीर्घकालिक यात्रा के बाद भी हिंदी काव्य जगत में जगत में मुकम्मल पहचान व वांछित स्थान प्राप्त नहीं कर

पाती है। कुमार रवीन्द्र इस संबंध में कहते हैं- “हिन्दी-ग़ज़ल, सारे शोर-शराबे के बावजूद, अभी अपने को पूरी तरह स्थापित नहीं कर पाई है।” (समकालीन हिंदी ग़ज़ल पहचान और परख) स्पष्ट है कि हिंदी ग़ज़ल अभी तक हिंदी कविता की तरह स्थापित नहीं हो पाई है। कारण है कि उसे आलोचकीय लेखनी का साथ नहीं मिला है, वह अभी भी आलोचना के योगदान की आकांक्षी है। हिंदी ग़ज़ल की आलोचकीय उपेक्षा का एक बड़ा कारण यह है कि हिंदी ग़ज़ल की अनेक उपलब्धियों और खूबियों के ऊपर उसमें कई शैल्पिक दोष भी हैं। जिनकी चर्चा छठे अध्याय में की गई है। इनके अलावा उसमें कुछ अन्य खामियाँ भी हैं। ये दोष और खामियाँ ही उसकी समस्याएँ व सीमाएँ हैं। जो संक्षेप में इस प्रकार हैं-

1. हिंदी ग़ज़लकारों में बिना श्रम व साधना के थोड़ी सी ग़ज़लें पढ़-सुनकर और थोड़े से शिल्प को साधकर ग़ज़लें रचने की अपरिपक्व प्रवृत्ति मिलती है। काव्य साधना की कमी के कारण हिंदी ग़ज़लों में कलात्मक सौंदर्य का अभाव और अच्छी शायरी की कमी है।
2. हिंदी ग़ज़लकारों में चर्चित ग़ज़लकारों के भावों, विचारों व विषयों के अंधानुकरण की प्रवृत्ति है, जिससे हिंदी ग़ज़लों में बड़े पैमाने पर दोहराव और पुनरावृत्ति की समस्या है। तथा मौलिकता का अभाव है।
3. हिंदी ग़ज़लों में ग़ज़ल की मूल स्वभावगत विशेषताओं- संक्षिप्तता एवं सांकेतिकता के विपरीत वर्णनात्मकता एवं सपाटबयानी का प्राधान्य है।
4. हिंदी ग़ज़लें, ग़ज़ल की खूबियों- सहजता, नाजुकता एवं भावप्रवणता की जगह सामयिक जटिल यथार्थ की वैचारिक अभिव्यक्ति से बौद्धिकता एवं वैचारिकता का शिकार हुई है।
5. हिंदी ग़ज़लकार ग़ज़लों की गुणवत्ता की बजाय संख्या एवं परिमाण को महत्व देते हैं, जिससे बहुत सी हिंदी ग़ज़लों में कलात्मक उत्कृष्टता का अभाव देखने को मिलता है। ग़ज़लों की बाढ़ के कचरे में अच्छी ग़ज़लों या शेरों रूपी मोतियों को ढूँढ़ने के श्रमसाध्य कार्य से आलोचक बचते हैं।
6. समकालीन हिंदी ग़ज़ल उर्दू ग़ज़ल और हिंदी कविता का संगम है। लेकिन हिंदी ग़ज़लकारों में इन दोनों परंपराओं के सम्यक मूल्यांकन और आत्मसातीकरण से बचने की प्रवृत्ति मिलती है, जिससे हिंदी ग़ज़ल अभी तक अपने वास्तविक सौंदर्य एवं स्थान को प्राप्त नहीं कर सकी है।

इसी तरह हिन्दी ग़ज़ल में एक खामी यह भी मिलती है कि उसमें व्यवस्था विरोध के नाम पर ऐसी भावहीन, संवेदनहीन, सख्त, फूहड़, सपाट और स्थूल ग़ज़लें भी लिखी जा रही हैं, जिन्हें ग़ज़ल कहने में संकोच होता है। ऐसी ग़ज़लें, ग़ज़ल के मिज़ाज और हिन्दी ग़ज़ल के पर्यावरण को नुकसान पहुँचा रही हैं।

हिंदी ग़ज़ल में संभावनाएँ- हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा में दुष्यंत कुमार की ग़ज़लें नींव का पत्थर साबित होती हैं। यहाँ से हिंदी ग़ज़ल में नई संभावनाओं का अपार क्षितिज खुलता है और हिंदी ग़ज़ल की नदी बड़े क्रांतिकारी वेग के साथ प्रवाहित होने लगती है। यद्यपि इसके साथ कुछ अवशिष्ट कचरा भी बहा है, पर यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है, यह स्वाभाविक है। दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों में राजनीतिक प्रतिरोध का जो स्वर उभरा था, उसे अनवरत बुलंद करते हुए आज की हिंदी ग़ज़ल आम आदमी की पीड़ा को व्यक्त करने तथा उसके लिए जिम्मेदार भ्रष्ट सत्ता तंत्र को बेनकाब कर राजनीतिक-सामाजिक परिवर्तन का सशक्त माध्यम बनी है। दुष्यंत के बाद से आज तक पाँच दशक की यात्रा में हिंदी ग़ज़ल ने वस्तु और शिल्प के स्तर पर निरंतर आगे कदम बढ़ाते हुए अपने समय और समाज को बहुत निकटता और गहराई से देखा है। तथा समय के साथ चलने व समय से भी आगे देखने की अपनी क्षमता को प्रदर्शित किया है। यह समकाल की आवाज बनने के साथ भविष्य का सुन्दर मानचित्र भी रचती है। यह हिंदी ग़ज़ल के उज्ज्वल भविष्य का संकेत है। समकालीन दौर में यही एक काव्य विधा है जो विज्ञान और तकनीक के इस दौर में मशीनीकरण के प्रभाव से यांत्रिक जीवन शैली का शिकार हो जड़ होते मनुष्य के हृदय में संवेदनशीलता की धारा प्रवाहित कर मानव मन की सूखती धरती पर भावनाओं और कोमल अनुभूतियों के फूल खिलाने की क्षमता रखती है। यह इसके सुनहरे भविष्य का सुखद संकेत है। आज जबकि आम आदमी की बात करने वाली कविता खुद ही आम आदमी से दूर होकर रचनाकार और प्रबुद्ध पाठक तक सीमित होती जा रही है। वहीं ग़ज़ल अपनी छंदबद्धता, लयात्मकता, भावात्मकता एवं विशेष सौंदर्य आकर्षण के कारण आम जन से जुड़ती है। और यह इसके विकास की अपार संभावनाओं का द्योतक है। वैज्ञानिक और भौतिक प्रगति के इस दौर में जीवन निरंतर जटिल होता जा रहा है और समकाल के इस जटिल यथार्थ की जितनी सहज और सशक्त अभिव्यक्ति ग़ज़ल के माध्यम से हो रही है, अन्य दूसरी विधाओं में नहीं। ऐसे में हिंदी ग़ज़ल की संभावनाओं के अनंत द्वार खुलते हैं। आज की हिंदी ग़ज़ल की कथ्य परिधि का क्षेत्र बहुत व्यापक है। राष्ट्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर

घटित हो रहे नित नए राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक परिवर्तन उसकी परिधि में हैं। इससे आगे मनुष्य की संपूर्ण चेतना और संपूर्ण ब्रह्मांड उसके भीतर समाहित है। इसलिए इसके विकास की संभावनाओं का क्षितिज अनंत(आकाश) की तरह अनंत है। समकालीन हिंदी ग़ज़ल हिंदी-उर्दू की गंगा जमुनी तहजीब का प्रतिरूप है। यह समकालीन हिंदी कविता और उर्दू ग़ज़ल की खूबियों का अनूठा संगम है। एक ओर इसके पास हिंदी कविता की समयानुकूल विचार प्रधान यथार्थपरक विषय वस्तु है, तो दूसरी ओर उर्दू ग़ज़ल का भावप्रवण, लोकप्रिय, आकर्षक एवं प्रभावी शैल्पिक विधान है। इसका कथ्य सामयिक परिवेश के यथार्थ से प्रदीप्त है, तो इसका शिल्प जनग्राह्यता के मानकों पर खरा है। इसके पास एक ओर भारतीय संस्कृति, चिंतन, जीवन दर्शन, मूल्यों, संस्कार व ज्ञान विज्ञान की व्यापक विषय वस्तु एवं हिंदी कविता की विपुल शब्द संपदा, मिथक, प्रतीक एवं बिंबों का व्यापक कोश है, तो दूसरी ओर किसी विषय-विचार को कलात्मकता, संक्षिप्तता, भाव प्रवणता, मार्मिकता और लयात्मकता के साथ प्रस्तुत करने की उर्दू ग़ज़ल की शिल्प शक्ति है। भाव और रूप के इस मणिकांचन संयोग के कारण इसका भविष्य उज्ज्वल है तथा इसके विकास की अनंत संभावनाएँ हैं। कह सकते हैं कि हिंदी ग़ज़ल के पैरों के तले भारतीय संस्कृति, उर्दू ग़ज़ल व भारतीय कविता की विशाल विरासत की ज़मीन है, तो उसकी आँखों में नये दौर के नये जीवन मूल्यों व सत्यों के साथ ऊँची उड़ान भरने के लिए पल पल परिवर्तित होते यथार्थ का अनंत आकाश है।

શોધ સારાંશ

शोध सारांश

ग़ज़ल का बीजांकुरण अरबी ज़बान की ज़मीन पर कसीदों के प्रारंभिक अंश-तश्बीब से हुआ। जिसमें प्रेम और सौंदर्य के सुकोमल भावों का शृंगारिक वर्णन होता था। फ़ारसी में ग़ज़ल को वास्तविक रूप-नाम प्राप्त हुआ। अरब-फ़ारस से यह हिंदुस्तान की सरज़मीं पर आती है। और अमीर खुसरो की क़लम से खड़ी बोली हिन्दी में इसकी क़लम का रोपण होता है। हिंदुस्तान की उर्वर साहित्यिक धरा पर ग़ज़ल की पौध खूब पल्लवित-पुष्पित होती है। और यह खड़ी बोली हिन्दी की ही एक शैली- उर्दू में शायरी की सबसे लोकप्रिय विधा बन जाती है। उर्दू और हिन्दी भाषाओं के अलगाव के बाद आधुनिक काल में उर्दू ग़ज़ल के अनुकरणस्वरूप पुनः हिन्दी में आने पर हिन्दी ग़ज़ल के रूप में इसका पुनर्जन्म होता है। इस नए अवतरण में ग़ज़ल के शैल्पिक चेहरे में तो कोई खास बदलाव नहीं होता है। किंतु अपने उद्भव काल से प्रेम और सौंदर्य के भावों की रंगीन अभिव्यक्ति के रूप में पहचानी जाती रही ग़ज़ल में, आधुनिक हिन्दी कविता के संस्कारों से संस्कारित होने पर कथ्य और विषय-वस्तु के स्तर पर व्यापक बदलाव आता है। यह स्वाभाविक भी है। जैसा कि प्रसिद्ध हिन्दी ग़ज़लकार व आलोचक कमलेश भट्ट 'कमल' ने भी उल्लेख किया है कि किसी विधा में भाषागत परिवर्तन होने पर उसके कथ्य और संवेदना में बदलाव आता है, क्योंकि भाषा का सीधा जुड़ाव किसी भाषिक समूह के लोगों की संस्कृति और परंपराओं से होता है।

ग़ज़ल को व्यापक तौर पर हिन्दी काव्य संस्कारों से संस्कारित करने का कार्य प्रसिद्ध हिन्दी कवि दुष्यंत कुमार ने किया। हिन्दी कविता की छंदमुक्तता, अतिशय बौद्धिकता, वैचारिकता, भाषिक क्लिष्टता और जटिलता के कारण आमजन से बढ़ती दूरी को दृष्टिगत कर, नई कविता के प्रमुख हस्ताक्षर के रूप में प्रतिष्ठित होने पर भी दुष्यंत कुमार ने, ग़ज़ल की छंदबद्धता, लयात्मकता, गेयता, स्मृति अवधारणीयता, संक्षिप्तता, कहन की सादगी, सरलता और लोकभाषा व लोकमन से नजदीकी जैसी खूबियों से प्रभावित हो, सत्ता के तानाशाही दौर में आम जनता की सार्वजनिक पीड़ा को जनभाषा में जन-जन तक पहुँचाने के लिए कविता की जगह ग़ज़ल को चुना। तथा ग़ज़ल की प्रकृति और प्रवृत्ति को बदलते हुए उसे ग़मे जानाँ के स्थान पर ग़मे दौराँ तथा प्रेम की व्यक्तिगत पीड़ा के स्थान पर आम आदमी की सार्वजनिक पीड़ा की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। साथ ही उस सार्वजनिक पीड़ा के लिए जिम्मेदार सत्ता की विसंगतियों को उजागर कर एवं उसके प्रतिरोध का स्वर बुलंद कर ग़ज़ल

को राजनीतिक-सामाजिक चेतना से संबद्ध किया। दुष्यंत के हाथों हिंदी कविता का ताना-बाना पहनकर ग़ज़ल समकालीन हिंदी कविता से वैचारिकता, यथार्थपरकता, समसामयिकता, मानवतावाद और जनवादी चेतना जैसे तत्वों को ग्रहण करती है और वह थोथी वायवीयता और कल्पनाशीलता को छोड़कर समकालीन यथार्थ की आमफ़हम भाषा में सरल रूप में अभिव्यक्ति करने लगती है। जिससे उसे हिंदी काव्य रूप के तौर पर लोकप्रियता एवं पाठकीय स्वीकृति प्राप्त होती है।

“जटिल होती हुई कविता विचारों से हुई बोझिल

ग़ज़ल होठों पे आते ही कहन में सादगी आई।” (विनय मिश्र)

(लोग जिंदा हैं, पृ. 81)

ग़ज़ल सम्राट दुष्यंत कुमार ग़ज़ल की जीवन दृष्टि और कथ्यात्मा का अंतरण करते हैं। वे हिंदी कविता की अपने समय-समाज सम्बद्ध विषय-वस्तु की तर्ज़ पर हिन्दी ग़ज़ल को नया मिज़ाज, नया स्वर और नया अंदाज़ देकर ग़ज़ल की रूहानी और रूमानी दुनिया में समकालीन यथार्थ के नए द्वार उद्घाटित करते हैं। इस अंतर्बदलाव के परिणामस्वरूप प्रेम-सौंदर्य के वैयक्तिक भावों की कल्पना प्रधान अभिव्यक्ति करने वाली ग़ज़ल अपने समय के विविध सुवर्णी-विवर्णी सामाजिक रंगों की यथार्थवादी अभिव्यक्ति करने लगती हैं। ग़ज़ल जो सदियों तक ज़नाना से गुफ़्तगू करती रही, अब ज़माने से गुफ़्तगू करने लगती है। स्त्रियों से संवाद करने वाली ग़ज़ल समय से संवाद करने लगती है। वैयक्तिक प्रेम के मीठे नग्मे सुनाने वाली ग़ज़ल ज़िन्दगी के गीत गाने लगती है। और इस तरह सदियों तक प्रेमाख्यान बनी रही ग़ज़ल ज़िन्दगी का अफ़साना बन जाती है। अपने समय व समाज का सत्याख्यान एवं युग का यथार्थाख्यान बन जाती है। जिससे हिंदी ग़ज़ल के रूप में ग़ज़ल का एक नया स्वरूप और एक नई छवि सामने आती है। अरबी, फारसी और उर्दू में कथ्य के स्तर पर प्रेम और शृंगार के भावों से ओतप्रोत रही ग़ज़ल की, आधुनिक हिंदी कविता के प्रभाव में हुस्न और इश्क की गुफ़्तगू वाली परम्परागत कल्पनाशील रूमानी छवि के स्थान पर समयगत सच्चाइयों का आईना वाली नई यथार्थवादी छवि उभरती है। ग़ज़ल काल्पनिक विधा के स्थान पर यथार्थवादी विधा बन जाती है। और सामयिक यथार्थ का आईना बनकर उभरती है। ग़ज़लकार अनिलकुमार गौड़ भी मानते हैं- “ग़ज़ल ने पारम्परिक उर्दू ग़ज़ल की भाषिक, सांस्कृतिक, पुराणाथात्मक (मिथकीय) विषय-वस्तु से हटकर तथा हिन्दी भाषा और साहित्य की प्रवृत्तियों को आत्मसात् करके हिन्दी ग़ज़ल की पृथक् तथा विशिष्ट छवि पायी है। साम्प्रतिक बोध को प्रस्तुत

करने में यह अचूक है। वस्तुतः आज की जीवन्त ग़ज़ल का प्राथमिक स्वर हमारी बदली हुई सामाजिक और राजनीतिक भूमिका से उभरा है, इसलिए वह आज के सन्दर्भ में 'नीरो की बाँसुरी' या 'अफ़ीम की गोली' नहीं है। हिन्दी ग़ज़ल हमारे रोजमर्रा के जीवन-क्रम की 'साहित्य-डायरी' है।”

(वशिष्ठ अनूप, हिंदी ग़ज़ल का परिप्रेक्ष्य, पृ. 149)

समकालीन हिंदी ग़ज़ल ने कल्पनाओं के फ़लक से उतरकर यथार्थ की ज़मीन पर अपनी नई पहचान मुक़रर की है। 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल दुष्यंत की राजनीतिक- सामाजिक चेतना को विस्तृत करते हुए जीवन के सभी क्षेत्रों से जुड़ी है। उसकी कथ्य परिधि आज संपूर्ण जीवन-जगत और ब्रह्मांड तक फैली हुई है। आज जीवन का कोई भी क्षेत्र हिंदी ग़ज़ल की कथ्य परिधि से परे नहीं है। समकालीन हिंदी ग़ज़लकारों की ग़ज़ल सृष्टि में यथार्थवादी दृष्टि प्रधान है। इसलिए आज की हिंदी ग़ज़ल का चेहरा-मोहरा पूरी तरह से यथार्थवादी है। वह जीवन के सभी क्षेत्रों- राजनीति, समाज, धर्म, अर्थ, संस्कृति आदि पर यथार्थवादी दृष्टि से चिंतन करती है। उसके कथ्य का विस्तृत कैनवास यथार्थ के रंग से रंगायित है। और यथार्थ चेतना उसका प्रधान स्वर या आत्मीय स्वर है। हिंदी काव्य रूप के तौर पर ग़ज़ल की ज़रूरत, हिंदी ग़ज़ल के स्वरूप एवं उसके रचनात्मक उद्देश्य के बारे में वशिष्ठ अनूप कहते हैं-

“कौन कहता कि आकाश-फल है ग़ज़ल।

वक्त के रूबरू आजकल है ग़ज़ल।

काल के गाल पर कुछ हँसी कुछ रुदन

अश्रु की बूँद जैसी तरल है ग़ज़ल।

कैसे जीवन से कविता जुड़ेगी पुनः

प्रश्न का एक सीधा सा हल है ग़ज़ल।

एक सुंदर जगत के सृजन के लिए

शब्द-संसार में इक पहल है ग़ज़ल।” (वशिष्ठ अनूप)

(रोशनी खतरे में है, पृ. 19)

साहित्य की विषय-वस्तु और जीवन दृष्टि के आधार पर दो कोटियाँ होती हैं- आदर्शवादी और यथार्थवादी। यथार्थवादी साहित्य का प्राण तत्व है- यथार्थ चेतना। यह साहित्य की वह आंतरिक शक्ति है, जो साहित्य को काल्पनिक उड़ानों और हवाई किलों की दुनिया से उतारकर ज़मीनी हकीकत से जोड़ती है, जो उसे शाब्दिक-क्रीड़ा

और वायवीय कल्पनाओं के सुरक्षित कोष्ठ से निकालकर समय के क्रूर और जटिल सत्य से सीधे टकराने का साहस देती है। उसे समाज में व्याप्त विसंगतियों, विद्रूपताओं, शोषण, अन्याय और पाखंड पर प्रहार करने तथा समाज के विद्रूप यथार्थ में बदलाव की चेतना जाग्रत करने की शक्ति देती है। जिससे वह अपने समय का एक जीवंत दस्तावेज़ तथा भविष्य का एक सुनहरा रेखाचित्र बन पाता है। इसके बिना साहित्य मनोरंजन का साधन मात्र बनकर रह जाता है। यथार्थ चेतना से युक्त साहित्य आदर्शवादी कल्पनाओं और रूमानी पलायनवाद का खंडन करता है और जीवन की कड़वी सच्चाइयों, विसंगतियों और अंतर्विरोधों से सीधे मुठभेड़ करता है। पर साहित्य में यथार्थ चेतना का अर्थ केवल वास्तविकता का ज्यों का त्यों चित्रण करना नहीं है, बल्कि यह प्रतीयमान यथार्थ की परतों को भेद कर उसके पीछे के प्रच्छन्न सत्य को उजागर करने, उसकी विवेचना करने और उसके मूल कारणों को भेदने की एक बौद्धिक और संवेदनशील प्रक्रिया है। यह चेतना लेखक को सतह पर दिखने वाली घटनाओं से परे ले जाकर उन सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक शक्तियों को पहचानने के लिए प्रेरित करती है, जो व्यक्ति और समाज के जीवन को नियंत्रित करती हैं। यह चेतना एक निर्मम प्रकाश की भाँति काम करती है, जो व्यवस्था द्वारा निर्मित एवं प्रचारित सुविधाजनक अर्धसत्यों, प्रायोजित नैरेटिव और बाज़ार के सम्मोहक आवरणों को भेदकर उनके भीतर के प्रच्छन्न सच, विद्रूपता और मानवीय पीड़ा को अनावृत्त करती है। यथार्थ चेतना से अनुप्राणित साहित्य समाज की संरचनात्मक एवं व्यवस्थागत कमज़ोरियों—वर्गभेद, आर्थिक विषमता तथा राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक आदि जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त विद्रूपताओं, विसंगतियों को चीरकर उनके गहरे ज़ख्मों को दिखाता है। इसका लक्ष्य अपने समय और समाज के प्रच्छन्न एवं विद्रूप सत्यों से पाठक वर्ग का साक्षात्कार करवाकर, उसे एक बेहतर भविष्य की कल्पना के लिए बेचैन कर देने वाली बौद्धिक जागृति प्रदान करना है। इस तरह यथार्थवादी साहित्य वर्तमान का विश्लेषण कर एक न्यायपूर्ण और बेहतर भविष्य के लिए वैचारिक ज़मीन तैयार करता है।

यथार्थवादी साहित्य सामाजिक सत्यों एवं जीवन यथार्थ की अनुकृति होता है। और समाज जीवन के सत्य, मूल्य, चेतना और व्यवहार काल के परिवर्तनशील क्रम में परिवर्तित होते रहते हैं। विज्ञान और तकनीक की इस 21वीं सदी में वैश्वीकरण एवं उदारीकरण के फलस्वरूप पूँजीवाद को प्रश्रय मिलता है। यह पूँजीवाद बाज़ारवादी संस्कृति को स्थापित करता है और बाज़ारवाद उपभोक्तावाद को बढ़ावा देता है। इन

नवीन संकल्पनाओं के प्रसार से हमारे समाज के जीवन दर्शन व सत्यों में व्यापक बदलाव आता है। और 21वीं सदी के समाज का जीवन दर्शन आध्यात्मिकतावादी की जगह पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित भौतिकतावादी, जीवनशैली सादा जीवन उच्च विचार की संयमित शैली के स्थान पर असीमित भोग को बढ़ावा देने वाली उपभोक्तावादी एवं जीवन दृष्टि मूल्यवादी के स्थान पूँजीवादी व बाज़ारु हो जाती है। बाज़ारवादी एवं उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण व्यक्ति की आकांक्षाएँ और आवश्यकताएँ अनन्त हो जाती है, जिससे अर्थ का महत्व असाधारण रूप से बढ़ जाता है और आधुनिक समाज की सोच, चिंतन व चिंता के केंद्र में अर्थ स्थापित हो जाता है। जिसके फलस्वरूप जीवन में अर्थ का अनर्थकारी अतिक्रमण होता है। 'सर्वगुणाकांचनमाश्रयन्ति'....ही जीवन का ध्येय वाक्य बन जाता है और येनकेनप्रकारेण लक्ष्मी की प्राप्ति ही जीवन का लक्ष्य रह जाता है। धन ही व्यक्ति का धर्म या मानव धर्म तथा मुद्रा ही मानवीय मूल्य बन जाती है। उसके सामने व्यक्ति के सारे मानवीय संबंध और मूल्य पीछे छूट जाते हैं। या कहें कि व्यक्ति की नज़र में धन के सामने सभी तरह के जैसे-पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राष्ट्रीय, पर्यावरणीय और मानवीय धर्म एवं मूल्य बौने हो जाते हैं। व्यक्तिगत जीवन में आई यह मूल्यहीनता संस्थागत मूल्यहीनता का कारण बनती है। और राजनीति, धर्म और समाज हर क्षेत्र में मूल्यहीनता और विकृतियों का प्रसार होने लगता है। यह मूल्यहीनता ही वर्तमान की बहुत सी समस्याओं और विसंगतियों की जड़ बन जाती है। गज़लकार गोपालदास नीरज का भी मानना है कि, "आज दो मूल्य मुख्य हैं- अर्थ और काम। अर्थ को हमारे यहाँ पिशाच कहा गया है। धीरे-धीरे खून चूसकर मारता है। साहित्य, कला, धर्म, दर्शन, शिक्षा, राजनीति जहाँ भी यह केन्द्र बनेगा, सबको व्यर्थ सिद्ध कर देगा, विकृत कर देगा।" (प्रेम कुमार, एक मस्त फकीर; नीरज, पृ. 21)

समाज जीवन को संचालित करने वाले तीन प्रमुख संस्थान या शक्ति केंद्र हैं- राजनीति, धर्म और अर्थ (पूँजी) या बाज़ार। पारंपरिक तौर पर इनमें धर्म की सत्ता सर्वोपरि रही है। और वह राजनीति व अर्थ दोनों के लिए नैतिक दंड का कार्य करता रहा है। इसलिए राजनीति और बाज़ार के धर्म की बात होती रही है। नवीन जीवन दृष्टि व दर्शन के कारण यह सोपान क्रम बदलता है। और बाज़ार सबसे बड़ा शक्ति संस्थान बन जाता है। एक ओर राजनीति के धर्म की जगह धर्म की राजनीति तेजी से बढ़ती है। राजनीति पर धर्म और पूँजी हावी होती है और राजनीति सत्ता के लिए इनसे गुप्त गठबंधन करती है। इस तरह बाज़ार की आवारा पूँजीवादी संस्कृति को

नियंत्रित करने की जिम्मेदार एवं समाज का पथ प्रदर्शन करने वाली राजनीति खुद भी पूँजी के प्रभाव में आ जाती है और स्वार्थपरता एवं मूल्यहीनता का शिकार हो अपराधियों का जमघट बन जाती है। दूसरी ओर बाज़ार के धर्म की जगह धर्म के बाज़ारीकरण की शुरुआत होती है। या कहें कि बाज़ार उसको धर्म सिखाने वाले धर्म का बाज़ारीकरण कर देता है। और इस तरह समाज में भौतिकतावाद के स्थान पर आत्मवाद की प्रतिष्ठा तथा नैतिक मूल्यों की शिक्षा देकर माया के मोह को नियंत्रित करने वाला धर्म खुद माया (पूँजी) एवं बाज़ार के समक्ष नतमस्तक हो जाता है। बाज़ार के प्रभाव में धर्म खुद अपना धर्म भूल जाता है। पूँजी या बाज़ारवाद के प्रभावस्वरूप राजनीति और धर्म में आई विकृतियों और मूल्यहीनता के प्रभावस्वरूप समाज और संस्कृति में भी विचलन-विरूपण होता है। कुल मिलाकर आज साम्राज्यवादी पूँजी से पोषित बाज़ारवाद समाज, राजनीति, धर्म और साहित्य सबको नियंत्रित व शासित करने वाला सबसे बड़ा शक्तिशाली दानवी संस्थान बन गया है। आवारा पूँजी व बाज़ारवाद का यह दैत्य जीवन की समस्त सुरूपताओं और शुभताओं को निगल रहा है। जिससे राजनीति, समाज, धर्म, संस्कृति सभी क्षेत्रों में मूल्यों का निर्वासन हो रहा है तथा जीवन के हर क्षेत्र में कुरूपताओं और अशुभताओं का प्रसार हो रहा है। बाज़ारवादी और उपभोक्तावादी जीवन संस्कृति जितनी अधिक बढ़ी है, इंसानियत का बंजरपन भी उतना ही बढ़ा है। जिससे वर्तमान का परिवेश खौफनाक, अमानवीय व चुनौतीपूर्ण होता जा रहा है। अपने ग़ज़ल संग्रह 'खूबसूरत है आज भी दुनिया' की भूमिका में माधव कौशिक ने लिखा है- "आज का समय इतिहास के सर्वाधिक संकटपूर्ण काल खंडों में से एक है। उपभोक्तावादी अपसंस्कृति तथा बाजारवाद का अजगर हमारे संबंधों की सारी ऊर्जा तथा ऊष्मा को सोखने लगा है। भूमंडलीकरण तथा उदारवाद की आँधी ने मानवीय समाज के ताने-बाने को छिन्न-भिन्न कर दिया है।" (माधव कौशिक सृजन की समीक्षा, पृ. 68)

निष्कर्षतः आज जीवन के हर क्षेत्र- समाज, राजनीति, धर्म, संस्कृति सभी में मूल्यहीनता, विसंगतियों और विकृतियों का प्रसार हो रहा है, जिससे जीवन का सौंदर्य विद्रूप हो रहा है। हिंदी ग़ज़लकार को इस विद्रूप यथार्थ के सामने इश्क-आशिकी की काल्पनिक दुनिया बेमानी लगती है और वह जीवन-जगत के काल्पनिक सौंदर्य वर्णन के स्थान पर वर्तमान की विद्रूप व्यवस्था में जीवन-जगत के बिगड़ते सौंदर्य का नग्न चित्र खींच कर जीवन सौंदर्य को बचाने की पैरवी करता है। वह अपने समय की आँख में आँख डालकर जीवन के सभी क्षेत्रों में व्याप्त विसंगतियों, विडंबनाओं, विद्रूपताओं

एवं समस्याओं को अपने ग़ज़ल साहित्य के माध्यम से पूरी शिद्दत व ईमानदारी के साथ अभिव्यक्त करता है। उत्तर आधुनिकता के इस दौर में राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं धार्मिक मूल्यों की पतनशीलता, आर्थिक विषमता, परंपरागत सामाजिक संरचना का विघटन तथा सांस्कृतिक संक्रमण 21वीं सदी के भारतीय समाज की यथार्थ पहचान बन गई है। 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल नई सदी के इन तमाम नवीन युगीन सत्यों का यथार्थवादी लेखा-जोखा प्रस्तुत करती है। वह समकालीन समय की समग्र सच्चाइयों का प्रतिनिधित्व करती है। और साम्प्रतिक जीवन का आईना या प्रतिकृति बनकर उभरती है। हिंदी ग़ज़लकारों के ये शेर इसकी पुष्टि करते हैं-

फ़ज़ा इस वक़्त रुमानी नहीं है

ग़ज़ल की चूनरी धानी नहीं है। (शिव ओम अम्बर)

(विष पीना विस्मय मत करना, पृ. 41)

“जामो-मीना की खनक से थी ये वाबस्ता ज़रूर।

देखिए अब ज़िंदगी की तर्जुमानी है ग़ज़ल।।” (अदम गोंडवी)

(समय से मुठभेड़, पृ. 66)

“ग़ज़ल हूँ मैं मुहब्बत का खुला घर बार रखती हूँ

हकीकत के सफर का दौरे कारोबार रखती हूँ।

सभी शरों की शकलें फ़लसफ़ों की शकल होती है

‘सुगम’ के सामने मैं ज़िंदगी का सार रखती हूँ।” (महेश कटारे सुगम)

(ऐसी तैसी, पृ. 36)

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् कह सकते हैं कि 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल की जीवन दृष्टि, मिज़ाज, चेहरा व चरित्र पूरी तरह से यथार्थवादी है। और अपने यथार्थवादी स्वरूप में वह अपने समय के राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं धार्मिक परिवर्तनों, विचलनों, विकृतियों, ऊर्ध्व-अधोगतियों एवं अंतः-प्रक्रियाओं का प्रामाणिक एवं यथार्थवादी समाजशास्त्रीय लेखा-जोखा प्रस्तुत करती है। वह जीवन के सभी क्षेत्रों में व्याप्त विसंगतियों, विकृतियों, विद्रूपताओं एवं विडंबनाओं को यथार्थ रूप में उद्घाटित करने के साथ उनके प्रतिरोध एवं परिवर्तन की चेतना जाग्रत कर एक बेहतर मानवीय समाज की स्थापना का संदेश भी देती है। ग़ज़ल की पारम्परिक प्रेमिल एवं काल्पनिक छवि के स्थान पर समकालीन हिंदी ग़ज़ल की इस यथार्थवादी नवीन छवि से ग़ज़ल साहित्य प्रेमियों, अध्येताओं और शोधार्थियों को परिचित कराने

के उद्देश्य से मैंने इस शोध विषय का चयन किया है। इसके साथ ही 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में निहित यथार्थ चेतना के माध्यम से समकालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक परिदृश्य का समाजशास्त्रीय विवेचन-विश्लेषण प्रस्तुत करना भी इस शोध का उद्देश्य है।

मैंने प्रस्तुत शोध प्रबंध में ग़ज़ल के अर्थ एवं स्वरूप, हिंदी ग़ज़ल की अवधारणा और उसकी विकास यात्रा, यथार्थ चेतना के प्रतिनिधि हिंदी ग़ज़लकारों के व्यक्तित्व व कृतित्व के विवेचन के साथ 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल के माध्यम से समकालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक यथार्थ का समाजशास्त्रीय दृष्टि से विवेचन-विश्लेषण करने का प्रयास किया है।

मैं अपने इस शोध प्रबंध को विद्वज्जनों के श्रीचरणों में समर्पित करता हूँ। प्रस्तुत शोध प्रबंध की अध्याय योजना इस प्रकार है-

प्रथम अध्याय - हिंदी ग़ज़ल: अवधारणा और विकास यात्रा

द्वितीय अध्याय- 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में यथार्थ चेतना के प्रतिनिधि ग़ज़लकार-व्यक्तित्व एवं कृतित्व

तृतीय अध्याय - 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में राजनीतिक यथार्थ

चतुर्थ अध्याय- 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में सामाजिक-आर्थिक यथार्थ

पंचम अध्याय -21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में धार्मिक, सांस्कृतिक एवं अन्य यथार्थ

षष्ठम अध्याय- 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल का शिल्प विधान

उपसंहार

उपर्युक्त अध्यायों के अंतर्गत विवेचित विषयों का संक्षिप्त सारांश निम्नानुसार है

प्रथम अध्याय में ग़ज़ल के उद्भव, अर्थ, स्वरूप, संरचना, हिंदी ग़ज़ल की अवधारणा और उसकी ऐतिहासिक विकास यात्रा का विस्तृत विवेचन किया गया है। सर्वप्रथम ग़ज़ल के अर्थ एवं स्वरूप को शब्दकोशीय अर्थों एवं विभिन्न विद्वानों की परिभाषाओं के आधार पर स्पष्ट किया गया है। तत्पश्चात् ग़ज़ल के- मिसरा, मतला, मक्ता, रदीफ़, काफ़िया आदि संरचनागत अवयवों, ग़ज़ल के प्रकारों और विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है। हिंदी ग़ज़ल की अवधारणा उपशीर्षक के अंतर्गत अरबी में जन्मी मूल रूप से प्रेमिल काव्य विधा ग़ज़ल के बरास्ता फ़ारसी-उर्दू, हिंदी के आँगन में आकर परम्परा से हटकर विशिष्ट एवं मौलिक स्वरूप ग्रहण की प्रक्रिया को उद्घाटित करते हुए स्पष्ट किया गया है कि हिंदी काव्य परंपरा के संस्कारों और हिंदी ताने-बाने में ढल कर ग़ज़ल का कायाकल्प हुआ है। यह हुस्न और इश्क की

रुमानियत भरी काल्पनिक दुनिया से निकलकर समकालीन यथार्थ की प्रखर एवं जनधर्मी अभिव्यक्ति, आम आदमी का पीड़ा गीत, सामाजिक-राजनीतिक विसंगतियों और व्यवस्था के प्रति विरोध का सशक्त स्वर तथा मानवता का मंगल गान बनकर उभरी है। अंतिम उप-शीर्षक में हिंदी ग़ज़ल की आदिकाल से समकालीन दौर तक की ऐतिहासिक विकास यात्रा को पूर्व भारतेंदु युग तथा आधुनिक काल में हिंदी काव्य धाराओं के समानांतर भारतेंदु युग, द्विवेदी युग, छायावादी युग, छायावादोत्तर युग, स्वातंत्र्योत्तर युग और समकालीन हिंदी ग़ज़ल आदि विभिन्न सोपानों में विभाजित कर समझाया गया है। इस विकास यात्रा में सबसे महत्वपूर्ण कड़ी दुष्यंत कुमार है, जिन्होंने स्वातंत्र्योत्तर युग में ग़ज़ल को व्यक्तिगत वेदना के संकीर्ण दायरे से निकालकर आम आदमी की सार्वजनिक पीड़ा, राजनीतिक विद्रूपताओं और सामाजिक सरोकारों का सशक्त स्वर बनाकर हिंदी ग़ज़ल को उसका वास्तविक गौरव एवं स्वरूप प्रदान किया। उन्हीं के पदचिन्हों पर चलते हुए उनके परवर्ती ग़ज़लकारों ने हिंदी ग़ज़ल को मानवीय चेतना और यथार्थवादी दृष्टि से परिपूर्ण करते हुए इसे हिंदी कविता की एक लोकप्रिय विधा के रूप में स्थापित किया है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि हिन्दी ग़ज़ल, ग़ज़ल के संरचनात्मक अनुशासन को अक्षुण्ण रखते हुए, कथ्य और संवेदना के स्तर पर पूर्णतः हिंदीमय हो चुकी है। और यह आज जीवन यथार्थ का एक प्रामाणिक एवं जीवंत दस्तावेज़ बनकर उभरी है।

द्वितीय अध्याय में समकालीन दौर में हिंदी ग़ज़ल सर्जना में साधनारत ग़ज़लकारों की तीन पीढ़ियों की चर्चा करते हुए 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में यथार्थवादी चेतना का प्रतिनिधित्व करने वाले प्रमुख ग़ज़लकारों— जैसे अदम गोंडवी, जहीर कुरेशी, ज्ञानप्रकाश विवेक, वशिष्ठ अनूप, माधव कौशिक, रामकुमार कृषक, विनय मिश्र, डी. एम. मिश्र, महेश कटारे 'सुगम', शिव ओम 'अम्बर', हरeram 'समीप', किशन तिवारी, राम मेश्राम, एवं महेश अग्रवाल— के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विवेचन किया गया है। इन ग़ज़लकारों की ग़ज़लें समकालीन समाज की समग्र सच्चाइयों का प्रतिनिधित्व करती हैं। जिनमें राजनीतिक मूल्यों की पतनशीलता, सामाजिक विसंगतियाँ, आर्थिक विषमता, सांस्कृतिक पतन और धार्मिक पाखंड का बेबाक चित्रण शामिल है।

तृतीय अध्याय में हिन्दी ग़ज़ल के माध्यम से समकालीन राजनीतिक-लोकतांत्रिक सच्चाइयों का विवेचन करते हुए भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के लोकतांत्रिक आदर्शों से स्खलन-विचलन और सत्ता केन्द्रित राजनीति के युगीन यथार्थ

का चित्रण किया गया है। अध्याय में हिंदी ग़ज़ल से विभिन्न शेरों के उदाहरणों से यह उद्घाटित किया गया है कि जनसेवा का आदर्श त्यागकर, राजनीति अब सत्ता और स्वार्थ-पूर्ति का राजनीतिक खेल बन चुकी है। इस सत्ता-लिप्सा की पूर्ति हेतु राजनीति ने अपराध, पूँजी और धर्म के साथ एक अपवित्र गठजोड़ कर लिया है। राजनीति का अपराधीकरण आज एक बड़ी राजनीतिक सच्चाई बन गई हैं, जिससे प्रजातंत्र 'लूटतंत्र' में परिवर्तित होता जा रहा है। इसके साथ ही राजनीतिक दल वोट-बैंक साधने के लिए धर्म को एक शक्तिशाली हथियार के रूप में प्रयोग कर सांप्रदायिक धुवीकरण को बढ़ावा देते हैं, ताकि विकास जैसे वास्तविक मुद्दों से जनता का ध्यान भटकाया जा सके। चुनावी प्रक्रिया धनबल व भुजबल की अत्यधिक प्रयोगबाजी, झूठे वादों की जालसाजी, मुफ्त की रेवड़ियों की चुगगाबाजी और राजनेताओं की अमर्यादित अनर्गल बयानबाजी जैसी अलोकतांत्रिक गतिविधियों से दूषित हो गई है। सत्ता की लालसा में अवसरवादिता की प्रवृत्ति या गिरगिटिया चरित्र राजनीतिक नेतृत्व की पहचान बनता जा रहा है। राजनीतिक भ्रष्टाचार के कारण विकास की गंग धारा बाधित हो रही है और उस पर भी सत्ता विकास का विज्ञापनी शोर मचा रही है। नौकरशाही, राजनीतिक हस्तक्षेप के कारण अपनी तटस्थता खोकर सत्ताधारी दल के प्रति प्रतिबद्ध होने लगी है और भ्रष्टाचार एवं लालफीताशाही के दलदल में धँस रही है। यह व्यवस्थागत क्षय लोकतंत्र के उन स्तंभों तक भी विस्तृत है, जिन्हें इसका प्रहरी माना जाता है। संविधान की रक्षक न्यायपालिका भी भ्रष्टाचार एवं अत्यधिक महँगी और विलंबकारी न्यायिक प्रक्रिया ('तारीख पे तारीख') से ग्रस्त है, जिससे निर्धन के लिए न्याय एक मृगमरीचिका बनता जा रहा है। लोकतंत्र का चतुर्थ स्तंभ मीडिया भी व्यावसायीकरण, 'पेड न्यूज़' और सत्ता की चाटुकारिता ('गोदी मीडिया') का शिकार होकर अपने प्रहरी धर्म से च्युत हो रहा है। अध्याय से यह स्पष्ट होता है कि 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल समकालीन भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का एक "अल्ट्रासोनिक शाब्दिक चित्र" खींचती है। यह अपने युग की राजनीतिक सच्चाइयों को परत-दर-परत उघाड़कर न केवल व्यवस्था के प्रच्छन्न विकारों का निदान करती है, बल्कि उनके उपचार के लिए जन-चेतना जाग्रत कर व्यवस्था परिवर्तन की भावभूमि तैयार करती है। और एक बेहतर एवं जवाबदेही लोकतांत्रिक व्यवस्था की स्थापना का आह्वान करती है।

चतुर्थ अध्याय में 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में प्रतिबिम्बित समकालीन सामाजिक-आर्थिक यथार्थ का गहन विश्लेषण करते हुए यह उल्लेखित किया गया है

कि 20वीं शताब्दी के अंत में प्रार्थुभूत भूमंडलीकरण व उदारीकरण जैसी विचारधाराओं ने 21वीं सदी में बाज़ारवाद और उपभोक्तावादी संस्कृति को अभूतपूर्व रूप से बढ़ावा दिया है। जिसने हमारे पारंपरिक सामाजिक-आर्थिक ताने-बाने को व्यापक रूप से प्रभावित कर अनेक असंगतियों, विकृतियों, विद्रूपताओं और समस्याओं को जन्म दिया है, जिन्हें हिंदी गज़ल पूरी सच्चाई और संवेदना के साथ उकेरती है। सामाजिक यथार्थ के अंतर्गत सर्वप्रथम पारिवारिक जीवन की बदलती तस्वीर को दर्शाया गया है। संयुक्त परिवारों का टूटना और एकाकी जीवनशैली का प्रचलन आज की एक कटु सच्चाई बन गई है। पारिवारिक रिश्तों में प्रेम, स्नेह और आत्मीयता की आँच ठंडी होती जा रही है और रिश्ते स्वार्थ, बाज़ारवादी लाभ-हानि और औपचारिकता पर केन्द्रित होते जा रहे हैं। तत्पश्चात वंचित समुदायों के यथार्थ के अंतर्गत समाज के किसान-मजदूर, दलित, स्त्री, वृद्ध और बालक आदि वंचित वर्गों की विषम जीवन स्थितियों का मार्मिक चित्रण कर विवेचित किया गया है कि कर्ज, शोषण और मौसम की मार से किसानों की आत्महत्याएँ, पूँजीपतियों के हाथों मजदूरों का शोषण, उपभोक्तावादी एवं बाज़ारवादी संस्कृति में स्त्रियों का वस्तुकरण, वृद्धों की अपने ही घर में उपेक्षा और बच्चों का छिनता मासूम बचपन हाशिए के वर्गों की जीवन सच्चाई है। महानगरीय एवं ग्रामीण समाज के यथार्थ में एक ओर शहरों में भौतिकवादी चकाचौंध के बीच पसरते एकाकीपन, अजनबीपन और संवेदनहीन यांत्रिक जीवनशैली का चित्रण किया गया है। तो दूसरी ओर बाज़ारवादी, उपभोक्तावादी और शहरीकरण की संस्कृति के कारण गांवों के पारंपरिक सादगीपूर्ण और मानवीय मूल्यों से युक्त सामाजिक जीवन सौंदर्य के उजड़ने के प्रति चिंता का स्वर है। इसके बाद समाज में बढ़ती अपराधवृत्ति और अराजकता का विवेचन करते हुए बताया है कि भौतिकवादी और भोगवादी महत्वाकांक्षाओं के कारण आज समाज में हिंसा, बलात्कार और साइबर अपराधों को बढ़ावा मिला है। अपराध संगठित व्यवसाय बनते जा रहे हैं, जिससे सामाजिक परिवेश भयावह व असुरक्षित होता जा रहा है। आर्थिक यथार्थ के अंतर्गत सर्वप्रथम समाज में बढ़ती अर्थ की असीम एवं अतृप्त आकांक्षा और धन केंद्रित संस्कृति के भयावह परिणामों को उजागर करते हुए यह प्रकाशित किया गया है कि आज पैसा ही परमेश्वर हो गया है, तथा धन के आगे सारे मानवीय मूल्य, नैतिकता और इंसानियत सब गौण हो गए हैं। जीवन का एकमात्र लक्ष्य पैसा हो गया है। व्यक्ति केवल पैसे कमाने की मशीन बन गया है। अर्थ की अंतहीन अंधी दौड़ में व्यक्ति का जीवन अर्थहीन होता जा रहा है। तत्पश्चात पूँजीवादी व्यवस्था के कारण

अमीरों और गरीबों के बीच आर्थिक विषमता की गहराती खाई को चित्रित किया गया है। साथ ही गरीबी, बेरोजगारी और महँगाई जैसी आर्थिक समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए स्पष्ट किया गया है कि कैसे गरीबी के कारण आम आदमी रोटी, कपड़ा और मकान जैसी बुनियादी जरूरतों के लिए तरस रहा है। दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली और मशीनीकरण ने बेरोजगारी को एक विकराल समस्या बना दिया है, जो युवाओं को हताशा और अपराध की ओर धकेल रही है। वहीं, सुरसा के मुँह की तरह बढ़ती महँगाई आम आदमी की कमर तोड़ रही है। अंत में बाज़ारवाद के आदमखोर चरित्र को उद्घाटित करते हुए उसे एक ऐसी दानवी शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिसने मानवीय संबंधों, भावनाओं और स्वयं मनुष्य को उपभोग की वस्तु में तब्दील कर और जीवन के हर पहलू का वस्तुकरण कर मानवीय अस्मिता को खतरे में डाल दिया है।

पंचम अध्याय में 21वीं सदी की हिंदी गज़ल के आलोक में समकालीन भारतीय समाज के धार्मिक, सांस्कृतिक, पर्यावरणीय और साहित्यिक यथार्थ का विस्तृत विश्लेषण किया गया है। जिनमें धर्म का विरूपण, सांस्कृतिक मूल्यों का क्षरण, पर्यावरणीय असंतुलन और स्वयं साहित्य जगत की आंतरिक विसंगतियाँ शामिल हैं। हिंदी गज़ल इन विकृतियों, विसंगतियों और विडंबनाओं को पूरी सच्चाई के साथ उजागर करती हैं। धार्मिक यथार्थ में धर्म के मूल आध्यात्मिक स्वरूप से विचलन को स्पष्ट करते हुए दिखाया गया है कि कैसे धर्म अब निजी आस्था का विषय न रहकर राजनीतिक और आर्थिक हितों का साधन बन गया है। इसमें धर्म के व्यावसायिक, आपराधिक और पाखंडी स्वरूप को बेनकाब किया है। साथ ही राजनीति द्वारा धर्म के दुरुपयोग से बढ़ती सांप्रदायिक कट्टरता के मानवता विरोधी चेहरे को उजागर कर इन विकृतियों के विरुद्ध मानवतावादी धर्म की पुरजोर वकालत की गई हैं। सांस्कृतिक यथार्थ के विश्लेषण में भारतीय संस्कृति पर पाश्चात्य और उपभोक्तावादी संस्कृति के बढ़ते प्रभावों को रेखांकित करते हुए हमारे परम्परागत खान-पान, वस्त्र-आभूषण, कलाओं, रीति-रिवाजों और पारिवारिक-वैवाहिक जीवन शैली में आए बदलावों को दर्शाया गया है। संयुक्त परिवार के स्थान पर नाभिकीय परिवारों का प्रचलन तथा परम्परागत परिवार द्वारा तय विवाह (अरेंज मैरिज) के स्थान पर प्रेम विवाह (लव मैरिज) और बिना विवाह के सहजीवन संबंध (लिव इन रिलेशनशिप) की बढ़ती प्रवृत्ति नये दौर का नया सच बनता जा रहा है। तत्पश्चात उपभोक्तावादी अपसंस्कृति के तीव्र प्रसार और उसके दुष्प्रभावों को उजागर करने के साथ भारतीय

सनातन संस्कृति के शाश्वत मूल्यों के पतन की स्थिति को व्यक्त करते हुए इनके पुनरुत्थान और भारतीय सांस्कृतिक विरासत को संजोकर रखने का आह्वान हैं। पर्यावरणीय यथार्थ में मनुष्य और प्रकृति के शाश्वत संबंध पर प्रकाश डालते हुए विकास की अंधी दौड़ में प्रकृति के निर्मम दोहन, बढ़ते प्रदूषण, ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन जैसी आपदाओं के चित्रण के साथ मानव जाति के सुरक्षित भविष्य के लिए पर्यावरण संरक्षण और प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व की पुकार है। साहित्यिक यथार्थ के विश्लेषण में साहित्य जगत की आंतरिक विसंगतियों को उजागर करते हुए सत्ता और साहित्य के गठजोड़, दरबारी संस्कृति के पुनरुत्थान, पुरस्कारों की राजनीति, बाज़ारवाद के प्रभाव से साहित्य के वस्तुकरण, आलोचना की गुटबाजी जैसी विकृतियों के बीच सच्चे लेखकों की कलम की स्वायत्तता एवं प्रतिबद्धता को प्रकट किया गया है।

छठे अध्याय में 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल के कला पक्ष का गहन विश्लेषण इन उप-शीर्षकों के अन्तर्गत किया गया है- भाषिक संरचना -हिंदी ग़ज़ल में भाषा के तीन रूप हैं: उर्दू से प्रभावित, संस्कृतनिष्ठ साहित्यिक हिंदी और सामान्य बोलचाल की भाषा। इनमें से सामान्य बोलचाल की भाषा को हिंदी ग़ज़ल का आदर्श रूप माना गया है। हिंदी ग़ज़ल में अरबी-फ़ारसी, तत्सम-तद्भव, देशज तथा अंग्रेज़ी व अन्य विदेशी भाषाओं के शब्दों का एक समृद्ध शब्द-भंडार मिलता है। छंद विधान- हिंदी ग़ज़ल ने उर्दू की सालिम और मुरक्कब बहरों के साथ-साथ हिंदी के मात्रिक और वर्णिक छंदों (जैसे दोहा, गीतिका, रोला) को भी अपनाया है। जो इसकी छंद-समृद्धि का संकेत है। हालाँकि इसमें कुछ बहर संबंधी अशुद्धियाँ भी मिलती हैं। अलंकारों का प्रभावी नियोजन: हिंदी ग़ज़ल में प्रयुक्त शब्दालंकारों (अनुप्रास, यमक, श्लेष, पुनरुक्ति प्रकाश) और अर्थालंकारों (उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, विभावना, विशेषोक्ति, व्यतिरेक, प्रतीप, भ्रांतिमान, संदेह, मानवीकरण, विरोधाभास, असंगति, उदाहरण आदि) के उदाहरणों यह स्पष्ट किया गया है कि हिंदी ग़ज़ल में भावों की लय में अलंकारों का सहज और प्रभावशाली उपयोग हुआ है। रस सौंदर्य- ग़ज़ल परंपरागत रूप से शृंगार रस प्रधान रही है, परंतु 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल में शृंगार के साथ शांत, वात्सल्य, हास्य, करुण, रौद्र, अद्भुत व वीभत्स आदि रसों का भी सुंदर परिपाक हुआ है। प्रतीक और बिंब योजना- ग़ज़ल की सांकेतिक और संक्षिप्त प्रकृति के कारण हिंदी ग़ज़ल में प्राकृतिक, धार्मिक-सांस्कृतिक-पौराणिक, वैज्ञानिक, राजनीतिक, व्यापारिक, समसामयिक व साहित्यिक प्रतीकों तथा दृश्य, श्रव्य, घ्राण, स्पर्श, आस्वाद्य आदि

ऐंद्रिय बिंबों के साथ परिवेशगत बिंबों का भी व्यापक और प्रभावी प्रयोग हुआ है। यह ग़ज़ल को बहुआयामी संवेदनशीलता और चित्रात्मकता प्रदान करता है। मिथकीय सौंदर्य- हिंदी ग़ज़लकार भारतीय पौराणिक एवं ऐतिहासिक मिथकों के माध्यम से वर्तमान सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक विसंगतियों की पुनर्व्याख्या करते हैं, जिससे ग़ज़ल की अभिव्यक्ति में गहराई आती है। मुहावरों और लोकोक्तियों का लालित्यपूर्ण प्रयोग- हिंदी ग़ज़ल में मुहावरों और लोकोक्तियों के उदाहरणों से यह रेखांकित किया गया है कि लोकानुभवों से निसृत लोकोक्तियाँ और मुहावरे ग़ज़ल को संक्षिप्तता, मार्मिकता और प्रभावशीलता प्रदान करते हैं। शब्द शक्ति- 21वीं सदी की यथार्थवादी हिंदी ग़ज़ल में अभिधा का प्रमुखता से प्रयोग हुआ है। साथ ही सामाजिक-राजनीतिक प्रसंगों के सांकेतिक चित्रण के लिए लक्षणा तथा भावात्मक सौंदर्य एवं बहुअर्थवता के लिए व्यंजना का प्रयोग हुआ है। व्यंग्य का सशक्त प्रयोग-हिंदी ग़ज़ल में व्यंग्य को सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और धार्मिक क्षेत्रों की विसंगतियों को उजागर करने के एक सशक्त उपकरण के रूप में प्रस्तुत किया गया है। शैल्पिक दोषों का मूल्यांकन: इसमें ग़ज़ल के शैल्पिक दोषों का विवेचन किया गया है जिनमें रदीफ़, काफ़िया, श्रुतिकटुत्व, ग्राम्यत्व, अश्लीलत्व, पुनरुक्ति, अक्रमत्व, अनावश्यक पदत्व और च्युत संस्कृति जैसे शैल्पिक दोषों का विश्लेषण शामिल है। इस अध्याय में यह प्रतिपादित किया गया है कि 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल शिल्प विधान की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध और विकासमान है। यद्यपि इसमें कुछ शैल्पिक दोष दृष्टिगोचर होते हैं, तथापि यह निरंतर परिष्कार की ओर अग्रसर है।

उपसंहार के अंतर्गत संपूर्ण शोध प्रबंध के वर्ण्य विषय को मित शब्दों में व्यक्त करने के साथ शोध की उपलब्धियों, सीमाओं, भविष्य की शोध दिशाओं तथा हिंदी ग़ज़ल की सीमाओं एवं संभावनाओं पर प्रकाश डाला गया है।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि हिंदी ग़ज़ल आज ग़ज़ल के शाब्दिक अर्थ प्रेमालाप से आगे बढ़कर जीवन के बहुआयामी यथार्थ को समग्रता से अभिव्यक्ति करने वाली लोकप्रिय काव्यविधा बन गई है। हिंदी में आकर ग़ज़ल के शैल्पिक चेहरे में तो कोई खास बदलाव नहीं हुआ है। किंतु इसकी कथ्यात्मा का निरन्तर परिष्कार एवं विस्तार हुआ है और उसमें समकालीन यथार्थवाद की प्रतिष्ठा हुई है। नयी कविता की समकालीनता का मुहावरा पकड़कर इसने अपने समय की सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक विसंगतियों व विद्रूपताओं, सांस्कृतिक विचलन व मूल्य क्षरण तथा बाजारवाद व उपभोक्तावाद जैसे तमाम आधुनिक संप्रत्ययों, सत्यों एवं मूल्यों की

अनेकानेक संवेदनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान की है। समकालीन जीवन का कोई भी क्षेत्र इससे अछूता नहीं है। झूठ, फरेब और मक्कारी की वर्तमान स्वार्थी राजनीति हो, बाज़ारवाद का दानवी प्रसार हो, पाश्चात्य सभ्यता व उपभोक्तावादी संस्कृति से आक्रांत शहरों की बनावटी एवं भागती ज़िंदगी में अजनबीपन, अकेलेपन और टूटते रिश्तों की ठीस हो, शहरी संस्कृति के अतिक्रमण में ग्रामीण जीवन का उजड़ता सौंदर्य हो, वंचित वर्गों- किसान, मजदूर, स्त्रियों, वृद्धों व बाल श्रमिकों की पीड़ा हो, आर्थिक विषमता की गहरी होती घाटी हो, भुखमरी, गरीबी, बेरोजगारी व महँगाई जैसी समस्याओं से जूझता समाज हो, धार्मिक पाखंड हो या धर्म का व्यावसायीकरण, अपराधीकरण व राजनीतिकरण हो, आतंकवाद व सांप्रदायिकता की आग में झुलसती मानवता की पीड़ा हो, प्रकृति के सौंदर्य को विनष्ट करते एक रेखीय विकास का सच हो, सब के सब समकालीन चित्र हिंदी गज़ल के आइने में स्पष्ट रूप में प्रतिबिंबित होते हैं। संक्षेप में 21वीं सदी की हिंदी गज़ल समकालीन समाज या जीवन की समग्रता का समग्र भाव के साथ यथार्थपरक कलात्मक अनुवाद है।

कविता अपने समय से सघन संवाद है। जीवन की समीक्षा है। जीवन सौंदर्य का गान है। लेकिन जब किन्हीं कारणों से समाज जीवन का सौंदर्य विकृत होता है, तो कविता उन विकृतियों की संवेदनात्मक अभिव्यक्ति से समाज को जीवन सौंदर्य के प्रति सचेत कर उसे बचाने की भूमिका तैयार करती है। यथार्थवादी साहित्य विशेष रूप से जीवन की विद्रूपताओं, विकृतियों एवं विसंगतियों के व्यंग्यात्मक उद्घाटन से समाज को उनके प्रति संवेदनशील बनाकर जीवन सौंदर्य को बचाने की रचनात्मक कोशिश करता है। आज जब राजनीति, समाज, धर्म, अर्थ, संस्कृति सभी क्षेत्रों में विकृतियों और विद्रूपताओं का साम्राज्य स्थापित हो रहा है और जीवन का तमाम सौंदर्य और शुभताएँ नष्ट हो रही हैं। या कहें कि मानव समाज ने आज तक जो कुछ शुभ और सुंदर अर्जित किया था, वह दाँव पर लगा हुआ है। जिसकी ओर संकेत करते हुए धर्मवीर भारती ने अंधा युग में लिखा था- “जो कुछ सुन्दर था, शुभ था, कोमलतम था, वह हार गया... द्वापर युग बीत गया।” (कविताकोश वेबसाइट) अंधा युग के बाद के इन 70 वर्षों में अँधेरा और भी गहरा हुआ है। ऐसे में हिंदी गज़लकार प्रेम और शृंगार के स्व निर्मित काल्पनिक सौंदर्य संसार में विचरण करने के बजाय एक जागरूक और जिम्मेदार साहित्यकार की तरह अपने समय की वास्तविक दुनिया के यथार्थ से आँख मिलाते हुए समकालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि जीवन के सभी क्षेत्रों में व्याप्त विसंगतियों, विडंबनाओं, विद्रूपताओं

एवं समस्याओं को पूरे यथार्थ के साथ अभिव्यक्त करते हैं। लेकिन साहित्य का काम जीवन की विसंगतियों व विद्रूपताओं को उजागर करने के साथ उनसे उबरने के उपाय भी सुझाना है। क्योंकि साहित्य, समाज की केवल प्रतिलिपि नहीं, अपितु उसका आत्म-विश्लेषक और भविष्य का पथ-प्रदर्शक भी होता है। साहित्य समाज को बदलने के लिए अनुकूल माहौल बनाता है। अच्छा क्या है, इसकी प्रेरणा देता है। और अच्छे की तरफ कैसे जाए, इसके लिए रास्ता दिखाता है। जो साहित्य या साहित्यकार अपने इस धर्म का पालन नहीं करता है, उसकी अस्मिता पर ही प्रश्न चिन्ह लग जाता है।

हिंदी ग़ज़लकार अपने इसी साहित्यिक धर्म का निर्वहन करते हुए एक तरफ सियासत के उस समूचे छल-छद्म की हकीकत उजागर करते हैं, जिसके कारण आम आदमी का जीवन निरंतर कठिन होता जा रहा है। तो दूसरी ओर जाति, धर्म, सांप्रदायिकता और धन-दौलत की हर उस मनुष्यता विरोधी दीवार को ढहाना चाहते हैं, जो मनुष्य जीवन को सुखमय व सुंदर बनाने में बाधक हैं। उनका लक्ष्य मानव जीवन की बेहतरी है। ग़ज़लकार जहीर कुरेशी की आपातकाल और उसके परवर्ती दौर के ग़ज़लकारों के बारे में की गई यह टिप्पणी आज और भी ज्यादा सटीक है- “अपने तमाम अंतर्द्वंद्वों के बावजूद, देश भर में सहस्राधिक ग़ज़लकार हिंदी काव्य में ग़ज़ल को लगातार कहते रहे हैं। जीवन की आपाधापी, मूल्यहीनता, आतंक, नृशंस राजनीति के छल, शोषण, अत्याचार, युद्ध की विभीषिका, भूख, अभाव, अमानवीयता, स्वार्थ लोलुपता आदि को ग़ज़ल कलात्मक अभिव्यक्ति देती रही है। लेकिन, ग़ज़ल में यह चित्रण तटस्थ एवं निरपेक्ष नहीं था, बल्कि जीवन को और अधिक सुंदर और बेहतर बनाने के लिए ग़ज़लकार प्रयत्न कर रहे थे।” (ज़िदगी से बड़ा ज़िदगी का समर, पृ. 11-12) 21वीं सदी के हिंदी ग़ज़लकार न केवल अपने समय के विद्रूप यथार्थ से दो-चार होते हैं, अपितु समाज को भी इसके प्रति चौकस करते हैं। वे समकालीन दौर के विद्रूप यथार्थ से सामना करने के साथ इस विद्रूपता को सुरुपता में बदलने एवं एक बेहतर मानवीय समाज बनाने के लिए ग़ज़ल की साधना-सर्जना करते हैं। आज की हिंदी ग़ज़ल समकालीन दौर में जीवन के बिगड़ते सौंदर्य की सार्वजनिक पीड़ा की उपज एवं उसका यथार्थ चित्रण होने के साथ जीवन सौंदर्य को बचाने की एक उम्मीद भरी किरण भी है। इस सन्दर्भ में कुछ शेर और एक ग़ज़ल प्रस्तुत है।

“मौसम से हरियाली ग़ायब

जीवन से खुशहाली ग़ायब।”

(विनय मिश्र)

(सच और है, पृ. 81)

ग़ज़ल का शेर हूँ बेशक दुखों का जाया हूँ
में अपने वक्त की उम्मीद का सरमाया हूँ। (हरेराम समीप)

(हरेराम समीप चयनित ग़ज़लें, पृ.102)

दरअसल शायरी का मकसद ही
वक्त को सावधान करना है। (हरेराम समीप)

(हरेराम समीप चयनित ग़ज़लें, पृ.106)

आज के हालात बतलाना ज़रूरी हो गया
इसलिए मुझको ग़ज़ल गाना ज़रूरी हो गया।
रात के अनुयायियों ने कर लिया दिन का हरण
जुगनुओं को झुण्ड में लाना ज़रूरी हो गया।
जम गई है बर्फ-सी ये जो मुहब्बत की नदी
आँच देकर उसको पिघलाना ज़रूरी हो गया।
मिल के रहने के सिवा अब दूसरा चारा नहीं
युद्धरत लोगों को समझाना ज़रूरी हो गया।
अब यहाँ पर सबकी आँखों का ही पानी मर गया
इक नई भागीरथी लाना ज़रूरी हो गया। (हरेराम समीप)

(हरेराम समीप चयनित ग़ज़लें, पृ. 93)

साहित्य समाज का दर्पण ही नहीं है, अपितु दीपक भी है। वह समाज को राह दिखाने के लिए उसके आगे चलने वाली प्रज्वलित मशाल है। या कहें साहित्य समाज का प्रतिरूप होने के साथ ही उसका परिमार्जक, मार्गदर्शक और उन्नायक भी है। साहित्यकार युग दृष्टा के साथ युग सृष्टा भी होता है। वह समाज का तटस्थ दर्शक या व्याख्याकार न रहकर मार्गदर्शक भी बनता है। और साहित्य में युग का दर्शन कराने के साथ युग सर्जन का काम भी करता है। यही वजह है की हिंदी ग़ज़ल में समकालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं पर्यावरणीय समस्याओं, असंगतियों, विसंगतियों, विकृतियों, विद्रूपताओं एवं विडंबनाओं का यथार्थ रूप में चित्रण तो है ही, पर इसके साथ इस विद्रूप यथार्थ के प्रति मुक्तिकामी चेतना का स्वर है और मानवता के सुन्दर भविष्य के लिए जीवन मूल्यों के आचरणशील एक श्रेष्ठ मानवीय समाज की स्थापना का संदेश है। ग़ज़ल आलोचक हरेराम समीप ने लिखा है- "वास्तव में समकाल या समकालीनता हिंदी ग़ज़ल का बीज तत्व है।

हिंदी ग़ज़ल बड़े सीधे ढंग से जीवन के लिए नए यथार्थ की परख भी कर रही है और उन जीवन सत्यों को उजागर भी कर रही है जो मनुष्य की बेहतरी के लिए जरूरी है।” (अलाव पत्रिका, पृ. 453) आज की हिंदी ग़ज़ल भौतिकता की अंधी दौड़ में मानवीय मूल्यों से दूर होते समाज को मनुष्यता का पाठ पढ़ाती है, उसे ‘वसुधैव कुटुंबकम्’ की भावना से लबरेज करती है तथा जीवन जीने की सही दिशा का बोध कराती है। और इस तरह समाज में फैली कुरूपता के प्रवर्तन के साथ इस कुरूपता के सुन्दरता में परिवर्तन के लिए वैचारिक भावभूमि तैयार करती है।

हिंदी ग़ज़लकार अपने ग़ज़लों के माध्यम से समाज का एक नये ढंग का जीवन व्याकरण रचकर घृणा-द्वेष से रहित प्रेम, न्याय एवं समता आधारित एक सुन्दर मानव समाज बनाने की सृजनात्मक कोशिश करते हैं। वे बाज़ारवाद एवं उस जैसी मानवता विरोधी समस्त ताकतों के खिलाफ संघर्ष का स्वर मुखरित करते हुए, यंत्र बनते जा रहे मानव को संवेदनशील इंसान बनने का संदेश देते हैं और अपने इन प्रयासों के बल पर वे मनुष्यता विरोधी ताकतों के बीच भी इंसानियत की जीत घोषणा करते हैं। आज की हिंदी ग़ज़ल जीवन के तमाम क्षेत्रों में पसरती मूल्यहीनता एवं विकृतियों के उद्घाटन से पाठक में इनके प्रति प्रश्नाकुलता एवं प्रतिरोधी चेतना जाग्रत करती है तथा उसकी चेतना का परिष्कार करते हुए उसमें अमानवीय प्रवृत्तियों के प्रति तिरस्कार एवं त्याग का भाव जाग्रत कर, उसे मानवता के मंगलकारी पथ का राही बनने के लिए प्रेरित करती है। संक्षेप में हिंदी ग़ज़ल अपने समय एवं समाज के विद्रूप तथ्यों एवं सत्यों का उद्घाटन करते हुए व्यष्टि व समष्टि चेतना का विरेचन, परिष्करण, संस्करण एवं उदातीकरण कर इंसानियत का स्वर बुलंद करती है। कह सकते हैं कि 21वीं सदी की हिंदी ग़ज़ल युग के विद्रूप सत्य से समाज को रूबरू करवाकर मानवता के शिव एवं एक सुन्दर समाज की सृजना के लिए साहित्यिक संसार में एक सुंदर शाब्दिक पहल है। इस संबंध में कुछ अश्रुआर या ग़ज़लें द्रष्टव्य हैं-

ये दुनिया पिछली दुनिया से बहुत आगे निकलनी है

हमें इस वक़्त अपने दौर की सूरत बदलनी है। (माधव कौशिक)

(सारे सपने बागी हैं, पृ. 66)

“ज़न्नत में तुमको जाना है जाओ तुम

मुझको धरती को ही स्वर्ग बनाने दो।

नफरत को जब गोद लिया तो पालो तुम

मुझे प्यार के गीत सुहाने गाने दो।” (महेश कटारे सुगम)

(ऐसी तैसी, पृ.74)

हवाओं में अमन औ चैन की खुशबू उड़े फिर से

कहीं मौसम बने तो ऐसा कारोबार करना है।

हमारा काम है बाज़ार में भी आदमी गढ़ना

तुम्हारा काम घर आँगन को भी बाज़ार करना है। (विनय मिश्र)

(सच और है, पृ.18)

रहनी थी जिसको सबके कल्याण ही की चिंता

उसको पड़ी है अपनी दुकान ही की चिंता।

दौलत नहीं बनाती इंसान को मसीहा

उसको बड़ा बनाए इंसान ही की चिंता। (हरेराम समीप)

(हरेराम समीप चयनित गज़लें, पृ. 53)

मुझे मालूम है इस दौर में बाज़ार सब कुछ है

मगर मैं आदमी की जीत का ऐलान करता हूँ। (माधव कौशिक)

(माधव कौशिक सृजन की समीक्षा, पृ. 87)

कहीं सितम का नाम न हो ऐसा अफ़साना लिखना है

नफ़रत के अल्फ़ाज़ मिटा हर सू याराना लिखना है।

एक व्याकरण नये ढंग का लिखना है इस दुनिया का

इस समाज का इक सुन्दर-सा ताना-बाना लिखना है

बन्दीगृह से मुक्त कराना है सूरज की किरणों को

हर प्राणी के हक में उसका आबो-दाना लिखना है।

लोकतंत्र के नाम पे जब तक कायम है तानाशाही

तब तक इंकलाब के नारे और तराना लिखना है (वशिष्ठ अनूप)

(मशालें फिर जलाने का समय है, पृ.110)

“इंसान का धरा पर परिवार एक है

जो सामने है अपने संसार एक है।

दिल एक है हमारा यह प्यार एक है

इस ज़िन्दगी का यारो आधार एक है।” (हरेराम समीप)

(यह नदी खामोश है, पृ.80)

“चलो ज़माने का नक्शा नया बनाते हैं
बिगड़ गया है अब ये दूसरा बनाते हैं।
हमारे बीच मुहब्बत हो बस मुहब्बत हो
हम अपने रिश्ते को इतना बड़ा बनाते हैं।
पसर न जाए कहीं ज़हन में अन्धेरापन
चलो हम अपने ही दिल को दिया बनाते हैं।
यहाँ पे राज जब इंसानियत का रहना है
इसी को क्यों नहीं अपना खुदा बनाते हैं।” (हरेराम समीप)
(हरेराम समीप चयनित गज़लें, पृ.106)

संदर्भ ग्रंथ सूची

संदर्भ ग्रंथ सूची

(अ) आधार ग्रंथ

1. जहीर कुरेशी, ज़िंदगी से बड़ा ज़िंदगी का समर, अयन प्रकाशन, दिल्ली, 2019
2. जहीर कुरेशी, दोहों से दोहा ग़ज़लों तक, समन्वय प्रकाशन, गाज़ियाबाद, 2019
3. जहीर कुरेशी, रास्तों से रास्ते निकले, अयन प्रकाशन, दिल्ली, 2017
4. जहीर कुरेशी, निकला न दिग्विजय को सिकंदर, अंजुमन प्रकाशन, इलाहाबाद, 2016
5. जहीर कुरेशी, बोलता है बीज भी, प्रतिश्रुति प्रकाशन, कोलकाता, 2012
6. जहीर कुरेशी, पेड़ तन कर भी नहीं टूटा, अयन प्रकाशन, दिल्ली, 2010
7. अदम गोंडवी (सं. ओम निश्चल), धरती की सतह पर, यश पब्लिकेशंस, दिल्ली, 2020
8. अदम गोंडवी, समय से मुठभेड़, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पाँचवाँ संस्करण, 2022
9. ज्ञानप्रकाश विवेक, गुफ्तगू आवाम से है, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2008
10. ज्ञानप्रकाश विवेक, घाट हजारों इस दरिया के, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2017
11. ज्ञानप्रकाश विवेक, कागज़ी छतरियाँ बनाता हूँ, बोधि प्रकाशन, जयपुर, 2022
12. वशिष्ठ अनूप, रोशनी खतरे में है, उद्भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2006
13. वशिष्ठ अनूप, रोशनी की कोपलें, उद्भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2010
14. वशिष्ठ अनूप, मशालें फिर जलाने का समय है, राजसूर्य प्रकाशन, दिल्ली, 2013
15. वशिष्ठ अनूप, तेरी आँखें बहुत बोलती हैं, विजया बुक्स, दिल्ली, 2014
16. वशिष्ठ अनूप, घरों पर गिद्ध मंडराने लगे हैं, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, 2019
17. वशिष्ठ अनूप, छंद तेरी हँसी का, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2023
18. वशिष्ठ अनूप, बारूद के बिस्तर पर, प्रलेक प्रकाशन, मुंबई, 2024
19. विनय मिश्र, सच और है, लिटिल बर्ड पब्लिकेशन्स, दिल्ली, तीसरा संस्करण, 2020
20. विनय मिश्र, तेरा होना तलाशूँ, लिटिल बर्ड पब्लिकेशन्स, दिल्ली, चतुर्थ संस्करण, 2020

21. विनय मिश्र, लोग जिंदा हैं, लिटिल बर्ड पब्लिकेशंस, दिल्ली, 2021
22. विनय मिश्र, ज़िंदगी आने को है, लिटिल बर्ड पब्लिकेशंस, दिल्ली, 2023
23. माधव कौशिक, नई सदी का सन्नाटा, चंडीगढ़ साहित्य अकादमी, चंडीगढ़, 2001
24. माधव कौशिक, अंगारों पर नंगे पाँव, पेंगुइन बुक्स इंडिया, किंडले संस्करण, 2007
25. माधव कौशिक, सारे सपने बागी हैं, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2014
26. माधव कौशिक, नयी उम्मीद की दुनिया, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, किंडले संस्करण, 2019
27. माधव कौशिक, नयी सुबह की नयी कहानी, यश पब्लिकेशंस, दिल्ली, 2020
28. माधव कौशिक, शब्द ढले अंगारों में, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2022
29. देवेंद्र आर्य, उमस, अभिधा प्रकाशन, दिल्ली, 2012
30. देवेंद्र आर्य, जो पीवे नीर नैना का, बोधि प्रकाशन, जयपुर, 2018
31. देवेंद्र आर्य, मन कबीर, न्यू वर्ल्ड पब्लिकेशन, दिल्ली, 2022
32. रामकुमार कृष्ण, पढ़िए तो आँख पाइए, राजकमल पपेरबैक्स, दिल्ली, 2022
33. महेश कटारे 'सुगम', प्यार के साये, साहित्य धरा, झारखंड, 2022
34. महेश कटारे 'सुगम', कुछ तो है, काव्या पब्लिकेशंस, भोपाल, 2019
35. महेश कटारे 'सुगम', अय हय हय, काव्या पब्लिकेशंस, भोपाल
36. महेश कटारे 'सुगम', सारी खींचतान में फरेब ही फरेब है, बोधि प्रकाशन, जयपुर, 2018
37. महेश कटारे 'सुगम', दुआएँ दो दरख्तों को, बोधि प्रकाशन, जयपुर, 2018
38. महेश कटारे 'सुगम', ऐसी तैसी, लोकोदय प्रकाशन, लखनऊ, 2019
39. महेश कटारे 'सुगम', प्रतिरोधों के पर्व, बुक्स क्लीनिक पब्लिशिंग, बिलासपुर, 2021
40. महेश कटारे 'सुगम', लाहौल वला कुव्वत, बुक्स क्लीनिक पब्लिशिंग, बिलासपुर 2021
41. महेश कटारे 'सुगम', आशाओं के नये महल, रश्मि प्रकाशन, लखनऊ, 2017
42. महेश कटारे 'सुगम', अभी इम्कान बाकी है, न्यू वर्ल्ड पब्लिकेशन, दिल्ली, 2024
43. डी. एम. मिश्र, रोशनी का कारवाँ, नमन प्रकाशन, दिल्ली, 2012

- 44.डी. एम. मिश्र, आईना दर आईना, नमन प्रकाशन, दिल्ली, 2016
- 45.डी. एम. मिश्र, वो पता ढूँढे हमारा, शिल्पायन पब्लिशर्स, दिल्ली, 2019
- 46.डी. एम. मिश्र, लेकिन सवाल टेढ़ा है, शिल्पायन पब्लिशर्स, दिल्ली, 2020
- 47.डी. एम. मिश्र, डी एम मिश्र चयनित ग़ज़लें, न्यू वर्ल्ड पब्लिकेशन, दिल्ली, 2022
- 48.जीवन सिंह (संपादन), डी. एम. मिश्र ग़ज़ल संचयन, शिल्पायन पब्लिशर्स, दिल्ली, 2023
- 49.शिवओम अम्बर, विष पीना विस्मय मत करना, पांचाल प्रकाशन, फरुखाबाद, 2018
- 50.हरeram 'समीप', यह नदी खामोश है, बोधि प्रकाशन, जयपुर, 2021
- 51.हरeram समीप, हरeram समीप, चयनित ग़ज़लें, न्यू वर्ल्ड पब्लिकेशन, दिल्ली, 2023
- 52.राम मेश्राम, आग में उड़ान, अंतिका प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, गाज़ियाबाद, 2024
- 53.महेश अग्रवाल, पेड़ फिर हरा होगा, पहले पहल प्रकाशन, भोपाल, 2014
- 54.महेश अग्रवाल, अभी शेष है, शिवम पूर्णा प्रकाशन, भोपाल, 2022
- 55.डॉ. किशन तिवारी, सोचिये तो सही, पड़ाव प्रकाशन, भोपाल, 2001
- 56.डॉ. किशन तिवारी, मैं तुम हो जाऊँ, नमन प्रकाशन, दिल्ली, 2008
- 57.डॉ. किशन तिवारी, धूप का रास्ता, पहले पहल प्रकाशन, भोपाल, 2019

(आ) सहायक ग्रंथ सूची

1. डॉ. साएमा बानो, समकालीन हिंदी ग़ज़ल : पहचान और परख, कला प्रकाशन वाराणसी, 2013
2. डॉ. अब्दुरशीद ए. शेख, ग़ज़ल सौंदर्य मीमांसा, जय भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2002
3. डॉ. कुँअर बेचैन, ग़ज़ल का व्याकरण, अयन प्रकाशन, दिल्ली, चतुर्थ संस्करण, 2021
4. जियाउर रहमान जाफरी, ग़ज़ल लेखन परंपरा और हिंदी ग़ज़ल का विकास, अनुकृति प्रकाशन, बरेली, 2019
5. वीनस केसरी, ग़ज़ल की बाबत, रेडग्रेड बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, प्रयागराज उत्तर प्रदेश, द्वितीय संस्करण, 2019

6. डॉ. रामप्रकाश 'पथिक', हिंदी ग़ज़ल का सौंदर्यशास्त्र, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, 2004
7. रोहिताश्व अस्थाना, हिंदी ग़ज़ल उद्भव और विकास, सुनील साहित्य सदन, दिल्ली, 2017
8. डॉ. नरेश, हिंदी ग़ज़ल दशा और दिशा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2004
9. ज्ञानप्रकाश विवेक, हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा, हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पंचकूला, द्वितीय संस्करण, 2012
10. ज्ञानप्रकाश विवेक, हिंदी ग़ज़ल की नई चेतना, प्रकाशन संस्थान, दिल्ली 2018
11. ज्ञानप्रकाश विवेक, हिंदी ग़ज़ल की शक्ति और संचेतना, श्वेतवर्णा प्रकाशन, दिल्ली, 2023
12. वशिष्ठ अनूप, हिंदी ग़ज़ल की प्रवृत्तियाँ, उद्भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2006
13. वशिष्ठ अनूप, हिंदी ग़ज़ल का स्वरूप और महत्वपूर्ण हस्ताक्षर, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2006
14. वशिष्ठ अनूप, हिंदी ग़ज़ल का परिप्रेक्ष्य, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2024
15. रामप्रसाद शर्मा 'महर्षि', ग़ज़ल और ग़ज़ल की तकनीक, जवाहर पब्लिशर्स, दिल्ली, 2009
16. डॉ. सरदार मुजावर, हिंदी ग़ज़ल ग़ज़लकारों की नजर में, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2001
17. कमलेश भट्ट 'कमल', हिंदी ग़ज़ल : सरोकार, चुनौतियाँ और संभावनाएँ, प्रकाशन संस्थान, दिल्ली, 2020
18. हरेराम समीप, समकालीन हिंदी ग़ज़लकार : एक अध्ययन, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2017
19. हरेराम समीप, समकालीन हिंदी ग़ज़लकार : एक अध्ययन, खंड-3, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2018
20. हरेराम समीप, हिंदी ग़ज़ल की पहचान, एनीबुक, 2023
21. हरेराम समीप, हिंदी ग़ज़ल कोश, एनी बुक, 2024
22. हरेराम 'समीप', हिंदी ग़ज़ल की परम्परा, किताबगंज प्रकाशन, सवाईमाधोपुर, 2020
23. सुशील कुमार, हिंदी ग़ज़ल का आत्म संघर्ष, प्रलेक प्रकाशन, मुंबई, 2021
24. शेरजंग गर्ग, हिंदी ग़ज़ल शतक, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली, 2008

- 25.डॉ. जीवन सिंह, आलोचना की यात्रा में हिंदी ग़ज़ल, बोधि प्रकाशन, जयपुर, 2017
- 26.डॉ. साएमा बानो, हिंदी ग़ज़ल का सौंदर्य शास्त्र, अनामिका पब्लिशर्स, दिल्ली 2021
- 27.नरेश शांडिल्य, जान-ए-ग़ज़ल, अयन प्रकाशन, दिल्ली, 2015
- 28.डॉ. सरदार मुजावर, हिंदी की छायावादी ग़ज़ल, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2007
- 29.डॉ. सरदार मुजावर, हिंदी ग़ज़ल का वर्तमान दशक, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2014
- 30.अनिरुद्ध सिन्हा, समकालीन हिंदी ग़ज़ल: परंपरा और विकास, आरएसवीपी प्रकाशन, दिल्ली, 2010
- 31.डॉ. रामावतार मेघवाल, हिंदी ग़ज़ल परम्परा और ग़ज़लकार जहीर कुरेशी, रावत प्रकाशन, दिल्ली, 2018
- 32.डॉ. मधु खराटे, जहीर कुरेशी की चुनिंदा ग़ज़लें, विद्या प्रकाशन, कानपुर, 2009
- 33.जहीर कुरेशी एवं मीनाक्षी दुबे (संपादन) सादगी का सौंदर्य : वशिष्ठ अनूप का सृजन, साहित्य भंडार, प्रयागराज, 2023
- 34.डॉ. लालचंद गुप्त मंगल, माधव कौशिक सृजन की समीक्षा, विजया बुक्स, दिल्ली, 2022
- 35.प्रो. मंजुला राणा, माधव कौशिक की काव्य संवेदना, विजया बुक्स, दिल्ली, 2020
- 36.विभूति नारायण ओझा (संपादन), ग़ज़लकार डी एम मिश्र: सृजन के समकालीन सरोकार, शिल्पायन पब्लिशर्स, दिल्ली, 2024
- 37.डॉ. लवलेश दत्त (संपादन), समकालीन ग़ज़ल और विनय मिश्र, लिटिल बर्ड पब्लिकेशंस, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2020
- 38.श्रीधर मिश्र (संपादन) विनय मिश्र का रचनाकर्म : दृष्टि और मूल्यांकन, लिटिल बर्ड पब्लिकेशंस, दिल्ली, 2023
- 39.डॉ. तीर्थेश्वर सिंह, समकालीन हिंदी कविता में यथार्थवादी चेतना, मानसी पब्लिकेशंस, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2008
- 40.डॉ. हेतु भारद्वाज, संस्कृति और साहित्य, मंथन पब्लिकेशंस, जयपुर, 2024
- 41.डॉ. सुधा सक्सेना, नीरज व्यक्तित्व एवं कृतित्व, प्रगति प्रकाशन, आगरा
- 42.डॉ. शंकर दयाल शर्मा, हमारे चिंतन की मूल धारा, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली 1992

43. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, उदयांचल प्रकाशन, पटना, द्वितीय संस्करण, 1988
44. डॉ. शिवशंकर त्रिवेदी, हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में सांस्कृतिक चेतना, साहित्य निलय, कानपुर, 1997
45. डॉ. सुमन सिंह, डॉ. रांगेय राघव के उपन्यास और युग चेतना, शांति प्रकाशन, इलाहाबाद, 1999
46. डॉ. विश्वंभर दयाल गुप्त, साहित्य समाजशास्त्रीय संदर्भ, सीता प्रकाशन हाथरस, उत्तर प्रदेश, 1987
47. शांतिप्रिय द्विवेदी, युग और साहित्य, इंडियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण, 1958
48. प्रेम कुमार, एक मस्त फकीर : नीरज, गैलेक्सी पब्लिशर्स, दिल्ली, 2015
49. सरदार मुजावर, हिंदी ग़ज़ल की नई दिशाएँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
50. डॉ. भावना, (सं.) 21वीं सदी की ग़ज़लें, श्वेतवर्णा प्रकाशन, दिल्ली, 2020
51. दीक्षित दनकौरी (संपादन), ग़ज़ल दुष्यंत के बाद भाग- 2, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2010
52. रामकली सराफ, समकालीन कविता की प्रवृत्तियाँ, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1997
53. रामचरण राग, हिंदी ग़ज़ल की नई ज़मीन, लिटिल बर्ड पब्लिकेशंस, दिल्ली, 2024
54. नचिकेता (संपादन), अष्टछाप-2, श्वेतवर्णा प्रकाशन, दिल्ली, 2023

(इ) शब्दकोश

1. मुहम्मद मुस्तफा खाँ 'मद्दाह', उर्दू-हिंदी शब्दकोश, उत्तरप्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, सौलहवाँ संस्करण, 2017
2. सं. कालिका प्रसाद, वृहत हिंदी कोश, भाग-1,2, ज्ञानमंडल बनारस, पुनर्मुद्रण, 2011
3. आचार्य रामचंद्र वर्मा, लोकभारती प्रामाणिक हिंदी कोश, इलाहाबाद, पुनर्मुद्रण, 1997
4. डॉ. धीरेंद्र वर्मा, हिंदी साहित्य कोश, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, 1958
5. रामचंद्र वर्मा, मानक हिंदी कोश, भाग-1,2, साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्रथम संस्करण, 1965

(ई) पत्र-पत्रिकाएँ

1. अलाव
2. संवदिया
3. राग भोपाली
4. गज़ल गरिमा
5. सृजन से
6. पतहर
7. आजकल
8. मधुमति
9. गज़ल के बहाने

अन्तर्जालम

1. <http://kavitakosh.org>
2. <http://rekhta.org>
3. <http://adrindia.org>
4. www.drishtiias.com
5. www.Indianexpress.com
6. <http://m.bharatdiscovery.org>
7. <http://anubhuti-hindi.org>
8. <http://gadyakosh.org>
9. <http://sahityakunj.net>
10. <http://rachnakar.org>

**अनुसंधान प्रकाशन
संदर्भित पत्रिकाओं में**

Published Research Paper-1

8/3/24, 10:41 PM

अनुक्रमणिका : 'अपनी माटी' का 52वाँ अंक

हम सदस्य परिवर्तन नियम पुराने अंक नया लिखिएगा स्वीकृत बिज्जी वादसएप फेसबुक ट्विटर अनुवाद विशेषांक बात साहित्य विशेषांक सिनेमा विशेषांक दृश्यकला विशेषांक

अपनी माटी

अपनी माटी

(साहित्य और समाज का दस्तावेजीकरण)

www.apnimaati.com

1300+ Articles || 40 Members' Team || UGC Care Listed || 39 Lakh+ Views || Quarterly E-Magazine || Since 2009

परिचय

सम्पादकीय

विमर्श

विधाएँ

विविधा

विशेषांक

ताज़ा अंक

सम्पादक : माणिक-जितेन्द्र यादव

मुख्यपृष्ठ > 52

अनुक्रमणिका : 'अपनी माटी' का 52वाँ अंक

सम्पादक, अपनी माटी ७ रविवार, जून 30, 2024

चितौड़गढ़ (राजस्थान) से प्रकाशित त्रैमासिक ई-पत्रिका



अपनी स्थापना के 12वें वर्ष में प्रवेश
अपनी माटी
(साहित्य और समाज का दस्तावेजीकरण)
UGC Care Listed
(Under List 'Multi Disciplinary' Sr. No. 83)
(ISSN 2322-0724 Apni Maati) अंक-52 जून-जुल, 2024

सम्पादक-इन : माणिक-जितेन्द्र यादव दूस अंक का निर्वाहक : धीम सिंह (दस्तावेज विधि विद्यालय)

परामर्श सचिव

डॉ. राजेश चौधरी, अशोक जयमन्नी, प्रो. गजेन्द्र षडक, प्रो. पयोद बोसो, प्रो. लज्जा सिंह, प्रो. नीतय राठी, प्रो. मनीष रमन, डॉ. गजेन्द्र मीमा, डॉ. राजकुमार म्हास, डॉ. विद्यालत यादव, डॉ. महेन्द्रमद किशोर अहमद, डॉ. कुलेश कुमार मिश्रा, डॉ. दीपनाथ शर्मा, डॉ. निधि

पठनी

सम्पादकीय सचिव

डॉ. सौरभ कुमार, डॉ. प्रवीण कुमार शर्मा, डॉ. विष्णु कुमार शर्मा, डॉ. मीना शर्मा, डॉ. गोपाल सुन्दर, डॉ. प्रभात कुमार, डॉ. कविता सिंह, अभिनव सरोज, डॉ. महेन्द्रमद हुसैन ठालर,

डॉ. संदीप कुमार मेघवाल, डॉ. कुनेश यादव, डॉ. जेनेन्द्र सिंह सारंग देवेन, डॉ. संतोष पिछौरा, डॉ. हेमन्त कुमार, डॉ. अमन

मुख्य रीडर्स क्लब

शेरिल गुप्ता, जितेन्द्र कुमार

पोर्टल प्रबंधन एवं प्रकाशन

गुणवत्ता कुमार, अर्जुन कुमार, दीपक कुमार

डिजाइन एवं डिजिटल मार्केटिंग

संदेखर शेरिया (कुमायवा), चेतन प्रकाशन चितौड़गढ़

ऑफिस संपर्क : Apni Maati Sansthan, A/c. No.: 35446603964, IFSC Code : SBIN0006097

State Bank of India, Branch : Chittorgarh (Rajasthan)

प्रकाशक : 'अपनी माटी' संपादन चितौड़गढ़ (पंजीयन संख्या 99 / चितौड़गढ़/2013)

साम्पादकीय / पंजीकृत कार्यालय : कल्प-मोहन हाऊस, 1, उदय विहार, महेन्द्रगढ़ रोड, चितौड़गढ़-312001, राजस्थान

ई-मेल : apnimaati.com@gmail.com, वेबसाइट : www.apni

वाट्स एप : 94607 11896 (साप्ताहिक) 9601092806 (नियोजक यादव)

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय

विशेषांक प्रकाशन की यात्रा में अपनी बात / माणिक (5)

कविताएँ

रूपम मिश्र (जौनपुर) (10)

https://www.apnimaati.com/2024/06/52.html

1/3

वैचारिकी

- हिन्दी आधुनिकता के व्याख्याकार : विजयदेव नारायण साहू / मृत्युंजय (15)
- रोमांस : भाषा, विधा और प्रवृत्ति / अंगद तिवारी (20)
- कल्पित समुदाय के रूप में राष्ट्र : बेनेडिक्ट एंडरसन की संकल्पना पर एक पुनर्दृष्टि / डॉ. मोहम्मद कामरान खान (25)
- 'मोहनदास' भारतीय भ्रष्ट व्यवस्था की अंतहीन कहानी / डॉ. जितेंद्र यादव (30)

स्मरण

- प्रो. चौधुराम यादव : उनसे मिलना! / वेदप्रकाश भारती (35)

धरोहर

- औपनिवेशिक उत्तरी भारत (1900-1947 ई.) में आयुर्वेद एवं महिलाएं / डॉ. पूजा (40)
- सुनो भाई साथो : हरिशंकर परसाई की प्रासंगिकता के संदर्भ में / अजय कुमार साव (45)
- शमशेर बहादुर सिंह और नई कविता / डॉ. कमलेश कुमारी एवं योगेश कुमार (50)
- गुरु महिमा, प्रेम और वैराग्य की गायिका : सहजोबाई / आरती तिवारी (55)

कथा-संसार

- कहानी : नाथी का बाड़ा / नीलु शेखावत (60)

कथेतर का कोना

- आत्मकथांश : दाखिले की शर्त @अस्तित्व दाँव पर / डॉ. श्योराज सिंह बेवेन (65)
- अफलातून की डापरी : मैं कहता आँखन की देखी / डॉ. विष्णु कुमार शर्मा (70)
- संस्मरण : इराक के पेन का बाप (अतीत-बोध) / डॉ. हेमंत कुमार (75)
- 'वरथ भिवखवे चरथ' (सफ़र एक डोंगी में उगमग के सन्दर्भ में) / डॉ. कीर्ति माहेश्वरी (80)

सिनेमा की दुनिया

- हिन्दी सिनेमा में मनोविकृति सिज़ोफ्रेनिया के चित्रण का विश्लेषण / डॉ. प्रियंका अंजन राव (85)

पत्रकारिता के पहाड़े

- कथेतर हिन्दी गद्य और 'तद्भव' का संस्मरण साहित्य / जूही त्रिपाठी (90)
- सूचना युग में सूचना की प्रामाणिकता : चुनौतियाँ और समाधान / डॉ. पवन अग्रवाल (95)
- भारत में जाति समस्या और राजेन्द्र यादव की संपादकीय / विनोद कुमार एवं डॉ. जितेन्द्र यादव (100)

संघर्ष का दस्तावेज

- आधुनिक टेक्नोलॉजी और किसान : संभावनाएं और चुनौतियाँ (छत्तीसगढ़ राज्य के विशेष संदर्भ में) / फलेन्द्र कुमार एवं प्रो. एल. एस. गजपाल (105)
- भारत और मारीशस की लोक भाषायी संस्कृति (गिरमिटिया मजदूरों के विशेष संदर्भ में) / डॉ. शिवशंकर सिंह (110)
- आदि-हिंदू आंदोलन और जाटव : पहचान के हित संघर्ष / रणजीत कुमार (115)
- भारत में मैला प्रथा एवं सामाजिक न्याय : एक विधिक विश्लेषण / सुवेक सिंह चौहान एवं डॉ. अनीस अहमद (120)
- भारतीय समाज और हाशिए के सवाल / चन्दन कुमार (125)

हूल-जोहार

- आदिवासी जीवन संघर्ष और 'छप्पन छुरी बहतर पेंच' / श्योराज सिंह 'बेवेन' (130)
- बाज़ारवाद और आदिवासी कविता / मनीषा कुमारी एवं वीरेंद्र सिंह (135)
- झारखण्ड राज्य आन्दोलन : आदिवासियों का राजनीतिक संघर्ष / डॉ. सियाराम मीणा (140)

समानांतर दुनिया

- आधुनिक भारत में स्त्री शिक्षा : एक दृष्टि / शशिकला यादव एवं डॉ. हलधर यादव (145)

विरासत

- जम्बूकुमार चरित्र का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण / निखिल जैन और डॉ. विनोद कुमार (150)
- मेवाड़ चित्रकला शैली में मादड़ी उप-चित्रकला शैली का योगदान / डॉ. हेमन्त सिंह सारंगदेवोल (155)

लोक का आलोक

- भोजपुरी लोकगीतों में पर्यावरणीय चेतना / प्रियंका राय (160)
- मध्यकालीन मुस्लिम कवियों के काव्य में फाग परंपरा / अनुज कुमार शर्मा (165)
- संस्कृति की रोशनी में अहीरवाल क्षेत्र के लोकगीत / सुनीता कुमारी एवं प्रो. गीता कपिल (170)
- लोकगीतों में नारी का चित्रण ब्रज के विशेष सन्दर्भ में / आशा शर्मा एवं डॉ. रंजन सिंह (175)

अनकहे-फिस्से

- कहानी का नाट्यरूपान्तरण : रचना प्रक्रिया के विविध आयाम / डॉ. राखी क्लेमन्ट (180)

देशांतर

- मनीषा कुलश्रेष्ठ का कथा साहित्य और जीवन परिवेश / डॉ. हुसैनी बोहरा (185)
- कथा आलोचना की सामाजिकता और यथार्थ का बदलता स्वरूप / सलवी यादव (190)

कवितायन

- अरुण कमल की कविता 'थार' : एक अध्ययन / डॉ. दीपक कुमार गौड़ (195)
- 'आत्मजयी' में मृत्यु का मनोवैज्ञानिक अध्ययन / पीयूष कुमार एवं बृज किशोर (200)
- प्रमोद कुमार तिवारी के साहित्य में लोकतत्व और मिट्टी की खुशबू / डॉ. रेखा शेखावत (205)
- समकालीन हिंदी ग़ज़ल और स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज की चुनौतियाँ / महावीर सिंह एवं डॉ. कविता मीणा (210)

अपनी माटी

अपनी माटी

(साहित्य और समाज का दस्तावेजीकरण)



www.apnimaati.com

1300+ Articles || 40 Members' Team || UGC Care Listed || 39 Lakhs+ Views || Quarterly E-Magazine || Since 2009



परिचय

सम्पादकीय

विमर्श

विधाएँ

विविधा

विशेषांक

ताज़ा अंक

सम्पादक : माणिक-जितेन्द्र यादव



मुख्यपृष्ठ > 52

शोध आलेख : समकालीन हिंदी गज़ल और स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज की चुनौतियाँ / महावीर सिंह एवं डॉ. कविता मीणा

Arjun Kumar टविवाट, जून 30, 2024

समकालीन हिंदी गज़ल और स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज की चुनौतियाँ
- महावीर सिंह एवं डॉ. कविता मीणा

शोध सार : मूलतः प्रेमिल काव्य विधा गज़ल अब वैयक्तिक प्रेम और विरह वेदना का मन बहलाने वाला मुदुल मंद्र सप्तकी गान भर नहीं है। अपितु अपने समय और समाज से रूबरू समकालीन हिंदी गज़ल सामयिक विद्रूप व्यवस्था से उपजी समस्याओं और चुनौतियों का दिल के संग दिमाग को झकझोरने वाला झंझावती तार सप्तकी स्वर है। स्वातंत्र्योत्तर दौर में दुष्यंत कुमार ने हिंदी गज़ल को नया व्यक्तित्व प्रदान करते हुए उसे सामाजिक-राजनीतिक चेतना से संबद्ध किया तथा उसे आजादी के बाद की आम जिंदगी की दुश्धारियों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। दुष्यंत के पथ पर आगे बढ़ते हुए हिंदी गज़ल अब साम्प्रतिक दौर में राजनीतिक-प्रशासनिक, सामाजिक, आर्थिक क्षेत्र में विद्यमान समस्याओं व चुनौतियों को न केवल स्पष्ट रूप में उजागर करती है। वरन उन समस्याओं के मूल कारकों व कारणों को बेनकाब करते हुए उनके उन्मूलन का कांतिकारी संदेश भी देती है। आजादी के बाद हमारे देश ने आधारभूत संरचना के विकास के साथ शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, उद्योग, विज्ञान, अंतरिक्ष, सामाजिक कल्याण आदि विभिन्न क्षेत्रों में काफी तरक्की की है। लेकिन यथेष्ट उन्नति अभी तक नहीं हुई है तथा आजादी के पचहत्तर वर्षों बाद भी भारतीय लोकतांत्रिक समाज के समक्ष भ्रष्टाचार, सांप्रदायिकता, आतंकवाद, सामाजिक विषमता, गरीबी, बेरोजगारी एवं महंगाई जैसी कई गंभीर समस्याएँ एवं चुनौतियाँ सुरसाई मुँह बागे खड़ी हैं। प्रस्तुत शोध आलेख का उद्देश्य स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज की समस्याओं व चुनौतियों को चिन्हित कर उन्हें उजागर करने तथा उनके उन्मूलन की चेतना जाग्रत करने में हिंदी गज़ल की भूमिका को रेखांकित करना है।

बीज शब्द : समकालीन हिंदी गज़ल, भ्रष्टाचार, गरीबी, बेरोजगारी, महंगाई, आर्थिक विषमता, आतंकवाद, साम्प्रदायिकता, वंचित समाज- किसान, मजदूर, स्त्री, पर्यावरण।

मूल आलेख : काव्य जीवन की समीक्षा या आलोचना है। सरल शब्दों में कहें तो कविता वह दर्पण है, जिसमें जीवन-जगत के श्वेत-श्याम सभी तरह के चित्र प्रतिबिंबित होते हैं। युग बोध से संपृक्तता एवं सम्पन्नता हर कवि का अनिवार्य गुणधर्म है, क्योंकि कवि का कुल धर्म उसके जीवन बोध से पृथक नहीं हो सकता है। जिसकी अभिव्यक्ति प्रसिद्ध गज़लकार कुंअर बेवेन अपने एक शेर में इस प्रकार करते हैं- **“जो वक्त की आँधी से खबरदार नहीं है/ कुछ और ही हागे वो कलमकार नहीं है।”**^[1] हिंदी गज़ल के शिखर पुरुष दुष्यंत कुमार की इसी युगबोध संपन्न दृष्टि के प्रभावस्वरूप हुस और इश्क के काल्पनिक रंगीन खालों में खोई रहने वाली परम्परागत गज़ल राजनीतिक व सामाजिक चेतना से संबद्ध होती है तथा अपने समय व समाज का आईना बनती है। दुष्यंत के समकालीन व उनके परवर्ती गज़लकारों की लेखनी से निसृत समकालीन हिंदी गज़ल युग आलोचना के दायित्व का निर्वहन करती हुई जीवन सौंदर्य के खूबसूरत चित्रों के साथ सामयिक जीवन की तमाम विद्रूपताओं व अव्यवस्थाओं तथा उनसे उपजी समस्याओं एवं चुनौतियों का न केवल अंकन करती है। अपितु उनके उन्मूलन की चेतना जाग्रत कर बेहतर जीवन की संभावनाओं का क्षितिज रचती है। आज के गज़लकारों की रचनादृष्टि मुख्य रूप से अपने समय व समाज की विसंगतियों, मूल प्रश्नों, समस्याओं व चुनौतियों पर ही टिकी है। इसलिए सामयिक जीवन की विसंगतियों, समस्याओं और चुनौतियों का जितना सघन व मुखर स्वर समकालीन हिंदी गज़ल में विद्यमान है। वह अत्यंत इस रूप में शायद ही दृष्टित होता है। इसमें कोई दोराय नहीं है कि आज की हिंदी गज़ल आजादी के बाद के भारत की तमाम तरह की चुनौतियों एवं समस्याओं को न केवल स्पष्ट रूप में रेखांकित करती है। अपितु उनके मूलोच्छेदन के लिए जन चेतना भी जाग्रत करती है।

दरअसल हमारे देश का स्वाधीनता संग्राम पराधीन भारत की विद्रूप तस्वीर की स्वतंत्रता के पश्चात रामराज्य के स्वप्नों के यथार्थ से विस्थापित करने के उद्देश्य से किया गया राष्ट्रीय आंदोलन था। स्वतंत्रता के पश्चात हमारे राष्ट्रनायकों ने इस दिशा में कदम भी उठाये, जिसके परिणामस्वरूप देश ने बहुत प्रगति की है। परंतु उन्नति अभी तक भी अपेक्षित स्तर तक नहीं पहुँची है। तथा आजादी के सात दशक बाद भी भारतीय समाज अनेक राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक समस्याओं एवं चुनौतियों से जूझ रहा है। इसका कारण यह है कि राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम राष्ट्रप्रेम व राष्ट्रीयता की जिस आदर्श भावना के साथ लड़ा गया था। स्वतंत्रता के पश्चात हमें उन उच्च आदर्शों को हमारे देश की शासन-प्रशासन की कार्यप्रणाली व सामाजिक जीवनवाचरण में स्थापित व संपोषित करने की दिशा में कदम बढ़ाने की जरूरत थी। परंतु आजादी के बाद का हमारा राजनीतिक नेतृत्व एवं समाज इसके ठीक विपरीत दिशा की ओर गतिमान है। हमारे राष्ट्रीय राजनीतिक नेतृत्व ने स्वाधीनता आंदोलन के नायकों व सेनानियों के उन राष्ट्रप्रेमिल उच्च आदर्शों को भूला स्वजनप्रेम व स्वाथपरता को अपना आदर्श बना लिया है, जिसके परिणामस्वरूप राजनीतिक जीवन तथा उसके अनुकरण से सामाजिक जीवन में भी मूल्यों की पतनशीलता वर्तमान भारतीय लोकतंत्रात्मक समाज की पहचान बन गई है। इस संबंध में डॉ. अनिलकुमार शर्मा की यह टिप्पणी दृश्य है- **“जनतंत्र मानव-कल्याण का वाहक होता है, किंतु ऐसा लगता है कि भारतीय जनतंत्र की समूची ऊर्जा ही आज जैसे स्थिति-सी हो गई है। जैसे-जैसे लोकतंत्र आयु की सीढ़ियों पर चढ़ता जा रहा है, वैसे-वैसे इसकी आंतरिक विकृतियाँ विकराल रूप लेती जा रही हैं। डरावना यथार्थ तो यह है कि जिन लक्ष्यों के लिए और जिन मूल्यों के संवत् के साथ इसकी स्थापना की गई थी, वे वर्तमान राजनीति की गतिविधियों के कारण पूरी तरह लुप्त होते जा रहे हैं।”**^[2] स्वतंत्रता संग्राम के हमारे नेतृत्व और स्वातंत्र्योत्तर राजनीतिक नेतृत्व के चारित्रिक अंतर को व्यक्त करते हुए दुष्यंत कुमार अपने एक शेर में प्रतीकात्मक शैली में लिखते हैं- **“दुकानदार तो मेले में लुट गए यारो! / तमाशबीन दुकानें लगाके बैठ गए।”**^[3] वर्तमान दौर में यह मूल्यहीनता जीवन के हर क्षेत्र को आक्रांत करके हमारे लोक व्यवहार का अनिवार्य अंग बन गई है और यही आज देश की बहुत सी समस्याओं व चुनौतियों की मूल है। स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज की तमाम तरह की समस्याएँ एवं चुनौतियाँ तथा इनके कारणों की गहरी जाँच पड़ताल समकालीन हिंदी गज़ल में बखूबी दर्ज है। जिनको इस प्रकार रेखांकित किया जा सकता है-

राजनीतिक-प्रशासनिक चुनौतियाँ-

भ्रष्टाचार - स्वतंत्रता के पश्चात हमारे देश में राजनीतिक मूल्यों का तीव्र गति से ह्रास हुआ है। जिसके कारण आजादी बतौर महज सत्ता स्थानान्तरण विदेशियों की शोषक सत्ता को विस्थापित करने वाली अपनों की शोषणकारी व्यवस्था बनकर रह गई है। आजादी की तीन-चौथाई शताब्दी गुजरने के बाद भी आम जनता की स्थितियों में वांछित सुधाराल बदलाव नहीं आया है। इसका कारण यह है कि जनसेवा के पवित्र भाव से परित राजनीति आजादी के पश्चात सत्ता एवं स्वार्थ पूर्ति का साधन बन गई है। वर्तमान की राजनीति एक ऐसा प्रिज़म बन गई है जिसके एक ओर बेवेनियाँ से संतप्त अवाम है, तो दूसरी ओर सत्ता के आश्वासनों का जाल, एक ओर

सत्ता की वाहवाहों हैं, तो दूसरी ओर जनता की आह, कसक, पीड़ा। आमजन की इन फटहाल जीवन स्थितियों का कारण राजनीतिक व प्रशासनिक तंत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार व रिश्तेदारी की समस्या है, जिसका समाधान हमारे लिए एक बड़ी चुनौती है।

भ्रष्टाचार की दीमक ने हमारे राजनीतिक-प्रशासनिक तंत्र में गहराई से घर कर लिया है। यह राष्ट्र के विकास की नींव को निरंतर खोखला कर रही है। देश की मेहनतकश आम जनता के खून-पसीने की कमाई एवं मध्यम वर्ग के टेक्स के पैसे से चलने वाली विकास योजनाओं का एक बहुत बड़ा हिस्सा राजनीतिक प्रशासनिक तंत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं रिश्ते की भेंट चढ़ जाता है तथा बहुत कम अंश ही लक्षित आमजन एवं लक्षित जगहों तक पहुंच पाता है। जिसके बारे में (विकिपीडिया स्रोत के आधार पर) पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने कहा था कि जनकल्याणकारी योजनाओं का 15 फीसदी पैसा ही आमजन तक पहुंच पाता है। इसी तरह हिंदी गज़लकार जहीर कुरेशी विकास योजनाओं की आमजन तक पहुंचने वाले राशि को 25 प्रतिशत तथा भ्रष्टाचार में भोग होने वाली राशि को 75 फीसदी बताते हुए अपने एक शेर में कहते हैं- **“पचहत्तर फीसदी वे खा गए/ हमारे हाथ तब अनुदान आया।”**^[4] देश के विकास की पंचवर्षीय नदियों राजनीतिक- प्रशासनिक तंत्र में विद्यमान भ्रष्टाचार के अट्टश्य ब्लैकहोल में समाकर आमजन तक पहुंचने से पहले ही सूख जाती है और आम जनता प्यासी की प्यासी रह जाती है। आजादी के पतहत्तर वर्षों में इस भ्रष्टाचारी राजनीतिक-प्रशासनिक तंत्र के समुद्र ने देश के कितने ही विकास-सावनों के बरसाती धन-जल को विकास योजनाओं की नदियों के मार्ग से बिना हलचल के अपने भीतर समाहित कर लिया है। जिसके कारण रोटी, कपड़ा व पक्का मकान जैसी मूलभूत आवश्यकताओं के साथ बिजली, पेयजल, सड़क जैसी आधारभूत सुविधाओं से वंचित देश के भाग्य विधाता मेहनतकश आमजन की जिंदगी विकास के धन-जल के अभाव में सूखी नदी का रेतीला रास्ता एवं दुश्चारियों की धूप से विदीर्ण होती धरती बनकर रह गई है। यह आमजन सात दशक से विकास के सावन का इंतजार कर रहा है। जिसके मूल में भ्रष्टाचार की आँधी की गंभीर चुनौती है। हिंदी गज़लकारों ने भ्रष्टाचार की समस्या को समुद्र, नदी, धरती आदि प्रतीकों के सहारे मार्मिक ढंग से बखूबी उद्घाटित किया है -

“यहाँ तक आते-आते सूख जाती है कई नदियाँ,

मुझे मालूम है पानी कहाँ ठहरा हुआ होगा।”^[5] (दुष्यंत कुमार)

“हर विकास की नदी कहाँ खो जाती है

क्यूँ धुंधले समृद्धि चित्र ये पहचानो।”^[6] (महेश कटारे ‘सुगम’)

“इक समंदर ले गया घर अपने बारिश को समेट

और बची है धूप में धरती दरकने के लिए।”^[7] (विनय मिश्र)

“बे-मेहर हुक्काम था सब कुछ उठा कर ले गया

जिस तरह दरियाओं का पानी समंदर ले गया।”^[8] (ज्ञान प्रकाश विवेक)

“एक सावन की मैं अब भी राह तकता हूँ

आज भी सूखी नदी का एक रस्ता हूँ।”^[9] (विनय मिश्र)

भ्रष्टाचार का यह संक्रामक रोग लोकतंत्र के विधायी व कार्यकारी अंगों के साथ इन अंगों के द्वारा किये जाने वाले भ्रष्टाचार को नियंत्रित करने के दायित्व का निर्वहन वाले लोकतंत्र के प्रतिरक्षक अवयवों- न्यायपालिका और मीडिया को भी अपनी चपेट में लेकर उन्हें भी रुग्ण कर रहा है। और धीरे-धीरे असाध्य होता जा रहा है। भ्रष्टाचार के कारण न्यायपालिका का न्याय भी बिकाऊ हो, आमजन के लिए मृग-मरीचिका बन गया है तथा अपराधियों को कठघरे में खड़ा करने वाली अदालतें मुजरिमों के पक्षों में फैसला देकर खुद कठघरे में खड़ी हैं। लोकतंत्र का चतुर्थ स्तंभ मीडिया भी बिकाऊ हो गया है। वर्तमान मीडिया सत्ता से सुविधा शुल्क लेकर उसकी विरुदावली गाने वाले चारणों की भूमिका में आ गया है तथा सत्ता का चरणगामी व अनुगामी होकर रह गया है। स्वस्थ व समृद्ध लोकतंत्र के लिए न्यायपालिका व मीडिया के भ्रष्टाचारमुक्त संविधान रक्षक स्वरूप को स्वस्थ रखा जाना वर्तमान समय की आवश्यकता के साथ एक चुनौती भी है। समकालीन हिंदी गज़लकार अपनी गज़लों के सूक्ष्मदर्शी चंद्र से न्यायपालिका व मीडिया के बिगड़ते स्वास्थ्य के कारक भ्रष्टाचार के जीवाणु को जगजाहिर करते हैं-

“बड़े आराम से वो कल्ल करके घूमता है

उसे मालूम है जज भी तो पैसा सूँघता है।”^[10] (डी. एम. मिश्र)

“विलंबित औ बिकाऊ फ़ैसलों पर

ये कैसी न्याय पाने की सनक है।”^[11] (विनय मिश्र)

“वक्त्र की चुनौती से कटा हुआ मीडिया

सत्ता के क्रदमों में बिछा हुआ मीडिया

संठा की मंहर पर टिका हुआ मीडिया

डातर के भौपू का 'हुआ-हुआ' मीडिया।"[12] (राम मेश्राम)

भ्रष्टाचार देश के समुचित विकास में बहुत बड़ी बाधा है। इसका अंत हमारे समाज के लिए आज एक बहुत बड़ी आवश्यकता के साथ गंभीर चुनौती भी है। क्योंकि इस संबंध में सरकारों द्वारा किए गए तमाम प्रयासों एवं भ्रष्टाचाररोधी कानूनों के बावजूद यह समस्या कम नहीं हो रही है, बल्कि लगातार बढ़ती जा रही है। दृष्टि आईएस की वेबसाइट एवं दैनिक भास्कर (ऑनलाइन) में 30 जनवरी 2024 को प्रकाशित टॉसपेरसी इंटरनेशनल द्वारा जारी भ्रष्टाचार बोध सूचकांक में भारत विश्व के 180 देश में विगत वर्ष 2022 के 85वें स्थान से 8 पायदान खिसककर 2023 में 93वें स्थान पर पहुंच गया है। जो देश में बढ़ते भ्रष्टाचार की पुष्टि करता है। लोकतंत्र के भ्रष्टाचार प्रतिरोधी अंग- न्यायपालिका व मीडिया भी इस रोगाणु से क्षयग्रस्त हो गए हैं। ऐसे में जन क्रांति की शल्य चिकित्सा से ही इस समस्या का समाधान संभव हो सकता है। हिंदी ग़ज़लकार निरंतर बलवती होती जा रही भ्रष्टाचार की समस्या के समाधान के लिए क्रांति को आवश्यक मानते हुए आमजन को, विकास की किरणों के चुनिंदा जगहों पर ही ठहराव के कारणों को लेकर सत्ता से सवाल करने के लिए प्रेरित कर भ्रष्टाचार के खिलाफ प्रतिरोधी ज्वाला जाग्रत करते हैं-

“सूरज की हर किरण कहाँ आकर ठहर गयी

उन कारणों की बात हो, भूलों की बात हो।"[13] (वशिष्ठ अनूप)

“हो गई है पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिए,

इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए।

मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही,

हो कहीं भी आग, लेकिन आग जलनी चाहिए।"[14] (दुष्यंत कुमार)

आतंकवाद - यद्यपि आतंकवाद आज हमारे देश की ही नहीं, अपितु संपूर्ण विश्व के लिए एक बहुत बड़ी चुनौती बन गई है। फिर भी हमारे लिए यह कहीं ज्यादा गंभीर समस्या एवं चुनौती है क्योंकि हमारा देश आज़ादी के बाद से ही पड़ोसी देश द्वारा प्रायोजित आतंकवाद से जूझ रहा है। तथा शांति-सुलह के तमाम प्रयासों के बावजूद भी पड़ोसी इससे बाज नहीं आ रहा है। पड़ोसी देश ने आतंकवादियों के संगठित नेटवर्क को संरक्षण दे रखा है, जो जम्मू कश्मीर एवं संपूर्ण देश में आतंकी गतिविधियों को अंजाम देकर निंदोष जनता का खून बहाते हैं। इसके अतिरिक्त आतंकवादी मानसिकता से प्रभावित हो जम्मू कश्मीर और नक्सल प्रभावित राज्यों के बहुत से पढ़े-लिखे नौजवान भी धर्म के नाम पर या गरीबी, बेरोजगारी एवं अन्य कारणों से आतंकवादियों-नक्सलवादियों के गिरोह में शामिल हो निंदोष जनता पर कहर बरपाते हैं। देश के मुस्तक एवं धरती के स्वर्ग- कश्मीर की धरती आतंकवादियों की मानवता विरोधी आतंकी गतिविधियों के कारण केसर के लाल रंग की जगह खून से सिंक्त हो गयी है तथा वहाँ बारूदी फसलें उग रही हैं जिससे वहाँ के निवासियों का जीवन बड़ा नारकीय हो गया है। आतंकवाद आज जम्मू कश्मीर ही नहीं सम्पूर्ण देश तथा सम्पूर्ण विश्व को अपनी जद में ले चुका है। हमारे देश की संसद पर (2001 ई.), मुम्बई में (2008 ई.) तथा वर्ल्ड ट्रेड सेंटर पर (2001ई.) में हुए आतंकी हमले इसकी पुष्टि करते हैं। आतंकवाद इक्कीसवीं सदी में तकनीक की ताकत से निरन्तर और भी भयावह होता जा रहा है। सम्पूर्ण देश एवं विश्व पर आतंक का साया मंडरा रहा है तथा कोई भी कहीं भी सुरक्षित नहीं है। यह आतंकवाद व नक्सलवाद आज हमारे देश के लिए बहुत बड़ी चुनौती बनी हुई है। हिंदी ग़ज़लकारों ने जम्मू कश्मीर में आतंकी गतिविधियों के कारण होने वाली बर्बादी के खोफनाक मंजर को चित्रित करते हुए इक्कीसवीं सदी में इसके विकराल होते मानवता विरोधी दानवी स्वरूप को लेकर चिंता व्यक्त की है-

“जहाँ केसर महकता था, जहाँ खुशबू पनपती थी

उगीं बारूद की फसलें वहीं बंकर निकल आए।"[15] (कमलेश भट्ट कमल)

“ये जाफ़रान के खेतों से पूछना होगा

कि झील किस तरह बारूद से है मिल जाती।"[16] (देवेन्द्र आर्य)

“दिलों में घाव, माथे पर तिलक है

वही जो कल तलक था आज तक है

कहाँ हँसता है कोई वादियों में

वहीं बस चीख है डर है कसक है।"[17] (विनय मिश्र)

“आतंक युद्ध, भूख ने इतने सितम किये

किसको गले लगायेगी इक्कीसवीं सदी

आर्थिक विषमता - स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करते समय देशभक्तों ने यह स्वप्न देखा था कि आजादी के बाद सभी को जीवन के लिए आवश्यक मूलभूत सुविधाएँ प्राप्त होगी तथा सभी को अपने जीवन में उन्नति व समृद्धि के समान अवसर प्राप्त होंगे। जिससे समाज में सामाजिक-आर्थिक समता स्थापित होगी। इस स्वप्न को हकीकत में तब्दील करने की सोच के साथ ही हमारे देश में आजादी के बाद समाजवादी मिश्रित अर्थव्यवस्था अपनाई गयी थी, लेकिन आजादी के बाद समाज के अग्रपांक्तिय चरित्रहीन राजनीतिक नेतृत्व व साम्राज्यवादी पूँजीपति वर्ग में नैतिक व अनैतिक तरीकों से अधिकाधिक अर्थ संग्रह की होड़ मच गई। धन संचयन की इस आकांक्षी लालसा ने समाज में आर्थिक विषमता का ऐसा डिवाइडर पैदा कर दिया है जिसके दोनों ओर दो विपरीत जीवन शैलियाँ विकसित हो रही हैं- एक तरफ का समाज खाता-पीता, अघाता है तथा ऐशोआराम पर धन का अपव्यय करता है, तो दूसरी तरफ का समाज अभाव, दीनता व दरिद्रता से जूझ रहा है। एक तरफ बिना मेहनत के भाग विलास पूर्ण जीवन शैली है, तो दूसरी तरफ हाड़ ताड़ मेहनत के बावजूद नारकीय जीवन है। एक तरफ अधकार ही अधकार है, तो दूसरी ओर कृत्रिम रोशनी की चकाचौंध है। एक ओर ऊँची- ऊँची अट्टालिकाओं की संख्या व ऊँचाई निरंतर बढ़ रही है, तो दूसरी ओर फुटपाथी झोपड़ियों की संख्या भी लगातार बढ़ रही है। पूँजीपति मालिक निर्धन श्रमिकों का आर्थिक शोषण कर निरंतर धनी होते जा रहे हैं और गरीब और भी गरीब होते जा रहे हैं। इस आर्थिक विषमता की गहरी व खोफ़नाक घाटी का अनुमान इंडियन एक्सप्रेस(ऑनलाइन) में 16 जनवरी 2023 को प्रकाशित आँक्सफेम रिपोर्ट के आँकड़ों से लगाया जा सकता है, जिसके अनुसार भारत में कुल आबादी के केवल 5% अमीरों के पास 70% से अधिक संपत्ति है, वहीं निचली 50% आबादी के साथ सिर्फ 3% संपत्ति है। अमीरों और गरीबों की निरंतर गहरी होती जा रही यह खाई भारतीय समाज के लिए एक भयंकर समस्या एवं गंभीर चुनौती है। हिंदी ग़ज़ल के केमरे में समाज को दो हिस्सों विभाजित करने वाला आर्थिक विषमता का यह डिवाइडर (भेदक रेखा) बहुत ही स्पष्ट एवं सूक्ष्म रूप में कैद हुआ है-

“किसी की आय पर लगती कोई लगाम नहीं

किसी के पास में रोटी का इंतजाम नहीं।”[26] (महेश कटारे सुगम)

“लगी है होड़-सी देखो अमीरों और गरीबों में

ये गाँधीवाद के ढाँचे की बुनियादी खराबी है।”[27] (अदम गोडवी)

“आप कहते हैं सराफा गुलामहर है ज़िंदगी

हम गरीबों की नज़र में इक कहर है ज़िंदगी।”[28] (अदम गोडवी)

बेरोजगारी - स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही यह सपना देखा गया था कि देश के हर नागरिक को योग्यतानुसार काम के समान व पर्याप्त अवसर उपलब्ध होंगे। परंतु जनसंख्या में बेतहाशा वृद्धि तथा गलत सरकारी नीतियों के कारण आजादी के 75 वर्ष बाद भी देश के हर हाथ को काम मिलने की बात तो दूर, आज बड़ी संख्या में उच्च शिक्षा प्राप्त युवा भी काम की तलाश में दर-दर भटक रहे हैं। तमाम दावों व प्रयासों के बावजूद भारत की लगभग 8-10 प्रतिशत आबादी आज भी बेरोजगारी की समस्या से जूझ रही है। हमारा देश विश्व में सबसे अधिक युवा आबादी वाला देश है। लेकिन निरंतर बढ़ रहे श्रमबल के अनुपात में नौकरियों के कम सृजन व कोशल की कमी के कारण बेरोजगार युवाओं की संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है। इनमें भी पढ़े-लिखे बेरोजगारों की संख्या तीव्र गति से बढ़ रही है। रोजगार नहीं मिलने के कारण दर-दर भटक रहा युवा वर्ग सड़कों पर आंदोलन करने या आपराधिक गतिविधियों में लिप्त होने को मजबूर हो रहा है। बेरोजगारी स्वातंत्र्योत्तर हमारे समाज की एक बहुत बड़ी समस्या एवं चुनौती है। हिंदी ग़ज़लकार बेरोजगारी की समस्या एवं बेरोजगारों की पीड़ा को प्रकट करते हुए कहते हैं-

“मिलेगा काम-धन्या हर किसी को

ये दावा फिर हवाई हो गया है।”[29] (वशिष्ठ अनूप)

“डिग्रियों की कोख से जन्मी

बुद्धिमत्ताएं सड़क पर है।”[30] (ज़हीर कुरेशी)

“करोड़ों हाथ खाली हैं, इन्हें कुछ काम तो दे दो

धमा देगी नहीं तो ड्रप्स या पिस्तौल बेकारी।”[31] (कमलेश भट्ट कमल)

“करोड़ों नौजवाँ हैं और नौकरियाँ हैं थोड़ी सी

फिर उसके बाद होती जगहँसाई मार देती है।”[32] (वशिष्ठ अनूप)

महँगाई- स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज के लिए महँगाई भी एक बहुत बड़ी समस्या एवं चुनौती बनी हुई है। हर बार आम चुनावों में महँगाई बड़ा चुनावी मुद्दा बनती है और तमाम राजनीतिक दल व सरकारें इसके नियंत्रण के दावे करते हैं, परंतु अब तक ये सब दावे खोखले व असफल साबित हुए हैं। आजादी के सात दशक बाद भी जनसंख्या वृद्धि, कालाबाजारी – मुनाफाखोरी, उपभोक्तावादी व पूँजीवादी संस्कृति एवं गलत सरकारी नीतियों के कारण महँगाई सुरसा के मुँह की तरह निरंतर बढ़ रही है। यह महँगाई समाज में हाशिए पर खड़े आमजन व मध्यम वर्ग के लिए एक बहुत बड़ा सिरदर्द बनी हुई है। महँगाई के कारण समाज के निम्न वर्ग को ठीक ढंग

से दो जून की रोटी का जुगाड़ करने के लिए भी संघर्ष करना पड़ता है। महंगाई पर नियंत्रण भी वर्तमान सरकारों के लिए एक चुनौती है। हिंदी गज़लकार महंगाई की समस्या को रेखांकित करते हुए लिखते हैं-

“महंगाई अभी सुरसा के मुँह जैसी

अब भी पसरी घर में कंगाली है।”[33] (महेश कटारे ‘सुगम’)

“महंगाई की बात मत करो

रोज बढ़ रहे दामों वाती।”[34] (महेश कटारे ‘सुगम’)

“महंगाई का आलम ये है

रोटी भी कैसे खाएंगे।”[35] (महेश कटारे ‘सुगम’)

“पेट्रोल और डीजल अब

आसमान के तारे हैं।”[36] (महेश कटारे ‘सुगम’)

सामाजिक चुनौतियाँ

समाज में बढ़ती अपराध वृत्ति- इक्कीसवीं सदी में उदारीकरण व भूमंडलीकरण के कारण भारतीय समाज के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में क्रांतिकारी विचलन आया है। यह परिवर्तन भारतीय समाज में पूँजीवादी, बाजारवादी व उपभोक्तावादी संस्कृति के आगमन व उसके आत्मातीकरण के रूप में आता है, जिसके कारण जीवन मूल्यों को वरीयता देने वाला हमारा समाज येन केन प्रकारेण धन प्राप्ति को ही जीवन का एकमात्र लक्ष्य मान बैठा है। इसके दुष्प्रभावस्वरूप मानवीय मूल्यों का ह्रास हुआ है तथा समाज में अपराध वृत्ति की निरन्तर बढ़ती हुई है। पूँजीवाद व उपभोक्तावाद ने आज व्यक्ति की नजर व नजरिए को दाम (पैसा) और काम (सेक्स) पर ही केंद्रित कर दिया है, जिसकी परिणतिस्वरूप बलात्कार, अपहरण, हत्या, लकैती, लटपाट, हिंसा जैसी आपराधिक घटनाएँ हर नगर-गाँव की हर दिन की आम कहानी हो गई हैं। तमाम कानूनी प्रतिबंधों व कार्यवाहियों के बावजूद लगातार बलवती एवं बेलगाम होती यह अपराध प्रवृत्ति संगठित अपराध का रूप धर उद्योग(व्यवसाय) बनती जा रही है। अपराधियों के संगठित गिरोह(गैंग) बनते जा रहे हैं, जो पुलिस प्रशासन की नाक के नीचे खुलेआम दिनदहाड़े इन आपराधिक प्रवृत्तियों को अंजाम दे रहे हैं। बलात्कार एवं हत्या जैसी आपराधिक घटनाएँ चुनावी मुद्दा बनने लगी हैं जो इन आपराधिक घटनाओं के प्रसार एवं इनके बेकाबू होने का संकेत हैं। इसके साथ ही अपराधियों ने तकनीक के सहारे अपराधों का डिजिटलाइजेशन भी कर लिया है, और अदृश्य रूप में ही साइबर अपराधों को अंजाम दे रहे हैं, जिनकी गिरफ्त में आज हर स्मार्टफोन यूजर(उपयोगकर्ता) है। यह अपराधवृत्ति आज के दौर की उभरती हुई चुनौती है, जिस पर नियंत्रण किया जाना आवश्यक है। हिंदी गज़लकार समाज में बढ़ती आपराधिक घटनाओं एवं अराजकता के प्रति चिंता व्यक्त करते हैं-

“दिनदहाड़े रैप, हत्याकांड, डाके

आजकल सड़कें ये मंजर देखती हैं।”[37] (ज़हीर कुरेशी)

“अपहरण था जर्म कल तक आज इक उद्योग है

इस नयी तकनीक का भी बाहुबल अद्भुत लगा।”[38] (विनय मिश्र)

“यहाँ पर वारदातों के गड़े हैं हर तरफ़ तम्बू

दिखाएँ क्या किसी को आज के हालात का चेहरा।”[39] (ज्ञान प्रकाश विवेक)

“तरह-तरह के दिखे रोज़ ‘नेट’ पर हमले

नई सदी में हुए आम ‘साइबर’ हमले।”[40] (ज़हीर कुरेशी)

वंचित समुदायों की समस्याएँ- आजादी के पश्चात सामंतवादी मानसिकता के कारण समाज में लंबे समय तक हाशिए पर रहे स्त्री व दलित वर्ग की दशा में सुधार हेतु अनेक सरकारी प्रयास किए गए हैं और इस दिशा में काफी प्रगति भी हुई है। लेकिन अभी भी इस दिशा में बहुत किये जाने की आवश्यकता है। आजादी के 75 वर्ष

बाद भी स्त्रियाँ व दलितों के प्राप्ति समानता को मानसिकता का विकास नहीं हो पाया है। औशिक्षित व दूरदराज इलाकों को बहुसंख्यक माहिलाएँ आज भी परंपरागत स्त्रियों की भाँति शोषित व उपेक्षित जीवन जी रही हैं। यद्यपि पढ़ी लिखी स्त्रियाँ ने आज घर की दीवारों से बाहर निकल नौकरियों व राजनीति में भी कदम बढ़ाए हैं, लेकिन इसके बावजूद उनकी स्थिति स्वतंत्र निर्णय की न होकर पुरुषों की अधीनता की ही है। पुरुषों का स्त्री के प्रति भोगवादी व वासनात्मक दृष्टिकोण आज भी बरकरार है। इसी तरह दलितों की स्थिति में भी काफी सुधार हुआ है, फिर भी आज भी दूर दराज के इलाकों में उनके प्रति अस्पृश्यता व असमानता की मानसिकता बरकरार है। औद्योगीकरण व अन्य कारणों से अपने परंपरागत प्राकृतिक संसाधनों- जंगल, जमीन से बेदखल आदिवासी समुदाय का विस्थापन भी एक बड़ी समस्या है। इसके अतिरिक्त बालश्रम संबंधी कानूनों एवं सरकारी प्रयासों के बावजूद गरीबी के कारण लाखों बच्चे कल-कारखानों, होटलों व अन्य जगहों पर बंधुआ मजदूरों के रूप में काम करने के लिए मजबूर हैं। ताजा आँकड़ों के अनुसार भारत में 10 मिलियन से अधिक बाल श्रमिक हैं। उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण उपजे स्वाधीन दृष्टिकोण ने वृद्धों के जीवन को असहाय व दर्दनाक बना दिया है। जिनकी पुष्टि बढ़ते वृद्धाश्रमों से होती है। इन वंचित समुदायों- स्त्री, दलित, बाल, वृद्ध की समस्याएँ भी वर्तमान भारतीय समाज के समक्ष एक चुनौती हैं। हिंदी गज़लकार इन वर्गों के प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हुए लिखते हैं-

स्त्री-

“हिंदुस्तानी औरत पानी

घर भर की खातिर कुर्बानी

गृहलक्ष्मी पद की व्याख्या है

चौका- चूल्हा-रोटी -पानी।”[41] (शिव ओम अंबर)

“तछमिनि या थी चुनी गई परधान मगर

उसका 'पती प्रधान' देखकर आया हूँ।”[42] (डी. एम. मिश्र)

“कहीं तलाक, कहीं अग्नि परीक्षाएँ हैं

आज भी इन्द्र है, गौतम है, अहल्याएँ हैं।”[43] (वशिष्ठ अनूप)

दलित-

“लाख दलित सरकारी है

बाभन सब भर भारी है।”[44] (राम मेश्राम)

आदिवासी-

“जंगलों, नदियों, पहाड़ों, के निधन का प्रश्न है ही,

अपने घर में पिट रहे बनावसियों का प्रश्न है।”[45] (वशिष्ठ अनूप)

बाल श्रम-

“होटल में काम करते हुए बन गए बुजुर्ग
ऐसे करोड़ों बच्चों में बचपन खुला नहीं।”[46] (जहीर कुरेशी)

किसान एवं मजदूर वर्ग की समस्याएँ- आजादी के सात दशक बाद भी वंचित समुदाय के अन्तर्गत किसानों व मजदूरों की दीन हीन जीवन दशाएँ हमारे देश के लिए एक बहुत बड़ी समस्या एवं शर्म की बात है। भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ की लगभग 55% आबादी कृषि कार्य में लगी हुई है। परंतु सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में उसका योगदान मात्र 15 से 20 प्रतिशत है। आजादी के 75 वर्ष बाद भी ऋणग्रस्त संतप्त जीवन भारतीय किसानों की स्याई पहचान बनी हुई है। आज भी भारतीय किसान कृषि संसाधनों जैसे खद, बीज आदि की अनुपलब्धता, अधिक लागत के बाद खेती से होने वाली कम आमदनी व ऋण के बोझ आदि कारणों से बदहाल नारकीय जीवन जी रहे हैं, और मजबूरन आत्महत्या कर रहे हैं। भारतीय किसानों के जीवन की यह बहुत बड़ी विडंबना है कि सबको जीवन के लिए पोषण देने वाले अन्नदाता किसान अपने खुद का पेट नहीं भर पा रहे हैं। परिणामस्वरूप वे खेती को छोड़कर मजदूर बनने को मजबूर हैं। लेकिन मजदूरों की भी कमीबेश यही हालत है। बड़ी-बड़ी विदेशी कंपनियाँ और पूँजीपति मजदूरों का शोषण करते हैं। और यह मजदूरों की जिंदगी की भी सच्चाई एवं विडंबना है कि कारखानों में सबके लिए वस्त्र बनाने वाला मजदूर खुद निर्वस्त्र रहता है। और पूँजीपतियों के लिए बड़े-बड़े कोठी बंगले बनाने वाला शिल्पी- मजदूर फुटपाथ पर खुले आसमान के नीचे सोता है। किसानों और मजदूरों को यह दयनीय स्थिति आज भी भारतीय लोकतंत्र की एक बहुत बड़ी समस्या बनी हुई है। हिंदी गज़लकार किसानों- मजदूरों के जीवन की विडंबना व उनके जीवन दर्द को वाणी देते हुए लिखते हैं -

“सब को जीवन देने वाले

भूखे दुखी किसान खड़े हैं।”[47] (महेश कटारे 'सुगम')

“बीज बोए थे खुशी के खुदकुशी बोई न थी

चार कंधों पर फ़सल ऐसी कभी ढाई न थी।"[48] (रामकुमार कृषक)

"यहाँ अट्टालिकाएँ रोज़ बनती जा रहीं लेकिन

बनाने वाता क्यों फुटपाथ या छानी में रहता है।"[49] (वशिष्ठ अनूप)

पर्यावरणीय चुनौतियाँ-

आजादी के बाद तेज़ी से बढ़ते नगरीकरण, औद्योगीकरण एवं कृषि भूमि के लिए वनों को लगातार काटा जा रहा है। इसके अतिरिक्त विकास योजनाओं के नाम पर प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन किया जा रहा है, जिससे पर्यावरण प्रदूषण जैसी विश्वव्यापी समस्या से हमारा देश भी जूझ रहा है। विशेष रूप से महानगरों में प्रदूषण की समस्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। एडिआईएस वेबसाइट पर 8 जनवरी, 2022 को प्रकाशित पर्यावरण प्रदूषण सूचकांक के अनुसार दुनिया के 180 देशों में भारत का स्थान अंतिम स्थान है, जो बहुत चिंताजनक है। दिल्ली की गिनती दुनिया के सबसे प्रदूषित शहरों में होने लगी है और वहाँ सदियों में साँस लेना भी दुभर होता जा रहा है। जीवनदायिनी नदियों का पानी प्रदूषण के कारण विषाक्त होने से पीने लायक भी नहीं रह गया है। सबको मुक्ति देने वाली गंगा अपनी मुक्ति के लिए तरस रही है। गंगा को स्वच्छ करने एवं प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए सरकारों द्वारा अनेक कदम उठाए गए हैं, फिर भी यह समस्या लगातार बढ़ती जा रही है। इस बढ़ते प्रदूषण पर नियंत्रण हमारे लिए एक आवश्यकता के साथ गंभीर चुनौती भी है। हिंदी गज़लकारों ने पर्यावरण प्रदूषण की समस्या को अभिव्यक्त करते हुए इसके प्रति चिंता व्यक्त की है। महानगरों में वायु प्रदूषण एवं गंगा के प्रदूषण पर एक-दो शेर उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत है-

"इस कदर फैता हवाओं में जहर है

धुंध में डूबा हुआ सारा शहर है"[50] (रोहिताश्व अस्थाना)

"बो दिन आएगा जब बच्चे कहेंगे
सुना है बहती थी भारत में गंगा।"[51] (देवेन्द्र आर्य)

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि आजादी के बाद हमारे देश ने हर क्षेत्र में काफी प्रगति की है। परन्तु भारतीय समाज व लोकतंत्र के सामने आज भी अनेक समस्याएँ व चुनौतियाँ हैं। युग चेतना से पूरी तरह वाबस्ता समकालीन हिंदी गज़ल की केन्द्रीय दृष्टि सामयिक भारतीय समाज के परिवर्तित मूल्यों, उसकी दुश्चारियाँ, समस्याओं एवं चुनौतियों पर ही केंद्रित है। साम्प्रतिक समाज जिन समस्याओं एवं चुनौतियों से जूझ रहा है, समकालीन हिंदी गज़ल भी उन्हीं से जूझ रही है। यही कारण है कि समकालीन हिंदी गज़ल के नाभिक में स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज की समस्याओं एवं चुनौतियों का प्रामाणिक एवं प्रभावी अंकन हुआ है।

संदर्भ सूची :

1. कुंआर बेवेन, आँचिचों धीरे चलो, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, तृतीय संस्करण 2014, पृ. 69
2. जहीर कुरेशी एवं डॉ. मीनश्री दुबे (संपादक), सादगी का सौंदर्य: वशिष्ठ अनूप का सूजन, सहित्य भंडार, प्रयागराज, 2023, पृ.142
3. दुर्धंत कुमार, साये में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पौखी अमृति 2013, पृ. 23
4. जहीर कुरेशी, भीड़ में सबसे अलग, मेघ बुक्स, दिल्ली, 2003, पृ. 39
5. दुर्धंत कुमार, साये में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पौखी अमृति, 2013, पृ. 15
6. महेश कटारे 'सुगम', अथ हय हय, काव्या पब्लिकेशंस, भोवत, पृ. 50
7. विनय मिश्र, तेरा होना तताई, लिटिड बर्ड पब्लिकेशंस, दिल्ली, वसुंधरा संस्करण 2020, पृ. 90
8. ज्ञान प्रकाश विवेक, गुफ्तगू, अग्रिम से है, वाणी प्रकाशन, दिल्ली 2008, पृ. 44
9. विनय मिश्र, झिंदगी अने को है, लिटिड बर्ड पब्लिकेशंस, दिल्ली 2023, पृ. 76
10. डी. एम. मिश्र, अर्द्धनाद-आर्द्धना, नमन प्रकाशन दिल्ली, 2016, पृ. 111
11. विनय मिश्र, सच और है, लिटिड बर्ड पब्लिकेशंस, 2020, पृ. 42
12. राम मेमन, अगम में उड़ान, अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, 2024 पृ. 94
13. वशिष्ठ अनूप, छंद तेरी हैंसी का, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2023, पृ. 140
14. दुर्धंत कुमार, साये में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पौखी अमृति 2013, पृ. 30
15. वशिष्ठ अनूप, रोचनी खतरे में है, उद्गावना प्रकाशन, दिल्ली 2006, पृ. 10
16. वही, पृ. 10
17. विनय मिश्र, सच और है, लिटिड बर्ड पब्लिकेशंस, 2020, पृ. 42
18. तातवंद गुप्त (संपादक), माधव कोशिक सूजन की समीक्षा, विजय बुक्स, दिल्ली, 2022, पृ. 50
19. ओम निधिवस, धरती की सह पर, यश पब्लिकेशंस, दिल्ली, 2020, पृ. 50
20. रामकुमार कृष्ण, बिंदुए तो अंध धड़, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 2022, पृ. 148
21. राम मेमन, अगम में उड़ान, अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, 2024 पृ. 110
22. अदम गोडवी, सम्य से मुठभेड़, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पौखी संस्करण 2022, पृ. 51
23. वशिष्ठ अनूप, तेरी ओंखें बहुत बोलती हैं, विजय बुक्स, दिल्ली 2014, पृ. 86
24. दुर्धंत कुमार, साये में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पौखी अमृति 2013, पृ. 57
25. विनय मिश्र, तेरा जिंदा है, लिटिड बर्ड पब्लिकेशंस, दिल्ली, 2021, पृ. 72
26. महेश कटारे 'सुगम', प्यार के सारे, नेशन प्रेस, इंडिया, 2022, पृ. 60
27. अदम गोडवी, सम्य से मुठभेड़, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पौखी संस्करण, 2022, पृ. 10
28. वही, पृ. 84
29. जहीर कुरेशी एवं डॉ. मीनश्री दुबे (संपादक), सादगी का सौंदर्य: वशिष्ठ अनूप का सूजन, सहित्य भंडार, प्रयागराज, 2023, पृ. 68
30. जहीर कुरेशी, एक टुकड़ा धूप, विद्या प्रकाशन, कानपुर, द्वितीय संस्करण 2016, पृ. 17

31. ज्ञान प्रकाश विवेक, हिंदी गज़ल की विकास यात्रा, हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पंचकूला 2012, पृ. 121
32. वशिष्ठ अनूप, छंद तेरी हैसी का, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2023, पृ. 56
33. महेश कटारे 'सुगम, कुछ तो है, काव्या पब्लिकेशंस, भोपाल 2019, पृ. 30
34. वही, पृ. 58
35. महेश कटारे 'सुगम, अय हय हय, काव्या पब्लिकेशंस, भोपाल, पृ. 25
36. महेश कटारे 'सुगम, ख़्वाब मेरे भटकते रहे, काव्या पब्लिकेशंस, भोपाल, 2019, पृ. 76
37. ज़हीर कुशौ, एक टुकड़ा धूप, विद्या प्रकाशन कानपुर, द्वितीय संस्करण 2016, पृ. 24
38. विनय मिश्र, तेरा होना तताऊँ, लिटिड बर्ड पब्लिकेशंस, दिल्ली, चतुर्थ संस्करण 2020, पृ. 51
39. ज्ञान प्रकाश विवेक, घाट हज़ारों इस दरिया के, वाणी प्रकाशन, दिल्ली 2008, पृ. 30
40. ज़हीर कुशौ, निकता न दिक्किय को सिकंदर, अंजुमन प्रकाशन, इलाहाबाद, 2016, पृ. 71
41. शिव ओम अंबर, विष पीना विषय मत करना, पंचाल प्रकाशन, फर्रुखाबाद, 2018, पृ. 7
42. डी. एम. मिश्र, आईना-दर-आईना, नमन प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृ. 29
43. वशिष्ठ अनूप, रोखनी खतरे में है, उद्गातन प्रकाशन, दिल्ली, 2006 पृ. 17
44. राम मेश्राम, आग में उड़ान, अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, 2024 पृ. 38
45. वशिष्ठ अनूप, छंद तेरी हैसी का, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2023, पृ. 106
46. हरeram नेमा 'समीप, समकालीन हिंदी गज़लकार एक अध्ययन, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2017, पृ. 336
47. महेश कटारे 'सुगम, कुछ तो है, काव्या पब्लिकेशंस, भोपाल 2019, पृ. 32
48. रामकुमार कृष्क, पढ़िए तो आँख पाइए, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 2022, पृ. 98
49. वशिष्ठ अनूप, छंद तेरी हैसी का, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2023, पृ. 42
50. हरeram नेमा 'समीप, समकालीन हिंदी गज़लकार एक अध्ययन खंड 3, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2018, पृ. 191
51. हरeram नेमा 'समीप, हिन्दी गज़ल की पहचान एनीबुक 2017, पृ. 282

महावीर सिंह
शोधार्थी, हिंदी विभाग, राजकीय कला कन्या महाविद्यालय, कोटा
कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

th.mahaveersingh@gmail.com, 9667362167

डॉ. कविता मीणा
शोध पर्यवेक्षक एवं सह आचार्य-हिंदी, राजकीय कला कन्या महाविद्यालय, कोटा

चित्तौड़गढ़ (राजस्थान) से प्रकाशित त्रैमासिक ई-पत्रिका

अपनी माटी (ISSN 2322-0724 Aprni Maati) अंक-52, अप्रैल-जून, 2024 UGC Care Listed Issue

सम्पादक-द्वय : माणिक-जितेन्द्र यादव चित्रांकन : भीम सिंह (इलाहाबाद विश्वविद्यालय)



अनुक्रम

क्र.सं.	आलेख/रचना	पृष्ठ
1.	मीरा-पद	05
	1. सन्त मीराबाई	
	(1) जोगिया मत जा (2) थुतारा जोगी एक	
2.	मीरा-प्रशस्ति	06
	2. डॉ. विनोद सोमानी 'हंस', अजमेर (राजस्थान)	
	श्रद्धानत है मीरा, भारत देश हमारा	
3.	सम्पादकीय	07
	3. प्रो. सत्यनारायण समदानी, चित्तौड़गढ़ (राजस्थान)	
	विरासत संरक्षण : जन आन्दोलन बने	
4.	मीरा सन्दर्भपक्ष	
	4. डॉ. आनन्द कुमार एवं डॉ. ब्रजेश कुमार, लखनऊ (उत्तरप्रदेश)	
	मीराबाई : भक्ति और विरोध की कवयित्री	11
5.	भक्ति-साहित्य पक्ष	
	5. डॉ. गजेन्द्र भारद्वाज, दरभंगा (बिहार)	
	हिन्दी के ललित निबन्ध साहित्य में निर्गुण भक्तिकाव्य के	14
	रचनागत सन्दर्भ	
	6. डॉ. पवनदीप कौर, पटियाला (पंजाब)	
	जन्म संस्कार : गुरु रामदास जी की वाणी के संदर्भ में	20
	7. डॉ. राजेन्द्र कुमार सिंघवी, निम्बाहेड़ा (राजस्थान)	
	जैन श्वेताम्बर तेरापंथ की आध्यात्मिक यात्रा	25
	8. डॉ. लिपि जैन एवं डॉ. रविन्द्रसिंह राठौड़, लाडनूँ (राजस्थान)	
	भारतीय संस्कृति में अहिंसा की विवेचना	31
6.	इतिहास / पुरातत्व पक्ष	
	9. अमित कुमार, डॉ. कृष्ण कुमार एवं डॉ. महेन्द्र सिंह, हिसार (हरियाणा)	
	हर्षकालीन हरियाणा में पशुपालन	36
	10. डॉ. रणवीर सिंह, मेरठ (उत्तरप्रदेश)	
	भारत में साम्प्रदायिकता का स्वरूप और इतिहास	43
	11. डॉ. ईश्वरदान, दिल्ली	
	ताम्रपाषाणकालीन कायथा, मालवा और आहड़ संस्कृतियों के	48
	मध्य सांस्कृतिक सम्बन्ध	

7.	संस्कृति/कला पक्ष	
12.	डॉ. रीतिका गर्ग, जयपुर (राजस्थान)	
	समकालीन कलाकार नाथूलाल वर्मा की कला में धार्मिक चित्रण	52
13.	श्री कृष्ण कुमार एवं डॉ. वैकट नरेश बुर्ला, राँची (झारखण्ड)	
	भारतीय नाट्यकला में सेंसरशिप एवं प्रतिबन्ध : स्वतन्त्रता के पहले और बाद में	57
14.	प्रो. राजन यादव, खैरागढ़ (छत्तीसगढ़)	
	छत्तीसगढ़ी लोकनृत्य रावत नाच में श्रीरामकथा	63
15.	डॉ. सुनील कुमार शर्मा, करौली (राजस्थान)	
	भक्तिकाल में धर्माश्रित चित्रशैलियाँ	68
16.	डॉ. रामजीलाल कोली, करौली (राजस्थान)	
	तिमनगढ़ की मूर्तिकला	73
8.	शिक्षा एवं शिक्षण पक्ष	
17.	डॉ. ज्योति सी.भूतड़ा (मंत्री), अमरावती (महाराष्ट्र)	
	किन्नरों की शिक्षा और रोजगार की समस्या : एक चिन्तन	78
18.	डॉ. रूपेश कुमार, पिथौरागढ़ (उत्तराखण्ड)	
	शिक्षक-प्रशिक्षण : समस्याएँ एवं समाधान	83
9.	साहित्य सन्दर्भ पक्ष	
19.	पूजा शर्मा, गुवाहाटी (असम)	
	आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी की समीक्षा दृष्टि : एक विहंगावलोकन	89
20.	श्री महावीर सिंह एवं डॉ. कविता मीणा, कोटा (राजस्थान)	
	समकालीन हिन्दी ग़ज़ल में पर्यावरण चेतना	96
10.	कृषि विकास पक्ष	
21.	श्री नितिन कुमार बिड़ला एवं डॉ. एस. हरिहरन, अहमदाबाद (गुजरात)	
	वर्तमान भारतीय कृषि को समझना : 2047 तक आत्म निर्भर भारत की ओर एक कदम	107

समकालीन हिंदी ग़ज़ल में पर्यावरण चेतना

- महावीर सिंह एवं डॉ. कविता मीणा

शोध सार - कविता और प्रकृति का चिर पुरातन संबंध है। यह संबंध उतना ही पुराना है, जितना कविता का इतिहास। जैसा कि सर्वज्ञात है आदि काव्य छंद का प्रस्फुटन प्रकृति के क्षरण संबंधी वेदना से प्रसूत करुणा के स्रोत से ही होता है। महर्षि वाल्मीकि कृत भारतीय वाङ्मय का प्रथम छंद 'मा निषाद.....' प्रकृति के जैविक घटक एक क्रीच पक्षी के व्याध द्वारा वध के कारण उससे वियुक्त क्रीची के वेदना विलाप से उपजी करुणा के अतिरेक से निसृत हुआ है। कविता कवि हृदय की करुणाशीलता एवं सौंदर्यप्रियता के स्रोत से निसृत होती है। और प्रकृति जहाँ एक ओर सौंदर्य का असीम भण्डार है, तो दूसरी ओर किन्हीं कारणों से उस सौंदर्य के विनाश से उपजी अपार करुणा की अकूत राशि भी। इसलिए प्रकृति आदिकाल से ही अपनी सौंदर्य एवं करुणा शक्ति के कारण कविता के केंद्र में एवं उसके प्रेरक स्रोत के रूप में हमेशा उपस्थित रही है। कविता और प्रकृति की यह संबंधधारा आदिकालीन संस्कृत काव्य से लेकर आधुनिककालीन हिंदी कविता तक विभिन्न रूपों में अनवरत प्रवाहमान है। आदिकाल में प्रकृति के हास की वेदना से उपजी कविता मध्यकाल में उसके असीम सौंदर्य पर केंद्रित रही। वहीं आधुनिक काल में भौतिकवादी जीवन दर्शन से प्रभावित आधुनिक मानव समाज के विकासवादी कार्य व्यापारों के कारण प्रकृति-सौंदर्य के क्षत-विक्षत होने से लहलुहान प्रकृति की करुणाजनक दशा तथा मानव के असह्य अत्याचारों से क्रुद्ध प्रकृति के मानव जाति सहित समस्त सृष्टि के विनाशक कयामती क्रोध की पूर्वाभासी पीड़ा से उपजी करुणा से कविता में पर्यावरण चेतना की काव्यधारा प्रवाहित होती है। हिंदी ग़ज़ल की मूल आत्मा ही शोषित-पीड़ित के हक की आवाज उठाकर समस्त मानवता के कल्याण भाव की है। चूँकि प्रकृति भी वर्तमान में मानव के अत्याचारों से पीड़ित है और प्रकृति के साथ ही मानव जाति का भविष्य जुड़ा हुआ है, इसलिए शोषित-पीड़ित जन की दीन-हीन दशाओं का वेदना गान करने वाली समकालीन हिंदी ग़ज़ल की चेतना प्रकृति की वेदना तक भी विस्तृत है। यही कारण है कि समकालीन हिंदी ग़ज़ल में प्रकृति के बिगड़ते सौंदर्य एवं संतुलन तथा उसके कारणों एवं दुष्प्रभावों को उजागर करते हुए मानव जाति के अस्तित्व के लिए पर्यावरण संरक्षण की पुरजोर वकालत हुई है। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य पर्यावरण प्रदूषण के कारणों एवं दुष्प्रभावों को व्यक्त कर पर्यावरण के वैश्विक संकट को उजागर करने तथा उसके संरक्षण की चेतना जाग्रत करने में समकालीन हिंदी ग़ज़ल की भूमिका को रेखांकित करना है।

बीज शब्द- समकालीन हिंदी ग़ज़ल, प्रकृति, पर्यावरण प्रदूषण, जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, मृदा प्रदूषण, पर्यावरण संरक्षण, पर्यावरण चेतना।

मूल आलेख- मानव का प्रकृति के साथ संबंध सनातन है, क्योंकि मानव जीवन का उद्भव एवं पोषण प्रकृति से ही होता है। इसलिए प्रकृति को मानव की जीवनदात्री भी कहा जाता है। प्रकृति के बगैर मानव के अस्तित्व की कल्पना भी असंभव है, क्योंकि मानव शरीर का सृजन जिन पंच महाभूतों-जल, वायु, पृथ्वी, अग्नि व आकाश से होता है, वे प्रकृति के ही अजैविक घटक हैं। इसके अतिरिक्त मानव का पालन-पोषण भी विभिन्न प्राकृतिक उपादानों से ही होता है। जीवन के लिए आवश्यक प्राणवायु भी पर्यावरण की ही देन है। इन बातों की अभिव्यक्ति मध्यकालीन कविता के कवि शिरोमणि 'तुलसीदास' की इस चौपाई व समकालीन हिंदी ग़ज़लकार डी.एम. मिश्र के इन शेरों में हुई है-

“क्षिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा।।” (तुलसीदास)

“रक्त का संचार है पर्यावरण,

साँस की रफ्तार है पर्यावरण।

जन्म से लेकर मरण तक साथ दे,

जिंदगी का सार है पर्यावरण” (डी.एम. मिश्र)

अतः मनुष्य का प्रकृति प्रेम नैसर्गिक है। साहित्य मानवीय चेतना व मानव जीवन की प्रतिकृति होने के नाते मानव के इसी प्रकृति प्रेम की अभिव्यक्ति आदिकालीन संस्कृत काव्य से लेकर समकालीन हिंदी ग़ज़ल में किसी न किसी रूप में परिलक्षित होती है। इस प्रकृति प्रेम के कारण जहाँ एक ओर कवि मन प्रकृति के शब्दातीत सौंदर्य पर रीझकर उसे कविता में रचता है, तो दूसरी ओर प्रकृति के विनाश से चिंतित हो, उसके संरक्षण के लिए अपनी कविता को माध्यम बना समाज में पर्यावरण संरक्षण की चेतना जागृत करने का प्रयास करता है। हिंदी ग़ज़लकारों का यह प्रकृति प्रेम आरंभ में प्रकृति के असीम स्वर्गिक सौंदर्य वर्णन के रूप में व्यक्त हुआ, वही बाद में यह मानवजनित व्यापारों के कारण प्रकृति या पर्यावरण के विकृत होते सौंदर्य एवं स्वास्थ्य और इसके कारण मानव जाति पर मंडराते पर्यावरणीय संकट के खतरों के प्रति चिंता एवं चिंतन के बतौर पर्यावरण चेतना के रूप में अभिव्यक्त हुआ है। हिंदी ग़ज़ल में प्रकृति के सौंदर्यशाली एवं प्रलयकारी दोनों रूप वर्णित हैं। परन्तु इनमें से दूसरा रूप-पर्यावरणीय चेतना का स्वर ही अधिक मुखर है। समकालीन हिंदी ग़ज़ल में पर्यावरण प्रदूषण के वैश्विक संकट के कारणों एवं दुष्प्रभावों के प्रति चिंता व पर्यावरण संरक्षण की पैरवी के रूप में पर्यावरणीय चेतना की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है।

प्रकृति मानव के लिए एक अमूल्य उपहार है। लेकिन पर्यावरण का यह उपहार तभी तक वरदान है, जब तक मानव द्वारा पर्यावरण के प्रति सहजीविता एवं सह-अस्तित्व की जीवन शैली अपनाते हुए प्राकृतिक संसाधनों का आवश्यकतानुसार सीमित मात्रा में ही दोहन किया जाए तथा पर्यावरण का संपोषण व संरक्षण भी साथ-साथ किया जाए, अन्यथा यही उपहार अभिशाप भी बन जाता है। हमारी सनातन संस्कृति में प्रकृति के पूजन एवं संरक्षण की परम्पराओं के मूल में यही प्रकृतिपोषी उद्देश्य चेतना रही है। लेकिन भूमंडलीकरण के वर्तमान दौर में पूँजीवादी व उपभोक्तावादी संस्कृति की चकाचौंध में एकरेखीय विकास से मोहबिष्ट भोगवादी स्वार्थलिप्सा में अंधा वैश्विक मानव समुदाय विज्ञान एवं तकनीक के सहारे प्रकृति पर स्वामित्व के अहम भाव से पूरित हो, पर्यावरण विरोधी विकास मॉडल को अपनाकर प्राकृतिक संसाधनों का अमर्यादित व असीमित दोहन कर रहा है, जिससे प्रकृति का स्वास्थ्य एवं संतुलन बिगड़ रहा है। आज विकास की अंधी दौड़ में मानव समाज प्रकृति के अजैविक घटकों-जमीन, जंगल, जलवाहिनियों (नदियों) एवं पहाड़ों को नष्ट करता जा रहा है, जिससे प्रकृति के ये अवयव क्षत-विक्षत होते जा रहे हैं, प्रकृति लहलुहान हो रही है और उसका सौंदर्य, संतुलन एवं स्वास्थ्य निरन्तर क्षरित होता जा रहा है। आज अपने तुच्छ स्वार्थों की पूर्ति हेतु प्रकृति का अवैधानिक व अनियंत्रित दोहन करने वाला एक पूरा पूँजीवादी माफियातंत्र खड़ा हो चुका है। इस तंत्र के द्वारा किये जा रहे अप्राकृतिक दोहन के कारण धरती माँ का पहाड़ रूपी हृदय विदीर्ण हो रहा है, उसके फेफड़ेरूपी जंगल क्षयग्रस्त हो गए हैं, तथा धरती की रक्तवाहिनियाँ रूपी नदियाँ विषाक्त जल रूपी रक्त को ढो रही हैं। इस अकूत दोहन एवं इससे प्रकृति के बिगड़ते सौंदर्य की चिंताजनक अभिव्यक्ति आज की हिंदी ग़ज़ल में हुई है-

“पेड़ रोते हैं कुल्लाड़ा देखकर
 किस कदर लाचार है पर्यावरण।” (डी.एम. मिश्र)
 “भाफिया के मकतल में आज मेरी बारी है
 जल-जमीन-जंगल की जंग रोज जारी है
 काट लें हरे जंगल, खोद लें नदी परबत
 मुप्त की ये दीलत तो हर किसी को प्यारी है” (राम मेश्राम)
 “शजरहीन जंगल, खतम होते पर्वत
 नदी जल की प्यासी, हवा में जहर है।”, (वशिष्ठ अनूप)
 “कहाँ है धरती कहाँ हैं जंगल कहाँ हैं बादल रहे जो कल तक
 घुला है जो कुछ यहाँ हवा में कहुँ ये कैसे जहर नहीं है।” (विनय मिश्र)

पर्यावरण जल, मिट्टी, वायु जैसे अनेक अजैविक एवं पेड़-पौधों, जीव-जन्तुओं, अपघटक जैसे बहुत से जैविक घटकों से मिलकर बना होता है। मानव सहित समस्त जीव जगत के जीवन एवं सम्यक् विकास के लिए पर्यावरण के इन तत्वों में संतुलन बनाए रहना नितांत जरूरी है। यदि किसी कारण से पर्यावरण के किसी एक घटक में असंतुलन या विकार उत्पन्न होता है, तो उसका प्रभाव अन्य घटकों पर भी पड़ता है और पर्यावरण विकृत होता है, जिसका जीव जगत पर विपरीत प्रभाव पड़ता है, तो उसे ही पर्यावरण प्रदूषण कहा जाता है। वर्तमान में मानव द्वारा पर्यावरण के अजैविक घटकों-जमीन, जंगल और जल के अत्यधिक व अनुचित दोहन एवं अन्य कारणों से ये अजैविक घटक विकृत एवं प्रदूषित हो रहे हैं, जिससे परिस्थितिकीय असंतुलन उत्पन्न हो रहा है। यूँ कहें कि वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण एवं मृदा प्रदूषण का स्तर लगातार भयावह होता जा रहा है, जिससे मानव व जीवजगत का जीवन खतरे में है। हिंदी ग़ज़लकारों ने पर्यावरण प्रदूषण के विविध रूपों-वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण एवं मृदा प्रदूषण के विभिन्न कारणों एवं प्रभावों को अपने शेरों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। बढ़ते पर्यावरण प्रदूषण एवं उसके जीवननाशी प्रभाव को बयां करता यह शेर उदाहरणार्थ प्रस्तुत है-

“हवा में भी जहर है और पानी भी है जहरीला
 कहाँ तक जिन्दगी मरने से अब देखें बचाती है।”, (विनय मिश्र)

वायु प्रदूषण- मानव व जीव जगत के लिए सबसे जरूरी प्राकृतिक तत्व शुद्ध हवा है। लेकिन वायु प्रदूषण के कारण शुद्ध एवं ताजा हवा की उपलब्धता आज एक बहुत बड़ी चुनौती बन गयी है। शहरीकरण, औद्योगीकरण एवं अन्य विकास योजनाओं के लिए अत्यधिक मात्रा में पेड़ पौधों को काटे जाने से प्राणवायु प्रदाता पेड़-पौधों की संख्या लगातार घट रही है, जिससे वायु प्रदूषण निरन्तर बढ़ रहा है। कल कारखानों की चिमनियों से निकलने वाली जहरीली गैसों, पेट्रोल, डीजल जैसे जीवाश्मी ईंधन से चलने वाले वाहनों के धुएँ से निकलने वाली विषाक्त गैसों एवं कोयले के दहन से निकलने वाले धुएँ के कारण वायु प्रदूषण का स्तर व संकट लगातार बढ़ता जा रहा है। इस प्रदूषण के कारण महानगरों व शहरों में पर्याप्त प्रकाश के बावजूद धुँध एवं कोहरा छाया रहता है, जिससे साँस लेना भी दूभर हो जाता है तथा श्वसन संबंधी अनेक बीमारियाँ जन्म लेती हैं। वायु प्रदूषण के कारण मानव सहित सभी जीव जंतुओं का जीवन संकट में है। बढ़ता वायु प्रदूषण शहरों के साथ आज गाँवों की भी समस्या बन गया है। जिस पर हिंदी ग़ज़लकार लिखते हैं-

“हवा हुई ज़हरीली कुछ,

नगर छोड़ सब शजर गये।”⁸, (वेद मित्र शुक्ल)
 “मिल की चिमनी का धुआँ हर खेत पर छाने लगा
 अब शहर वाला प्रदूषण गाँव तक आने लगा।”⁹, (चन्द्रसेन विराट)
 “बदबू देते हैं पवन के झोंके,
 ऊँचे उड़ते विमान रोते हैं।”¹⁰, (शरद मिश्र)
 “इस कदर फैला हवाओं में जहर है
 धुँध में डूबा हुआ सारा शहर है।”¹¹, (रोहिताश्व अस्थाना)

जल प्रदूषण- हवा के बाद जीव जगत के लिए दूसरा सबसे जरूरी प्राकृतिक तत्व जल है। परंतु बढ़ते जल प्रदूषण के कारण पीने के लिए शुद्ध पेयजल की उपलब्धता भी आजकल बड़ी चुनौती हो गई है। घरो से निकलने वाले अपशिष्ट पदार्थों, फैक्ट्रियों से निकलने वाले अपशिष्ट तरल या घुलनशील रासायनिक कचरे, खेती में प्रयुक्त कीटनाशकों व रासायनिक खादों के जल स्रोतों में बहाव एवं अन्य मानवीय गतिविधियों के कारण जल प्रदूषण का स्तर लगातार बढ़ता जा रहा है। नदी, झील, तालाब से लेकर समुद्र तक सभी प्रदूषित होते जा रहे हैं जिससे शहर से लेकर गाँव तक सभी जल प्रदूषण की समस्या से ग्रस्त होते जा रहे हैं। जल प्रदूषण का प्रभाव मानव के साथ-साथ सभी जलीय जीव जंतुओं पर भी पड़ता है। बढ़ते जल प्रदूषण के प्रति चिंता व्यक्त करते हुए हिंदी गज़लकार लिखते हैं-

“गाँव के नालों नदी के तीर में बहता हुआ
 शहर वाले कारखानों का ज़हर जाने लगा।”¹² (चन्द्रसेन विराट)
 “शहर का सारा कीचड़ बह रहा है
 नदी में बूँद भर पानी नहीं है।”¹³, (वशिष्ठ अनूप)
 “पानी-पानी को तरसती सोच में डूबी नदी
 हो रही हर रोज दूषित जिंदगी खतरे में है।”¹⁴ (वशिष्ठ अनूप)
 “हर नदी लिए गंदगी सागर के चूमे पग,
 बदसूरती शायद बढ़ी इसी से व्हेल में।”¹⁵, (शरद मिश्र)

मृदा प्रदूषण- मिट्टी में ऐसे विषाक्त पदार्थों या तत्वों की मात्रा बढ़ जाना जिससे उसके जैविक गुणों में अवांछनीय परिवर्तन होता है, जिसका विपरीत प्रभाव मानव सहित समस्त जीव जगत के पोषण व मिट्टी की उत्पादकता पर पड़ता है, मृदा प्रदूषण कहलाता है। मृदा प्रदूषण आज गंभीर पर्यावरणीय चुनौती बन गई है। कृषि में कीटनाशकों एवं रासायनिक खादों के अत्यधिक प्रयोग, खनन गतिविधियों, कल कारखानों के गैस अपशिष्ट एवं प्लास्टिक कचरे आदि कारणों से मृदा प्रदूषित होती है। वनों की कटाई, बाढ़ एवं अन्य कारणों से मिट्टी की ऊपरी परत का बह जाना-मृदा अपरदन भी मृदा प्रदूषण का ही एक रूप है। मृदा प्रदूषण से मिट्टी बंजर एवं अनुपजाऊ हो जाती है। इसके साथ ही कैंसर एवं अन्य बीमारियों का खतरा उत्पन्न होता है। हिंदी गज़लकार मृदा प्रदूषण की समस्या पर कहते हैं-

इतरा के कह रहा है कि हम बम से कम नहीं
 टुकड़ा हवा में उड़ता हुआ पॉलिथीन का।”¹⁶, (श्याम कश्यप ‘बेचैन’)
 “जिएँ तो प्लास्टिक, मरें तो प्लास्टिक
 जमीं को कूड़े की खान करना।”¹⁷, (राम मेश्राम)

“कचरा, कबाड़, प्लास्टिक उपहार में मिले
सैलानियों के ‘द्विज’ हुए हैं मेजबाँ पहाड़।”¹⁸, (द्विजेन्द्र द्विज)
“भिट्टी बही चट्टानें खिसकती चली गयीं,
जाएगी निरर्थक सनम पहाड़ की तलाश।”¹⁹ (शरद मिश्र)

पर्यावरण प्रदूषण अपने तमाम रूपों (वायु, जल, मृदा) में सम्पूर्ण विश्व के लिए एक गंभीर चुनौती है। पर्यावरण प्रदूषण के अनेक दुष्प्रभाव सामने आने लगे हैं जिनमें से एक भयंकर दुष्प्रभाव वैश्विक तापन (ग्लोबल वार्मिंग) है। वनोन्मूलन, अत्यधिक औद्योगीकरण, जीवाश्म ईंधनों के अतिशय प्रयोग एवं अन्य कारणों से कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन, नाइट्रस ऑक्साइड आदि गैसों का सांद्रण वायुमंडल में निरंतर बढ़ता जा रहा है। ये गैसें वायुमंडल में एक परत बनाती हैं, जो सूर्य से आने वाली किरणों को धरती पर तो आने देती है, पर धरती से परावर्तित किरणों को वायुमंडल के बाहर जाने से रोकती है। जिससे संपूर्ण धरती का तापमान बढ़ रहा है, जिसे ग्लोबल वार्मिंग या वैश्विक तापन कहते हैं। एक मोटे अनुमान के अनुसार 21वीं सदी के अंत तक धरती का तापमान डेढ़ डिग्री से 5 डिग्री के बीच बढ़ जाएगा, जो पिछले दस हजार वर्षों में हुई वृद्धि से कहीं ज्यादा है। वैश्विक तापमान में होती यह बढ़ोतरी कई गंभीर समस्याओं की जनक है। हिंदी ग़ज़लकार मानव को ही इसके लिए जिम्मेदार मानते हुए इसके प्रति चिंता व्यक्त करते हैं-

“गरम होती सतह धरती की मरती सूखती नदियाँ
वनों ने ये ही लौटाया है अत्याचार के बदले।”²⁰, (कमलेश भट्ट ‘कमल’)
“धरती पे हमने आग लगा दी है हर तरफ
आकाश से बरसा जो शरर कैसा लगेगा।”²¹, (वशिष्ठ अनूप)
“सूरज का ये गोला हमें निगलने वाला है
हमने ही भट्टी में इसके कोयला डाला है।”²², (प्रताप सोमवंशी)

ग्लोबल वार्मिंग के कारण धरती पर पेयजल के सबसे बड़े स्रोत हिमश्लेशियों के पिघलने की दर लगातार बढ़ती जा रही है जिससे एक ओर आने वाले समय में पेयजल की समस्या उत्पन्न होगी, तो दूसरी ओर उनके पिघलने से समुद्री जल स्तर लगातार बढ़ता जा रहा है। एक मोटे अनुमान के अनुसार विगत एक सदी में समुद्र का जलस्तर 15 से 20 सेंटीमीटर बढ़ गया है तथा 21वीं सदी के अंत तक इसके 20 से 50 सेमी तक बढ़ जाने की संभावना है। इसके कारण जहाँ एक ओर मालदीव जैसे अनेक समुद्र तटीय देश व द्वीप जलमग्न हो जाएंगे और दुनिया की बहुत सी आबादी बेघर हो जाएगी वहीं दूसरी ओर समुद्र के खारे जल के ऊपर आ जाने से पेयजल की भयंकर समस्या हो जाएगी। पेयजल स्रोत ग्लेशियरों के पिघलने पर चिंता व्यक्त करते हुए हिंदी ग़ज़लकार लिखते हैं-

“पिघल रहा है हिमालय के बर्फ का संयम
प्रयत्न रोज ही सूरज का ताप करता है”²³, (जहीर कुरेशी)
“हिमनद सिकुड़ रहें हैं जो मौसम की मार से,
कल की कहाँ बुझा सकेंगे तिशनगी पहाड़।”²⁴, (प्रेम भारद्वाज)

पर्यावरण प्रदूषण का एक भयंकर दुष्प्रभाव वैश्विक तापन के कारण जलवायु परिवर्तन के रूप में सामने आया है। जलवायु परिवर्तन तापमान, वर्षण एवं ऋतुचक्र से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ है। इसके कारण गर्मी, सर्दी, अतिवृष्टि, अनावृष्टि और तूफान जैसी अतिरेकी मौसमी घटनाएँ सामने आने लगी हैं।

इसके कारण ही बाढ़, सूखा, सुनामी जैसी तूफानी आपदाओं में निरंतर बढ़ोतरी हो रही है। सर्दी में गर्मी, गर्मी में बरसात, सर्दी में अत्यधिक सर्दी, गर्मी में अत्यधिक गर्मी, रेगिस्तान में बाढ़, तो अधिक वर्षा वाले स्थानों में सूखा, एक ही दिन में कई सालों की बरसात जैसे अनेक मौसमी बदलाव जलवायु परिवर्तन से जुड़े हुए हैं। मौसम के ये बदलाव एवं मौसम की अतिवादी स्थितियाँ इसी जलवायु परिवर्तन की देन हैं, जो संपूर्ण विश्व के लिए एक गंभीर चुनौती हैं। इस जलवायु परिवर्तन के कारण ऋतुओं के अनुसार होने वाले परिवर्तन भी अब प्रकृति एवं पर्यावरण में दृष्टिगत नहीं होते हैं, बल्कि ऋतु के विपरीत मौसम भी देखने को मिल रहे हैं। हिंदी गज़लकार बढ़ते प्रदूषण से नाराज प्रकृति की नाराजगी एवं क्रोध को जलवायु परिवर्तन से जोड़कर इस समस्या को उजागर करते हुए लिखते हैं

मौसम में बदलाव- “हम सूखती नदियों का बदन देख रहे हैं।

फागुन में बहारों का रुदन देख रहे हैं।”²⁵, (आचार्य भगवत दुवे)

“एक सूरज बरस रहा है अब

कैसी बरसात का ये मौसम है।”²⁶, (विनय मिश्र)

अतिवृष्टि-अनावृष्टि- “रूठे तो सुखा दे भुई, टूटे तो डुबो दे

आषाढ़-ता-भादों की खुराफात झमाझमा।”²⁷, (राम मेश्राम)

तूफानी आपदा-(सुनामी)-“रोने के लिए भी न वहाँ कोई बचा था

सब ले गया सागर ही तो साथ अपने बहाकर।”²⁸, (विनय मिश्र)

पर्यावरण प्रदूषण के कारण जलवायु परिवर्तन से मौसम में आ रहे बदलावों का दुष्प्रभाव यह हो रहा है कि धरती के जल स्रोतों में जलराशि धीरे-धीरे घटती जा रही है, जल स्रोत सूखते जा रहे हैं, भूमिगत जल स्तर निरंतर कम होता जा रहा है, वनस्पतियाँ सूखती जा रही हैं, मिट्टी की उर्वरा शक्ति लगातार घट रही है, मिट्टी बंजर होती जा रही है तथा सरसब्ज इलाके रेगिस्तान में तब्दील होते जा रहे हैं। इससे संपूर्ण वैश्विक समुदाय के सामने निकट भविष्य में खाद्यान्न एवं पेयजल की गंभीर समस्या खड़ी होने वाली है। हिंदी गज़लकार लिखते हैं-

“छोड़ना ही पड़ा घर उसे हो विवश

आजकल रेत में रह रही है नदी।”²⁹, (चंद्रसेन विराट)

“हलक सूखे हैं नदी के हँस रहे अंधे कुएँ

रो रही हैं अंचलों से ढाँप के मुँह क्यारियाँ।”³⁰, (राजशेखर)

“रेत कर रही है कब्जा

पानीदार ठिकानों पर।”³¹, (आचार्य सारथी रूमी)

पर्यावरण प्रदूषण का एक दुष्प्रभाव वायुमंडल की ओजोन परत का धीरे-धीरे क्षरण होना है। वनों की कटाई, अत्यधिक औद्योगीकरण एवं विलासितापूर्ण जीवनशैली के कारण क्लोरोफ्लोरोकार्बन, कार्बनडाइऑक्साइड, मीथेन आदि गैसों की मात्रा बढ़ जाने से वायुमंडल की ओजोन परत का धीरे-धीरे क्षय होता जा रहा है। यह ओजोन परत सूर्य से आने वाली हानिकारक पराबैंगनी विकरणों से धरती की रक्षा करती है। इसमें छिद्र हो जाने से पराबैंगनी किरणें धरती तक पहुँच रही हैं, जिससे प्रतिरक्षा क्षमता में कमी, त्वचा कैंसर एवं अनेक बीमारियाँ जन्म ले रही हैं। ओजोन परत के छिद्र को मानव व अन्य जीवों के लिए अभिशापी छिद्र बताते हुए हिंदी गज़लकार लिखते हैं-

“शब्द थे कुछ इस तरह ओजोन के उस छिद्र के,
भूल मत जाना मुझे मानव तेरा अभिशाप हूँ।”³² (शरद मिश्र)

पर्यावरण प्रदूषण का एक दुष्प्रभाव अम्लीय वर्षा भी है। जीवाश्मी ईंधन के दहन, विनिर्माण प्रक्रियाओं एवं अन्य मानवीय व प्राकृतिक गतिविधियों से उत्सर्जित सल्फर डाइ ऑक्साइड एवं नाइट्रोजन डाइ ऑक्साइड वर्षा जल के साथ मिलकर जब सल्फ्यूरिक एसिड एवं नाइट्रिक एसिड के रूप में वरसात की बूंदों के साथ धरती पर गिरती हैं, तो इसे अम्लीय वर्षा कहा जाता है। अम्लीय वर्षा जन्तु एवं वनस्पति जगत दोनों के लिए ही क्षतिकारक है। यह धरती के उपजाऊपन को कम कर उसे बंजर बनाती है, जिससे पौधों का विकास अवरुद्ध होता है। अम्लीय वर्षा जल के जलस्रोतों में बहाव से जलीय पारिस्थितिकी तंत्र को भारी नुकसान होता है। पानी पीने योग्य नहीं रह जाता है। इसके साथ ही स्मारकों एवं इमारतों को भी क्षति होती है। पर्यावरण प्रदूषण के कारण अमृतमयी दूधिया बारिश के स्थान पर तेजाबी बारिश होने की समस्या की चिंता हिंदी गज़ल में व्यक्त हुई है-

“बारिशें होती हैं अब तेजाब की
दूधिया बूंदों का सावन अब कहाँ।”³³, (माधव कौशिक)
“क्या हुआ कि चाँदनी में जिस्म अब जलने लगे हैं
यह अजब बारिश हमें तेजाब से नहला रही है।”³⁴, (वशिष्ठ अनूप)

पर्यावरण प्रदूषण के विभिन्न प्राकृतिक आपदाओं के रूप में नित प्रति सामने आते विनाशकारी दुष्प्रभावों के बावजूद वैश्विक मानव समुदाय पर्यावरण या प्रकृति की क्षति से पूरी तरह बेखबर हो उसके अंधाधुंध दोहन में लगा हुआ है। मानव के इन पर्यावरण विरोधी कृत्यों को देखकर लगता है कि मानव पेड़ों पर कुल्हाड़ी चलाकर पेड़ों को नहीं, अपने खुद के पैरों को काट रहा है, अपनी साँसों की डोर को काट रहा है, पहाड़ों को खोद कर अपनी कब्र खुद खोद रहा है। मानव के द्वारा जंगलों को काटना एक तरह से सामूहिक आत्मदाह का प्रयास है। मानो वह खुद आत्महत्या करना चाहता है। ऐसी स्थिति में उसे विनाश से बचाने वाला कोई नहीं है। हिंदी गज़लकार वैश्विक मानव समुदाय के पर्यावरण विरोधी कदमों को सामूहिक आत्महत्या का प्रयास मानकर उसे सावधान करते हुए लिखते हैं-

“वृक्ष काटे जला दिए जंगल
आदमी खुद विनाशकारी है।”³⁵, (आचार्य भगवत दुबे)
“तुम कुल्हाड़ी हाथ में लेकर खड़े तो हो मगर
याद रखना जंगलों के हर शजर में आग है।”³⁶, (महेश अग्रवाल)
“दूसरों को क्या पड़ी है फिक्र कोई क्यों करे
हम सभी तैयार हैं जब खुदकुशी के वास्ते।”³⁷, (कमलेश भट्ट ‘कमल’)

वर्तमान में भौतिकता की दौड़ में अंधा मनुष्य प्रकृति के अंगों- जंगल, जमीन, पहाड़, नदियों आदि को क्षत-विक्षत कर उसे घायल कर रहा है तथा उसकी तरफ से इस तरह संवेदनहीन बना हुआ है, मानो उसे प्रकृति से कोई लेना-देना नहीं है। लगता है वह किसी दूसरे ग्रह पर रहने जा रहा है। हिंदी गज़लकार प्रकृति के प्रति क्रूर बने हुए वैश्विक मानव समुदाय को बताना चाहते हैं कि भौतिक उन्नति के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण या प्रकृति के साथ सहजीविता आवश्यक है। पर्यावरण की कीमत पर भौतिक उन्नति ठीक नहीं है क्योंकि मानव चाहे कितनी भी भौतिक उन्नति कर ले, प्राकृतिक तत्वों के अभाव में

उसका जीवन संभव नहीं है। जीवन के लिए शुद्ध ताजा हवा एवं शुद्ध पेयजल नितांत आवश्यक है और मानव किसी फैक्ट्री में इनका उत्पादन नहीं कर सकता है। इसलिए धरती के ये अवयव और पर्यावरण जब तक सुरक्षित हैं, तभी तक उसका जीवन और भविष्य सुरक्षित है, तभी तक समस्त जीव जगत सुरक्षित है और तभी तक ब्रह्मांड सुरक्षित है। हिंदी ग़ज़लकार वैश्विक मानव समुदाय के सुरक्षित भविष्य के लिए उसे पर्यावरण संरक्षण के प्रति सावधान करते हैं-

“नक्षत्रों पर जाएगी

छोड़ घरा की लाश सदी।”³⁸, (चन्द्रसेन विराट)

“तरक्की ठीक है इसका ये मतलब तो नहीं, लेकिन

धुआँ हो, चिमनियाँ हों, फूल कम हो, तितलियाँ कम हो।”³⁹, (कमलेश भट्ट ‘कमल’)

“जिन्दगी के वास्ते कुछ भी करो, लेकिन

जिन्दगी चलती नहीं है, विन हवा-पानी।”⁴⁰, (विनय मिश्र)

“हरेक ग्रह नक्षत्र कहकशाँ सुरक्षित है

जमी बचेगी तभी आसमाँ सुरक्षित है।

ये फूल, बच्चियाँ, नदियाँ, पहाड़, ये सागर

ये सब बचेंगे तो सारा जहाँ सुरक्षित है।”⁴¹, (वशिष्ठ अनूप)

यदि मानव द्वारा प्रकृति का इसी प्रकार क्षरण किया जाता रहा तो वह दिन दूर नहीं जब मनुष्य को जीने के लिए शुद्ध हवा एवं पीने के लिए शुद्ध पेयजल उपलब्ध नहीं होगा। ऐसी स्थिति में वैश्विक मानव समुदाय तमाम भौतिक उन्नति व साधनों के बावजूद हवा, पानी जैसे जरूरी प्राकृतिक तत्वों के अभाव में जिंदा नहीं रह पायेगा। हिंदी ग़ज़लकार वशिष्ठ अनूप उस स्थिति में मानव की जीने की छटपटाहट भरी बेचैन दशा की भविष्यवाणी करते हुए लिखते हैं-

“नदी के पानी के बदले अगर हम विष पिलायेंगे।

तो एकेक बूँद पानी के लिए हम तरस जायेंगे।

पहाड़ों के दिलों के घाव गर बढ़ते रहे यूँ ही

तो एक दिन कुछ होकर वे भी हम पर कहर ढायेंगे।

वनस्पतियाँ हमारी धरती माता की सहेली हैं

इन्हें मारा अगर तो माँ के हत्यारे कहायेंगे।

हवाओं में जहर घुलता रहा अगर दिन ब दिन यूँ ही

तो एक दिन साँस लेने के लिए हम छटपटायेंगे।”⁴², (वशिष्ठ अनूप)

विज्ञान एवं तकनीक के इस दौर में तकनीक के सहारे प्रकृति पर विजय भाव से पूरित अहंकारी एवं प्रकृति के प्रति हृदयहीन वैश्विक मानव समुदाय घायल क्षत-विक्षत प्रकृति की करुण पुकार व विलाप नहीं सुन रहा है, लेकिन जब यही प्रकृति कुछ हो अपने ऊपर किए गए अत्याचारों का बदला लेते हुए संतुलन स्थापित करेगी, तो मानव का विश्व विजय का सारा मद चूर-चूर हो जाएगा। तब प्रकृति की रूलाई के आंसुओं के कयामती सैलाब में न तो मानव व जीव जगत बचेगा, न ही यह धरती। हिंदी ग़ज़लकार वैश्विक मानव समुदाय को प्रकृति के प्रलयकारी रूप से परिचित कराते हुए उसे अपनी जाति के अस्तित्व के लिए पर्यावरण संरक्षण की हिदायत देते हुए लिखते हैं-

“जब कभी बनाएगी धरती अपना संतुलन,
हम भी नहीं बच पायेंगे हो आपको ज्ञातव्य।”⁴³, (शरद मिश्र)
“विश्वविजय का सारा मद उतरा उनका
विपदाएँ जब पहुँची दम्भी देशों तक।”⁴⁴, (विनय मिश्र)
“गर्क कर देगा अशक का सैलाब
तह में मत जा मेरी रुलाई की।”⁴⁵, (श्याम कश्यप बेचैन)

पर्यावरण या प्रकृति जब तक स्वस्थ एवं सुरक्षित है, तभी तक धरती पर जीवन संभव है क्योंकि जीवन के लिए जरूरी तत्व प्रकृति से ही प्राप्त होते हैं। हमारी पुरातन संस्कृति में इसीलिए प्रकृति के पूजन की परंपरा रही है। हिंदी ग़ज़लकार प्रकृति या पर्यावरण में पेड़ों के महत्व को वर्णित करते हुए प्रकृति के संरक्षण की चेतना जागृत करते हैं। वनोन्मूलन या पेड़ों की कटाई वर्तमान की पर्यावरणीय समस्याओं का एक बहुत बड़ा कारण है। पेड़ों का संरक्षण इन पर्यावरणीय समस्याओं का एकमात्र समाधान है। पेड़ों से ही मानव एवं अन्य जीवों के जीवन के लिए आवश्यक आधारभूत चीजें हवा, पानी एवं भोजन प्राप्त होते हैं। हिंदी ग़ज़लकार हर तरह से सक्षम मानव को अपने भविष्य को बचाये रखने के लिए अपनी क्षमता का प्रकृति के संरक्षणार्थ सदुपयोग करने की नसीहत देते हुए लिखते हैं-

“ये सूरज ये चंदा ये पर्वत ये नदियाँ
ये जंगल सभी की खुशी के लिए है।
बचाकर बचोगे मिटाकर मिटोगे
ये संदेश अपनी सदी के लिए है।”⁴⁶, (वशिष्ठ अनूप)
“हमारे जंगलों की बादलों के साथ यारी है
यह साँसे भी हमें दोगे हमेशा हमको जल दोगे।”⁴⁷, (वशिष्ठ अनूप)
“हित के लिए प्रकृति के रहो आज से प्रतिश्रुत,
इतना तो नहीं है कि तुम क्षमता विहीन हो।”⁴⁸, (शरद मिश्र)

समकालीन हिंदी ग़ज़लकार प्रलयकारी पर्यावरणीय संकट से बचाव एवं मानव जीवन के अस्तित्व के लिए पर्यावरण संरक्षण की जोरदार वकालत करते हैं। इस हेतु वे वैश्विक मानव समाज को पेड़ों से प्रेम करने तथा पेड़ लगाकर धरती का श्रृंगार करने के लिए प्रेरित ही नहीं करते, अपितु वे इसके लिए प्रतिबद्ध भी हैं। उनकी एकमात्र कामना जीव-जगत के हितार्थ पर्यावरण संरक्षण की है। इसलिए यदि उन्हें अवसर मिले तो वे देवताओं से हरे- भरे जंगलों से युक्त जीवनपोषी स्वस्थ एवं सुन्दर पर्यावरण का ही एकमात्र वरदान मांगना चाहते हैं-

“जीवन को बढ़ाना है तो ऐसा हो तरु से प्रेम,
जैसा था घनानन्द को अपनी सुजान पर।”⁴⁹, (शरद मिश्र)
“पेड़ पौधे ये धरती के सिंगार हैं
जितना संभव हो इनको सजाया करो।”⁵⁰, (वशिष्ठ अनूप)
“उतरा हूँ एक ऐसी नदी के बचाव में
बहते हुए जिसे यहाँ देखा नहीं कभी।”⁵¹, (विनय मिश्र)
“दिनों-दिन जहर फैलता जा रहा है,

हवा फूल, खुशबू बचाने की जिद है।⁶², (वशिष्ठ अनूप)

“पूछे जो हमसे देवदूत माँगेंगे यही वर,

वन हों घने-घने उनमें बने हों कई स्तूप।”⁶³, (शरद मिश्र)

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि समकालीन वैश्विक चुनौतियों में सबसे बड़ी चुनौती पर्यावरणीय संकट की है। तमाम भौतिक, वैज्ञानिक एवं चिकित्सीय उन्नति के बावजूद पर्यावरण संकट से उपजी कोरोना महामारी जैसी आपदाओं के सामने आज का संपूर्ण मानव समाज बेबस एवं बीना ही नजर आता है। यदि समय रहते पर्यावरण संरक्षण के उपाय नहीं किए गए, तो वह दिन दूर नहीं जब मानव जाति का अस्तित्व ही मिट जाएगा। हिंदी गज़लकार इस वैश्विक चुनौती के प्रति पूर्ण सजग एवं सतर्क हैं। वे अपने गज़ल साहित्य के माध्यम से पर्यावरण प्रदूषण के विविध भेदों, उनके कारणों एवं दुष्प्रभावों को ही उजागर नहीं करते, अपितु मानव जाति के अस्तित्व एवं समस्त सृष्टि के कल्याण के लिए पर्यावरण संरक्षण की चेतना जाग्रत करते हैं और इसके प्रति अपनी प्रतिबद्धता प्रकट करते हैं। कहा जा सकता है कि हिंदी गज़ल में पर्यावरण प्रदूषण के प्रति चिंता की अभिव्यक्ति के साथ मानव व जीव जगत के अस्तित्व के लिए पर्यावरण संरक्षण की पुरजोर पैरवी हुई है।

संदर्भ ग्रंथ -

1. तुलसीदास, रामचरितमानस, किष्किंधाकांड (टीकाकार- हनुमानप्रसाद पोद्दार, मोटा टाइप) गीताप्रेस, गोरखपुर, पृ. 693
2. डी.एम.मिश्र, वो पता ढूँढ़ें हमारा, शिल्पायन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, 2019, पृ. 30
3. वही, पृष्ठ 30
4. राम मेश्राम, आग में उड़ान, अंतिका प्रकाशन प्रा. लि. गाजियाबाद, 2024, पृ. 84
5. वशिष्ठ अनूप, घरों पर गिद्ध मंडराने लगे हैं, साहित्य भंडार, प्रयागराज, द्वितीय संस्करण 2022, पृष्ठ 53
6. विनय मिश्र, तेरा होना तलाशूँ, लिटिल बर्ड पब्लिकेशंस, दिल्ली, चतुर्थ संस्करण 2020, पृ. 101
7. विनय मिश्र, जिंदगी आने को है, लिटिल बर्ड पब्लिकेशंस, दिल्ली 2023, पृ. 22
8. वेद मित्र शुक्ल, जारी अपना सफर रहा, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, 2019, पृ. 56
9. हरeram नेमा 'समीप', समकालीन हिंदी गज़लकार : एक अध्ययन, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2017, पृ. 83
10. सं. प्रणय, शरद सर्जना: गज़ल खण्ड-तीन, पंकज बुक्स, दिल्ली, 2020, पृ. 104
11. हरeram नेमा 'समीप', समकालीन हिंदी गज़लकार: एक अध्ययन खंड-3, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2018, पृ. 191
12. वही, पृ. 83
13. सं. जहीर कुरेशी एवं मीनाक्षी दुबे, सादगी का सौंदर्य : वशिष्ठ अनूप का सृजन, साहित्य भंडार, प्रयागराज, 2023, पृ. 82
14. वशिष्ठ अनूप, रोशनी खतरे में है, उद्भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2006, पृ. 26
15. सं. प्रणय, शरद सर्जना: गज़ल खण्ड-तीन, पंकज बुक्स, दिल्ली, 2020, पृ. 112
16. हरeram नेमा 'समीप', समकालीन हिंदी गज़लकार : एक अध्ययन खंड-3, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2018, पृ. 145
17. राम मेश्राम, आग में उड़ान, अंतिका प्रकाशन प्रा.लि., गाजियाबाद, 2024, पृ. 58
18. हरeram समीप, हिंदी गज़ल की पहचान, एनीबुक, 2023, पृ. 254
19. सं. प्रणय, शरद सर्जना: गज़ल खण्ड-तीन, पंकज बुक्स, दिल्ली, 2020, पृ. 138
20. हरeram नेमा 'समीप', समकालीन हिंदी गज़लकार : एक अध्ययन, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2017, पृ. 442
21. वशिष्ठ अनूप, छंद तेरी हँसी का, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2023, पृ. 89
22. हरeram समीप, हिंदी गज़ल की पहचान, एनीबुक, 2023, पृ. 391
23. जहीर कुरेशी, रास्तों से रास्ते निकले, अयन प्रकाशन, दिल्ली, 2017, पृ. 93
24. प्रेम भारद्वाज, अपनी जमीन से, ब्रज प्रकाशन, हिमाचल प्रदेश, 2005, पृ. 15
25. हरeram नेमा 'समीप', समकालीन हिंदी गज़लकार: एक अध्ययन खंड-3, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2018, पृ. 101
26. विनय मिश्र, जिंदगी आने को है, लिटिल बर्ड पब्लिकेशंस, दिल्ली 2023, पृ. 106
27. राम मेश्राम, आग में उड़ान, अंतिका प्रकाशन प्रा. लि. गाजियाबाद, 2024, पृ. 54

28. विनय मिश्र, सच और है, लिटिल बर्ड पब्लिकेशंस, 2020, पृ. 38
29. हरeram नेमा 'समीप', समकालीन हिंदी गज़लकार : एक अध्ययन, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2017, पृ. 82
30. हरeram नेमा 'समीप', समकालीन हिंदी गज़लकार : एक अध्ययन, खंड-3, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2018, पृ. 45
31. वही, पृष्ठ 377
32. सं. प्रणय, शरद सर्जना: गज़ल खण्ड-तीन, पंकज बुक्स, दिल्ली, 2020, पृ. 131
33. हरeram 'समीप', हिंदी गज़ल की पहचान, एनीबुक, 2023, पृ. 167
34. वशिष्ठ अनूप, छंद तेरी हँसी का, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2023, पृ. 153
35. हरeram नेमा 'समीप', समकालीन हिंदी गज़लकार : एक अध्ययन खंड-3, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2018, पृ. 101
36. हरeram नेमा 'समीप', समकालीन हिंदी गज़लकार एक अध्ययन, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2017, पृ. 235
37. हरeram समीप, हिंदी गज़ल की पहचान, एनीबुक, 2023, पृ. 317
38. हरeram नेमा 'समीप', समकालीन हिंदी गज़लकार : एक अध्ययन, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2017, पृ. 83
39. हरeram समीप, हिंदी गज़ल की पहचान, एनीबुक, 2023, पृ. 316
40. विनय मिश्र, लोग जिंदा है, लिटिल बर्ड पब्लिकेशंस, दिल्ली, 2021, पृ. 32
41. सं. जहीर कुरेशी एवं मीनाक्षी दुबे, सादगी का सौंदर्य : वशिष्ठ अनूप का सृजन, साहित्य भंडार, प्रयागराज, 2023, पृ. 76
42. वशिष्ठ अनूप, रोशनी खतरे में है, उद्भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2006, पृ. 27
43. सं. प्रणय, शरद सर्जना: गज़ल खण्ड-तीन, पंकज बुक्स, दिल्ली, 2020, पृ. 122
44. विनय मिश्र, जिंदगी आने को है, लिटिल बर्ड पब्लिकेशंस, दिल्ली 2023, पृ. 46
45. हरeram नेमा 'समीप', समकालीन हिंदी गज़लकार : एक अध्ययन खंड-3, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2018, पृ. 145
46. वशिष्ठ अनूप, छंद तेरी हँसी का, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2023, पृ. 118
47. हरeram समीप, हिंदी गज़ल की पहचान, एनीबुक, 2023, पृ. 329
48. सं. प्रणय, शरद सर्जना: गज़ल खण्ड-तीन, पंकज बुक्स, दिल्ली, 2020, पृ. 115
49. वही, पृष्ठ 110
50. वशिष्ठ अनूप, छंद तेरी हँसी का, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2023, पृ. 109
51. विनय मिश्र, जिंदगी आने को है, लिटिल बर्ड पब्लिकेशंस, दिल्ली 2023, पृ. 03
52. सं. जहीर कुरेशी एवं मीनाक्षी दुबे, सादगी का सौंदर्य : वशिष्ठ अनूप का सृजन, साहित्य भंडार, प्रयागराज, 2023, पृ. 19
53. सं. प्रणय, शरद सर्जना: गज़ल खण्ड-तीन, पंकज बुक्स, दिल्ली, 2020, पृ. 122

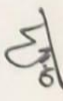
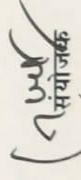
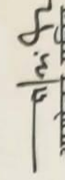
(1) शोधार्थी, हिंदी विभाग,
राजकीय कला कन्या महाविद्यालय, कोटा,
कोटा विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान), एवं
सहायक आचार्य, राजकीय महाविद्यालय, टोंक (राजस्थान)
मो. 9667362167, Email- th.mahaveersingh@gmail.com

(2) शोध पर्यवेक्षक
डॉ. कविता मीणा, सह आचार्य, हिंदी
राजकीय कला कन्या महाविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

मीरा को समझने के लिए किसी यूनिवर्सिटी की डिग्री की जरूरत नहीं है, क्योंकि मीरा के पास कोई डिग्री नहीं थी। उसे समझने के लिए बस मीरा-भाव और मीरा जैसी भावदशा चाहिये।

- आचार्य रजनीश

प्रमाण-पत्र

	 काशी हिन्दू विश्वविद्यालय BANARAS HINDU UNIVERSITY	 साहित्य अकादेमी
हिंदी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी एवं साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित		
अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी		
29, 30 एवं 31 अगस्त, 2025		
गज़ल, हिंदी गज़ल : समाज, दर्शन, इतिहास और संगीत		
प्रमाण पत्र		
प्रमाणित किया जाता है कि श्री/सुश्री/श्रीमती/डॉ./ प्रो. मद्रावीर सिंह, शौचार्थी राजकीय कला कन्या ने हिंदी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा आयोजित त्रिदिवसीय अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी में सहभागिता की तथा समकालीन हिंदी गज़ल में दार्शनिक आग्रह विषयक वक्तव्य/शोध-पत्र प्रस्तुत किया। हिंदी विभाग आपके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता है।		
 संरक्षक प्रो० यशरज द्विवेदी	 सह-संयोजक डॉ० अशोक कुमार ज्योति	 आयोजन सचिव डॉ० हरीश कुमार



गोविन्द गुरु जनजातीय विश्वविद्यालय

बाँसवाड़ा (राजस्थान)

हिंदी विभाग

राष्ट्रीय संगोष्ठी

समकालीन साहित्य और समाज : परिदृश्य, चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ

21 अप्रैल, 2025

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि साद्वीर सिंह (शोधार्थी)
संस्था/महाविद्यालय राजकीय कला कन्या महाविद्यालय कोटा बि. बि. कोटने गोविन्द गुरु जनजातीय विश्वविद्यालय,
बाँसवाड़ा के तत्वावधान में आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी में '21वीं सदी की हिंदी गजल में समकालीन समाज
के आर्थिक संस्कार'
के आर्थिक संस्कार'

विषय पर व्याख्यान दिया/शोध पत्र प्रस्तुत किया/सहभागिता की।

प्रो. के. एस. ठाकुर

कुलपति

क्र.स./रा.स./गो.ज.वि./हिंदी/2025/

21/04/25

डॉ. राकेश डामोर

आयोजन सचिव

दिनांक : 21 अप्रैल, 2025



आदिवासी अध्ययन केन्द्र

एवं

हिन्दी विभाग

जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.)

द्वारा आयोजित

अन्तरराष्ट्रीय अंगोष्ठी

आदिवासी साहित्य, समान और संस्कृति

दिनांक 18-20 दिसम्बर, 2025

प्रमाण-पत्र



प्रमाणित किया जाता है कि प्रो./डॉ./श्री/सुश्री/श्रीमती _____ महानिर सिंह _____ ने
पद _____ शोद्धान्तिक/सहायक आचार्य संस्था राजकीय महाविद्यालय, टोंक _____
अन्तरराष्ट्रीय अंगोष्ठी में मुख्य अतिथि / सत्राध्यक्ष / विषय-विशेषज्ञ / पत्र-वाचक / सक्रिय प्रतिभागी के रूप में राखी स्वी की
हिन्दी राजल में आदिवासी स्वर _____ विषय पर व्याख्यान दिया / शोध-पत्र प्रस्तुत किया / सहभागिता की।

प्रो. किशोरीलाल सैंगर
आयोजन अध्यक्ष
अन्तरराष्ट्रीय अंगोष्ठी
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग

डॉ. प्रवीण चन्द
आयोजन सह-सचिव
अन्तरराष्ट्रीय अंगोष्ठी
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग

डॉ. कुलदीप सिंह मीना
आयोजन सचिव, अन्तरराष्ट्रीय अंगोष्ठी
निदेशक, आदिवासी अध्ययन केन्द्र
सह आचार्य, हिन्दी विभाग

जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर



International Conference

on
Socio-Economic Concerns of Literature, Culture and Education in the Global Scenario
वैश्विक परिदृश्य में साहित्य, संस्कृति और शिक्षा के सामाजिक-आर्थिक सरोकार

Organised by
Ch. Balluram Godara Government Girls College, Sri Ganganagar
(Accredited B++ by NAAC)
in association with
POORVAKATHAN

Certificate of Participation

This is to certify that

Dr./Mr./Mrs./Ms. **Mahaveer Singh** Research Scholar

of Govt. Arts Girls College, Kota has participated in the *One-Day International Conference on Socio-Economic Concerns of Literature, Culture and Education in the Global Scenario* jointly organised by Ch. Balluram Godara Government Girls College, Sri Ganganagar and POORVAKATHAN on 18 January 2024. He/She presented a paper titled *इक्कीसवीं सदी की हिंदी गूजल में कृषक समाज*

SUBHASH SINGATHIA
Co-Ordinator

PROF. SHYAM LAL
Co-Ordinator

PROF. KIRANDEEP
Convener

PROF. BABITA KAJAL
Convener

PROF. POONAM SETIA
Principal

साक्षात्कार

साक्षात्कार मशहूर हिंदी ग़ज़लकार डी.एम.मिश्र

साक्षात्कार

1. ग़ज़ल की कौन-सी खूबियों ने आप को ग़ज़ल लेखन की ओर आकर्षित किया है?

डी.एम.मिश्र-

आज के दौर में मंचीय कविता अक्सर फूहड़ अभिरुचियों की शरणस्थली बनती जा रही है, तो वहीं पत्र-पत्रिकाओं की कविताएँ रागात्मक संवेदना से विहीन होकर कोरे वैचारिक विमर्श में सिमट गई हैं। ऐसे में ग़ज़ल ने मुझे अपनी उस अनुपम शक्ति से आकर्षित किया जो वैचारिक गंभीरता और रागात्मक संवेदना का दुर्लभ संतुलन रखती है—जो प्रतिरोध की धार लिए होती है, संप्रेषण की सरलता लिए होती है और संवाद की गहराई लिए होती है। इस बाज़ारवादी, जड़ता-ग्रस्त समय में समाज को झकझोरने, उसकी नसों में हलचल पैदा करने की सबसे सशक्त विधा आज ग़ज़ल ही है। इसी अनिवार्यता ने मुझे ग़ज़ल की ओर पूर्णतः केन्द्रित कर दिया।

इसी बीच मंचों पर मेरी मुलाकातें अदम गोंडवी जी से होने लगीं। कई मंच हमने साथ साझा किए। उनकी जनवादी ग़ज़लों की तीक्ष्णता मेरे भीतर उतरने लगी। दुष्यंत कुमार की अमर कृति 'साये में धूप' तो पहले से ही मेरे हृदय पर छाई हुई थी।

इस प्रकार प्रारंभ हुआ मेरे ग़ज़ल-सफ़र का कारवाँ—जो आज भी चल रहा है, और चलता रहेगा।

ग़ज़ल मेरी ताक़त, ग़ज़ल ही जुनूँ है

जो गूंगे थे उनकी जुबां बन गया मैं।

2. आपके अब तक कितने ग़ज़ल संग्रह प्रकाशित हुए हैं ? नामोल्लेख कीजिए।

डी.एम.मिश्र- अब तक मेरी ग़ज़लों की सात किताबें भी प्रकाशित हो चुकी हैं, जो इस प्रकार हैं-

1. उजाले का सफ़र, शैवाल प्रकाशन , गोरखपुर प्रकाशन. वर्ष 2006
2. रोशनी का कारवाँ, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2012
3. आईना-दर-आईना, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2016

4. वो पता ढूँढें हमारा, शिल्पायन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, वर्ष 2019

5. लेकिन सवाल टेढ़ा है, शिल्पायन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, वर्ष 2020

6. समकाल की आवाज़ , न्यू वर्ल्ड पब्लिकेशन, दिल्ली 2022

7. सच कहना यूँ अंगारों पर चलना होता है, श्वेतवर्णा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2025

मेरी ग़ज़लों पर अन्य विद्वानों द्वारा संपादित पुस्तकें

1-डी.एम.मिश्र: ग़ज़ल संचयन, संपादक डॉ जीवन सिंह

2. ग़ज़लकार डी.एम.मिश्र: सृजन के समकालीन सरोकार

(आलोचना पुस्तक), संपादक - विभूति नारायण ओझा,

3.आप हिंदी ग़ज़ल को किस प्रकार परिभाषित करना चाहेंगे ?

डी.एम.मिश्र-

किसी दूसरी भाषा की रचना/ग़ज़ल देवनागरी लिपि में लिख देने मात्र से वह हिंदी भाषा की ग़ज़ल कदापि नहीं हो जाती । हर भाषा का अपना संस्कार और व्याकरण होता है। हिंदी का भी अपना इतिहास और व्याकरण है। यदि कोई यह समझता है कि उर्दू ग़ज़ल को देवनागरी में लिख देने से वह हिंदी ग़ज़ल हो जायेगी तो मेरी दृष्टि में सरासर ग़लत है। यह 'लिप्यंतर' मात्र है।

4. हिंदी ग़ज़ल, उर्दू ग़ज़ल से किस प्रकार भिन्न है, समझाइए।

डी.एम.मिश्र-

उर्दू और हिंदी ग़ज़ल में संवेदना और शिल्प के स्तर पर तो कोई खास अंतर मुझे नहीं दिखता। मानवीय अनुभूतियाँ समान होती हैं। जिन समस्याओं को लेकर एक कवि चिंतित होता है, उन्हीं समस्याओं से बावस्ता एक शायर भी होता है। शिल्प में भी कोई खास अंतर नहीं होता क्योंकि लयात्मकता और गेयता दोनों जगह विद्यमान हैं । बहर कहेँ या छंद दोनों में ज़्यादा अंतर नहीं। हां, उर्दू ग़ज़ल अधिक रोमांटिक-सूफ़ियाना और फ़ारसी प्रभाव वाली है, जबकि हिंदी ग़ज़ल सरल, सामाजिक और जनोन्मुखी। मुख्य अंतर भाषा, शब्दावली, विषयवस्तु और लहजे में हैं।

5. आपके अनुसार हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा कहाँ से शुरू होती है ?

डी.एम.मिश्र-

हालाँकि ग़ज़ल भारत में सदियों से मौजूद थी, लेकिन हिंदी ग़ज़ल के रूप में उसकी असली यात्रा दुष्यंत कुमार से शुरू होती है, क्योंकि तब जाकर यह हिंदी की अपनी संवेदना और भाषा की विधा बनी। इससे पहले यह मुख्यतः उर्दू की छाया में थी, अमीर खुसरो जिसके जनक माने जाते थे।

6. 'देखिए अब जिंदगी की तर्जुमानी है ग़ज़ल।' अदम जी के इस मिसरे के आधार पर समकालीन हिंदी ग़ज़ल की प्रकृति के बारे में आप क्या कहना चाहेंगे?

डी.एम.मिश्र-

इस मिसरे से स्पष्ट है कि समकालीन हिंदी ग़ज़ल पारंपरिक इश्क-माशूक की रोमानी दुनिया से आगे बढ़कर वास्तविक जीवन की दुभाषिया बन गई है। दुष्यंत कुमार के बाद अदम जैसे रचनाकारों ने इसे सामाजिक यथार्थ, गरीबी, शोषण, ग्रामीण पीड़ा और राजनीतिक व्यंग्य का माध्यम बनाया। अब ग़ज़ल केवल भावुकता नहीं, बल्कि जन-सरोकारों की सशक्त अभिव्यक्ति है—सरल, मारक और ज़मीन से जुड़ी।

7. हिंदी ग़ज़ल में समकालीन जीवन के कौन-कौन से आयामों की यथार्थवादी अभिव्यक्ति हो रही है?

डी.एम.मिश्र-

समकालीन हिंदी ग़ज़ल में समकालीन जीवन के प्रमुख यथार्थवादी आयाम जैसे राजनीतिक पाखंड, भ्रष्टाचार, व्यवस्था की विसंगतियाँ, सामाजिक असमानता, आमजन की पीड़ा, गरीबी, शोषण, दमन, स्त्री-पीड़ा, पर्यावरण और प्रकृति, बुजुर्गों की स्थिति, बाजारवाद, भूमंडलीकरण, उत्तर-आधुनिकता: शहर-गाँव का अंतर, बदलते मूल्य, मीडिया और पत्रकारिता की विकृतियाँ, पूँजीवाद का प्रभाव जैसे अनेक आयाम ग़ज़ल को प्रेम से आगे सामाजिक आईना बना रहे हैं।

8. आपकी ग़ज़लों में भारतीय संस्कृति की अभिव्यक्ति किस रूप में हुई है? क्या संस्कृति का बदलता स्वरूप भी आपकी ग़ज़लों में व्यक्त हुआ है? यदि हाँ तो किस तरह? बताइए।

डी.एम.मिश्र- भारतीय संस्कृति प्रेम, परस्परता और आपसी सम्बन्धों पर आधारित है। लेकिन आजकल पहले जैसे हालात नहीं हैं। हर क्षेत्र विघटन और

विवाद से भर गया है। स्त्री का सम्मान, बुजुर्गों का सम्मान, माता पिता का आदर करना लगता है, लोग भूल गए हैं। इस पर मैंने बहुत लिखा है। उदाहरण के लिए यह शेर देखें-

इन बुजुर्गों की ज़रूरत अब कहीं पड़ती नहीं

अब दिए से काम भर की रोशनी मिलती नहीं।

9. आपकी गज़लों में समकालीन आर्थिक परिवेश के कौन-कौन से पहलू शामिल हुए हैं?

डी.एम.मिश्र- समकालीन गज़लों में आर्थिक परिवेश के विभिन्न रूप दिखाई देते हैं। मेरी गज़लों में भूमंडलीकरण और बाज़ारवाद जैसे मुद्दे गंभीरता से उठाए गए हैं। एक शेर देखें -

क्या -क्या नहीं बाज़ार में इस बार बिक गया

सस्ते में मेरी क़ौम का सरदार बिक गया।

10. हिंदी गज़ल में प्रगतिवादी चेतना किस तरह अभिव्यक्त हुई है?बताइए।

डी.एम.मिश्र- हिंदी गज़ल में प्रगतिवादी चेतना साहित्य को समाज परिवर्तन का हथियार बनाने वाली जाग्रत और प्रतिबद्ध चेतना के रूप में अभिव्यक्त हुई, जो "कला के लिए कला" के बजाय "जनता के लिए कला" पर बल देती है।

11. हिंदी गज़ल की यथार्थवादी प्रकृति के कारण उसकी भाव प्रवणता किस तरह प्रभावित हुई है?

डी.एम.मिश्र-यह हिंदी गज़ल की ताकत है कि वह समाज का आईना बनकर भी भावनाओं को जीवंत रखती है। उर्दू की कोमल भावुकता अपनी जगह है, लेकिन हिंदी की यथार्थ-आधारित भाव प्रवणता अधिक जनोन्मुखी और परिवर्तनकारी है।

12. हिंदी गज़ल की यथार्थवादी प्रकृति के कारण उसकी संगीतात्मकता पर क्या प्रभाव पड़ा है?

डी.एम.मिश्र-सकारात्मक। यथार्थवादी प्रकृति के बावजूद मेरी गज़लों को बड़े -बड़े गायक -गायिकाओं ने संगीतबद्ध करके गाया है और ख्याति अर्जित की है।

13. हिंदी ग़ज़ल का स्वर उर्दू ग़ज़ल की तुलना में कठोर हो गया है क्यों? इस बारे में आप क्या कहना चाहेंगे?

डी.एम.मिश्र- हिंदी ग़ज़ल का स्वर उर्दू ग़ज़ल की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक कठोर या तीखा माना जाता है, और इसका मुख्य कारण दोनों की परंपराओं, कथ्य और सामाजिक संदर्भ में अंतर है।

14. हिंदी ग़ज़ल का आलोचनात्मक पक्ष कमजोर है। इसके पीछे आप आप क्या कारण मानते हैं?

डी.एम.मिश्र-हिंदी ग़ज़ल के पीछे आलोचकों का रवैया सकारात्मक पहले नहीं था, यह सही है। लेकिन ग़ज़ल के क्षेत्र में दुष्यन्त कुमार और अदम गोंडवी के अवतरित होने से यह भ्रम दूर हो गया। नामवर सिंह, मैनेजर पाण्डेय जैसे बड़े आलोचकों ने कभी ग़ज़ल को साहित्य और कविता की मुख्यधारा में ग़ज़ल को लेने से परहेज किया था। लेकिन बाद में उन्होंने भी अपने विचारों में परिवर्तन किया। राम निहाल गुंजन, नचिकेता, विजय बहादुर सिंह जीवन सिंह, सुशील कुमार आदि ने ग़ज़ल की आलोचना पर महत्वपूर्ण कार्य किया है।

15. आपके अनुसार हिंदी ग़ज़ल की सीमाएँ क्या है ? बताइए

डी.एम.मिश्र- हर विधा की तरह हिंदी ग़ज़ल की भी कुछ सीमाएँ जो इसके शिल्प, भाषा और विषयवस्तु से जुड़ी हैं। जिनमें प्रमुख हैं- कठोर शैल्पिक बंधन (बहर, काफ़िया, रदीफ़ की अनिवार्यता), भाषाई सीमा और उर्दू-निर्भरता, विषयवस्तु की सीमित गहराई, विस्तार की कमी, आधुनिकता बनाम परंपरा का संघर्ष आदि।

16. आपके अनुसार हिंदी ग़ज़ल की भविष्य में क्या संभावनाएं हैं? बताइए।

डी.एम.मिश्र- हिंदी ग़ज़ल का भविष्य काफी उज्ज्वल और विविधतापूर्ण दिखता है। पिछले दो-तीन दशकों में इस विधा ने जो लोकप्रियता हासिल की है, वह अभूतपूर्व है और आगे भी यह बढ़ने वाली है।